विशेष सूचना ।

विदित हो कि, जो कुछ निर्णय इस ग्रंथमें किया गया है सब प्राचीनरीतिके अनुसार है इसकारण धर्माभिलाषी सज्जन पुरुष इसे देखकर धर्मका यथार्थ निर्णय करसकते हैं । इस ग्रंथके बनानेका कारण यह है कि, जब इस देशमें दयानंदियोंने अधिक उपद्रव मचाना प्रारम्भ किया और सीधे साधे मनुष्य बहकने लगे, तब मैंने " सत्यार्थप्रकाश" ग्रंथको विचारा तो सम्पूर्णही वेदप्रतिकूल दृष्टि आया, जिससे मनुष्य दोनों लोकसे हाथ धोबैठें, इसीकारण उस सत्यार्थप्रकाशके उत्तरमें यह ग्रंथ बनाना पडा, इसमें स्वामीजीके वेदविरुद्ध आशयोंका विवरण पूर्णरीतिसे कर दिया है, अब यह ग्रंथ परब्रह्म परमेश्वर आनंदकंद व्रजचंद्र श्रीकृष्णजीके अर्पण है वोह अंगीकार करैंगे ॥

परमेश्वर पढने सुननेवालोंकी वृद्धि करैं आनंदमंगल करैं, हे जगतपालक परमेश्वर ! आप इसके पाठकोंको सुमति दीजिये ॥

ॐ सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सह वीर्य्यं करवावहै
तेजस्विना वधीतमस्तुमाविद्विषावहै ॥ १ ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॐतत्सत् ॥

इति श्रीदयानन्दतिमिरभास्करे पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृत
सत्यार्थप्रकाशस्य खंडनम्।

समाप्तोऽयं ग्रंथः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

" श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालय-बंबई.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

दयानन्दतिमिरभास्करः।

अर्थात्

सनातनधर्मकल्पतरु।

जिसको

दयानन्दनिर्मितसत्यार्थप्रकाशके खण्डनमें वेद ब्राह्मण
शास्त्र स्मृति पुराण वैद्यकादि प्रमाणोंसे अलंकृत
कर संस्कृत और भाषाटीका सहित

विद्यावारिधि महोपदेशक भारतधर्ममहामण्डल

पंडित-ज्वालाप्रसाद मिश्रने निर्माण किया।

वही तीसरीबार

खेमराज श्रीकृष्णदासने

मुंबई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रसिद्ध किया।

संवत् १९६२, शके १८२७.



विद्वद्वर पण्डित ज्वालाप्रसादमिश्रजी.

प्रथमावृत्तिकी-भूमिका।

पूर्व कालमें यह भारतवर्ष विद्याबुद्धि सम्पन्न सर्व गुणोंकी खान था, जिस समय इस देश-की कीर्तिपताका भूमण्डलके चारों ओर फहरा रहीथी, उस समय कानोंसे सुनी कीर्तियोंको नेत्रोंसे देखनेके निमित्त अनेक देशोंके यात्री यहां आते, और अपने नेत्रोंको सफलकर यहांकी अतुलनीय कीर्तिको अपनी भाषाके ग्रथोंमें वर्णनकरते थे, वे ग्रंथ आजतक इस देशकी गुरुता और कीर्तिका स्मरण कराते हैं। जिस समय यह सब विश्व अज्ञानांधकारमें मग्न था, पृथ्वीके अधि-कांशमें असभ्यता पूर्ण होरहीथी उस समय यही देश धर्म आस्तिकता और भक्ति तथा सभ्य-ताके पूर्ण प्रकाशसे जगमगा रहाथा, उस समय इस देशमेंही ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, गणित, ज्योतिष, भेषजतत्त्व, काव्य, पुराण, साहित्य, धर्मादि विषयोंने पूर्ण उन्नति कीथी. कश्यप मरीचि विश्वामित्रादि जहांके ऋषि, व्यास वाल्मीकि कालिदास प्रभृति जहांके कवि, पाणिनि पतञ्जलि आदि जहांके वैय्याकरण, धन्वन्तरि, सुश्रुत, चरक आदि जहांके वैद्य, कपिल, कणाद और गौतमप्रभृति जहांके शास्त्रकार, नारद मनु बृहस्पति आदि जहांके धर्मोपदेष्टा, वसिष्ठ, आर्यभट्ट, पराशरादि जहांके ज्योतिर्विद, शंकराचार्य, रामानुज स्वामी, वल्लभाचार्य, आदि जहांके धर्मप्रचारक, सायनाचार्य, याज्ञदेव, मल्लिनाथप्रभृति जहांके भाष्यकार, अमर-सिंह, महेश्वर प्रभृति जिस देशके कोषकार होगये हैं, ऐसा एक देश यह भारतही है, जिस स-मय यह सब सामग्री विद्यमानथी, उससमय इस देशमें सनातन वैदिक धर्म पूर्णरूपसे प्रच-लित था, नरपति ऋषि मुनियोंके यज्ञसे पुण्य क्षेत्र, पञ्च यज्ञसे गृहस्थियोंके घर, और आर-ण्यक पाठसे काननमें पुण्यका प्रवाह बहरहाथा, सनातन धर्मकी महिमा और भक्ति सबके अन्तःकरणमें खिल रहीथी.

परन्तु समयकीभी क्या अलौकिक महिमा है कि, सूर्य मंडलको आकाशमें चढकर मध्या-ह्न समय महातीक्ष्ण होकर फिर नीचेको उतरना पडता है, ठीक वही दशा इस देशकी हुई, जो सबका शिर मौरथा वह पराधीनताके भारसे महापीडित होरहा है, भारतके उपरान्त यह देश विदेशी चढाइयोंसे ऐसा गारत होकर आरत हुआ है, कि, निस्सार बलहीन होकर आल-स्यका भंडार होगया है, इसकी विद्या बुद्धि सब विदेशीय शिक्षामें लय होगई है, धर्म कर्ममें असावधानी होगई है, संस्कृत विद्या जो द्विजमात्रका आधारथी, उसके शब्दभी अब शुद्ध नहीं उच्चारण होते, इसप्रकार धर्मविप्लव होनेसे अनेक मत भेदभी होगये, जिस पुरुषको कुछभी सहायता मिली झट उसने अपना नवीन पंथ कल्पनाकर शब्दब्रह्मकी कल्पना करली, और शिष्योंको उपदेश देना प्रारम्भ किया, इसका फल इस देशमें यह हुआ कि, फूटका वृक्ष

उत्पन्न होकर सत् धर्ममें बाधा पडने लगी, इन नवीन मतोंसे तौ हानि होही रहीथी कि, इसीसमय दयानन्द सरस्वतीनेभी एक अपना मत चलाकर लोपलीला करनी प्रारम्भकी, इसमतमें भक्ति, भाव, देवपूजा, अवतार, श्राद्ध, पाप दूर होना, तीर्थ, माहात्म्य, आदिका निषेध करके जपतप जाति आचार विचार मेटकर, कर्मसे ब्राह्मणादि वर्ण, नियोग, प्रचार, स्त्रीके एकादश पति करनेकी विधि शूद्रके हाथका भोजन करनेकी आज्ञा देकर वेदमें रेल, तार कमेटी, आदिका वर्णन कर सब कुछ वेदके नामसेही लिखा गया है, इससे संस्कृतके न जाननेवाले सनातन धर्मसे हीनहो उनकी व्याख्या सुन अपनी महान् पुरुषोंकी गति त्याग, इस नाम मात्रकी व्याख्यामें मग्नहो जाते हैं, इनके संघट्टका नाम आर्यसमाज है, उक्त सन्यासीजीके बनाये हुए ग्रंथोंमें दूसरी बारका छपाहुआ सत्यार्थप्रकाशही इस मतकी मूल है, स्वामीजीके अनुयायी इसें पत्थरकी लकीर समझते, तथा इसका पाठ करते और कोई कोई इसकी कथा भी कहाते हैं, समाजोंमें इसका पाठ होता है, शास्त्रार्थमें उसीके प्रमाणभी देते हैं, यहभी गुप्त न रहै कि, सत्यार्थप्रकाश दोहैं, एक पुराना एक नया, पुराने सत्यार्थप्रकाशको स्वामी-जीने कह दियाथा कि, इस पुस्तकमें मृतक पुरुषोंका श्राद्ध, और पशुयज्ञ छापेवालोंकी भूलसे छपगया है, इस लिये अब यह दूसरा सत्यार्थप्रकाश तयार किया जाता है, इसमें जो कुछ कहा है, वह बहुत कुछ समझकर वेदानुसार ही कहा है, और सज्जनोंको माननीय है, यद्यपि पुराने सत्यार्थप्रकाशमें उक्त दो बातें छोडकर और सब स्वामीजीके कथनानुसार ठीक है, यह स्पष्ट है तथापि दूसरीबारके सत्यार्थप्रकाशपर वे और उनके अनुयायी अधिक श्रद्धा रखते हैं, कि जो कुछ इसमें है, वह हमारे निमित्त औषधी है, बस हमको पहले उस औषधीके गुणदोषकी परीक्षा करनी अवश्य है, कि जो कुछ उसमें लिखा है वह यथार्थ है वा नहीं, जहांतक मेरी बुद्धिकी पहुँच है और विचार कर देखा जाता है तौ सत्यार्थप्रकाश वेद शास्त्र प्रतिकूल, परस्पर विरुद्ध बातोंसे भरा हुआ दीखता है, वेदके नामसे लाल बाग दिखाया गया है और संस्कृतानभिज्ञोंको वशीभूत करनेको शंबरकी माया दिखाई गई है, इसके अनुवर्ती बहुतसे नवशिक्षितोंको होते देखकर हमको इसकी समीक्षाकी आवश्यकता हुई, कारण कि, इसकी समीक्षासेभी देशका उपकार होकर सनातन धर्मकी वृद्धि होगी और इसको पढकर मनुष्य इस कपोलकल्पित मतसे बचैंगे, यदि स्वामीजी जीवित होते तौ इसका खंडन बनानेकी आवश्यकता नहींथी, कदाचित् इसकोभी स्वामीजी बदलकर और छापेवालोंके शिर इसकाभी कलंक डाल-कर तीसरा सत्यार्थप्रकाश नवीन तयार करते, परन्तु यह पुस्तक सम्वत् १९३९ में स्वामीजीने पुनः शोधकर छपवाया, और उन्नीससे चालीसमें शरीर छूट गया जो कि, यह मत स्वामी जीका स्थापित किया हुआ है, इसकारण और ग्रन्थोंको छोड़कर उन्हींकेग्रंथोंकी समालोचना करनी उचित है, सो इस पुस्तकमें स्वामीजीके कपोलकल्पित ग्रंथोंका प्राचीन ग्रंथोंसे मिलानकर सज्ज-नोंके सामने प्रगट करताहूं, इससे बुद्धिमान् सत्यासत्यका निर्णय कर सकैंगे, सत्यार्थप्रकाशमें

दो भाग हैं, पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध पूर्वार्द्धके दश समुल्लासोंमें स्वामीजीने अपना मन्तव्य प्रकाशित कर नवीन मतकी नीमडाली है और उत्तरार्द्धके चार समुल्लासोंमें आर्यावर्तीय मतोंका खंडन किया है, जैन, बौद्ध, चार्वाक और इसाई तथा यवनोंकाभी खंडन किया है इनके खंडनसे हमारा प्रयोजन नहीं है, हमको प्रथम उन्हींके स्थापित मतकी परीक्षा करनी है जिसको वह वेदानुसार बतलाकर मनुष्योंको भ्रममें डालते हैं, खंडन करनेसे मेरा प्रयोजन द्वेष वा शत्रुता अथवा किसीके जी दुखानेसे नहीं है, किन्तु इसके लिखनेसे केवल यही प्रयोजन है कि, मनुष्योंको सत्यासत्यका ज्ञान होकर स्वामीजीके ग्रंथोंका वृत्तान्त विदित होजाय कि उनके अनुसार वर्तनेसे हम यथार्थमें धर्मपथमें स्थित हैं वा नहीं ॥

इसमें जो पृष्ठ पंक्ति लिखी गई हैं यह दूसरी बारके छपे हुए सत्यार्थप्रकाशके अनुसार हैं सत्यार्थप्रकाश तीसराभी छपा है उसमेंभी किंचित् परिवर्तन हुआ है इससे तीसरे सत्यार्थप्रकाशकी पंक्ति चाहैं न मिलै परन्तु पृष्ठ तौ मिलैहींगे यदि उस पृष्ठमें न होगा तो अगलेमें मिलैगा

मैंने जो इस ग्रंथमें प्रमाण लिखे हैं वे उन्हीं ग्रंथोंके हैं. जिनको स्वामीजीने माना और अपने सत्यार्थप्रकाशमें लिखा है और मंत्रोंके अर्थ प्राचीन भाष्यानुसार लिखे हैं सनातन धर्मावलंबियोंको इससे महालाभकी संभावना है, कारण कि, सम्पूर्ण धर्मविषय वेदसे भाष्यसहित प्रतिपादन किये हैं जिससे किसी प्रकारकी भ्रान्ति नहीं रहती, धर्मकी प्राप्ति और पाखण्डकी निवृत्तिही इस ग्रंथका उद्देश है ॥

आर्यसमाजियोंसे विशेष प्रार्थना है कि, जब वे इस पुस्तकको देखने बैठें तो पक्षपात छोडकर विचारैं और यदि बकरेकी तीन टांगकाही हठ है तौ सत्यासत्यका निर्णय नहीं होसकेगा और फिर किसीके समझाये कुछ फल न होगा क्यों कि,-

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यतेविशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं नरञ्जयति ॥ १ ॥

अर्थात् अज्ञानी सुखसे और विशेष ज्ञानी महासुखसे समझाया जासक्ता है परन्तु ज्ञानके लेशसे दुर्विदग्ध मनुष्यको ब्रह्माजीभी नहीं समझा सक्के ॥

देशोपकारके निमित्त यह पुस्तक निर्माणकर इसका सब प्रकारका स्वत्व वैश्यवंशदिवाकर सद्गुणाकर वेदशास्त्रप्रवर्तक परोपकारनिरत "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यंत्रालयाधिपति सेठजी **श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासको** समर्पण करादिया है ॥

पाठक महशयोंसे निवेदन है कि-यदि इसमें कहीं भूल रहगई हो तोकृपाकर सूचित करदें उचित होगी तो दूसरीबार बनादीजायगी आपको लाभ होनेसे मेरा परिश्रम सफल होगा ॥

पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्र, (मोहल्ला दीनदारपुरा) मुरादाबाद.

श्रीः ।

द्वितीयावृत्तिकी भूमिका ।

गौरीपुत्रं गणाधीशं भक्तानामभयप्रदम् ।
वन्देहं कामदं देवमखिलानन्ददायकम् ॥

इस समय यह वार्ता किसीसे छिपी नहीं है कि, सनातनधर्ममें चारों वर्णोंको विशेष ज्ञान प्राप्त करना अति आवश्यक है, इससमय केवल कथाश्रवणसे ही कार्य नहीं सफल होगा, किन्तु अब विशेष परिश्रमकी आवश्यकता है अपने धर्मके गूढअभिप्रायोंकी व्याख्या विना श्रवण किये, विना विचारे, बुद्धिमान् संस्कृतके विद्वानोंकी संगति विना किये, धर्मसे साधारण पुरुषोंके विश्वासका कुछ शिथिल हो जाना कोई आश्चर्य नहीं है, इससमय अनेक पंथ समाजादि वेद पुस्तक हाथमें लिये टट्टीकी ओलटमें साधारण पुरुषोंका आखेट करते हैं, चौहट हाट आदिमें मोरछल लिये वेद २ पुकारते भोलेभाले लोगोंको वेदके नामसे मिथ्या उपदेश देते हैं, जिसे सुनकर संस्कृतानभिज्ञ मनुष्योंके हृदयमें अधर्मका संचार होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, इससमय सबसे अधिक सनातनधर्मका शत्रु एक नवीन पंथ आर्य्यसमाज खडा हुआ है, जो साधारण मनुष्योंके चित्तमें असन्तोषका अंकुर उत्पन्नकर गली बाजारोंमें वेद २ पुकार करता सनातनधर्मकी शत्रुतामें कोई यत्न उठा नहीं रखता है व्यास महर्षि जैमिनि आदि सम्पूर्ण आचार्योंके ग्रंथ वेदविरुद्ध बतलाकर. श्राद्ध, तर्पण, तीर्थ, पापनाशक मंत्र, स्तुति प्रार्थनाके वाक्योंके अर्थोंको उलट पुलट करता. मिथ्या वाक्योंसे सनातन धर्मपर बडे २ आक्षेप करता हुआ यत्र तत्र दृष्टिगोचर होता है. इस नवीन पंथके स्थापन करनेवाले स्वामी दयानंद नामक संन्यासी हुए हैं. इन्होंने लोकोंको भ्रममें डालनेको एक ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश और वेदभाष्य भूमिका बनाई है तथा यजुर्वेद और कुछ ऋग्वेदका भाष्य किया है. नवीन आर्य इन्हीं ग्रंथोंके सहारे बडी उछलकूद करते हैं और उन्हीं ग्रंथोंको हाथमें लिये व्याख्यान करते हैं परंतु यदि उनके ग्रंथ विचारके साथ देखेंजांय तो उनकी पोल और मिथ्या प्रपंच सब खुल जाता है, इस कारण उनके ग्रन्थोंकी असत्यता सर्व साधारणके प्रगट होनेसे सनातन धर्मियोंको बहुत बडा लाभ होगा. इसकारण मैंने यह पुस्तक निर्माणकर सर्व साधारणके दृष्टि गोचर की जिसके द्वारा बहुत कुछ उपकार हुआ और पुस्तककी द्वितीयावृत्ति छापनेकी आवश्यकता हुई॥

यद्यपि अब समाजी यह भी कहने लगे हैं. कि स्वामीजीका कथन सर्वथा हमको स्वीकार नहीं, हम वेदकोही मानते हैं. परन्तु समाजी या समाजीचालढालके मनुष्य

नई चमकसे चकाचौंधमें आकर जितने ग्रंथ निर्माण करते हैं या कहीं कुछ प्रमाणका विचार करते हैं तो वही दयानंदजीका किया अर्थ करते हैं, इस कारण सत्यार्थप्रकाश और वेदभाष्यके विरुद्ध अर्थ खण्डन करनेसे उन सब नई रोशनीवालोंका लेख खंडन होजायगा इसी कारण इस ग्रन्थको निर्माणकर विद्वानोंके सन्मुख उपस्थित किया ॥

प्रथमावृत्तिमें जो कहीं पृष्ठ पंक्ति आदिकी अशुद्धि रहगईथी वह दूर करके शुद्ध करदीहै और जो कोई विषय संक्षेप लिखाथा आवश्यकतानुसार कोई २ अधिक वेदादिका प्रमाण देकर दृढ करदिया गया, जिससे पाठकोंको उन प्रमाणोंको अवलोकन कर विशेष सन्तोषकी प्राप्ति होगी ॥

दयानन्दीय वेद कैसाहै उसके अर्थमें कैसा गौरव और क्या अपूर्वता है इस बातके दिखानेको दयानन्दीय वेदका थोडासा नमूना पाठकोंके अवलोकनार्थ इसी ग्रंथके पीछे लिखदिया है, जिनके देखनेसे पाठकोंको विदित होजायगा कि, दयानंदीय वेदमें कैसी शिक्षा और कैसा अर्थ है, तथा दयानन्दकृत वेदभाष्यकी पोल दिखानेके लिये उसके पृष्ठ पंक्तिभी लिखदिये हैं, पाठक महाशय एक बार उन वार्ताओंको समाजियोंसे पूछतौ देखैं कि, आपके वेदमें ऐसी २ निर्लज्जादि वार्ता भी लिख रक्खी हैं ॥

वेदका सत्य अर्थ सब पर प्रकाशित होजाय इसी कारण श्रीवेंकटेश्वर यंत्रालयमें भाषाटीकाकर यजुर्वेद छपायाहै इसमें पदार्थ भावार्थ तत्त्वविचार विधि सब कुछ प्रमाणों सहित लिखी है टिप्पणीमें दयानन्दीय अर्थकी पोल खोली है. १७०० पृष्ठमें ग्रंथ पूर्ण हुआ है सर्वसाधारणके सुबीतेके लिये कीमत ८) रक्खीहै ॥

दयानन्द ति० भा० में १८८४ के सत्यार्थप्रकाशकी पृष्ठ पंक्तिही मुख्य रहनेदीहै परन्तु अब सत्यार्थप्रकाशमें बहुत कुछ फेर फार किया जाता है [जिसका समाजियोंको कोई सत्वनहीं है] उस बातको दिखाने के लिये भी इस तृतीयावृत्तिमें टिप्पणी दी है और सन् १८८४ के सत्यार्थप्रकाशके पृ० पं० लिखकर सत्यार्थप्रकाशका विषय लिखकर उसके पीछे इससमय सन् १८९७ के सत्यार्थप्रकाशकी पृष्ठ पंक्ति लिखी जिससे पाठकोंको विदित होजाय कि, अबके सत्यार्थप्रकाशमें वह विषय कहां है और किसप्रकार फेरफार किया गया है परन्तु शास्त्रार्थ के लिये १८८४ काही सत्यार्थप्रकाशही सन्मुख रखना उचित है ॥

हर्षका विषयहै कि, समाजी लोग भी अब दयानन्दजीकी मिथ्या उक्तियोंको समझने लगे हैं, और शास्त्रार्थ के समय सत्यार्थप्रकाश और उनके वेदभाष्य तथा उनकी आप्ततापर शास्त्रार्थ करने से सर्वथा नटजाते हैं, और उनके भाष्यादिका नामभी नहीं लेते हमारा उद्देश भी यही था कि, स्वामीजीके मिथ्यात्वका ज्ञान सर्वसाधारणको हो जाय ॥

फूटकी भी अब आर्यसमाजमें कमी नहीं है घास पार्टी मांसपार्टीवालोंकी कटूक्तियोंकी बोछारतो थी ही पर अब गुरुकुलके विरोधमें कृपारामी पार्टीकीलीलाभी चलरहीहै प्रतिनिधि उनको

खारिजकर चुकी है पर आर्यसमाजें उनको नहीं छोडतीं और परस्पर आक्षेपोंकी कमी नहीं है सत्य है प्रपंच खुले विना नहीं रहता ॥

जोकि दितिपुत्र पुरोहितकी समान किसी २ ने विरुद्ध पक्ष का अवलम्बनकर इस ग्रंथपर आक्षेपकिये, अन्तमें वह आक्षेप उन्हींपर पड़े कारण कि, उन लोगोंने दयानन्दके सिद्धान्तोंकाभी अतिक्रमणकर दिया इससे वह ग्रंथ दयानन्दियोंको मान्य वा प्रमाण कसे हो सक्ते हैं, तोभी उनके उत्तरमें 'धर्मदिवाकर भास्कराभासनिवारणादि ग्रंथ बनचुके हैं, और कहीं २ उनकी समालोचनाटिप्पणीमें इस ग्रंथमें भी की गई है, और जब कि, इनके महान् पंडित भीमसेनजीही सनातन धर्मपर आरूढ होगये और दयानन्दकी पोल खोल रहे हैं तब उनके चेलोंकी स्थिति कबतक रह सकेगी प्रयोजन समाप्त होते ही रंग बदलेगा इसीसे आधुनिकग्रंथोंके विशेष खंडनकी आवश्यकता नहीं है.

इस समयमें वेदभाष्य भूमिकाकी समीक्षामें लगा हुआ हूं इसके समाप्त होतेही सनातन धर्म प्रचार पाखण्डमतकुठार ग्रंथ प्रकाशित होगा.

इस अवसरपर हम धर्मसभाओं के कर्मचारी तथा पंडित मंडलीका ध्यान भी इस ओर आकर्षित करना चाहते हैं कि, अब आपको आलस्य दूर करना चाहिये जिसप्रकार वार्षिकोत्सवमें उत्साह करते हो इसीप्रकार संवत्सरके मध्यमें भी तौ कुछ कार्य्यवाही किया कीजिये यह सभाओंकी कार्यवाही जितनी यथायोग्य कीजायगी, उतनीही अच्छा है नहीं तौ विचार लीजिये कि, हमारे आपके देखते२ नवशिक्षितमण्डली कुसंस्कारके कारण नास्तिक बनजायगी. अभी सनातन धर्मके उपदेशक बहुत कम हैं,जैसे २ कुतर्की प्रायः सर्वत्र प्रश्नकर घूमतेहुए भोलेभाले लोगोंको बहकाते हैं, वैसे उनके उत्तर देनेवाले सर्वत्र नहीं मिलते, मानों हमने कि, इस समय पण्डितजीकी उपाध्यायजीकी यजमान बडी प्रतिष्ठा करते हैं, आपको कुछ आवश्यकता नहीं परंतु यजमानके पुत्रका आपके चरणोंमें तथा आपकी सन्तानमें शतांश भाव भी नहीं है, इसकारण जैसे प्रतिदिन दूसरे कार्य करते हो इसीप्रकार दश पांच मिनट इस धर्मकार्यमें भी तौ व्यय कीजिये, जिससे धर्मकी उन्नति हो. यही कारण है कि, सभा स्थापित होकर थोडेही दिनोंमें शिथिल होजाती है, कोई कोई सभा नाममात्रकी हैं अपने कार्यको उद्योगके साथ सफल करना चाहिये और केवल व्याख्यानही देकर कृतार्थ नहूजिये कोई कामभी तौ करना चाहिये द्विजातियोंका संस्कार संध्या पंच यज्ञका प्रचार; पुस्तकालय, पाठशाला आदि इन श्रेष्ठ देशहितैषीकार्योंका संपादन करनेसे आप कुछ उन्नति लाभ कर सकैंगे, यह छोटेसे बड़े सब कोई करसकतेहैं अब किसीके भरोसे न बैठिये, अपना काम आप सँभालिये. कारण कि, जिनके किये कुछ हो सकताहै वह कभी इस ओर झुककर नहीं पूँछते कि, अमुक सभाकी क्या दशाहै, क्या कार्यवाहीहै, किस बातका अभावहै, उच्च श्रेणीके पुरुषोंको उचितहै कि, सभाओंका वृत्तान्त पूछकर उनके सुधारका प्रबन्धकरैं, तभी कुछ उन्नति होसकती है अहंकार त्यागकर नम्रताके साथ सभाकी उन्नति हो सकतीहै, वह कार्यवाही करो जिसमें दूसरों के उदाहरण बनो,

अभीतक इस हमारे पश्चिमोत्तरप्रदेशमें सभाओंकी बडी शिथिलता और न्यूनताहै, पण्डित और महोपदेशक गण कहीं २ सभाओंमें पधारकर शास्त्रोंके मर्म सुनाकर जगाते रहते हैं, परन्तु सभासद और उन २ नगरोंके विद्वान् जब कटिबद्ध होंगे तब बहुत शीघ्र कार्य सफल होगा ॥

प्रिय पाठकगण धर्मसभाओंकी उन्नतिमें कटिबद्ध हूजिये, समाजियों के उत्तर देनेको यह पुस्तक बहुतहै तथा और भी अनेक विद्वानों के निर्मित किये ग्रन्थहैं, आपके आलस्य त्यागकी देरहै सामग्री जयकी सब प्रस्तुतहै, इस ग्रंथको प्रेमसे अवलोकन कर लाभ उठाइये इतनेमेंही मेरा परिश्रम सफलहै ॥

आपका—ज्वालाप्रसाद मिश्र, मुरादाबाद.

श्रीः ।

दयानन्दतिमिरभास्करस्य सूचीपत्रम् ।

अष्टमः समुल्लासः।

नवमः समुल्लासः।

दशमः समुल्लासः।

उत्तरार्द्ध।

एकादशः समुल्लासः।

संपूर्णम्।

जिन २ ग्रन्थोंका इसमें वर्णन है उनके नाम.

वेद

मंत्रभाग

ऋक् यजुः साम अथर्व.

ब्राह्मणभाग

ऐतरेय शतपथ ताण्ड्य गोपथ.

उपनिषद्

ईश केन कठ प्रश्न मुण्ड माण्डूक्य तैत्तिरीय बृहदारण्यक छान्दोग्य.

धर्मशास्त्र

याज्ञवल्क्य, मनुस्मृति.

वेदांग

शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द ज्योतिष.

दर्शन

न्याय २ योग सांख्य मीमांसा वेदान्त.

इतिहास

महाभारत.

पुराण

भागवतादिअष्टादश.

रामायण

वाल्मीकि.

वैद्यक

चरक सुश्रुत.

इति

दयानन्दतिमिरभास्करस्य

अनुक्रमणिका समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

अथ दयानन्दतिमिरभास्करः।

ॐ यस्माज्जातं जगत्सर्वं यस्मिन्नेव विलीयते ।
येनेदं धार्यते चैव तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥ १ ॥

हरिःॐ

शन्नो मित्रः शंवरुणः शन्नोभवत्वर्य्यमा ।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥
नमोब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्वामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु मां अवतु वक्तारम् ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १ ॥ (तैत्तरी० व० १)

अर्थ–प्राणवृत्ति और दिवसका अभिमानी देवता मित्र हमको सुखकारी हो अपानवृत्तिका और रात्रिका अभिमानी देवता वरुण हमको सुखकारी हो, चक्षुविषे वा सूर्यविषे अभिमानी अर्यमा हमको सुखकारीहो, बलविषे अभिमानी इन्द्र और वाणी और बुद्धिविषे अभिमानी बृहस्पति हमको सुखकारी हो, उरुक्रम बलिराजासे तीन पाद्की याचनासे सर्व राज्यके ग्रहण अर्थ विश्वरूप धारके विस्तीर्ण पादके क्रमवाले चरणके अभिमानी विष्णु हमको सुखकारी हो, ब्रह्मरूप वायुके अर्थ नमस्कार. हे वायो ! तेरे अर्थमें नमस्कार है तूही चक्षु आदिकी अपेक्षा करिकै बाह्य समीप और अन्तरायसे रहित प्रत्यक्ष ब्रह्म है, इस कारण मैं तुझेही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहताहूं और जैसे शास्त्रमें कहाहै और जैसे करनेको योग्यहै, ऐसा बुद्धिविषे सम्यक् निश्चय किया अर्थ ऋत कहाता है, सो वो तेरे आधीन है इससे तुझे ऋत कहताहूं वाणी और शरीरसे सम्पादन हुआ जो सत्य है सोभी तेरे आधीन है, इस कारण तुझे सत्य कहताहूं, सो सर्वात्मा वायु नाम ईश्वर मुझसे स्तुति-

को प्राप्त हुआ मुझ विद्या (ज्ञान) के अर्थीको विद्यासे युक्त कर रक्षा करो, मुझको रक्षा करो वक्ताकी रक्षा करो दो बार कथन आदरके हेतु है शांति हो, शांति हो, शांति हो. तीनिबार शान्ति करनेसे आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक रूप जो विद्याकी प्राप्ति विषे विघ्न हैं तिनकी निवृत्तिके अर्थ है, दयानंदजीने सत्यार्थप्रकाशमें इसका अन्यथा व्याख्यान किया है सो त्याज्य है ॥ शांकर भा० ॥

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतप्रथमसमुल्लासस्य खंडनं प्रारभ्यते ।

मंगलाचरणप्रकरणम् ।

(सत्यार्थ०) भूमिका पृ० १ पं० १ से–

ॐ सच्चिदानंदेश्वराय नमोनमः ॥ जिस समय मैंने यह ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने पठन पाठनमें संस्कृतही बोलने और जन्मभूमिकी भाषा गुजराती होनेके कारणसे मुझको इस भाषाका विशेष परिज्ञान न था इससे भाषा अशुद्ध बनगई थी अब भाषा बोलने और लिखनेका अभ्यास होगया है इस लिये इस ग्रंथको भाषाव्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी बार छपवाया है कहीं २ शब्द वाक्यरचनाका भेद हुआ है सो करना उचित था क्यों कि, इसके भेद किये बिना भाषाकी परिपाटी सुधरनी कठिन थी, परन्तु अर्थका भेद नहीं किया गया है प्रत्युत विशेष तौ लिखा गया है. हां, जो प्रथम छपनेमें कहीं २ भूल थी वोह निकाल शोधकर ठीक ठीक करदीगई है ॥ सन १८९७ पृ० १ भूमिका.

समीक्षा–इस लेखसे पहला सत्यार्थप्रकाश गुजराती भाषा मिश्रित विदित होताहै किन्तु उसमें कोई गुजराती भाषाका शब्द पाया नहीं

---

१ यह मित्रादि शब्द पृथक् देवताओंके वाचक हैं इसमें प्रमाण–

महित्रीणामवोस्तुद्युक्षम्मित्रस्यार्य्यम्णः ॥ दुराधर्षवरुणस्य ॥ यजु० अ० ३ मं० ३१

(मित्रस्य) प्राणवृत्ति और दिवसके अधिष्ठात्री देवता मित्र (अर्यम्णः) चक्षु वा सूर्यके अधिष्ठात्री अर्यमा देवता (वरुणस्य) अपान और जलोंके अधिष्ठात्री देवता वरुण (त्रीणाम्) इन तीनों देवताओंसे सम्बन्ध रखने वाली (महि) बडी (द्युक्षम्) कान्तिमान् सुवर्णादि द्रव्योंसे युक्त (दुराधर्षम्) तिरस्कारपानेको अशक्य (अवः) पालना वा रक्षा (अस्तु) हमको प्राप्त हो । इससे अगले मंत्रमें लिखा है ॥

तेहिपुत्रासोअदितेः प्रजीवसेमर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ यजु० अ० ३ मं० ३३

यह तीनों देवता अदितिके पुत्रहैं यजमानको अखण्ड तेज और दीर्घायु देते हैं । दयानंदने अपने वेदभाष्यमें मित्रका प्राणवायु अर्यमाका सूर्यलोक वरुणका जल अर्थ कियाहै प्राचीन अर्थोंमें इनके अधिष्ठात्री देवता लिखे हैं इससे मित्रादिक ईश्वरसे भिन्नही देवता हैं और 'यच्छन्ति' देते हैं यह बहुवचन है इससे सत्यार्थ प्रकाशका अर्थ जो स्वामीजाने किया है वह अशुद्धही है ॥

जाता, भला वोह तौ अशुद्ध हो चुका पर अब यह तौ आपके लेखा-नुसार सम्पूर्ण ही शुद्ध है, क्योंकि इसके बनानेके पूर्व न तौ आपको लिखनाही आताथा, न शुद्ध भाषाही बोलनी आतीथी, इससे यह भी सिद्ध होताहै कि, इस सत्यार्थसे पूर्व रचित वेदभाष्यभूमिका तथा यजुर्वेदादि भाष्योंकी भाषाभी अशुद्ध होगी, क्योंकि शुद्ध भाषाका ज्ञान तौ आपको इस सत्यार्थप्रकाशके लिखने के समय हुआहै और इसीकारण आप इसको निर्भ्रान्त सत्य मानते हैं ॥

स० प्र० पृ० ११ पं० ११

सब्रह्मासविष्णुःसरुद्रःसशिवस्सोक्षरस्सपरमःस्वराट्
सइन्द्रस्सकालाग्निस्सचन्द्रमाः । कैवल्यउपनिषत् ।

अर्थ-सब जगत्के बनानेसे ब्रह्मा सर्वत्र होनेसे व्यापक विष्णु दुष्टोंको दंड देके रुलानेसे रुद्र मंगलमय और कल्याण कर्ता होनेसे शिव जो सर्वत्र व्याप्त अविनाशी सो अक्षर जो स्वयंप्रकाशस्वरूप सो स्वराट् प्रलयमें सबका काल और कालकाभी काल होनेसे उसका नाम कालाग्नि वही चंद्रमा है पृ० ९ पं. ७ फिर पृ० १९ पं० ११ में लिखते हैं कि, इस लिये मनुष्योंको योग्य है कि, परमेश्वरहीकी स्तुति प्रार्थना उपासना करें उससे भिन्नकी कभी न करें. क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव नामक पूर्वज महाशय विद्वान्, दैत्य दानवादि निकृष्ट मनुष्य और अन्य साधारण मनुष्योंनेभी उसीकी प्रार्थना कीहै अन्यकी नहीं । पृ० १८।१७

समीक्षा-धन्य है स्वामीजी आप तौ दशही उपनिषद मानतेथे आज मतलब पड़ा तौ कैवल्यभी मान बैठे और प्रमाणसे ब्रह्मा, विष्णु, शिवको ईश्वर बताया और यहां उनको पूर्वज विद्वान् बतलाते हो. इसमें कोई प्रमाण दिया होता कि, यह मनुष्य थे यदि प्रमाण नहीं मिलाथा तो कोई उलटी सीधी संस्कृतही गढ़ी होती, आपके चेले उसे पत्थरकी लकीर समझलेते, यह आपहीको योग्यहै कि, ब्रह्मादिक ईश्वरके नाम बताकर फिर इन्हें एक विद्वान् बतादिया और यह अर्थभी आपका अशुद्ध है । इसका अर्थ यहहै कि, वोह ब्रह्मारूप होकर जगत्की रचना करता, विष्णुरूप हो पालन करता, रुद्ररूप हो दुष्टों-

---

१ भास्करप्रकाशमें वादी कहता है यह अर्थ कहांसे आया कि वह ब्रह्मारूप हो जगत् रचताहै उ० हमारे अर्थ तो वेदशास्त्रपुराणसे सिद्धहैं पर वह बतावै कि जगत्के बनानेसे ब्रह्माआदि कहांसे आगया अक्षरार्थमें तो वह ब्रह्मा, वही विष्णु दिखाई देताहै फिर वह विद्वान् मनुष्यथे यह स्वामीजीके लेखकाढकोसला कहांका है ।

को कर्मफल भुगाकर रुलाता, शिवहो मंगल करताहै, वोही अक्षर स्वराट् इन्द्र चन्द्रमाहै और कालाग्निरूप धारण कर प्रलय करताहै, यह सब देवता उसीके रूपहैं नहीं तो आप बताइये कि, यह तीनों विद्वान् किनके पुत्र थे, जो कहो कि, स्वयं उत्पन्न होगये थे, तो आपका सृष्टि क्रम जाता रहैगा कि, माता पिताके बिना कोई मनुष्य नहीं उत्पन्न होता, यही तो आपकी भंगकी तरंगहै, जो जीवनचरित्रमें लिखाहै कि मुझे भंग पीनेकी ऐसी आदत थी कि दूसरे दिन होश होताथा ॥

स० पृ० १६ पं० ९ बृहत् शब्दपूर्वक पा रक्षणे धातुसे डतिप्रत्यय बृहत्के तकारका लोप और सुडागम होनेसे बृहस्पतिशब्द सिद्ध होताहै जो बडोंसेभी बडा और आकाशादि ब्रह्मांडोंका स्वामीहै इससे परमेश्वरका नाम बृहस्पति है ॥ १८।१९

स० पृ० १७ पं०२८ दिवु क्रीडाविजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति, गतिषु, जो शुद्ध जगत्को क्रीडाकरावे, विजिगीषा धार्मिकोंको जितानेकी इच्छा युक्त व्यवहार सब चेष्टाओंके साधनोपसाधनोंका दाता, द्युति स्वयंप्रकाशस्वरूप सबका प्रकाशक, स्तुति प्रशंसाके योग्य, मोद आप आनंदस्वरूप दूसरोंको आनंद देनेहारा, मद मदोन्मत्तोंको ताडन करनेहारा (यह अर्थ तो व्याकरणसे सिद्ध नहीं होता कि, मदोन्मत्तोंको ताडनकरै किन्तु आपके प्रसंगसे यह अर्थ बनताहै कि, आप मदोन्मत्त दूसरोंको मद करनेहारा) कान्ति कामनाके योग्य, गति ज्ञान स्वरूपहै इस लिये परमेश्वरका नाम देव है इसी प्रकार देवीभी १७।१७ परमेश्वरका नाम है पृ०२३ पं० २ में देखो स० पृ०१९ पं० २० ॥ पृ० ११।१६

आपोनाराइतिप्रोक्ताआपोवैनरसूनवः । ता यदस्या-
यनं पूर्वंतेननारायणःस्मृतः ॥ मनु०अ०१ श्लो १०

जलजीवोंका नाम नारा है वे अयन अर्थात् वासस्थान हैं जिसका इस लिये सब जीवोंमें व्यापक परमात्माका नाम नारायण है (यह अर्थभी अशुद्धहै इसका अर्थ तो यह है कि, जलको नारा इस कारण कहते हैं कि, नर जो परमात्मा उससे उत्पन्न हुआहै वोह जल है प्रथमस्थान जिसका इसकारण परमात्माको नारायण कहते हैं) ॥ १३।१९

स० पृ० २१ पं० ७ गृ शब्दे इस धातुसे गुरुशब्द सिद्ध होताहै जो सकल धर्मप्रतिपादक सकल विद्यायुक्त सब वेदोंका उपदेश करता सब

ब्रह्मादिककाभी गुरु जिसका नाश कभी नहीं होता इससे उसका नाम गुरु है इस्में ब्रह्मादिककाभी गुरु यह पद स्वामीजीके घरका है) १५।१२

स० पृ० १९ पं० २३ चदि आह्लादे इस धातुसे चन्द्रशब्द सिद्ध होताहै जो आनंदस्वरूप और सबका आनंददेनेहाराहै इसकारण परमेश्वरका नाम चन्द्रहै मंगिगत्यर्थक धातुसे 'मंगेरलच्' इस सूत्रसे मंगलशब्द सिद्ध होताहै जो आप मंगल स्वरूप और सब जीवोंके मंगलका कारणहै इस कारण उस परमेश्वरका नाम मंगलहै 'बुध् अवगमने' इससे बुधशब्द सिद्ध होताहै जो स्वयंबोधस्वरूप और सब जीवोंके बोधका कारणहै इस लिये उस परमेश्वरका नाम बुधहै 'ईशुचिर्पूतीभावे' इस धातुसे शुक्रशब्द सिद्ध होताहै जो अत्यन्त पवित्र जिसके संगसे जीवभी पवित्र होजातेहैं इस लिये परमेश्वरका नाम शुक्रहै 'चर गतिभक्षणयोः' इस धातुसे शनैस् अव्यय उपपद होनेसे 'शनैश्चर' शब्द सिद्धहुआहै जो सबमें सहजसे प्राप्त धैर्यवान्है इससे उस परमेश्वरका नाम शनैश्चर है । 'रह त्यागे' इस धातुसे राहुशब्द सिद्ध होताहै जो एकान्त स्वरूप जिसके स्वरूपमें दूसरा पदार्थ संयुक्तनहीं जो दुष्टोंको छोड़ने और अन्यको छुड़ानेहाराहै इससे उस परमेश्वरका नाम राहु है. 'कित निवासे' इस धातुसे केतुशब्द सिद्धहोताहै जो सबरोगोंसे रहित सब जगत्का निवासस्थानहै और मुमुक्षुओंको मुक्ति समयमें सब रोगोंसे छुड़ाता है इससे उस परमात्माका नाम केतुहै यह दोनों अर्थ अशुद्धहैं ॥ १३।२०

स० पृ० १४ पं० २५ 'दो अवखंडने' इस धातुसे अदिति और इससे तद्धित करनेसे आदित्य शब्द सिद्ध होताहै जिसका विनाश कभी नहीं हो इससे ईश्वरकी आदित्य संज्ञा है यह अर्थ अशुद्धहै किन्तु यहां दित्यादित्य० ४।१।८५ सेण्य प्रत्ययहै जो अदितिका अपत्य हो वह आदित्य है ॥ ८ । ३

स० पृ० २२ पं० २५ 'गण संख्याने' इस धातुसे गण शब्द सिद्धहोताहै इसके आगे ईश और पति रखनेसे गणेश और गणपति सिद्धहोतेहैं जो प्रकृत्यादि जड़ और सब जीव प्रख्यात पदार्थोंका स्वामी वो पालन करनेहाराहै इससे परमेश्वरका नाम गणेश वो गणपतिहै १७ । ७

स० पृ० २३ पं० ४ शकॢ शक्तौ इस धातुसे शक्तिशब्द बनताहै जो सब जगतके बनानेमें समर्थ है इस लिये उस परमेश्वरका नाम शक्तिहै, 'श्रिञ् सेवायाम्' इस धातुसे श्रीशब्द सिद्धहोताहै जिसका सेवन सब

जगत्के विद्वान् योगीजन करते हैं इससे उस परमेश्वरका नाम श्री [illegible] 'लक्ष दर्शनाङ्कनयोः' इस धातुसे लक्ष्मी शब्द सिद्ध होताहै जो [illegible] चराचर जगत्को देखता चिह्नित अर्थात् दृश्य बनाता जैसे शरीरके नेत्रनासिका वृक्षके पत्र पुष्प फल मूल पृथ्वी जलके कृष्ण रक्त श्वेत मृत्तिका पाषाण चंद्र सूर्यादि चिह्न बनाता तथा सबको देखता सब शोभाओंकी शोभा और जो वेदादि शास्त्र वा धार्मिक विद्वान् योगियोंका लक्ष अर्थात् देखने योग्यहै इस्से उस परमेश्वरका नाम लक्ष्मीहै 'सृ गतौ' इस धातुसे सरस् और उससे मतुप् और ङीप्प्रत्यय होनेसे सरस्वती शब्द सिद्ध होताहै जिसको विविध ज्ञान अर्थात् शब्द अर्थ संबंध प्रयोगका ज्ञान यथावत् होवै इससे उस परमेश्वरका नाम सरस्वती है १७ । १७

स० पृ० २५ पं० १० यः शिष्यते स शेषः जो उत्पत्ति प्रलयसे बच रहाहै इससे उसका नाम शेषहै तथा इसी पृष्ठकी २७ पंक्तिमें 'शिवु कल्याणे' इस धातुसे शिव शब्द सिद्ध होताहै जो कल्याण स्वरूप और कल्याणकारक है इस लिये उस परमेश्वरका नाम शिवहै इस प्रकार परमेश्वरके सौ १०० नामका कथन किया है पुनः आपही फिर प्रश्नसंबंधसे लिखते हैं* २० । १

स० पृ० २६ पं० ८ (प्रश्न) जैसे अन्य ग्रन्थकार लोग आदि मध्य और अन्तमें मंगलाचरण करते हैं वैसा आपने न कुछ लिखा न किया- (उत्तर) ऐसा हमको करना योग्य नहीं क्योंकि जो आदि मध्य और अन्तमें मंगलाचरण करैगा तो उस आदि मध्य अंतके बीचमें जो लेख होगा वोह अमंगलही रहैगा इसलिये मंगलाचरण "शिष्टाचारात् फलदर्शनाच्छ्रुतिश्चेति" यहभी सांख्यशास्त्रका वचन है. अभिप्राय यह है कि, जो न्याय पक्षपातरहित सत्यवेदोक्त ईश्वरकी आज्ञाहै उसीको यथावत् सर्वत्र और सदा आचरण करना मंगलाचरण कहाताहै ग्रंथके आरंभसे लेके समाप्ति पर्यन्त सत्याचारका करनाही मंगलाचरण कहाताहै न कि, कहीं अमंगल लिखना २१ । २

समीक्षा-धन्यहै स्वामीजी आपके अर्थ और अभिप्रायको आप तो मंगलाचरण करते जाँय और पूछनेपर नहीं कहैं यदि आप मंगलाचरण नहीं करते तौ बताइये कि- सत्यार्थप्रकाशभूमिकाके पहले "ओम्

* भा० प्र० पृ० ६ वादी कहताहै कि इनका उत्तर द०ति०भा०में नहीं है (उत्तर) इनका उत्तर अच्छी तरहसे है यह अर्थ अशुद्धभी बतायेहैं तथा पृ० ७ में इसका फल निकाला इसको देखिये बिलकुल आंख मीचना ठीक नहीं ।

सच्चिदानन्देश्वरायनमो नमः" और "अथ सत्यार्थप्रकाशः" और "[illegible]मित्रादि" सत्यार्थ प्रकाशके प्रारम्भमें और अन्तमें ५९२ पृष्ठमें "[illegible]मित्र इत्यादि" और यह सौ नाम परमेश्वरके किस आश- [illegible] वेदभाष्यके प्रत्येक अध्यायके प्रारम्भमें "विश्वानिदेव" त्यादि क्यो लिखेहै [illegible] यह विदित होताहै कि आपके वेदभाष्य तथा सत्यार्थप्रकाशमें बीच २ मे [illegible]लाचरणहीहै और सत्यभीहै ऊपरके सांख्यसूत्रके टीकेमें सत्यवेदोक्त ईश्वरकी आज्ञा कहनी मंगलाचरणहै और आपने पोपादि बहुतसे अपशब्द और दुर्वचन आगे इस पुस्तकमें लिखेहैं जिनके उच्चारणकी आज्ञा वेदमें कहीं नहीं पाई जाती न उन शब्दोंका उच्चारणकरना न्याय और निष्पक्षता संपादन करताहै इस लिखनेसे जानाजाताहै कि, स्वामीजी प्रगटमें मंगलाचरणसे हिचकतेहैं, और स्वयं वोही परिपाटी ग्रहणकरते हैं यदि ऐसा न करते तौ यह इनका मत भिन्न कैसे प्रतीतहोता, और सांख्यवचनका अर्थ यहहै कि मंगलाचरणसे मंगलहोताहै यह शिष्टाचारहै और इसका फलभी दीखता है श्रुतिप्रमाणहै.

सत्या० पृ० २६ पं० २० इस लिये आधुनिक ग्रंथोंमें "श्रीगणेशायनमः, सीतारामाभ्यांनमः, श्रीगुरुचरणारविंदाभ्यांनमः, शिवायनमः, सरस्वत्यैनमः नारायणायनमः श्रीराधाकृष्णाभ्यांनमः" इत्यादि देखनेमें आते हैं इनको बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रोंके विरुद्ध होनेसे मिथ्याही समझते हैं, क्योंकि वेद और ऋषियोंके ग्रंथोंमें कहीं ऐसा मंगलाचरण देखनेमें नहीं आता और आर्षग्रंथोंमें तौ ओम् तथा अथ शब्द देखनेमें आताहै जैसे "अथ शब्दानुशासनम्" महाभाष्यमें "अथातो धर्मजिज्ञासा" मीमांसामें "अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः" वैशेषिक दर्शनमें "अथ योगानुशासनम्" योगमें "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" वेदान्तमें "ॐमित्येतदक्षरमुद्गीथ उपासीत" छान्दोग्यमें यह वचनहैं जो ऋषि मुनियोंने ग्रंथ बनायेहैं २१ । १४

स० पृ० २७ पं० ११ जो वैदिक लोग वेदके आरम्भमें हरिः ओम लिखते हैं और पढतेहैं यह पौराणिक तांत्रिक लोगोंकी मिथ्या कल्पनासे सीखे हैं, वेदादि शास्त्रोंमें कहीं प्रथम हरि शब्द देखनेमें नहीं आता २२।१४

समीक्षा-विदित होताहै कि स्वामीजीको परमेश्वरके नाम कुछ तौ प्रिय हैं और कुछ अप्रिय हैं इसमें जो प्राचीन लोगोंकी परिपाटी है इसका तो मेटना मानो इन्होंने नियमही कर लिया है देखिये प्रथम

तौ गणेश गुरु शिव सरस्वती नारायण शिव आदि नाम परमात्माके लिखे जिनका उल्लेख हम पहले करचुके हैं और अब यह कहते हैं कि, इनको विद्वान् मिथ्याही समझतेहैं तौ विद्वान् मिथ्या नहीं समझते हैं आप उनको दोष मत दीजिये वोही कह दीजिये मैं मिथ्या समझताहूं डरिये नहीं आप तौ रीछको डराचुके हैं (जीवन०) क्या यह आप परमेश्वरके नाम नहीं मान्ते जो मान्ते हो तौ मिथ्या कैसे ? जो नहीं मान्ते तौ परमेश्वरके १०० नामोंमें यह शब्द क्यों लिखे इन्हेभी वेद-मेंसे निकाल डालो करिये क्या यदि आपकी चलती तौ प्राचीन महात्माओंने जो सत्य बोलना परम धर्म लिखाहै आप उसकाभी निषेध करते परन्तु इसमें चल नहीं सक्ती और जैसे आपने धातुओंसे परमेश्वरके नाम सिद्ध कियेहैं क्या 'रमु क्रीडायां' इस धातुसे राम और हरति दुःखानीतिहरिःजो सबमें रम रहाहै वोह राम है भक्तोंके दुःख हरनेसे परमेश्वरका नाम हरिहै हृञ् हरणे सर्वधातुभ्य इन् उणा० पा० ४ और "कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्चनिर्वृतिवाचकः। तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते" इस प्रकार कृष्णके अर्थभी तौ ईश्वरहीके हैं या परमेश्वरको कोई अपना नाम प्याराहै कोई नहीं जो आपनिषेध करते हो आप तौ विद्वत्ताकादम भरते हो ईश्वरको पक्षपाती मत बनाओ कहिये परमेश्वरके यह नाम लेनेसे कौनसी देशोन्नतिमें हानि होती है यदि विचारा जाय तौ जैसे प्राचीन ग्रंथोंमें विष्णुसहस्रनाम, शिव सहस्रनाम हैं वोही आशय उभारकर यह आपनेभी शत नाम लिखे हैं, भलाजी ग्रंथकी आदिमें १०० नाम ईश्वरके लिखना यह कौनसे वेदानुकूल है प्रत्यक्ष लिख देते कि, विष्णुसहस्रनामके स्थानमें हमारे शिष्य शतनामका पाठ किया करैं, फिर यह कैसी बात है कि, अपने नामोंको आपही मिथ्या करते हो शोक है आपकी बुद्धि पर, आप लिखते हैं कि वेद और ऋषियोंके ग्रंथोंमें ऐसा मंगलाचरण देखनेमें नहीं आता इससेभी विदित होताहै-कि, ऐसा नहीं तौ और प्रकारका तौ देखनेमें आता है, सो आपने लिखाही है कि अथ ओम् देखनेमें आते हैं सो उसी प्रकार आपनेभी अथ और ओम् लिखाहै तौ आपनेभी मंगलाचरण किया (अब आपके ग्रंथके मध्य और अंतमें क्या है) मुकरते क्यों हो मंगलाचरण

१ जीवन चरित्रमें लिखाहै मुझसे रीछ डरकर भागगया।

२ कृष्+नक्=कृष्ण। इण्सिञ्जिदीङुष्यविभ्यो नक् उणा० तृ० पादः।

३ भास्क० प्र० पृ० ६ वादी मंगलाचरण स्वीकार करताहै अब गुरुचेलोंमें सच्चाकौनहै।

करना कोई चोरी नहीं है और वेदकी आदिमें तो अग्निमीळे० इषेत्वा० अग्न आयाहि० पद पडे हुए हैं आप वेदानुकूलही चलते हैं फिर अथ और ओम् मंत्र संहिताओंमेंसे किसके अनुकूल लिखा है ॥

और हरि शब्दसे तो कोई आपका बडा भारी द्वेषहै कदाचित कहीं इसके दूसरे अर्थवालेसे भेंट तो नहीं होगई (जीवनचरित्रमें तो भालू मिलाथा) भयके मारे आपको परित्राण पाना कठिन होगया होगा तबसे उस नामसे ऐसा जी खट्टा हुआ कि, वोह शब्द जिस २ में आरूढ हो उस उससेही भयभीत हो द्वेष करनेलगे जैसा मारीचको भय हुआथा (रा अस नाम सुनत दशकंधर, रहत प्राण नहिं मम उर अंतर) और इसी कारण आप तांत्रिक पौराणिक लोगोंके ऊपर डालकर उसे मिथ्या बताते हो ॥

ॐकारप्रकरण ।

स० पृ० १ पं० १० (ओ ३ म्) यह ॐकार शब्द परमेश्वरका सर्वोत्तम नाम है, क्योंकि इसमें जो अ उ म् तीन अक्षर मिलकर एक (ओ ३ म्) समुदाय हुआहै इस एक नामसे परमेश्वरके बहुत नाम आतेहैं जैसे अकारसे विराट् अग्नि और विश्वादि उकारसे हिरण्यगर्भ वायु और तैजसादि मकारसे ईश्वर आदित्य और प्राज्ञादि नामोंका वाचक और ग्राहक है उसका ऐसाही वेदादिक सत्य शास्त्रोंमें स्पष्ट व्याख्यान कियाहै ॥ २१

समीक्षा-स्वामीजीकी वेदज्ञता तो इस ॐकारके अर्थनिरूपणसेही सज्जन पुरुष जान लेंगे कि, प्रथम ग्रासमेंही मक्षिकापात हुआ, अब देखना चाहिये कि, प्रणवकी व्याख्या अनन्त प्रकारसे वेदादि शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है परन्तु स्वामीजीने अपने अर्थकी पुष्टिमें एकभी प्रमाण नहीं लिखा भला वोह कौनसा मंत्र है जिसमें स्वामीजीके लिखे उक्त अर्थ लिखे हैं ॐकारके ऐसे अर्थका प्रतिपादक मंत्र न ब्राह्मण नशास्त्र न पुराण में एकभी नहींमिलनेका ऋग्वेदमें इस प्रकार कथन है ॥

ऋचोअक्षरेपरमेव्योमन्यस्मिन्देवाअधिविश्वेनिषेदुः ।
यस्तन्नवेदकिमृचाकरिष्यतियइत्तद्विदुस्तइमेसमासते ॥

ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० ३९

इति विदुष उपदिशति कतमत्तदेतदक्षरमोमित्येषा वागिति शाकपूणिर्ऋचो ह्यक्षरे परमे व्यवने धीयन्ते नानादेवतेषु च मंत्रेष्वेतद्ध्वा एतदक्षरं यत्सर्वां त्रयीं विद्यां प्रति प्रतीति च ब्राह्मणम् निरुक्त अ० १३ पा० १ खं० १० परिशिष्टे प्र० भाष्यम् कतमत् तदक्षरम् इति ॐम् इत्येषा वाक् इति शाकपूणेः अभिप्रायः ॐकारमृतेन ह्यर्चयन्ति तस्या अक्षरे परमे व्योमन् व्योम विविधमस्मिञ्छब्दजातमोतमिति व्योम तस्मिन् तिसृषु मात्रासु अकारोकारमकारलक्षणासूपशान्तासु यदवशिष्यते तदक्षरं परमं व्योम शब्दसामान्यमभिव्यक्तमित्यभिप्रायः ॥ यस्मिन्देवा अधिनिषण्णाः सर्वे ऋगादिषु ये देवाः ते मंत्रद्वारेणाक्षरे निषण्णाः तस्य शब्दकारणत्वात् अथवा प्रथमायां मात्रायां पृथिवी अग्निः ऋग्वेदः पृथिवीलोकनिवासिन इत्येवं द्वितीयायां मात्रायां अन्तरिक्षम् वायुः यजूंषि तल्लोकनिवासिनो जना इति तृतीयायां मात्रायां द्यौः आदित्यः सामानि तल्लोकनिवासिनो जना इति विज्ञायते हि ॐकार एवेदं सर्वम् इति यस्तन्न वेद अनया विभूत्याक्षरम् किमसौ ऋचा ऋगादिभिर्मंत्रैः करिष्यति यस्तत्राक्षरात्मना पश्यति। यइत्तद्विदुस्त इमे समासते इति विदुष उपदिशंति ते हि तत्परिज्ञानात्तद्भाव्यमुपगताः प्रणवविग्रहमात्मानमनुप्रविश्य समीकृता निर्वान्ति शान्तार्चिष इवानला इति ॥

पद—ऋचः अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवाः अधिविश्वे निषेदुः । यः तत् न वेद किम् ऋचा करिष्यति ये इत् तत् विदुः ते इमे समासते ॥ ऋ० ॥

भावार्थ—इस मंत्रका व्याख्यान ॐकारपरत्व तथा आदित्यपरत्व तथा आत्मतत्त्व परतामें है, तिसमेंसे प्रथम शाकपूणि नामक निरुक्तकारके मतसे ॐकारपरता निर्णय करते हैं (प्रश्न) जिस परम व्योम संज्ञक अक्षरमें देवादि स्थित हैं सो अक्षर कौनहैं (उत्तर) ॐ यह वाक् नाम शब्द, परम उत्कृष्ट (व्योमन्) नाम सर्वकी रक्षा करनेवाला जो ॐकार है तिसमेंही सम्पूर्ण ऋग्वेदादि मंत्र अध्ययन किये जाते हैं और नाना जो देवता हैं वे सर्व मंत्रोंमें स्थित हैं और मंत्रोंमें कारण होनेसे यह अक्षर व्याप्त है, क्योंकि सर्व वेदत्रयी विद्याके प्रति यह अक्षर व्याप्त है ऐसे

१ भा० प्र० वादी कहताहै यह निरुक्त कुछ छोडकर लिखाहै उसको यहभी नहीं दीखा कि विवरण करनेके सिवाय इससे पहले और क्याहै यथा ऋचो अक्षरे परमे व्यवने यस्मिन् देवा अधिनिषण्णाः सर्वे यस्तं न वेद किं स ऋचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासत इति । इसमें पदविवरणके सिवाय और क्याहै । धन्य पक्षपात ।

ब्राह्मण भी प्रतिपादन करता है भाव यह है ओंकार विना ऋगादि मंत्रोंका उच्चारण नहीं होता इससे व्योमसंज्ञक जो अक्षर है तिसमें नानाविध शब्दसमूह स्थित हैं (प्रश्न) मंत्र तथा ओंकार शब्दरूप है इससे यह दोनों आकाशमें स्थित हैं यावत् शब्द समूह ओंकारमें स्थित कैसे कहतेहो (उत्तर) ओंकार नाम यहां अकारादि मात्राके शान्त होते जो परिशेष रहता है शब्द सामान्य व्योम नामक अक्षर उसका है इस से तिस अक्षर शब्द सामान्य नादरूप ओंकारमें यावत् मंत्र स्थित हैं और जिसमें सर्व देवता स्थित हैं, क्योंकि मंत्रोंमें देवता स्थित हैं और मंत्र पूर्वोक्त नाद नामक अक्षरमें स्थित हैं, इससे मंत्र द्वारा सब देवता भी अक्षरमें स्थित हैं, अथवा प्रथम मात्रामें पृथ्वीलोक अग्नि ऋग्वेद और पृथ्वीलोकनिवासी जन स्थित हैं और द्वितीयमात्रामें अन्तरिक्ष वायु यजुर्मंत्र और अन्तरिक्षलोकनिवासी जन स्थित हैं और तृतीय मात्रामें द्युलोक आदित्य साम मंत्र और स्वर्गलोक निवासी जन स्थित हैं, इसी कारण मांडूक्य उपनिषद्में (ओंकार एवेदं सर्वम्) यह कहा है जो इस विभूति सहित अक्षरको नहीं जान्ता सो ऋगादि मंत्रोंसे क्या करैगा ? अर्थात् विना ओंकारके जाने और उसके अर्थ जाने उसे वेदके मंत्र फल नहीं देंगे, और जो पुरुष उक्त रूप नाद विभूति सहित अक्षरको जानते हैं वे पुरुष (समासते) प्रणव ज्ञानसे अक्षर भावको प्राप्त हुये अपने आत्माको प्रणवरूप निश्चय करके प्रणवमें प्रविष्ट होकर समताको प्राप्त हो शान्तज्वाल अग्निवत् (निर्वान्ति नाम निर्वाणपदम् मोक्षं प्राप्नुवन्ति) निर्वाणको प्राप्त होते हैं अर्थात् मुक्त होते हैं, आदित्य पक्षमें यह अर्थ है कि, जिस व्योमरूप परम अक्षर रूप आदित्यमें सब देवता स्थित हैं मंत्र द्वारा तिस आदित्यको जो नहीं जानते वे ऋगादि मंत्रोंको क्या करेंगे ये इत् नाम एव तिस आदित्यको जान्ते हैं वे पुरुषही विद्वज्जन भूमिमें सुखपूर्वक रोगादिरहित भोग सम्पन्न चिरकाल जीवते हैं मांडूक्य उपनिषद्में इस प्रकार लिखा है ॥

> ॐमित्येतदक्षरमिद ँ सर्व्वंतस्योपव्याख्यानंभूतंभवद्भविष्य दितिसर्व्वमोङ्कारएव यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कारएव॥ मां० मं० ॥ १॥

अर्थ—ओं इस प्रकारका यह अक्षर यह सर्व है ऐसे कहते हैं जो यह विषय रूप अर्थका समूह है तिसको नामसे अभिन्न होनेसे और नाम

को ओंकारसे अभिन्न होनेसे ओंकारही यह सर्व है, और जो परब्रह्म नामके कथनरूप उपाय पूर्वकही जानने योग्य हैं सो ओंकारही है, तिस इसपर और अपर ब्रह्मरूप ओं इस प्रकारके अक्षरका ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय होनेसे ब्रह्म के समीप होनेसे विस्पष्ट कथनरूप प्रसंगविषे प्राप्त जो उपव्याख्यान है सो जाननेको योग्य है, उक्त न्यायसे भूत भविष्यत् और वर्तमान इन तीनोंकालोंसे परिच्छेद करनेको योग्य जो वस्तु है, सो भी यह ओंकारही है और अन्य जो तीन कालसे भिन्न कार्य रूप लिंगसे जानने योग्य और कालसे परिच्छेद करनेको अयोग्य अव्याकृत आदिक है सोभी ओंकारही है इहां नाम (वाचक) और नामी वाच्य की एकताके हुएभी नामकी प्रधानतासे यह निर्देश किया है ॥

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोधिमात्रम् पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥ २८ ॥

जो वाच्यकी प्रधानतावाला ॐकार चारों पादवाला आत्मा है ऐसा पूर्व व्याख्यान किया है यथा (सर्व ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोयमात्मा चतुष्पात्) सर्व (कारण और कार्य) ही यह ब्रह्म है सर्व जो ॐ कार मात्र है ऐसे श्रुतिने कहा है सो यह ब्रह्म है यह आत्मा ब्रह्म है सो यह ॐकारका (वाच्य) और पर (अधिष्ठान) और अपर (प्रत्यगात्मा) रूप होनेसे स्थित हुआ आत्मा चार पादवाला है, सो यह आत्मा अध्यक्षर है वाचककी प्रधानतासे अक्षरको आश्रय करके वर्णन कियाहै। इससे अध्यक्षर कहा है फिर वह अक्षर क्याहै इसपर कहते हैं सो अक्षर ॐकार है सो यह ॐकार (पाद) चरणोंसे विभागको पाया हुआ अधिमात्र है, जिस कारण मात्राको आश्रय करके वर्तताहै इससे अधिमात्र कहते हैं, (प्रश्न)आत्माही पादोंसे विभागको प्राप्त होताहै, और मात्राको आश्रय करके ॐकार स्थित होताहै, इस कारण पादसे विभागको प्राप्त हुए ॐकारका अधिमात्रपना कैसेहै, उसपर कहते हैं आत्माके जो पादहैं वे ॐकारकी मात्राहैं और ॐकारकी जो मात्राहैं वे आत्माके पादहैं, इससे पाद और मात्राकी एकतासे यह कथन अविरुद्धहै कौनसी वे ॐकार की मात्रा हैं उसपर कहते हैं अकार उकार मकार यह तीन ॐकारकी मात्रा हैं ॥

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राऽऽप्तेरादिमत्त्वाद्वाऽऽप्नोति ह वै सर्वान् कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥ मांडूक्य० ९

जो जागरित स्थानवाला वैश्वानरहै सो ॐकारकी अकाररूप प्रथम मात्राहै किस तुल्यतासे दोनोंकी एकताहै इसपर कहते हैं व्याप्ति से वा आदिवाले होनेसे जैसे अकारसे सर्व प्राणी व्याप्तहैं तैसे वैश्वानरसे जगत् व्याप्तहै "तिस प्रसिद्ध इस वैश्वानर रूप आत्माका मस्तकही स्वर्ग है" इत्यादि श्रुतियोंके वाक्यसे वाच्य वाचककी एकताको हम कहते हैं जिसकी आदिहै सो आदिवाला कहाताहै तैसेही आदिवाला अकार नाम अक्षर है तैसेही आदिवाला वैश्वानरहै इस कारण तुल्यता होनेसे वैश्वानरको अकारपना है, अब इनकी एकताके ज्ञाताको फल कहते हैं जो ऐसे उक्त प्रकारकी वैश्वानर और अकारकी एकताको जानताहै, सो निश्चयही सब भोगोंको पाताहै और वही बडे पुरुषोंके बीचमें प्रथम होताहै ॥

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारोद्वितीयामात्रोत्कर्षादुभय
त्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति ना-
स्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद ॥ मांडूक्य० ॥ १० ॥

जो स्वप्नस्थानवाला तैजसहै सो ॐकारकी उकार रूप द्वितीय मात्रा है दोनोंकी एकता कैसे है सो कहते हैं-उत्कर्षसे वा उभय (द्वितीय) रूप होनेसे जैसे अकारसे उकार पाठके क्रमसे उत्कृष्टहै, तैसे स्थूल उपाधिवाले विश्वसे सूक्ष्म उपाधिवाला तैजस उत्कृष्टहै, तिस उत्कर्षसे इनकी एकताहै वा जैसे अकार और मकारके मध्यविषे स्थित उकारहै तैसे विश्व और प्राज्ञके मध्यमें तैजसहै, इससे तिनकी उभयरूपताकी तुल्यता एकताहै, अब तिनकी एकताके ज्ञाताको जो फल होताहै सो कहते हैं जो ऐसे जानताहै सो ज्ञानकी संततिको बढाताहै और तुल्य होताहै, मित्रके पक्षकीनाईं शत्रुके पक्षके मध्यभी द्वेष करनेको अयोग्य होता है और इसके कुलमें अब्रह्मवेत्ता नहीं होते हैं ॥

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनो
ति हवा इद ँ सर्व्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥ मांडूक्य० ११

जो सुषुप्ति स्थानवाला प्राज्ञ है सोॐकारकी मकाररूप तृतीय मात्रा है इस तुल्यतासे दोनोंकी एकता है उसमें कहते हैं कि, परिमाणसे वा एकतासे यहाँ दोनोंकी समानताहै प्रस्थ (धान्यपरिमाणके पात्र) से यव धान्यके परिमाण (माप) कीनाईं जैसे लय और उत्पत्तिमें प्रवेश

और निकलनेसे प्राज्ञसे विश्व और तैजस परिमाण कियेकी नाईं होते हैं तैसे अकार और उकार यह दोनों अक्षर ॐकारकी समाप्तिमें और फिर उच्चारण विषे मकारमें प्रवेश करके निकलते हुएकी समान होते हैं, इससे वे मकारसे परिमाण कियेकी समान होते हैं इससे इन दोनोंकी तुल्यतासे एकताहै अथवा जैसे ॐकारके उच्चारण किये मकाररूप अंतके अक्षरमें अकार और उकार यह दोनों एकरूप हुएकी समान होते हैं इसी प्रकार विश्व और तैजस सुषुप्तिकालमें प्राज्ञ विषे एकरूप हुएकी नाईं होते हैं इससे तुल्य होनेसे प्राज्ञ और मकारकी एकताहै अब इनकी एकताके ज्ञाताको फल कहते हैं, जो ऐसे जानताहै सो निश्चय कर इस सर्व जगत्को यथार्थ जानताहै और जगत्का कारणरूप होता है यहाँ बीचके (अवांतर) फलका कथन मुख्यसाधनकी स्तुति अर्थ है ॥

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्य्यः प्रपंचोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद ॥ मांडूक्य० ॥ १२ ॥

जिसकी मात्रा नहीं है ऐसा जो ॐकार सो अमात्रहै और चतुर्थ अर्थात् तुरीयरूप हुआ केवल आत्माही है और वाच्य वाचकरूप वाणी और मनको मूलाज्ञानके क्षयसे क्षीणहोनेसे व्यवहार करनेको अयोग्यहै और प्रपंचके उपशमवालाहै और शिव (कल्याणरूप) है और अद्वैतहै ऐसे उक्तप्रकारके ज्ञानवाले पुरुषसे उच्चारण किया हुआ ॐकार तीन-मात्रावाला और तीनपादवाला आत्माही है, जो ऐसे जानताहै जो ऐसे जानताहै सो अपनेही आत्मासे अपनेपरमार्थ रूप आत्मामें प्रवेश करताहै, अर्थात् सुषुप्तिनामक तीसरे स्थानरूप बीजभावको दग्धकरके परमार्थदर्शी ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंके आत्माके अर्थ प्रवेशपायाहुआ फिर जन्म नहीं पाता, काहेसे कि तुरीयको अबीजरूप होनेसे, जैसे रज्जु और सर्पके विवेकके होनेमें रस्सीके विषे प्रवेशको पाया सर्प फिर तिन विवेकी पुरुषोंको भ्रान्तिज्ञानके संस्कारसे पूर्वकी समान नहीं होता तैसे यहां भी जानना, साधकभावको प्राप्त हुए और सन्मार्गमें वर्त-नेवाले मात्रा और पादों की निश्चित तुल्यता जाननेवाले संन्यासी जनोंको तौ यथार्थ उपासना किया हुआ ॐकार ब्रह्मकी प्राप्तिके अर्थ आश्रय होताहीहै, इसप्रकार स्वामी शंकराचार्य-जीने मांडूक्यउपनिषद्पर ॐकारका भाष्य किया है । इसी प्रकार

औरभी उपनिषदोंमें वर्णनहै यह केवल दिग्दर्शनमात्रहै. परन्तु स्वामी दयानंदजीका किया अर्थ किसीभी ग्रंथके अनुसार नहीं है, इसकारण सत्यार्थप्रकाशमें यह ओंकारका अर्थ मिथ्याही जानना बुद्धिमानोंको उचितहै कि दयानन्द वा उनके अनुयायियोंके वाग्जालसे सावधानरहैं*॥

इति श्रीदयानंदतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतप्रथमसमुल्लासस्य खंडनं समाप्तम्।
समाप्तश्चेदमीश्वरनामप्रकरणम्

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतद्वितीयसमुल्लासस्य खंडनम् ।

शिक्षाप्रकरणम् ।

स० प्र० पृ० २८ पं० १० धन्यहै वोह माता जो गर्भाधानसे लेकर जबतक पूरीविद्या न हो सुशीलताका उपदेश करै २३ । १०

समीक्षा-यहां तौ स्वामीजीकी विलक्षणबुद्धि होगई जो लिखा कि "गर्भाधानसे लेकर जबतक पूरी विद्या नहो सुशीलताका उपदेश करै" भला ! गर्भाधानमें सुशीलताका उपदेश किसप्रकार होसक्ताहै हां यदि बालकके पुष्टिहोनेकी कोई औषधी लिखते तो ठीक होता कि, गर्भमें बालककी पुष्टिहोना सदैवकाल अच्छा है उपदेश तौ सत्यंवद धर्मंचर इस प्रकार उपनिषदोंमें कहे हैं क्या दयानन्दियोंको गर्भमें उपदेश दियेजातेहैं क्या रजवीर्यमिलतेही उपदेश समझनेकी शक्ति आजातीहै ।

स० प्र० पृ० २८ पं० १६ जैसा ऋतुगमनकी विधिका समयहै रजोदर्शनके पांचवें दिवससे लेके सोलहवें दिवसतक ऋतुदान देनेका समयहै उन दिनोंमें प्रथमके चार दिन त्याज्यहैं रहे बारह दिन उनमें एकादशी और त्रयोदशी छोड़के बाकीमें गर्भाधान करना २३ । १६

समीक्षा-क्यों साहब क्या ? यह आपका लेख जो मनुस्मृतिसे उद्धृत कियाहै ज्योतिष विद्यासे सम्बन्ध रखताहै या नहीं और ज्योतिष किस को कहते हैं यह रात्रि त्याज्य इसी कारणहैं कि, इनमें गर्भाधान करनेसे दुष्ट संतान उत्पन्न होती है और शेष रात्रियोंमें श्रेष्ठसंतान उत्पन्न होती है, तथा युग्म रात्रियोंमें पुत्र अयुग्ममें कन्या होना मनुजीने लिखा है त्याज्य रात्रियोंमें गर्भाधान करनेसे दुष्ट संतान और प्रशस्त रात्रियोंमें श्रेष्ठ संतानका होना यह फल नहीं तौ और क्या है आप फल मानते भी

---

* इन अर्थोंपर भा०प्र० वादीसे कुछ कहते न बना मौन होबैठा ।

नहीं और यहाँ यह गुप्त लिखभी दिया । यदि एकादशीको रजोधर्म होतो बारहदिन निखर्चे बचे । स० पृ० २९ पं० २० स्त्री योनि संकोच शोधन और पुरुष वीर्य्यस्तंभन करे—२४।२९

समीक्षा—शिक्षा तौ इसीका नाम है परन्तु इसमें संकोचनकी औषधी आपने क्यों नहीं लिखी आपकी शिक्षा माननेहारी स्त्रियें हाथही मलती रह जायँगी क्योंकि स्त्रियें संकोचन किसप्रकार करैं यह आपने नहीं लिखा यदि आप औषधी लिखदेते तौ विषयी स्त्रीपुरुष आपसे बहुत प्रसन्नहोते, क्योंकि यह आपको अच्छी तरह ज्ञात है कि, विना संकोचन स्त्रीपुरुषोंको आनन्द कमती होताहै कामशास्त्रमेंभी आपका बड़ा अभ्यास है पर यह तौ कहिये कि, यह शिक्षा स्त्रियोंसे कौन करै आप या उनके माता पिता ॥

स० पृ० ३० पं ४ उपस्थेन्द्रियके स्पर्श और मर्दनसे वीर्यकी क्षीणता नपुंसकता होती है तथा हस्तमें दुर्गन्धभी होती है इससे उसका स्पर्श कभी न करै ॥ २९।१२

समीक्षा—यह शिक्षा माताको करनी लिखीहै माता जब इस शिक्षाको करैगी तब लज्जा जो स्त्रीजातिका भूषणहै कोनेमें रखदेगी क्योंकि, पृ० २९ पं० २२ में आप लिखते हैं माता इस प्रकार शिक्षा करै आपने सोचाहोगा हम कहाँतक समझाते फिरैंगे स्त्रियोंपरही इस बातका बोझ डालदिया परन्तु आपकी समान और को इतना अभ्यास न होगा क्योंकि, आपने इसकी खूब जांच करली मालूम होती है ॥ (१)

स० पृ० ३० पं० १९ गुरोःप्रेतस्यशिष्यस्तुपितृमेधंसमाचरन् ।
प्रेतहारैःसमंतत्रदशरात्रेणशुध्यति ॥ मनु० ॥ ५।६५ श्लो०

जब गुरुका प्राणान्त हो तब मृतक शरीर जिसका नाम प्रेतहै उसका दाह करने हारा शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतक उठानेवालोंके साथ दशवें दिन शुद्ध होताहै, और जब उस शरीरका दाह हो चुका तब उसका नाम भूत होताहै अर्थात् वोह अमुकनामा पुरुष था जितने उत्पन्न हों वर्त्तमानमें आके न रहें वे भूतस्थ होनेसे उनका नाम भूतहै ऐसे ब्रह्मासे लेकर विद्वानोंका आजतक सिद्धान्तहै परन्तु जिसको शंकाकुसंगकुसंस्कार होताहै उसको भय और शंका रूप भूत प्रेत शाकिनी डाकिनी

(१) भा०प्र०में वादी गणानान्त्वाकी बात कहता है सो यहां उसको वाचन्तेशुन्धामि पायुन्ते शुन्धामि इसमंत्रके दयानन्दीभाष्यका स्मरण करना चाहिये तभी लाजरहैगी ।

आदि अनेक भ्रमजाल दुःखदायक होते हैं (फिर २७ पंक्तिमें लिखा है कि) अज्ञानी लोग वैदिक शास्त्र वा पदार्थविद्याके पढने सुननेसे और विचारसे रहित होकर सन्निपात ज्वरादि शारीरक और उन्मादादि मानस रोगोंका नाम भूत प्रेतादि धरते हैं २९ । २२ । ८

समीक्षा-स्वामीजी आप जब कोई बात बनाते हैं तौ कोई श्लोक लिखकर उसका अर्थ उलटा करदेते हैं यही लीला इस श्लोकमें फैलाई है कि (पितृमेधं समाचरन्) इस पदके अर्थही खुलासा न लिखे इसका अर्थ यह है कि, जब गुरुका शरीर छूट जाय तौ शिष्य गुरुकी अन्त्येष्टि क्रिया पिंडादि विधान करता हुआ मृतक उठानेवालोंके साथ दशवें दिन शुद्ध होता है और प्रेतयोनि एक पृथक् है जिसको जीव शरीर त्यागने उपरान्त कर्मानुसार प्राप्त होता है "और जो वर्तमानमें आकर न रहे वोह भूत कहलाता है". यह स्वामीजीका लेख समयका बोधक है इसका यहाँ कोईभी प्रकरण नहीं है जो आपने यह मनुष्यों पर लगाया तौ आपभी अब मरकर भूत संज्ञक हुए यह शिक्षा आपके शिष्योंको ग्रहण करनी योग्यहै चाहिये कि, आपके नामके अन्तमें अब भूत शब्द और लगादें तौ परमहंसकी शोभा बढ़ जायगी, ब्रह्मादिकोंने तौ कहीं ऐसा नहीं लिखा, यह आपहीके मुखसे निर्गत है आप अपना मुंह क्यों छिपाया करते हैं, क्या यहाँभी पिताजीका डर है जो वोह आकर पकडलेजायंगे अपना नाम लिख दिया कीजिये कि, मैं ऐसा मानता हूं आप भूत प्रेतादिकोंको नहीं मानते देखिये मनु वेद चरक सुश्रुत आदिसे आपको दिखाते हैं॥ भूतप्रेतके होनेमें प्रमाण अथर्व कां० ८ सू० ९ प्रपाठक १८ नैनंघ्नन्त्यप्सरसो न गंधर्वा न मर्त्याः सर्वादिशो विराजतियो बिभर्तीमंमाणिम् १ मं० १३ यस्त्वां स्वपन्तींत्सरतिं यस्त्वादीप्साति जाग्रतीम्। छायामिवप्रतान सूर्यः परिक्रामन्ननीनशत् ८॥ स्त्रीणां श्रोणि प्रतोदिन इन्द्र रक्षांसिनाशय १३ येषां पश्चात्प्रपदानि पुरःपार्ष्णीः पुरोमुखाः खलजाः शकधूमजा उरुण्डायेच मट्मटाः कुंभमुष्का अयाशवः । तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतिबोधेन नाशय १९ य आमंमांसमदन्ति पौरुषेयं च येक्रविः ॥ गर्भान् खादन्ति केशवास्तानि नो नाशयामासि सू० ४ प्र० १९ मंत्र १३ । १९ ॥ २३ ।

अर्थ-गर्भवती स्त्रीकी रक्षामें मणिबंधन यंत्रहै बालकोंकी रक्षार्थमणिबंधन मंत्र है जो इसको धारण करते हैं उनको अप्सरा गंधर्व

मनुष्य बाधा नहीं दे सकते १ हे गर्भवती स्त्री! सोते समय जो गन्धर्वादि तेरे साथ छल करै जो जागतेमें बाधा दे उसका नाश यह मंत्रयुक्तमणिबंध करै जैसे सूर्य अन्धकार दूर करताहै २ जिन पिशाचोंके पैर पीछेको फिर हुए, एडी पांवके आगे उलटे चरण उस नामसे प्रसिद्धहैं, हे ब्रह्मणस्पते ! उन दुष्टोंका नाश करो ३ जो गंधर्व पिशाचादिक कच्चे मांसके खानेवाले मनुष्य मांसको खाते गर्भको खाते उनका नाश करो ४ (यस्ते गर्भंप्रति मृशाज्जातं वा मरयातितेपिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् । अथर्व० १८) हे स्त्री ! जो तेरे गर्भमें प्रवेशकर बालकको मारताहै उस पिशाचका नाश हो ॥

बृहदारण्यक ५ अ० ३ ब्राह्मण ।

याज्ञवल्क्येति होवाच मद्रेषुचरकाः पर्यव्रजाम तेपतंजलस्य काप्यस्य गृहानैम तस्यासीद्दुहिता गन्धर्वगृहीता तमपृच्छाम कोसीति सोऽब्रवीत् सुधन्वांगिरस इति–

हम मद्रदेशमें फिरते रहे वहां पतंजलकी कन्याको गन्धर्वने ग्रहण किया हमने उससे पूँछा तुम कौन हो उसने कहा मैं सुधन्वाआंगिरसहूं जब कि, वेद उपनिषद् गंधर्व पिशाच राक्षसके लक्षण और उनका होना स्वीकार करते हैं उपनिषद्में इतिहास विद्यमानहै फिर इसको कौन खण्डन कर सकताहै कि, पिशाचादि नहीं हैं जैसे दर्पणमें छाया प्रवेश करतीहै ऐसे यह देहमें प्रवेश करतेहैं अथर्वमें बहुत विस्तारहै जिसे देखना हो देख ले अंक ऊपर दियेहैं तथा सुश्रुतके उत्तर तंत्र अध्याय साठमें पूरा वर्णनहै जब वेदमें है तब वहांसे उतारकर ग्रन्थका विस्तार करना बाहुल्य मात्रहै बुद्धिमानोंको यही बहुतहै ॥

यक्षरक्षःपिशाचांश्चगन्धर्वाप्सरसोसुरान् ।नागान्सर्पान्सुपर्णांश्च पितॄणांचपृथग्गणान् ॥ मनुअ० १ श्लो० ३७

यक्ष राक्षस पिशाच गन्धर्व अप्सरा नाग सर्प गरुड और पितृगणोंकोभी उत्पन्न किया ॥

प्रजापतिः ऋषिःकव्यवाहनाग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः उल्मुकं पुरस्तात्करोतीतिकात्या० ४ । ११९

ये रूपाणि प्रति मुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधयाचरन्ति ॥
परापुरो निपुरोये भरन्त्यग्निष्टान् लोकात्प्रणुदात्यस्मात्॥
यजु० अ०२ मं० ३०। अग्निर्हिरक्षसामपहन्ता।
तस्मादेव निदधाति श०२।४।२।१५.

"अग्नीही राक्षसोंका नाशकहै इसकारण उल्मुक धारण कियाजाताहै."

(स्वधया) पितरोंका अन्न श्राद्धमें भक्षण करनेकी इच्छासे (रूपाणि-प्रति मुञ्चमानाः) अपने रूपोंको पितरोंकी समान करते हुये (ये) जो देवविरोधी (असुराश्चरन्ति) असुर पितृस्थानमें फिरते हैं तथा (ये) जोअसुर (परापुरः॰ निपुरः) स्थूल और सूक्ष्म देहोंको अपना अपना असुरत्व छिपानेके लिये (भरन्ति) धारण करते हैं उल्मुक रूप (अग्निः) अग्नि (तान्) उन असुरोंको इस पितृ यज्ञ स्थानसे (प्रणुदात) हटादे इस्से प्रगट है कि, राक्षसादि विघ्नदायक होतेहैं और मंत्र पढनेसे भाग जातेहैं सुश्रुतमेंभी इस प्रकार लिखाहै:-

भूतविद्यानामदेवासुरगन्धर्वयक्षरक्षःपितृपिशाचनागग्रहाद्युपसृष्टचेतसां शान्तिकर्मबलिहरणादिग्रहोपशमनार्थम् ॥ सुश्रुत सूत्रस्थान ११

अर्थ-भूतविद्या जो आठ प्रकारके आयुर्वेदके विभागमें चतुर्थ है उसको कहते हैं कि, देव असुर गंधर्व यक्ष राक्षस पितर पिशाच और नाग आदिग्रहों करके व्याप्त चित्तवाले पुरुषोंको ग्रह शान्ति करनेसे आरोग्यता होतीहै, जो शान्ति बलि देना आदि कर्मको भूतविद्या कहतेहैं वे समझें यहांभी यह योनि वर्णन करीहैं जिनको बलि देनेसे मनुष्यपर जो आच्छादन होताहै सो जाता रहता है ॥

स० पृ० ३१ पं० १९ परन्तु जो कोई बुद्धिमान् उनकी भेंट पांच जूता दंडा वा चपेटा लातें मारे उसके हनुमान देवी भागजाते हैं ॥२७॥२

समीक्षा-वाह क्या आपका यही न्याययुक्त सभ्यताका कथन है इसी का नाम मंगलाचरण है निश्चयजानिये उन देवतोंने ही आपका प्राण

१ भा०प्रका०में इसमंत्रका अर्थ प्रमाणरहित अंगहीन लिखा और दयानंदके भाष्यसेभी विरुद्ध लिखा इसकारण वह सर्वथा विरुद्धहै और सुश्रुतके प्रमाणका समाधान कुछ नहोसका और एकप्रकारसे भूतादिमानही बैठे जरा ६० अध्यायपर दृष्टितो दी होती ॥

शरीरसे निर्गत करदिया, नहीं तौ ब्रह्मचर्यवालोंकी तो आपके कथनानुसार बड़ी उमर होती, आगे भी यह प्रसंग लिखेंगे देवताओंको दुर्वचन कहनेसे आयु क्षीण होती है (निकटकाल जेहि आव गुसाईं । तेहि भ्रम होय तुह्मारी नाईं ॥)

स० पृ० ३१ पं० ३० (प्रश्न) तो क्या ज्योतिश्शास्त्र झूंठा है (उत्तर) नहीं जो उसमें अंशबीज रेखागणितविद्या है वोह सब सच्ची जो फलकी लीला है वोह सब झूंठ है यह जन्मपत्र नहीं शोकपत्र है ॥ २७ । १२

समीक्षा–न जाने यह शिक्षा कौनसे वेदकी है जो प्रश्नोत्तर आपही गढलिये हैं ज्योतिश्शास्त्रका फल झूंठा है अंक सत्य हैं इस्में कुछ प्रमाण भी है या जो मुँहमें आया सो लिख दिया, जरा अपनेही टीका किये कारकीयके पृ० २० पं० १५ में देखा होता ॥

(उत्पातेन ज्ञाप्यमाने) वार्तिक

आकाशसे बिजली चमकने और ओले गिरनेको उत्पात कहते हैं, इस उत्पातसे जो बात जानी जावे उसमें चतुर्थी विभक्ति होतीहै यथा–

वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी ।
कृष्णा सर्वविनाशाय दुर्भिक्षाय सिता भवेत्॥ (महाभाष्यम्)

जो पीली बिजली चमके तौ अधिक हवा चले, लोहित वर्णकी चमकै तौ आतप अर्थात् गरमी अधिक हो, जो काली चमकै तौ सर्वका नाश प्रलय हो, श्वेत चमके तो दुर्भिक्ष हो, कहिये यह फलित नहीं तौ और क्या है शुभाशुभ फल भविष्य वार्ता सब कुछ ज्योतिषसेही जाना जाता है धन्य है आपकी बुद्धिको जो शास्त्रकर्ताओंको झूंठा बतातेहो यदि जन्मपत्री शुभाशुभ फलके ज्ञानमात्रसे शोकपत्र है इस कारणसे उसका बनाना निष्प्रयोजनहै तौ यावत् शास्त्र विद्यादिक जो मनुष्योंको शुभाशुभका ज्ञान करानेवाले हैं सबही निष्फल होजाँयगे, और यह तोकहियेयह आपके उत्पन्न होनेका दिन सम्वत् आपको उत्पन्न होनेसेही याद है या कोई प्रमाणभीहै कि, आपका जन्म इसी सम्वत्में हुआथा वाह लोगोंके जन्म दिनकी तिथिही आप मेटना चाहते हैं जिसमें कि, जन्मदिन, नक्षत्र, मास, सम्वत, ग्रह लिखे होते हैं जिससे मनुष्योंको अपने जन्म दिवसका ज्ञान होजाताहै और ग्रहोंसे फल और जन्मतिथिकाभी ज्ञान होजाता है वह शोकपत्र और आपके लिखे विवाहके फोटो और जीवन चरित्र क्या

है ॥ शोलेतूरके छपाये नोटिसमें 'तत्रैका भृगुसंहितासत्या' इस वचनसे आप भृगुसंहिता सत्य मान्ते हैं उसमें फलित नहीं तौ और क्या है।

पृ० ३१ पं० २७ क्या ये (ग्रह) चेतनहैं जो क्रोधितहोकै दुःख और शान्त होकै सुख देसकैं ॥ २७।१०

समीक्षा०यदि यह दुःख सुख नहीं दे सक्ते तौ वेदोंमें इनकी शान्ति क्या वृथाकीहै सुनिये ॥

शन्नो ग्रहाश्चान्द्रमसाःशमादित्याश्च राहुणा ॥ अथर्व वेद।

अर्थ–ग्रह चन्द्र आदित्य राहु हमारे लिये शान्तिकारकहों, यह वेदमें शान्ति प्रकरण क्या वृथा है इसीसे ग्रह दुःखसुख देनेहारे सिद्ध होते हैं विशेष वर्णन ज्योतिषप्रकरण ११ समुल्लासमें करैंगे जन्मपत्रमें ग्रह लिखे जाते हैंयह बात वाल्मीकिरामायणमें विदित है रामचन्द्रजीके जन्मसमय उन्होंने नक्षत्रादि लिखे हैं* ॥

स० प्रकाश पृ० ३३ पं० २ कोई कहता है कि, जो मंत्र पढ़कै डोरा वा यंत्र बना देवें तौ हमारे देवता उस मंत्र यंत्रके प्रतापसे कोई विघ्न नहीं होनेदेते उनको वही उत्तर देना चाहिये तुम क्या परमेश्वरके नियम और कर्मफलसे भी बचा सकोगे ॥ २८।१८

समीक्षा–अब गंडे डोरी बांधनेसे जो रक्षा होतीहै सो भी सुनो ॥

नतद्रक्षांसिनपिशाचाश्चरन्तिदेवानामोजः प्रथमजं
ह्येतत्। योबिभर्त्तिदाक्षायणᳪ हिरण्यᳪसदेवेषु
कृणुतेदीर्घमायुःसमनुष्येषुकृणुतेदीर्घमायुः ॥ ५१॥यजु० अ० ३४

जो सुवर्णको धारण करतेहैं, राक्षस और पिशाच उनको अतिक्रमण नहीं करसकते, यह देवगणका प्रथम उत्पन्न तेज है, यह दाक्षायण तेज जो धारण करता है वह देवता और मनुष्यलोकमें सर्वत्रही दीर्घायु लाभ करता है ॥ ५१ ॥

यदाबध्नन्दाक्षायणाहिरण्यᳫशतानीकाय सुमनस्यमानाः ॥
तन्मआबध्नामिशतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥ यजु० अ० ३४ मंत्र ५२

* पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधीः वा० रा० स० १८ श्लो० १५
सार्पे जातौ तु सौमित्री कुलीरे भ्युदिते रवौ ५९

श्रेष्ठ ब्राह्मण डोरोंमें यही सुवर्ण बडी सेनावाले राजोंके बांधते हुए, शरीरमें धारण करनेसे सुमन और सैकडों वर्ष इसके धारण करनेसे सुख साधनमें समर्थ हुआ जाता है, सम्वत्सरजीवीहूं इस कारणमें भी इस सुवर्णको डोरेमें बांधताहूं ॥ ५२ ॥

डोरा बांधनेसे और मंत्र पढके रक्षा नहीं होती तौ आपने पंचमहायज्ञविधिमें पृ० ५ पं० ११ में लिखा है "इसके अनंतर गायत्री मंत्रसे शिखा को बांधके रक्षा करै अब कोई स्वामीजिसे पूछै कि, आप बताइये गायत्री पढकर रक्षा क्या करै और किससे करै यदि शिखा बांधनेहीसे रक्षा हो जाय तौ तलवार बंदूक तमंचा किसी कामका नहीं है यदि दो दयानन्दी संध्योपासनके अनन्तर कुस्ती लडें तौ कोई भी न हारे क्यों कि, दोनों रक्षा कर चुके हैं और कोई जीतेभी नहीं क्योंकि, दोनों रक्षा कर चुके हैं (प्रश्न) तौ तुम रक्षा और मंत्रका फल कैसा मान्ते हो (उत्तर) हम लोग मांत्रिक रक्षाका फल अध्यात्मगत मान्ते हैं देखिये गायत्री मंत्रका फल ॥

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः॥महतोप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥ मनु०अ०२श्लो०७९॥

संध्या वा प्रातः समयमें इस त्रिक अर्थात् गायत्रीको सहस्रवार ग्रामके बाहर नदीतीर वा अरण्यमें एक मास जपनेसे द्विज महान् पापसे छूटताहै क्यों साहब यह मंत्रसे पाप दूरकी विधि लिखी है या नहीं फिर क्या यह मंत्र परमेश्वरके नियममें है या नहीं! अघमर्षण मंत्र वोह पाप दूर होनेके निमित्त जपा जाता है या नहीं! वाल्मीकिरामायण[1]में लिखा है जब रामचंद्र वनको चले तौ कौशल्यानें मंत्र पढकर रक्षा की सुश्रुतके सूत्रस्थानमें रोगोंकी भूत प्रेतादिसे मंत्र पढकर रक्षा करनी लिखी है, मणिबंधनादि पूर्व लिखचुके हैं जितने विघ्नोंका विधान है उन सबकी शान्ति मंत्रोंद्वारा होजाती है और उन मंत्रोंके देवता विघ्न नहीं होने देते, यह ईश्वरका नियमही है कि, देवताओंके मंत्र जपनेसे विघ्न नहीं होता, शौनककृत ऋग्विधान देखिये कि उसमें अनेक वैदिक मंत्रोंके जपनेसे रोगशान्ति ग्रहशान्ति अरिष्टशान्ति लिखी है, तथा औरभी अनेक मंत्र हैं वेदके जो भूत प्रेत पिशाचोंकी शान्ति करते हैं ग्रहोंकी शान्ति करते हैं

१ अयोध्याकाण्ड २५ वां सर्ग देखो ।

८।७।१४ रात्रिसूक्तं जपेद्रात्रौ त्रिवारं तु दिने दिने ।
भूतप्रेतादिचौरादिव्याघ्रादीनां च नाशनम् ॥ १ ॥
३।४।२३ कृणुष्वेति जपेत्सूक्तं श्राद्धकाले प्रशस्तकम् ।
रक्षोघ्नं पितृतुष्ट्यर्थं पूर्णं भवति सर्वतः ॥ २ ॥
६।२।९ येषामावाधमंत्रं च जपेच्चेत्त्र्ययुतं जले ।
बालग्रहा न पीड्यन्ते भूतप्रेतादयस्तथा* ॥३॥

जो रात्रिसूक्तको रात्रिमें प्रति दिन तीन वार जपता रहै तौ भूत प्रेत आदि चोर आदि दुष्ट मनुष्य व्याघ्रादि दुष्टजंतुओंका नाशहो १

जो इस कृष्णुष्वेति सूक्तको श्राद्धके समयमें जपै तौ राक्षसोंका नाश और पितरोंकी तृप्ति होती है २

येषामावधेति इस मंत्रको जलमें खडेहो तीस सहस्र ३००१० जपै तौ बालग्रह भूत प्रेत नाश होजाते हैं ३

स० पृ० ३३ पं० २९ नौवर्षके आरंभमें द्विज अपने संतानोंका उपनयन करकै आर्य कुलमें अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करनेवाली हों वहां लड़के और लड़कियोंको भेज दे, और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये विना विद्याभ्यासके लिये गुरुकुलमें भेजदें २९ । १६

समीक्षा—इस स्थानमें तौ मति ठिकाने है कि, शूद्रका उपनयन न हो जातिही सिद्ध रक्खी है, और द्विजसे ब्राह्मण क्षत्री वैश्यका ग्रहण किया है यह प्रतिज्ञा यहाँ छूटगई कि, महामूर्खकोही शूद्र कहते हैं जिसे पढाये से कुछ न आवै परन्तु आगे तीसरे समुल्लासमें इस अपने लेखकी बहुतेरी मट्टी ख्वार की है सो इसका खंडन वहीं होगा ॥

स० प्र० पृ० ३५ पं० १ बडोंका मान्य दे उनके सामने उठकर जाकर उच्चासनपर बैठा प्रथम नमस्ते करै पृ० ९६ पं० १७ और दिनरातमें जब जब प्रथम मिलैं वा पृथक् हों तब तब प्रीतिपूर्वक नमस्ते एकदूसरेसे करैं ३० । २०

---

* भा० प्र० के कर्ताको वेदमें यह सूक्त और मंत्र पता लिखा होनेपरभी नहीं सूझता तो हम क्याकरैं "विमूढा नानुपश्यन्ति" यहांपर उनके आक्षेपभी मिथ्याहैं कारण कि हमारा पाठ उन्होंने अशुद्ध उताराहै ।

समीक्षा–यह नमस्ते की परिपाटी भी अजब ढंगकी चलाई है, पर परस्पर नमस्ते करनेका कोई प्रमाण नहीं लिखा, आपने तौ सबही ढंग बदल दिये कोई पुरानी बात रहने ही नहीं दी यदि वश चलता तौ आप संस्कृतके स्थानमेंभी कोई औरही विद्या गठते, परन्तु उससे कोई कार्य की सिद्धिनहीं होती, जिसप्रकार यवन लोगोंमें भी यह परिपाटी प्रचलित है कि, स्त्री अपने पतिको मियाँ कहती हैं और बेटी बेटेभी बापको मियांही कहते हैं उसी प्रकार यह आपका नमस्ते है कि, बेटा, बाप गुरु-चेले लुगाई भंगी चमार सब कोई एक दूसरेसे नमस्ते करते हैं, और छोटाई बड़ाई कुछभी नहीं है सच बूझिये तौ यही वर्णसंकरकी जड़है, नमस्तेका अर्थ तौ यही है कि, मैं तेरेसे नीचा हूं कमतीहूं इसमें बड़े लोगोंका मान तौ कुछ नहीं, किन्तु जब वेभी नमस्ते करते हैं तो उनका गौरव नष्ट हो जाताहै, स्तुतियों में यह शब्द आताहै पर यह नहीं कि, जिस, देवताकी स्तुति करो वोहभी नमस्ते करने लगे, और जो बुद्धिको तिलाञ्जलि देकर यह कहते हैं कि (नमो ज्येष्ठायच कनिष्ठायच) यजुः अ० १६ मं० ३२ छोटे बड़ेको नमस्कार लिखाहै वोह प्रथम यह तौ विचारैं कि, यह रुद्राध्यायका मंत्रहै जिसमें ज्येष्ठ कनिष्ठके अर्थ व्यष्टि और समष्टिके हैं अर्थात् व्यष्टिसमष्टिरूप शिवके लिये नमस्कार कियाहै, इसमें कुछ बड़े छोटे मनुष्यको नमः करनेको नहीं लिखाहै, परन्तु जो प्राचीन विधि व्यवहार की है सो दिखलाते हैं ॥

लौकिकंवैदिकंवापितथाध्यात्मिकमेवच ।
आददीतयतोज्ञानंतंपूर्वमभिवादयेत् ॥ ११७ ॥
शय्यासनेऽध्याचरितेश्रेयसानसमाविशेत् ।
शय्यासनस्थश्चैवैनंप्रत्युत्थायाभिवादयेत् ११९
ऊर्ध्वंप्राणाह्युत्क्रामंतियूनःस्थविरआयाति
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यांपुनस्तान्प्रतिपद्यते १२०
अभिवादनशीलस्यनित्यंवृद्धोपसेविनः
चत्वारितस्यवर्द्धन्तेआयुर्विद्यायशोबलम् १२१
अभिवादात्परंविप्रोज्यायांसमभिवादयन्
असौनामाहमस्मीतिस्वंनामपरिकीर्तयेत् १२२

नामधेयस्ययेकेचिदभिवादंनजानते
तान्प्राज्ञोहमितिब्रूयात्स्त्रियः सर्वास्तथैवच १२३
भोःशब्दंकीर्तयेदंते स्वस्यनाम्नोभिवादने
नाम्नांस्वरूपभावोहिभोभावऋषिभिःस्मृतः १२४
आयुष्मान्भवसौम्येतिवाच्योविप्रोभिवादने
अकारश्चास्यनाम्नोन्तेवाच्यःपूर्वाक्षरप्लुतः १२५
योनवेत्त्यभिवादस्यविप्रःप्रत्यभिवादनम्
नाभिवाद्यःसविदुषायथाशूद्रस्तथैवसः १२६
ब्राह्मणंकुशलंपृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम्
वैश्यंक्षेमंसमागम्यशूद्रमारोग्यमेवच १२७ मनु० अ० २

अर्थ-जिससे लौकिक विद्या पढै वा वेदविद्या पढै तथा ब्रह्मविद्या पढै उस प्रतिष्ठितोंके बीचमें बैठे हुएको प्रथम अभिवादन करे ११७ शय्यासन विद्याधिक करके अधिक वा गुरु इनके स्वीकार किये होनेपरभी उसी समयमें आप बराबर न बैठे और गुरु आवे तौ उठकर प्रणाम करै ११९ थोड़ी उमरवालेके वृद्धके घर आनेमें प्राण ऊपरको होते हैं जब उठकरके प्रणाम करताहै तौ स्वस्थानको प्राप्त होते हैं इसकारण अपनेसे बडौंको नित्य अभिवादन करना १२० जो प्रतिदिन वृद्धोंकी सेवा और नमस्कार करनेवाला है उसकी आयु धन, बल,यश यह चार वस्तु वृद्धिको प्राप्त होतीहैं १२१ विप्र वृद्धिको प्रणाम करता हुआ मैं प्रणाम करताहूं इस शब्दके अन्तमें अमुक नामवाला हूं यह कहै १२२ जो कोई नामधेयके उच्चारण पूर्वक अभिवादन करना नहीं जानते विना संस्कृत पढे हुए, उनके प्रति बुद्धिमान् ऐसा कहै कि, प्रणाम करताहूं और स्त्रियेंभी ऐसाही करैं १२३ नाम और अभिवादनके अन्तमें भो शब्दका उच्चारण करैं अभिवाद्यके नामके स्वरूपकी जो सत्ताहै सो (भोः) इस संबोधनसे होती है यह ऋषियोंने कहाहै १२४ प्रणाम करनेपर "आयुष्मान् भव सौम्येति" अर्थात् जीते रहो ऐसा ब्राह्मण कहे प्रणाम करनेवालेके नामके अन्तके पूर्व अक्षरको प्लुत करै १२५ जो ब्राह्मण अभिवादनपर क्या कहना चाहिये इसको नहीं जानता वोह ब्राह्मण शूद्रवत

है अभिवादन करनेके योग्य नहीं है (समाजी पंडित जो समाजके नाई धोबी शूद्रादि सबसे नमस्तेही करते हैं इन्हें इस श्लोकपर ध्यान रखना चाहिये) १२६ प्रणामादिके अनन्तर ब्राह्मणसे कुशल क्षत्रियसे अनामय वैश्यसे क्षेम शूद्रसे आरोग्य पूछे १२७

इसप्रकार मनुस्मृतिमें वर्णन है स्वामीजी इस स्थलमें मनुस्मृति देखते २ ऊंघगये होंगे* दृष्टि उनकी इस स्थानपर न पड़ी होगी परन्तु समाजियोंको क्या सूझी है कि, सबसे नमस्तेही कहते हैं चाहैं बेटा हो छोटा भाई हो शूद्र हो गुरु हो समाजका उपदेशक हो सबसे नमस्ते करते हैं, परन्तु विशेष आश्चर्य तौ उन समाजी पंडितोंपर है जो आनंदसे बैठे वैश्य शूद्रोंको नमस्ते कहते हैं वे (यो नवेत्त्यभिवादस्य०) इस वाक्यानुसार शूद्रवत्‌ही हैं महाशयो ! क्या तुह्मारी बुद्धि समाजियोंने कोई औषधी खिलाकर हरली है, पैसेका लोभ करो तौ तुह्मारे पितादि कभी तौ उदरपूर्ण करतेही थे और तुमसे चौगुना द्रव्योपार्जन करते थे, क्यों काठकी पुतलीकी नाई नाचरहेहो सदैव यहांही रहना नहीं होगा, समझो तौ नमस्ते है क्या पदार्थ, जो चिट्ठीमेंभी लिख देतेहो कि, हमारी अमुकसे नमस्ते कहदेना, यह कैसे बनसक्ता है जो सामने विद्यमानहो उससे कह सक्ते हैं इससे चिट्ठीमेंभी यह बात नहीं बनसक्ती इसकारण नमस्ते कभी नहीं करना चाहिये प्रणाम दंडवत आदि करना योग्यहै ॥

स० प्र० पृ० ३६ पं० ३ यही माता पिताका कर्तव्यकर्म परम धर्म और कीर्तिका काम है जो सन्तानोंको उत्तम शिक्षा करना (पुनः) यह बाल शिक्षामें थोडासा लिखाहै इतनेहीसे बुद्धिमान् लोग बहुत समझ लेंगे ॥ ३१।२४

समीक्षा–वाह बड़ी सुन्दर शिक्षा लिखी बालकोंके मातापिताको शिक्षा करी माता पिता अपने बालकों और बालकियोंकी करैंगे यह शिक्षा आपकी कौनसे वेदानुसार है कोई वेदका प्रमाण नहीं लिखा इस शिक्षाको स्वतः प्रमाण मानें या परतः प्रमाण जिसमें संकोच न करना उपस्थेन्द्रियपर हाथ न रखना नमस्ते परस्पर करना यही सिखाया है पर यह तौ आपकी कल्पनाही है यह थोडीसी बालशिक्षा नहीं सत्या-

* स्वामीजी तो भंगपीतेथे इससे ऊंघगये पर भास्करोंके कर्ताकी एक दृष्टिभी इनश्लोकोंपर नपडी और शिक्षामें आपभी वेदमंत्रका कोई प्रमाण नदेसके जब गुरुही भटकतेहैं तो चेलोंकी क्या दशाहै ।

नाश करने तथा नास्तिक वर्णसंकर बनानेको यही बहुत हैं, बुद्धिमान् इसको बहुतही अच्छी तरह समझते हैं और आपकी वेदविरुद्ध शिक्षाओंसे पृथक्ही रहते हैं ॥

इति श्रीदयानंदतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतद्वितीयसमुल्लासस्य खंडनं समाप्तम् ॥ २ ॥

श्रीगणेशाय नमः।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गततृतीयसमुल्लासस्य खंडनम्।

अध्ययनाध्यापनप्रकरणम्।

स० पृ० ३८ पं० १२ कन्यानांसंप्रदानंचकुमाराणांचरक्षणम्। मनु०

इसका अभिप्राय यह है कि, इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि, पांचवें अथवा आठवें वर्षसे आगे अपने लड़के और लड़कियोंको घरमें न रखसकैं पाठशालामें अवश्य भेजदेवैं, जो न भेजें वोह दंडनीय हों प्रथम लड़केका यज्ञोपवीत घरमें हो और दूसरा पाठशालामें आचार्यकुलमें हो पिता माता वा अध्यापक लड़के लड़कियोंको अर्थसहित गायत्रीमंत्रका उपदेश करैं ३४। १८

समीक्षा—यह इतना लम्बा चौडा अभिप्राय कौनसे अक्षरोंसे सिद्ध होताहै आठ वर्षसे आगे पुत्र पुत्रीको घरमें रखनेसे मनुष्य दंडनीय हों, ऐसेही अभिप्रायोंने तौ नव शिक्षितौंकी बुद्धिपर परदा डालदिया है, इस श्लोकका यों तात्पर्य है और राजधर्मप्रसंगमेंका है ॥

मध्यन्दिनेर्द्धरात्रेवाविश्रान्तोविगतक्लमः।
चिंतयेद्धर्मकामार्थान्सार्धं तैरेकएववा १५१
परस्परविरुद्धानांतेषांचसमुपार्जनम्।
कन्यानांसंप्रदानंचकुमाराणांचरक्षणम् १५२ अ० ७

राजाको योग्यहै, कि, दुपहर आधी रातके समयमें जब विश्राम युक्त हो और शरीर खेदरहित हो उस समय राजा मंत्रियों सहित वा

आपही धर्म काम अर्थ इनका विचार करै और यह धर्म अर्थ काम जो परस्पर विरुद्ध हैं इनका विरोध दूर करके उनके अर्जनका उपाय अपने कुलकी कन्यायोंका दान अर्थात् किस स्थानमें विवाह करना चाहिये, और कुमारोंका रक्षण विनयादिक शिक्षा करनेका विचार करै इस श्लोकसे स्वामीजीका अर्थ किंचित् मात्रभी सम्बन्ध नहीं रखता, यह एक बड़ी अद्भुत बातहै कि, एक यज्ञोपवीत घरमें करै एक पाठशालामें इसमें कोई अपनीही संस्कृत बना गढ़कै श्लोकके नामसे लिखी होती, और जब स्त्रियोंके यज्ञोपवीत होताही नहीं तौ भला उन्हें गायत्री पढ़नेका कब अधिकार है धन्यहै आपकी बुद्धि यहां गायत्री पढना लिख दिया तो यज्ञोपवीतभी लिख देते, क्या डरथा समाजी तौ मान्तेही उन्हें तौ आपके बचन पत्थरकी लकीर हैं॥

स० पृ० ३८ पं० १९ सावित्रीप्रकरणम्।

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्यधीमहि धियोयोनःप्रचोदयात्॥

इस मंत्रमें जो प्रथम ओ ३ म् है उसका अर्थ प्रथम समुल्लासमें करदिया है वहींसे जानलेना अब तीन महाव्याहृतियोंके अर्थ संक्षेपसे लिखतेहैं भूरिति वै प्राणः यः प्राणयति चराचरं जगत् स भूः स्वयंभूरीश्वरः जो सब जगतके जीवनका आधार प्राणसेभी प्रिय और स्वयंभू है उस प्राणका वाचक होके भूः परमेश्वरका नामहै भुवरित्यपानः यः सर्वं दुःखमपानयति सोपानः जो सब दुःखोंसे रहित जिसके संगसे जीव सब दुःखों से छूट जाते हैं इस लिये उस परमेश्वरका नाम भुवः है स्वरिति व्यानः यो विविधं जगत् व्यानयति व्याप्नोति स व्यानः जो नानाविधि जगत्में व्यापक होके सबका धारण करता है इस लिये उस परमेश्वरका नाम स्वः है यह तीनों वचन तैत्तिरीय आरण्यकके हैं (सवितुः) "यः सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता तस्य" जो सब जगत्का उत्पादक और सब ऐश्वर्यका दाताहै (देवस्य) "यो दीव्यति दीव्यते वा स देवः" जो सर्व सुखोंका देनेहारा और जिसकी प्राप्तिकी कामना सब करते हैं उस परमात्माका जो (वरेण्यम्) "वर्तुमर्हम्" स्वीकार करने योग्य अति श्रेष्ठ (भर्गः) "शुद्धस्वरूपं" शुद्ध स्वरूप और चेतन करनेवाला ब्रह्म स्वरूपहै (तत) उसी परमात्माके स्वरूपको हम लोग (धीमहि) "धरेमहि" धारण करें किस प्रयोजनके लिये कि (यः) "जगदीश्वरः" जो सविता

देव परमात्मा (नः) "अस्माकं" हमारी (धियः) "बुद्धीः" बुद्धियों-को (प्रचोदयात्) " प्रेरयेत्" प्रेरण करै अर्थात् बुरे कामोंसे हटाकर अच्छे कामोंमें प्रवृत्त करै ३४।२६

समीक्षा-दयानंदजीने महाव्याहृतियोंके अर्थमेंभी गोलमालकरा है तैत्तिरीय आरण्यकके नामसे स्वयं कल्पना कीहै अब ये वाक्यं लिखे जातेहैं जो तैत्तिरीयमें हैं

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रोव्याहृतयः । तासामुह स्मैतां चतुर्थीम्माहाचमस्यः प्रवेदयते । मह इति तद्ब्रह्म सआत्मा। अंगान्यन्यादेवताः । भूरितिवाअयंलोकः । भुव इत्यन्तरिक्षम् । सुवइत्यसौ लोकः १ मह इत्यादित्यः आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते ॥ तैत्तिरी०

इस उपनिषदमें ब्रह्मका उपदेश आगे पंचकोशरूप गुहामें करैंगे इस कारण प्रथम श्रद्धापूर्वक गृहीत व्याहृतियोंका त्याग असंभव है इसमें व्याहृति शरीर वाले हिरण्यगर्भ की उपासना स्वाराज्यफलप्राप्ति हेतुका विधान करते हैं, वोह व्याहृतिशरीररूप हिरण्यगर्भ हृदयमें ध्यान करने योग्य है भूः भुवः स्वः यह तीन व्याहृति हैं कहीं तौ स्वः ऐसा व्याहृतिका आकार होताहै और कहीं सुवः ऐसा आकार होताहै, अर्थका भेद नहीं, क्योंकि, प्रातिशाख्य नाम वेदके व्याकरण स्वःके स्थानमें सुवःऔर स्वर्ग-केस्थानमें सुवर्ग ऐसा शब्द प्रयोग होता है, इन तीन व्याहृतियोंकेमध्य यह चतुर्थ व्याहृति महर्लोकहै, इसको महाचमसके पुत्र माहाचामस्य ऋषिने जाना वा देखा, यहां उपदेशसे जो यह माहाचामस्य ऋषिने देखी हुई महर व्याहृति है सो ब्रह्महै, अब इनकी तुल्यताको कथन करते हैं जैसे कि ब्रह्म महत् है और व्याहृति महर है इससे इनकी एकता बनती है और वोह महर् आत्मा (ब्रह्मका रूप) है, क्योंकि, वोह महर् व्याप्ति रूप कर्म वाला है, इस्से सो आत्मा है और अन्य जो व्याहृतिरूप लोक देव वेद और प्राणहैं वे जिस्से कि "महर्" ब्रह्म है इस आगे कहनेके वाक्यसे कथन किये व्याहृति रूप ब्रह्मके देवलोक आदिक सर्व अवयवरूप हैं, और जिससे वे सूर्य चन्द्र ब्रह्म और अन्न रूपसे व्याप्त होवे हैं इससे और देवता (ब्रह्मके पाद आदिक अवयव) हैं और महाव्याहृति अंगीहै, भाव यह है कि महाव्याहृतिरूप जो अंगी है, हिरण्यगर्भ, तिसके भूः व्याहृतिको

दि और भुवः व्याहृतिको बाहू और सुवः व्याहृतिको शिररूपसे ध्यान करै, ऐसी उपासनाकी विधि है सो कथन करतेहैं अर्थात् भूरादि प्रजापति अंगोंको जिस २ रूपसे चिन्तन करनाहै सो निरूपण करते हैं ॥

पृथ्वीलोक प्रजापतिके पादरूप भूः व्याहृति है और अन्तरिक्ष लोक प्रजापतिके बाहुरूप भुवः व्याहृति है, और स्वर्गलोक प्रजापतिका शिरोरूप सुवः व्याहृति है, और जो प्रकाशमान आदित्यहै सो प्रजापतिका मध्यभागरूप महाव्याहृति है, भाव यह है कि पृथ्वीलोकमें प्रजापतिके पाद दृष्टि करना, और अन्तरिक्षमें प्रजापतिके बाहू दृष्टि करना, स्वर्गमें प्रजापतिका शिर दृष्टि करना, और आदित्यमें प्रजापतिके शरीर मध्य दृष्टि करना और मध्यभागसे अंगोंकी वृद्धि होती है, इसी कारण कहते हैं कि आदित्यसे सब लोकोंकी वृद्धि होती है, इसी प्रकारसे आगे अग्नि आदिमें प्रजापतिके अंग दृष्टि जानना ॥

भूरितिवाअग्निः । भुवइति वायुः । सुवरित्यादित्यः । महइति चन्द्रमाः चन्द्रमसावावसर्वाणिज्योतीꣳषि महीयन्ते । भूरितिवा ऋचः भुवइति सामानि सुवरिति यजूꣳषि ॥ २ ॥

भूः यह प्रसिद्ध अग्नि है भुवर् यह वायु है स्वर् यह सूर्य है महर् यह चन्द्रमा है चन्द्रमासे प्रसिद्ध सब ज्योति (तारा) वृद्धिको पाते हैं भूः यह प्रसिद्ध ऋचा (ऋग्वेद) है भुवर् यह सामवेद है स्वर् यह यजुर्वेद है२

मह इतिब्रह्म । ब्रह्मणावाव सर्वे वेदामहीयन्ते। भूरितिवैप्राणः भुव इत्यपानः।सुवरितिव्यानःमहइत्यन्नम् । अन्नेनवावसर्वेप्राणामहीयन्ते । तावाएताश्चतस्रश्चतुर्द्धाचतस्रश्चतस्रोव्याहृतयः ता यो वेद सवेद ब्रह्म।सर्वेऽस्मै देवाबलिमावहन्ति असौ लोको यजूंषि वेद द्वेच । तैत्तिरीय उपनिषदि अनु० ५

अर्थ महर् यह ब्रह्म ॐकारहै क्योंकि ॐकारसेही सब वेद वृद्धिको प्राप्त होते हैं भूः यह प्राण है भुवर् यह अपान है स्वः यह व्यान है महर् यह अन्न है अन्नसेही सब प्राण वृद्धिको पाते हैं जो यह उपचार व्याहृति चार प्रकारकी हैं इनका फल वर्णन करते हैं कि एक एक व्याहृति चार चार प्रकारकी होगई तब प्रकरणानुसार षोडशकला युक्त पुरुषका ध्यान कहा

व्याहृतिसे पृथ्वीकला अग्निकला ऋग्वेदकला प्राणकला ऐसे चतुष्कला तौ प्रजापतिके पाद हैं, और अंतरिक्षकला वायुकला सामवेदकला अपान कला ऐसी चतुष्कला बाहू हैं, स्वर्गलोककला आदित्यकला यजुर्वेदकला व्यानकला ऐसी चतुष्कला प्रजापतिका शिर है, आदित्यकला चन्द्रकला ॐकारकला अन्नकला ऐसो प्रजापतिका आत्मशब्दप्रतिपाद्य मध्यभाग है ऐसे षोडश कला युक्त पुरुषको हृदयमें ध्यान करनेसे जो फल प्राप्त होता है सो कथन करते हैं, इन व्याहृतियोंको पूर्व प्रकारसे जो जान्ता हैसो ब्रह्मको जान्ताहै, तिसके अर्थ प्रजापतिके अंग भूत सब देवता बलिको प्राप्त करते, हैं सो यह लोक और यजुर् दोनोंको जानता है और दयानन्दजीने इस षोडश कलायुक्त प्रजापतिकी उपासनाके प्रकरणमें भूरितिवै प्राणः भुवरित्यपानः सुवरिति व्यानः इतने भागको लेकर प्राण अपान और व्यान पदको परमेश्वरपरता वर्णनकरीहै परन्तु बुद्धिमान् विचारें कि यह कितनी धृष्टता है कि सगुणोपासनाके फलके लोप करनेको यह लीला रचीहै कि, यह कौन प्रकरणके वाक्य हैं सो भी नहीं लिखा इस प्रकरणमें यह व्यानादि ईश्वरवाचक नहीं क्योंकि उसके साथ यह लिखा है कि (अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते) अन्नसेही सब प्राण वृद्धिको प्राप्त होते हैं यदि यहां प्राणादि शब्दसे ईश्वरका ग्रहण किया जाय तौ अन्नसे वृद्धि कहना असंगत हो जाय अब ये देखना चाहिये कि स्वामीजीने जब ॐकार और व्याहृतियोंकेही अर्थोंमें अनर्थ किया तौ और मंत्रोंकी क्या कथा है अब गायत्रीके अर्थ लिखते हैं कि, प्राचीन ग्रंथोंमें इसका कैसा व्याख्यान कियाहै*॥

तत्सवितुर्वरेण्यमित्यसौवाआदित्यःसविता सवा प्रवरणीय आत्मकामेनेत्याहुर्ब्रह्मवादिनोऽथभर्गोदेवस्यधीमहीति सविता वैदेवस्ततोयोऽस्यभर्गाख्यस्तंचिन्तयामीत्याहुर्ब्रह्मवादिनः ॥

प्रथम पादकी प्रतीकधरकर अर्थकरतेहैं सवितृपदका अर्थ असौवाइत्याद यह जो प्रत्यक्षआदित्यहै सो सविताहै आत्मकामकरके प्रवरणीयहै अर्थात् यह जो आत्मातिरिक्त पदार्थकी कामनारहितहै तिसको यह सविताही एकताबुद्धिकरके प्रार्थनीय है, भाव यहहै कि पिण्डसारप्राण और ब्रह्माण्डसार आदित्यकी एकताभावना करके दोनों उपाधिसे

* भास्कर प्रकाश कहता है कि यही स्वामीजीका अर्थ है अब बुद्धिमान् विचारे कि उनका कथन कहांतक सत्य है।

उपलक्षिततत्वको आत्मारूपसे भावना करे, यह वेदविद् पुरुष कहते हैं अब द्वितीयपादकी व्याख्या करतेहैं देवशब्दबोध्यसविताही है तिसकारणसे सविताका जो भर्गाख्यरूपहै तिसको चिन्तनकरते हैं ऐसे वेदविद् कहते हैं ॥

अथ धियोयोनःप्रचोदयादितिबुद्धयोवैधियस्तायोऽस्माकंप्र चोदयादित्याहुर्ब्रह्मवादिनः ॥

अर्थ–अन्तःकरणकी वृत्तियोंको जो परमात्मा प्रेरणा करताहै यह ब्रह्मवादी कहते हैं तब मंत्रका अर्थ ऐसा जान्ना "सवितुर्देवस्ययत् भर्गाख्यं वरेण्यं तत् धीमहि । तत्किम् योऽस्माकं धियोऽन्तःकरणवृत्तीः प्रचोदयात् प्रेरयति" सविता देवका जो भर्ग तथा वरेण्य रूपहै तिसे हम ध्यान करतेहैं जो हमारी बुद्धिवृत्तियोंको प्रेरणा करताहै ॥

अथभर्गइति योहवा अमुष्मिन्नादित्ये निहितस्तारकोऽक्षिणि वैषभर्गाख्योभाभिर्गतिरस्यहीति भर्गोभर्जयतीतिवैषभर्ग इति रुद्रोब्रह्मवादिनोऽथ भइति भासयतीमान् लोकान् रइति रंज यतीमानिभूतानि ग इति गच्छन्त्यस्मिन्नागच्छन्त्यस्मादिमाः प्रजास्तस्माद्भर्गत्वाद् भर्गः शश्वत् सूयमानात् सूर्य्यः सवनात् सविताऽऽदानादादित्यः पावनात् पवनोऽथापोप्यायनादि त्येवंह्याह ॥

इसमें भर्ग और सवितृपदका व्याख्यानहै और प्रसंगसे आदित्य सूर्य पावन आपशब्दोंके अर्थकोभी निर्णय करतेहैं "योऽमुष्मिन्नादित्ये निहितो वा यश्चाक्षिणि तारको निहित एष भर्गाख्यः" यह अन्वयहै जो यह आदित्यमंडलमें स्थितहै अन्तर्यामी तथा जो नेत्रमें कृष्णतारा उपलक्षित अन्तर्यामी स्थितहै यह भर्गाख्यवाला देवहै (भाभिर्गमनमस्येति भर्गः) किरणरूप प्रकाश वा वृत्तिरूप प्रकाशकरकै गमन होताहै तिस अन्तर्यामीका वोह भर्गहै आशय यह कि केवल चेतनमें गमन व्यापकहोनेसे बनता नहीं, परन्तु किरणरूप प्रकाश वा वृत्तिरूपप्रकाश उपाधिके गमनसे गमन प्रतीतहोताहै, ऐसे एकप्रकारसे भर्गशब्दकी निरुक्ति कहकर प्रकारान्तरसे निरुक्ति करते हैं (भर्जयतीतिवाएष भर्गः) जो

सर्वजगत्का संहार करताहै सो यह भर्ग है ऐसा रुद्ररूपहै परमात्माका, ऐसे वेदवित् कहतेहैं। अब एक २ अक्षरके अर्थ करतेहैं (भासयतीमान्लोकानितिभः) अपनेमंडलअन्तर्गत प्रकाशसे सर्वजगत्को प्रकाशकरता है इसकारण भ और (रंजयतीमानिभूतानि इति रः) अपने आनन्दरूपसे सर्व प्राणिवर्गको आनन्दित करताहै इससे रहै (गच्छन्त्यस्मिन् वा आगच्छन्त्यस्मात् सर्वा इमाः प्रजा इति गः) और सुषुप्ति प्रबोधमें वा महाप्रलय उत्पत्ति कालमें सर्व प्रजा परमात्मामें लीन होकर फिर उत्पन्न होतीहै इससे गहै ऐसे भर्गपनाहोनेसे भर्ग है और (शश्वत् सूयमानात् सूर्य्यः) निरन्तर उदय और अस्त होकर प्रातःकालादिकरनेसे सूर्य है और (सवनात् सविता) सर्व प्राणिवर्गकी वृष्टि अन्नवीर्यादिद्वारा उत्पत्तिकरता होनेसे सविताहै और (आदानात् आदित्यः) पृथ्वीका रस तथा प्राणिवर्गकी आयुको ग्रहण करनेसे आदित्यहै और (पवनात् पावनोप्येषएव) सर्वको पवित्र करनेसे पावन नाम वायुभी यह परमेश्वरहै और आपनाम जलभी यह परमेश्वरही है क्योंकि सर्व जगतको (प्यायनात्) वृद्धि करनेसे वेदार्थवित् कहतेहैं, इसप्रकारसे गायत्री मंत्रके दोपादसे अधिदैवतत्वका निश्चय करा, अर्थात् सूर्य वायु जल उपलक्षित सम्पूर्ण देवतारूप परमात्माको बोधन किया, और सब जगत् उत्पत्तिपालनसंहारकर्तृत्व बोधनकिया, तथा जगत् लयाधार और जगत्उपादान कारणभी भर्गपदव्याख्यानसे कहा, इस कहनेसे जड प्रकृति जगत् उपादान कारण पक्ष दयानन्दजीका गायत्रीब्रह्मविद्याविरुद्ध है, इससे सज्जनोंको वोह अर्थ त्याज्य है, अब गायत्रीके तृतीयपादसे अध्यात्म तत्वका निर्णय करतेहैं जिसके निर्णयसे स्वामीजी स्वीकृत चेतनका वास्तव भेद पक्षभी खंडितहो क्योंकि औपाधिक भेद तो स्वीकृतहै ॥

खल्वात्मनोत्मानेतामृताख्यश्चेतामन्तागन्तोत्स्रष्टानन्दयिता
कर्ता वक्ता रसयिता घ्राता द्रष्टा श्रोता स्पृशति च ॥

अर्थ-(अमृताख्यःखलु आत्मनः आत्मा नेता) यह जो अमृताख्यप्राण है सो निश्चयही आत्मा अर्थात् शरीर इन्द्रियसंघातका आत्माहै और नेता अर्थात् सर्व संघातका प्रेरक है, यहां अमृत कहनेसे प्राणकेभी प्रेरक आत्मतत्वका ग्रहण है, प्राण उपाधिक होकर वोह आत्मा नेता और चित्त औपाधिक चेता और मन औपाधिक मन्ता, पदऔपाधिकगन्ता, पायु उपाधिसे उत्स्रष्टा, उपस्थ उपाधिसे आनन्दयिता, हस्त उपाधिसे

कता, वागिन्द्रिय उपाधिसे वक्ता, रसना उपाधिसे रसयिता(रसग्राही) और घ्राणउपाधिसे घ्राता (सूंघनेहारा),चक्षुउपाधिसे द्रष्टा देखनेहारा, श्रोत्र उपाधिसे सुननेहारा, त्वगिन्द्रिय उपाधिसे (स्पृशति) छूनेवाला होता है, चकारसे बुद्धि उपाधिसे अध्यवसिता, अहंकार उपाधिसे अभि मन्ता होताहै यह जानना ॥

विभुर्विग्रहेसन्निविष्टाइत्येवंह्याह अथ यत्र द्वैतीभूतंविज्ञानं तत्रहि शृणोति पश्यति जिघ्रति रसयति चैवस्पर्शयति सर्वमा त्माजानीतेति यत्राद्वैतीभूतं विज्ञानं कार्य्यकारणकर्म्म निर्मुक्तं निर्वचनमनौपम्यं निरुपाख्यं किंतदवाच्यम् ॥

अर्थ-(प्रश्न) जो पूर्व नेतृत्वादिविशिष्ट वस्तु प्राणादि उपाधि विशिष्ट कहा सो क्या है (उत्तर) (विभुर्विग्रहे सन्निविष्ट इति एवं हि आह) विभु नाम व्यापक परमात्माही विग्रह (देह) में प्रविष्ट होकर अर्थात् लिंगशरीराभिमानी होकर प्राणादि उपाधि भेदसे नेतृत्वादि रूपसे कहा जाता है भाव यह है सो एकही परमात्मा सर्व बुद्धिप्रेरक रूपसे उपास्यहै ऐसे वेदज्ञाता कहते हैं इसीप्रकार बृ० उपनिषद्में लेख है कि:-

आत्मेत्येवोपासीतात्रह्येते सर्वएकंभवन्ति बृ०उ०अ० ३ब्रा०४।क०७

" द्रष्टा श्रोता आदिको (आत्मा इति एव उपासीत अत्र हि एते सर्वे एकं भवन्ति) आत्मारूप करके परमात्मासे अभिन्न जानकर उपासना करे क्योंकि इस आत्मामेंही सर्व एक होते हैं," अब औपाधिक भेद और वास्तव अद्वैत पक्षको अन्वय व्यतिरेकसे दृढ करते हैं जहां द्वैतीभूत विज्ञान होता है जाग्रदादि अवस्थामें वहां सुन्ताहै, देखताहै, सूँघताहै, रस लेताहै, स्पर्श करताहै और उपाधिविशिष्ट होकर एकही आत्मा सर्वको जानताहै, ऐसे उपाधिके सद्भाव कालमें भेद व्यवहार होता है, और जब सुषुप्ति समाधिकालमें अद्वैतीभूत विज्ञान होताहै, तब कार्य अर्थात् विषय,करण अर्थात् करणग्राम, कर्म अर्थात् क्रिया, इससे रहित निर्विशेष उपमारहित अप्रमेय होताहै, सो वस्तु निषेध बोधक शब्दोंसेही क्यों कहते हो किसी तत् वा इदं आदि शब्दोंसे क्यों नहीं कहते यह(प्रश्न) करते हैं किंतद इस पदसे अर्थ यह तत् सो वस्तु किं अर्थात् कैसी है(उत्तर) अवाच्यं नाम सर्वइन्द्रियव्यापारके उपराम होते जो सर्व व्यवहारका साक्षी होकर व्यवहारोपराति वा साक्षी है सो अद्वैत विज्ञान स्वाभाविक आत्म

रूप है किसी शब्दका वाच्य नहीं, इस प्रकार इस स्थानमें उपाधिके व्यतिरेकमें अद्वैत कहा, यह ब्राह्मणादि ग्रंथोंसे गायत्रीका अर्थ वर्णन किया अब इस स्थानमें यह विचारणीयहै कि दयानंदजीने जो सत्यार्थ प्रकाश पृ० ६०१ में लिखाहै ११२७ वेदोंकी शाखा जो कि वेदोंके व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियोंके बनाये ग्रंथ हैं तौ गायत्री जो वेदोंमें प्रधानहै तिसका अर्थ किसी एक व्याख्यानकी रीतिसे तौ लिखना दयानंदजीको अवश्य था, और जो ग्यारह सो सत्ताईस शाखा लिखी हैं इसमेंभी चार कमती लिखी हैं क्योंकि महाभाष्यकी रीतिसे ग्यारह सो इकतीस शाखा होतीहैं तौ इन मंत्रोंके व्याख्यान होनेपरभी दयानंदजीको एक व्याख्यानभी गायत्री मंत्रकेअर्थ निर्णयवास्तेन मिला तौ फिर इनकेकलिपत अर्थको कौन मानैगा फिर स्वामीजीने सवितृपदका व्याख्यान यह लिखा है जो (सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् संसविता) दयानंदजी तौ अपनेको निघण्टु निरुक्तका पण्डित मान्ते हैं फिर यह विरुद्ध अर्थ क्यों लिखा क्यों कि नि० *अ०९ खं०४में सवितृपदका भाष्यकार दुर्गाचार्यकृत व्याख्यान यह है कि (सविता षुप्रसवैश्वर्ययोः भू० । प० । तृचि सविता सर्वकर्म्मणां वृष्टिप्रदानादिना अभ्यनुज्ञाता) षु धातु प्रसव तथा ऐश्वर्य में है प्रसव नाम अभ्यनुज्ञानका है अर्थात् फल देने वास्ते कर्मका स्वीकार करनासो सवितादेव वृष्टिरूप फल देने वास्ते यावत् प्राणिवर्गके कर्मको स्वीकार करताहै और ऐश्वर्य नाम प्रेरणाका है सो सवितादेव सर्व जन्तु मात्रको कर्ममें प्रवृत्त करता है उदय होकर वा ईश्वररूपसे सबका प्रेरक है तब ऐसी व्युत्पत्ति होनी चाहिये जो (सुवतीति सविता) और दयानंदजीने सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता यह व्युत्पत्ति करी है इससे भाष्य विरुद्धहै तथा षुञ् अभिषवे स्वादिगणीय धातुका प्रयोग सुनोति रखकर उत्पादयति यह अर्थ करा है सोभी पाणिनि ऋषि लिखित धात्वर्थसे विरुद्ध है। क्योंकि अभिषव नाम कण्डनका है यथा सोमवल्लीका रस निकालनेमें सोमवल्लीका अभिषव अर्थात् कण्डन होताहै उत्पादन अर्थ षुञ् धातु स्वादिगणीका नहीं इससे पाणिनीके मतसेभी दयानंदजीका यह अर्थ विरुद्धहै और जो देवपदकी व्युत्पत्ति करीहै 'यो दीव्यति दीव्यते वा सदेवः' इस व्युत्पत्तिसे तौ व्याकरणकोभी समेट धरा क्योंकि 'दिवु क्रीडा-विजगीषा-व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु, दिवादिगणीय परस्मैपदी इस धातुका प्रयोग लिखा है तौ दीव्यति

* यहां निघण्टुका पद भा० प्र० कर्ताको निरुक्तका सूझाहै धन्य दृष्टि धन्य पक्षपात।

दीव्यते वा सदेवः उस स्थानमें धातु तौ केवल परस्मैपदि और प्रयोग आत्मने पदकाभी लिख दिया सो प्रलापहै (प्रश्न) दीव्यते यह प्रयोग कर्ममें प्रत्यय करके लिखाहै (उत्तर) जो दयानन्दजी कर्ममें प्रत्यय करते तो इस कर्तृपदमें तृतीया विभक्ति येन ऐसा होना योग्य था, और देवशब्दका वाच्य अर्थ प्रकाश क्रियाका कर्म जगत् जड वस्तु हो जाता, और जो कर्मकर्तृअर्थमें प्रयोग कहैं तौ भी असंगत है क्योंकि प्रथम परमात्मा प्रकाशक्रियाका कर्महो पश्चात् उसी कर्मको कर्तृत्वरूपसे विवक्षा हो तब कर्मकर्तरिप्रयोग हो, सो परमात्मा प्रकाशक्रियाका कर्म होगा तौ पर प्रकाश्यत्वरूप जड़ताकी प्राप्ति होगी और जो स्तुति अर्थमें दिवधातुको मानकर कर्ममें प्रत्यय करैं तो देव-शब्दका कर्तरि अर्थके प्रकरणमें पचादि गणमें पाठ होनेसे असंगत है, इससे दीव्यते यह प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है और अर्थ भाषामें (सब सुखों-का देनेहारा लिखा है) विचारना चाहिये कि क्रीडा–किसी बाह्य साधन में विलास विजिगीषा– जीतनेकी इच्छा, व्यवहार–क्रयविक्रय करना द्युति–प्रकाश, स्तुति–स्तवन क्रिया, मोद–आनंद होना मद–अहं-कार करना स्वप्न–शयनक्रिया, कान्ति–इच्छा गति–ज्ञान गमन वा प्राप्ति इतने अर्थ तो पाणिनीजीने इसके स्पष्ट लिख दिये हैं, परन्तु दयानन्द-जीने टोटा समझ सुखदानभी इस धातुका अर्थ और कल्पना करलिया क्या पाणिनिऋषिके अर्थोंसे आपका निर्वाह नहीं होताहै, परन्तु मन-माना अर्थ तो नहीं निकलता, इससे दयानन्दजीने नये अर्थकी कल्पना करी है ॥ गायत्रीप्रकरण पूर्ण हुआ ॥

अथ आचमनप्रकरणम्।

स० पृ० ४१ पं० ७ आचमनसे कंठस्थ कफ और पित्तकी निवृत्ति थोडी सी होती है, मार्जन अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली अग्रभागसे नेत्रादि अंगोंपर जल छिडकै इससे आलस्य दूर होताहै और जलप्राप्ति नहो तो न करे ३७२२ ॥

समीक्षा–यदि आचमन करना कफ पित्तकी शान्तिके लिये है तौ क्या सबही लोग संध्याकालमें कफपित्तग्रसित रहते हैं, और सबको आलस्य और निद्राही दबाये रहती है, वोह समय निद्राका कदापि नहीं और जलसे कफकी शान्ति नहीं किन्तु वृद्धि होती है, आचमन करना यदि कफ पित्तकी शांतिके लिये है तौ हाथमें जल लेकर गायत्री और ब्रह्मती-

र्थहींसे आचमन करनेकी क्या आवश्यकता है, क्या कोई आलस्य और कफने प्रतिज्ञापत्र लिख दिया है कि संध्यासमय हम सब संस्कार कर्ता तथा संध्या करनेवालोंके कंठमें फेरा करैंगे, यदि मार्जनका प्रयोजन आलस्यही दूर करनेका होय तौ एक चुटकी हुलास न सूंघलिया करैं, अथवा चाह व काफी पलिैं जो पहरोंको काफी हो, नहीं सर्वोत्तम उपाय यह कि ऐमोनियाकी सीसी सूंघलैं जिससे मूर्च्छातक भंग होजाय, आलस्यकी तौ बातही क्याहै और स्नान करकेही प्रातःकाल संध्या करते हैं फिर स्नान करतेही आलस्य आगया तौ मार्जनसे कैसे जा सक्ता है, इससे स्वामीजीका यह कथन सर्वथा मिथ्याही है, मनुजी आचमन की विधि इसप्रकार लिखते हैं कि आचमन करनेसे आभ्यंतर शुद्धि होती है । तथाहि अध्याय २

ब्राह्मेण विप्रस्तीर्थेन नित्यकालमुपस्पृशेत् ॥
कायत्रैदशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन ॥ ५८ ॥
अंगुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते ॥
कायमंगुलिमूलेग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः ॥ ५९ ॥
त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततोमुखम् ॥
खानि चैव स्पृशेदद्भिरात्मानं शिर एवच ॥ ६० ॥
अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्तीर्थेन धर्मवित् ॥
शौचेप्सुः सर्वदाचामेदेकान्ते प्रागुदङ्मुखः ॥ ६१ ॥
हृद्गाभिः पूयते विप्रः कंठगाभिस्तुभूमिपः ॥
वैश्योद्भिःप्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरंततः ॥ ६२ ॥

अर्थ-ब्राह्मण ब्राह्मतीर्थसे सदा आचमनकरे अथवा देवतीर्थसे आचमनकरे परन्तु पितृतीर्थसे आचमन न करे ५८ क्योंकि उसकी विधि नहीं है अंगुष्ठमूलके नीचे ब्राह्मतीर्थ कहते हैं और कनिष्ठिका अंगुलीके मूलमें कायतीर्थ और उसीके अग्रभागमें दैवतीर्थ तथा अंगुष्ठ प्रदेशिनीके मध्यमें पितृतीर्थ कहतेहैं ५९ प्रथम जलसे तीन आचमनकरै अनन्तर दोबार मुख को जलसे स्पर्शकर ज्ञानेंद्रियको शिरको हृदयको जलसे स्पर्शकरै ६० फेनरहित शीतलजलसे पवित्र होनेकी इच्छाकरनेवाला एकान्त और पवित्र भूमिमें पूर्व या उत्तरमुख होकर आचमन करै ६१ वोह आचमनका

जल हृदयमें पहुँचनेसे ब्राह्मण पवित्र होता है, उसके कंठमें प्राप्तहोनेसे क्षत्री, मुखमें पहुँचनेसे वैश्य, तथा स्पर्शमात्रसे शूद्र पवित्र होते हैं ॥ ६२ ॥ क्या स्वामीजी इन श्लोकोंको मनुमें देखते २ ऊंवगयेथे भला जो संध्या करनेको बैठैगा वोह दोनों समय नहीं तौ एक समय निश्चयही स्नान करेगा पर आपके चेले तो कोट पतलूनही पहरकर करैंगे, फिर आपने मनसा परिक्रमा करनीलिखी सो काहेकी परिक्रमा करै? आपकी या सत्यार्थप्रकाशकी. परमेश्वरको तौ आप निराकार मान्ते हो उसकी परिक्रमा कैसी, जब मनने उसकी परिक्रमाकरली तौ उसका महत्व जातारहा और परमेश्वर निराकारकीही सीमा होगई, फिर जल तौ कफनिवृत्तिके अर्थ है आप पं० १४ (अपांसमीपे) इस श्लोकसे जलके धोरें बैठकर गायत्रीका जप लिखते हैं परन्तु जिसे कफने घेराहो वोह तो आपके मतानुसार कोठी बंगले या ऊसरमें बैठकर जप करै ॥ *

पृ० ४१ पं० २० अग्निहोत्र और संध्या दोही कालमें करै दोही रात दिनकी संधिवेला हैं अन्य नहीं ॥ ३८ । १०

समीक्षा–यह तौ स्वामीजीने खूबही कही दोकालसे अधिक ईश्वरका नाम लेना क्या कोई पापहै तपस्वी तौ वर्षों निरन्तर परमात्माका ध्यान करते रहे हैं इससे दोही कालमें उसका अर्चनवन्दनकरै यह कहना ठीक नहीं परमेश्वरका नाम लेना सर्वदा श्रेयस्कारक है ॥

इससे त्रिकाल संध्या करना किसी प्रकार हानिकारक नहीं किन्तु लाभहीकी दायक है. इसमें प्रमाण यह है कि, जहां तैत्तिरीयारण्यकमें प्रभात संध्याके आचमन आये हैं ॥

वहीं मध्याह्नकी संध्याका आचमन लिखाहै यथा

ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवीपूता पुनातुमाम् ।
पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातुमाम् ॥
यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वादुश्चरितंमम ।
सर्वं पुनन्तुमामापोऽसतां च प्रति ग्रह ७ँ स्वाहा ॥

तैत्ति० आ० अनु० २३

अर्थ–जल पृथिवीको पवित्र करैं वा मेरे पार्थिव शरीरको पवित्र करें यह पृथिवी जलोंसे पवित्र हुई अपने गुणोंसे मुझे पवित्रकरे यही जल

---

* भा० प्र० में वादी कोई एक तो ऐसा प्रमाण लिखता कि आचमनसे कफ दूरकरना और संध्यामें गलेमें कफ अटकता है तब दयानन्दजीकी पुष्टि होती पर कपोल कल्पनामें प्रमाण कहां होसकता है ? ।

ज्ञानके पति वा वेदोंके धारण करनेसे पति आत्माको पवित्र करें सबके पवित्र करनेवाले ब्रह्म मुझको पवित्र करें जो मैंने जूठा निन्दित भोजन किया है जो मेरा बुरा कर्महै जो असत् अर्थात् जिनका धान्य ग्राह्य नहीं है उनका मैंने अन्न ग्रहण कियाहो इन सबसे जलके अधिष्ठातृ देवता मुझे पवित्र करें विशेष विवरण हमारी त्रिकाल संध्यामें देखो ॥

जब राजा युधिष्ठिरसे दुर्वासाजीने दुपहरको भोजन मांगा और उन्होंने स्वीकार किया तब दुर्वासाजी दुपहरकी संध्या करने गये यथा—

ते चावतीर्णा सलिले कृतवन्तोघमर्षणम् ॥

महाभारत वनपर्व अ० २६३ श्लो० २८ वे नदीमें जाय जलमें अवतीर्णहो अघमर्षण जपने लगे ॥

गायत्री नाम पूर्वाह्णे सावित्री मध्यमेदिने ॥
सरस्वती च सायाह्ने सैव संध्या त्रिषु स्थिता ॥ व्या०
संध्यात्रयं तु कर्तव्यं द्विजेनात्मविदा सदा ॥
त्रिकालसंध्याकरणात्तत्सर्वं च विनश्यति ॥ याज्ञ०

व्यासजी कहतेहैं प्रभातकी संध्या गायत्री, मध्याह्नकी सावित्री, संध्याकी सरस्वतीहै । याज्ञवल्क्यका वचनहै कि ब्राह्मणको तीनोकालकी संध्या करनी चाहिये तथा त्रिकाल संध्यासे सब पाप दूर होतेहैं ॥

पृ० ४२ पं० १९ स्वाहाशब्दका अर्थ यहहै कि, जैसा ज्ञान आत्मामें हो वैसाही जीभसे बोले ॥ ३९ । ९ ।

समीक्षा—यह स्वाहाशब्दका अर्थ कौनसे निघण्टु निरुक्तसे निकाला भला ऊपर जो आपने लिखाहै कि, प्राणाय स्वाहा तौ इसका यह अर्थ हुआ कि, प्राण अर्थात परमेश्वरके अर्थ जैसा ज्ञान आत्मामें होवै वैसा बोले भला यह क्या बात हुई इससे हवनकी कौनसी कला सिद्धहोतीहै, सुनिये स्वाहा अव्यय है, जिसके अर्थ हवित्यागनकरनेके हैं जो देवताके उद्देशसे अग्निमें हवि दियाजाताहै उसमें स्वाहाशब्दका प्रयोग होताहै जैसे "प्राणाय स्वाहा" प्राणोंके अर्थ हवि दिया वा प्राणोंके अर्थ श्रेष्ठ होम हो (स्वाहाकारश्च वषट्कारश्च देवा उपजीवन्तीति श्रुतेः) ॥

पृ० ४२ पं० १९ सब लोग जानते हैं कि, दुर्गंधियुक्त वायु और जलसे रोग और रोगसे प्राणियोंको दुःख और सुगंधित वायु तथा जलसे आरोग्य और रोगके नष्ट होनेसे सुख प्राप्त होताहै और पृ० ४३ पं० ९ में

लिखाहै कि, मंत्रमें यह व्याख्यान हैं कि, जिनसे होमकरनेके लाभ विदित होजायं और मंत्रोंकी आवृत्ति होनेसे कंठस्थरहैं पृ० ४२ पं० १४ गायत्रीमंत्रसे आहुति देवै तथा (विश्वानि) इस मंत्रसे होमकरै ॥ ३९ । १३

समीक्षा—प्रथमतौ अग्निहोत्रोंकी विधिही वेदविरुद्ध लिखीगई है, ❀ दूसरे यज्ञपात्रोंकी आकृतियाँ सब मनःकल्पित लिखदी हैं, वेदमें कहीं इनकी ऐसी रचना नहीं है तीसरे अग्नि होत्रका प्रयोजन जो जलवायुकी शुद्धिहोना सिद्धान्त किया है सो यहभी शास्त्र और युक्ति दोनोंके विरुद्ध हैयदि स्वर्ग फल न होकर अग्नि होत्र घी जलाकर जलवायुकी शुद्धिके निमित्त है; तौ इन पांच आहुतियोंसे क्या होगा, किसी घीके आढतियेकी दूकानमें आग लगादेनी चाहिये, जो सैकड़ों मन घी जलकर खूब जलवायुकी शुद्धिहोकर अनेक अनेक लोकोपकार हो जायं, पदार्थविद्याको जाननेवाले पंडित लोग इसबातको जानते हैं, कि जलवायुकी शुद्धि तो परमेश्वरके प्राकृतिक नियमसेही होतीरहतीहै, सूर्यकी आकर्षण शक्ति जलकी तरलता और वनमें अनेक सुगन्धि पुष्प औषधियोंका उत्पन्न होना वायुकी प्रसरण शक्ति सुगंधित पुष्पादिकोंके परमाणुओंका वायुमें मिलना ऋतुका परिवर्तन इन सब कारणोंसे जलवायुकी शुद्धि होतीहै और यदि जलवायुकी शुद्धिपरही तात्पर्य्य होतौ ऐसा उपाय न करै कि, कमखर्च और बालानशीन गंधककी धूनी दिया करैं, जिससे डॉक्टरलोग (हैजे) तककी वायु शुद्ध करलेते हैं और जलकी शुद्धिको दमडीकी फटकरी वा निर्मलीके बीज ठीकहैं. और देखो गायत्रीमें स्वाहा लगाकर होमकरनाभी लिखा है, भला इसमें कौनसे अग्निहोत्रके लाभका अर्थ है (अर्थ इसका पूर्व प्रकाश करचुकेहैं) अग्निहोत्रका अर्थतौ है नहीं पर घी फूंके जाइये प्रथम इससे स्वामीजीने चुटिया बँधवाई फिर रक्षा की फिर जपकिया अब घी फूंका एक गायत्रीहीसे कितने काम लिये हैं, आगे जब और विद्याकी उन्नति होगी तब इसमें इंजन लगाकर चलावैंगे और पंख लगाकर बेलून उडावैं गे, जब हवनसे वायुकी शुद्धि मात्र होती है, तो प्रातःसंध्याका नियम वृथाहै फिरतौ चाहैं जब आगमें घी डालदें और उसके लिये स्नानादिककी कुछ आवश्यकता नहीं चाहैं जब चूल्हे वा भट्टीमें घृत झोंकदे, फिर क्यों इकतालीस ४१ बयालीस४२ पृष्ठमें चमचा थाली प्रोक्षणीपात्रादिका विधानलिखा केवल पली भर २ कै डाल देना लिखदेते और मंत्र पढनेसे होमके लाभ विदित होते हैं यहभी आपका

* यज्ञपात्र आदिके बनानेकी विधि परिमाणादि हमारे भाष्य किये यजुर्वेदमें देखो यज्ञपात्रवर्णन। पृ० १ से ७ तक. ।

कथन मिथ्याही है भला आपने जो गायत्री मंत्र और (विश्वानिदेव) इन-दोमंत्रोंसे हवन करना लिखाहै इनमंत्रोंसे कौनसा हवनका लाभ प्रतीत होताहै फिर आप लिखतेहैं कि, इसप्रकार करनेसे मंत्र कंठरहेंगे ठीकहै जब मंत्र कंठ करनाही इष्टहै तौ यादकरनेवाले विनाही हवनके किये परि-श्रम कर कंठ करसक्ते हैं और जब मंत्र कंठ करनेहीका लाभ है तौ स्वाहा लगानेकी फिर क्या आवश्यकताहै चाहें जहाँके मंत्र पढदिये फिर निय-तमंत्रसे आहुति देनी यह क्यों लिखाहै इससे यह कहना स्वामीजीका ठीक नहीं कि, केवल जलवायुकी शुद्धि होती है,हवनसे स्वर्गलोककीभी प्राप्ति होतीहै. यथा यजुर्वेदे ॥

अयन्नो॑ अ॒ग्निर्वरि॑वस्कृणोत्व॒यम्मृधः॑ पु॒र ए॑तु प्रभि॒न्दन्। अ॒यं वाजा॑ञ्जयतु॒ वाज॑साता व॒य ठ्ठँ श॒त्रूञ्जयतु॒ जर्हृषाणः॒ स्वाहा॑॥

अ० ५ मं० ३७ यजु०

अर्थ-यह अग्नि हमारे धनको संपादन करो यह अग्नि संग्रामोंको वि-दीर्ण करता आगे आओ यह अन्न विभाग निमित्त अन्नोंको हमें देनेके लिये शत्रुओंको जीतो उसके लिये श्रेष्ठ होमहो'' अग्निही यह हवि देव-ताओंके पास पहुंचाताहै और यजमानका कल्याण करताहै'' यथा ॥

सीद होतः स्वउ॑ लो॒के चि॑कि॒त्वान्त्सा॒दया॑य॒ज्ञ ठ्ठँ सु॑कृ॒तस्य॒ योनौ॑। दे॒वा॒वीर्दे॒वान्ह॒विषा॑यजा॒स्यग्ने॑बृ॒हद्यज॑माने॒ वयो॑धाः॥यजु० अ० ११मं० ३५

भावार्थ-हे देवताओंके आह्वान करनेवाले अग्निदेवता सब कुछ जानने वाले तुम अपने लोकमें ठहरो और और श्रेष्ठकर्म यज्ञके स्थान कृष्णाजिन परही यज्ञको स्थापन करो, हे अग्ने ! जिसकारण देवताओंके तृप्ति करने-वाले तुम हव्यसे देवताओंको पूजतेहो, इसीकारण यजमानमें बडी आयु और अन्नको धारण करो(कृष्णाजिनं वैसुकृतस्ययोनिरिति)श०६,४,२,६।

स॒ऽ सीदस्वमहाँ२॥अ॑सि शोच॑स्व देव॒वीत॑मः ॥ विधूममग्ने अरु॒षम्मि॑येद्ध्यसृ॒जप्र॑शस्तदर्श॒तम् ॥ अ० ११ मं० ३७

अर्थ-हे यज्ञके योग्य उत्कृष्ट अग्नि देवताओंके अत्यन्त तृप्त करनेवाले तुम महान् हो पुष्करपर्णपर भले प्रकार बैठो, प्रदीप्तहो, दर्शनयोग्य

शान्तरूप धूम्रको छोड़ा ३७और अग्निहोत्रसे पापभी दूर होते हैं अघनाशन प्रकरणमें (यद्ग्रामे यदरण्ये) श्रुतिका अर्थ देखो ॥

इसीप्रकार सामवेदमेंभी अग्निको देवताओंका दूत लिखा है इत्यादि वेदोंमें अनेक प्रकारसे अग्निकी स्तुति परलोकप्राप्त्यर्थ लिखीहै अब जो मनुजी हवनके लाभ कहतेहैं सो श्रवण कीजिये ॥

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ॥
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥ मनु० २।२८

सब विद्या पढने पढाने व्रतोंके करने हवनकरने त्रैविद्यनामक व्रतकरने तथा यज्ञादिके करनेसे यह शरीर ब्रह्मप्राप्तिके योग्य होता है मुक्तिके साधनमें मनुजीने हवनभी लिखा है अब लौकिक लाभ सुनिये ॥

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ॥
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥ अ० ३ श्लो० ७६
जपो हुतोहुतो होमः प्रहुतो भौतिको बलिः ॥
ब्राह्म्यं हुतं द्विजाग्र्यार्चा प्राशितं पितृतर्पणम् ॥ ७४ ॥
स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दैवे चैवेह कर्मणि ॥
दैवकर्मणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम् ॥ ७५॥

यजमान करके अग्निमें डाली आहुति सूर्यको पहुंचतीहै सूर्यसे अच्छी वृष्टि समयपर होती है वृष्टिसे अन्न और अन्नसे प्रजा होती है ७६ अहुत अर्थात् जपहुत हवन प्रहुत अर्थात् भूतबलि ब्राह्मय हुत श्रेष्ठ ब्राह्मणकी पूजा प्राशित श्राद्ध पितृतर्पण ७४ मनुष्य वेदाध्ययनमें सर्वदा युक्त होकर अग्निहोत्रमेंभी सर्वदा युक्त होय तौ यह संपूर्ण जगत्को धारण करता है७५

पूर्वांसंध्यांजपंस्तिष्ठन्नैशमेनोव्यपोहति॥ पश्चिमांतुसमासीनोमलं हन्तिदिवाकृतम् ॥ मनु० अ० २ श्लो० १०२

प्रातःकालकी संध्या करनेसे रात्रिका, संध्याकालकी संध्याकरनेसे दिनका किया पाप दूर होता है इसीप्रकार हवनसेभी पाप दूर होताहै क्योंकि वेदमंत्र पापक्षयकारक होते हैं और जिनकी विधिहै वोही हव-

---

१ इतो वा अयमूर्ध्व २ रेतः सिञ्चति धूम ३ सामुत्रवृष्टिर्भवतीति श्रुतेः ।

नमें उच्चारण किये जाते हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि, हवनकरनेसे पाप निवृत्त होता है और पुण्य होता है ॥ ❀

वेदे शूद्राऽनधिकारप्रकरणम्।

प्रथम तौ वोह वार्ता लिखते हैं जो शूद्रके विषयमें स्वामीजी मान चुके हैं॥

स० पृ० ४३ पं० २९ शूद्रमपिकुलगुणसम्पन्नं मंत्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके सुश्रुत. ४०। २९

अर्थ–और जो कुलीन शुभलक्षणयुक्त शूद्र हो तौ उसको मंत्रसंहिता छोड़के सब शास्त्र पढावै यह मत किन्हीं आचार्योंका है (सुश्रुतका मत यह नहींहै) और

स० पृ० ३४ पं० १ शूद्रादिवर्ण उपनयन किये विना विद्याभ्यासके लिये गुरुकुलमें भेजदे । २९।१९

स० पृ०७९ पं०२ और जहां कहीं निषेधहै उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढने पढानेसे कुछभी न आवै वोह निर्बुद्धि और मूर्ख होनेसे शूद्र कहाता है उसका पढना पढाना व्यर्थहै ॥ ७९। २३

समीक्षा–इतने स्थानोंमें तौ स्वामीजीने यह माना कि, शूद्रको यज्ञोपवीत न देना चाहिये और यहभी कहा कि, मंत्रसंहिता छोड़कर और सबकुछ पढाना और फिर कहा कि, जो मूर्खहो जिसे पढायेसे कुछ न आवै वोह शूद्र है उसका पढना पढाना व्यर्थहै जब शूद्र मूर्खकोही कहते हैं जिसे पढायेसे कुछ न आवै तौ फिर भला स्वामीजीने कौनसी भंगकी तरंगमें शूद्रको वेद पढनेका अधिकार दे दिया सो आगे लिखतेहैं ॥

स० प्र० पृ० ७४ पं० २ क्या स्त्री शूद्रभी वेद पढैं जो यह पढैंगे तौ फिर हम क्या करैंगे और फिर इनके पढनेका प्रमाणभी नहीं है जैसा यह निषेध है कि, "स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्" इतिश्रुतेः ॥ १४ । २३

स्त्री और शूद्र न पढैं यह श्रुति है (उत्तर) सबस्त्री और मनुष्यमात्रको पढनेका अधिकारहै तुम कुआमें पड़ो और यह तुम्हारी श्रुति कपोलकल्पनासे हुईहै किसी प्रामाणिक ग्रंथकी नहीं और सब मनुष्योंको वेदादि शास्त्र पढने सुननेका अधिकारहै यजुर्वेदके २६ वें अध्यायका दूसरा मंत्रहै ॥

यथेमांवाचंकल्याणीमावदानिजनेभ्यः ब्रह्मराज
न्याभ्या॑ᳬशूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥

* एक प्रकारसे भास्कर प्रकाशनेइस प्रकरणको मान लिया है ।

परमेश्वर कहताहै कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्योंके लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्तिके सुख को देनेहारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदोंकी वाणीको (आवदानि) उपदेश करताहूं वैसे तुमभी किया करो ॥ परमेश्वर कहताहै कि, हमने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र और अपने भृत्य वा स्त्रियादि और अतिशूद्रादिकोंकोभी वेदोंका प्रकाश कियाहै, कहिये अब तुम्हारी बात मानें या परमेश्वरकी, क्या ईश्वर पक्षपाती है यदि वोह पढाना न चाहता तौ इनके वाक और श्रोत्र इन्द्रियोंको क्यों बनाता, वेदमें कन्याओंका पढना लिखाहै पृ० ७९ पं० ७

ब्रह्मचर्येणकन्यायुवानंविन्दते पतिम् ॥ अथर्व०

कुमारी ब्रह्मचर्य सेवनसे वेदादि शास्त्रोंकों पढ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षाको प्राप्त युवती होके पूर्ण युवावस्थामें अपने सदृश प्रिय विद्वान् पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुषको प्राप्तहोवे (प्रश्न) क्या स्त्रीलोगभी वेदोंको पढें (उत्तर) अवश्य देखो श्रौतसूत्रादिमें (इमं मंत्रं पत्नी पठेत्) स्त्री यज्ञमें इस मंत्रको पढे जो वेदादि शास्त्रोंको पढी न हों तौं उच्चारण कैसे करसकें ॥

समीक्षा-प्रथमतौ स्वामीजी लिख चुके कि, शूद्र मंत्रभाग न पढे और अब लिखतेहैं कि, पढे और तुम कुआमें पडो यह दुर्वचन नहीं तौ और क्या है तुम्हारीही पुस्तक और तुमही प्रश्नकर्त्ता तुम्हारीही पढीहुई श्रुति इससे तुमही कुएमें गिरे संसाररूपी कूपमें गिरानेको आपके वाक्य निश्चय प्रबल हैं, जब शूद्र महामूर्खकोही कहतेहैं कि, जिसै पढानेसे कुछ न आवै फिर जब पढानेसे कुछ न आवै तौ उसे वेद पढाना कैसा और जब आप जाति कर्मानुसार मानतेहैं तौभी वेद पढा हुआ शूद्र नहीं हो सक्ता वोह तौ उच्चवर्ण होजायगा, फिरभी मूर्ख वेपढाही शूद्रसंज्ञक रहा इससे आपके बचनसेभी शूद्र वेद पढा नहीं हो सक्ता अब व्याससूत्र सुनिये ॥

संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च ॥ अ० १ पा० ३ सू० ३६

विद्या पढनेके लिये उपनयनादि संस्कार व सुननेसे शूद्र वेदविद्या पढनेका अधिकारी नहीं है ॥

श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्स्मृतेश्च ॥ शा० अ० १ पा० ३ सूत्र० ३८ शूद्रको वेदका अधिकार नहीं है क्योंकि श्रवण अध्ययनवास्ते निषेध होनेसे स्मृतिमें ऐसा लिखाहै ॥

वेदप्रदानादाचार्यंपितरंपरिचक्षते
नह्यस्मिन् युज्यते कर्म किंचिदामौञ्जिबंधनात् ॥१७१॥
नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते ॥
शूद्रेणहिसमस्तावद्यावद्वेदेनजायते ॥ १७२ अ०२

वेदके प्रदानसे आचार्यको पिता कहतेहैं मौञ्जीबंधनसे पूर्व वेदका कुछभी अंश उच्चारण न करे और श्राद्धादिकोंमें जो वेदोक्त मंत्रहैं उनको छोड़कर और मंत्र उच्चारण न करे कारणकि जबतक वेद पढनेका अधिकार नहीं हुआ तबतक शूद्रके तुल्यहै यहां विना यज्ञोपवीत हुए शूद्रकी समान तीनों वर्ण कहे १७१-१७२ अब आगे शूद्रका उपनयन नहीं होता यह दिखातेहैं ॥

नशूद्रेपातकं किंचिन्नचसंस्कारमर्हति
नास्याधिकारोधर्मेस्तिनधर्मात्प्रतिषेधनम् १२६
यथायथाहिसद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः.
तथातथेमंचामुंचलोकं प्राप्नोत्यनिंदितः १२८
धर्मेप्सवस्तुधर्मज्ञाः सतांवृत्तमनुष्ठिताः
मंत्रवर्जं नदुष्यन्तिप्रशंसां प्राप्नुवंतिच १२७ अ० १०

शूद्रको कोई पातक नहीं है और न कोई संस्कार योग्यहै और न कोई वैदिक धर्ममें इसको अधिकारहै और कहे हुए धर्म करनेका निषेध नहीं है ॥ १२६ ॥

निंदाको न करनेवाला शूद्र जैसा २ अच्छे पुरुषोंके आचरणोंको करताहै, वैसा २ इसलोक तथा परलोकमें उत्कृष्टताको प्राप्त होताहै १२८ धर्मकी इच्छावाले तथा धर्मको जाननेवाले शूद्र मंत्रसे रहित होकरभी सत्पुरुषोंके आचरण करते हुए दोषोंको नहीं प्राप्त होते किन्तु प्रशंसाको प्राप्त होतेहैं १२७ अब वेदमंत्रका अर्थ सुनिये (यथेमां) इसमें प्रसंग देखना योग्यहै सो इससे पहला यह मंत्रहै इस मंत्रमें इमाम् इदम् शब्दसे प्रयोगहै ॥

अग्निश्च॑ पृथि॒वी च॒ सन्न॑ते॒ ते मे॒ सन्न॑मतामदो वा॒युश्चा॒न्तरि॑क्षं च॒ सन्न॑ते॒ ते मे॒ सन्न॑मतामद आदि॒त्यश्च॒ द्यौश्च॒ सन्न॑ते॒ ते मे॒ सन्न॑म

तामद आपश्च वंरुणश्च सन्नंतेते मे सन्नंमतामदः सप्तसंᳯ सदोअष्टमी भूंतसाधंनी सकांमाँ ॥ २ ॥ अध्वंनस्कुरु संज्ञानं मस्तमेऽमुनां १

(अग्निः) अग्नि (च) और (पृथिवी) भूमि (च) भी (सन्नते) परस्पर अनुकूलतासे संगतहैं (ते) वे दोनों (मे) मेरे (अदः) अमुककामनाको (सन्नमताम्) इसीप्रकार वशवर्ती करो (च) और (वायुः) वायु (च) और (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष (सन्नते) संगतहैं (ते० वे मेरे इत्यादि) (च) और (आदित्यः) आदित्य (च) और (द्यौः) द्युलोक (सन्नते) जैसे परस्पर वशवर्तीहै (ते० वे इत्यादि) (च) और (आपः) जल (च) और (वरुणः) वरुण (सन्नते) परस्पर संगतहै (ते० वे) हेदेव जिस आपके (सप्त) सात (संसदः) अधिष्ठान अग्नि, वायु अन्तरिक्ष, आदित्य, द्युलोक, अप, वरुणहैं (अष्टमी आठवीं भूतसाधनी) प्राणियोंकी आधारस्वरूप वा उत्पादक भूमिहै इन सबके अधिष्ठानस्वरूप तुम (अध्वनः) हमारे मार्गोंको (सकामान्) सफल (कुरु) करो (मे) मेरी (अमुना) इस इष्टसे वा सबसे (संज्ञानं) संगति (अस्तु) हो, अर्थात् हे देव पथस्वरूप सप्तसंसद और आठवीं भूतसाधनी बुद्धिको हमारे आधीन करो अथवा विज्ञानात्माके प्रति कहतेहैं हे देव ! कि सप्तसंसद, पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि यह सात स्थान और आठवीं प्राणियोंको वशकरनेवाली वाणीहै आप हमारे मार्गोंको सकामकरो इनके संगमेरी संगतिहो। विशेष अर्थ हमारे वेदभाष्यमें देखो अनन्तर यह मंत्रहै

यथेमांवांचंकल्याणीमावदांनिजनेभ्यः ब्रह्मराजन्याभ्याᳯशूद्रायचार्य्यांयचस्वायचांरणाय प्रियोदेवानां दक्षिंणायैदातुरिहभूंयासमयंमेकामः समृंध्यतामुप मादोनंमतु॥ य० अ० २६ मं० २

पूर्व मंत्रमें स्थित भूतसाधनी वाणीका अध्याहार होताहै तब इसका यह अर्थ होताहै कि यज्ञके अन्तमें यजमान अपने भृत्योंसे कहताहै (दक्षिणायै यथेमां भूतसाधनीं कल्याणीं वाचं जनेभ्यः आवदानि तथा त्वं कुरु इति शेषः)

भाव यहहै कि (दक्षिणायै) दान देनको जनोंके अर्थ (यथा) जैसे इमाम्)इसभूतसाधनीं (कल्याणीं) शोभना (वाचं) (दीयतां भुज्यताम्)

दो भोजन करो ऐसी वाणीको (जनेभ्यः) सम्पूर्ण जनोंके निमित्त (आवदानि) सबप्रकारसे कहताहूं वैसे तुमभी करो और कहो किन जनों के लिये (ब्रह्मराजन्याभ्याम) ब्राह्मणक्षत्रियोंके निमित्त (च) और शूद्राय शूद्रके निमित्त (अर्य्याय) वैश्यके निमित्त (स्वाय) अपने भृत्यके निमित्त तथा (अरणाय) अति शूद्रादिके निमित्त आशय यह कि दान भोजनमें किसी जातिका विचार नहींहै सबको देनाचाहिये ऐसा कर नेसे (देवानाम्) देवताओंका (दातुः) सबके देनेवाले परमेश्वरका (प्रियः) प्यारा(भूयासम) हूंगा (मे) मेरा (अयम्) धनपुत्र लाभरूप (कामः) कार्य(समृध्यताम्) समृद्धिको प्राप्तहो (अदः) पर लोक सुखादि (उपनमतु) प्राप्तहो २ इसमें 'दक्षिणायै' और 'दातु'पदआनेसे स्पष्टही अन्न और दानकी महिमा विदित होतीहै ।

यदि दयानंदजीकाही अर्थ माना जाय तो परमेश्वरकी वाणीभी मानन होगी जब वाणी हुई तो शरीरभी होगा और वेदाविर्भावप्रसंगभी स्वामीजीका स्वामीजीकेही लेखसे भ्रष्ट होजायगा क्यों कि जब इस मंत्र उपदेशवत् अग्निआदिको उपदेश कर सक्तेथे तो उनके अन्तर्वेदका प्रादुर्भाव होना असंगतहै इससे शूद्रको वेदपठन पाठनका उपदेश करना अशुचिमें शुचिबुद्धिरूप अविद्या है और प्रथम तो यहां स्वामीजीसे यह पूछना है कि यह ब्राह्मणादिशब्द मंत्रमें जातिके बोधक हैं अथवा जोकि तुमने पच्चीसवें वर्षमें परीक्षासे नियत करीहै यह ब्राह्मणादि जाति उसके बोधकहैं, जैसे आपने ८८ पृष्ठमें मानाहै यदि प्रथम पक्ष कहोगे तो ब्राह्मणत्वादि जाति सिद्ध होगई तो आपकी स्वकपोलकल्पित वर्णव्यवस्थाहै सो दत्तजलांजलि होगई, और यहभी विचारना चाहिये कि यह उपदेश आदिमें होना चाहिये वा अन्तमें होना चाहिये मध्यमें कैसे होसक्ता है क्यों कि (इमाम्) यह शब्द प्रयोग समीपवस्तुका बोधकहै सो अभीतक चतुर्वेद विद्या समीपहै नहीं वक्ष्यमाणा है और यदि गुणकृत वर्ण व्यवस्थाको मानकर मंत्रमें ब्राह्मणादिशब्द कहेंगे तब ब्राह्मणत्वादिशून्यमें ब्राह्मणादि शब्द प्रयोग करनेसे ईश्वर भ्रान्त होगा क्योंकि तुम्हारे सिद्धान्तमें पूर्ण तो विद्वान ब्राह्मणहै सो अभीतक हुआ नहीं और जो पूर्ण विद्वान् है तिसको वेदविद्या उपदेशरूप ईश्वरकी आज्ञा निष्फल है और शूद्रशब्द तमोगुणविशिष्टका वाचकहै तिसकोभी वेदविद्या उपदेशकी आज्ञा निष्फल है, और अरण शब्दार्थ जो अतिशू-

द्रहै तिसमें तौ सर्वथा उपदेश निष्फलहै, जैसे ऊपरमें बीज बौना तैसे शूद्र और अतिशूद्रमें उपदेश निष्फलहै, और जब जातिही ब्राह्मणादिकोंकी लिख दी तौ फिर (स्वीय अपने भृत्योंको) यह शब्द प्रयोग निष्फलही हो जायगा क्या वे भृत्य चार वर्णोंसे पृथक् हैं इसकारण शूद्रको वेदका अधिकार कदापि नहीं औरभी सुनिये ॥ शूद्रके सिवाय इतनोंका और निषेध है ।

विद्याहवैब्राह्मणमाजगाम गोपायमा शेवधिष्टेऽहमस्मि ॥ असूयकायानृजवेऽयतायनमाब्रूयावीर्यवतीतथास्याम् नि० अ० २खं० ४

अर्थ–विद्या अधिदेवता कामरूपिणी होकर नियमित वेद वेदाङ्गके जाननेवाले ब्राह्मणके पास आकर बोली (गोपाय माम्) मेरी रक्षा कर (अहम्) मैं रक्षित हुई (शेवधिः) खजाना हूंगी किनसे रक्षा करनी चाहिये (असूयकायानृजवेऽयताय) (असूयकः) पराया अपवाद निन्दा करनेवाले (अनृजु) जिसकी मन वाणी देहकी असमानवृत्तिहों(अयतः) विप्रकीर्णेन्द्रियः जिसकी इन्द्रियां शुद्ध नहों ऐसे पुरुषसे मुझे मत कहो ऐसा करनेसे मैं वीर्यवती हूंगी । स्वामीजी लिखते हैं कि चाण्डालतकको वेदविद्या पढा दो यह निरुक्त भाष्ययुक्त कौनसे चूरणके साथ गड़ापगये इससे नीचको कुटिल शूद्रोंको कदापि विद्या नहीं देनी, इसी प्रकार स्त्रियोंको वेदादि पढनेमें अधिकार दिया है और (ब्रह्मचर्येण कन्या)इस मंत्रका अर्थ उलटा लिखाहै और इसमें स्त्रियोंको वेद पढना नहीं लिखा और जो चाहें सो पढै केवल स्त्रीशूद्रको मंत्रभागका पढनामने किया है और वेदवाक्यका अर्थ यहहै कि (ब्रह्मचर्येणयुवानंपतिंकन्याविन्दते) यह अन्वय हुआ अर्थात् ब्रह्मचर्यसे जवान हुए पतिको कन्या प्राप्त होवे और (इमं मंत्रं पत्नी पठेत्) पहलेतो इसका पताही नहीं लिखा कि कहांकाहै तोभी इसकी व्यवस्था इस प्रकारहै कि–

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥ मनुः ॥

विवाहमें वेदमंत्रसे संस्कार होताहै यही स्त्रियोंको यज्ञोपवीत है, पतिसेवा करनी यही गुरुकुलका वासहै, गृहका कामकाज करना अग्निकी सेवाहै, पतिके सन्निधिमें विवाहमें संस्कारके अर्थ तथा कहीं यज्ञमें पत्नीके मंत्र बोलनेकी विधिहै, सो ऋत्विक् कहलादेतेहैं कुछ पढनेकी विधि नहींहै, गार्गीआदि स्त्रियें मंत्रभागको छोड और सब कुछ पढीथीं. इससे

स्त्री शूद्रको* वेद न पढाना औरभी सुनिये ॥

योनधीत्यद्विजोवेदमन्यत्रकुरुतेश्रमम्।
सजीवन्नेवशूद्रत्वमाशुगच्छतिसान्वयः॥मनुः॥२।१६८

जो ब्राह्मण वेदको छोड और विद्याओंमें परिश्रम करताहै वो जीते हुएही शूद्रपनेकूं वंशसहित प्राप्त होजाताहै अब विचारनेकी बात है जबकि वेद नहीं पढनेसे शूद्रपना प्राप्त होताहै तौ शूद्र कैसे वेदपढसकते हैं क्योंकि जो ब्राह्मणभी वेद न पढै तौ शूद्रसरीखा होजाय जब शूद्र वेद पढै तौ वोह शूद्र कैसा तीन वर्ण तौ वेद विनापढे शूद्रसरीखे होजाते हैं, आप उन्हीं अवैदिक शूद्रोंको वेदका अधिकार देते हो, धन्य है आपकी बुद्धि. मालूम होताहै कि किसी शूद्रने कुछ झुकादिया है नहीं तौ शूद्रोंकी ऐसी तरफदारी न करते कि पूर्व तौ अधिकार नहीं यहां लिखदिया और शूद्रको वेदमें अनधिकारहोनेसे ईश्वरमें पक्षपातका दोष नहीं आसक्ता, क्योंकि उसके कर्महीं जब अनधिकार और शूद्रपनेके थे तबतौ उसका कल्याण उस शरीरकेही धर्मसे है इस्से कर्मानुसार सुख दुःख ब्राह्मणशूद्रादि होनेसे अपने २ कार्य धर्मके सब पृथक् पृथक् अधिकारी हैं यदि दोष देते हो तौ ईश्वर धन संतानभी सबको बराबर देता और जब कर्मसे न्यूनाधिकहै तौ जातिभी कर्मसेहै इसका विशेष वर्णन जातिप्रकरणमें लिखेंगे ॥

स० पृ० ५० पं० १० अनेनक्रमयोगेनसंस्कृतात्माद्विजःशनैः॥
गुरौवसन्संचिनुयाद्ब्रह्माधिगमिकंतपः॥ २ । १६४

इसी प्रकार कृतोपनयन द्विज ब्रह्मचारी कुमार और ब्रह्मचारिणी कन्या धीरे धीरे वेदार्थके ज्ञानरूप उत्तम तपको बढाते जांय ॥४८।२२

समीक्षा-इस श्लोकमें स्वामीजीने कुमारी ब्रह्मचारिणी यह अर्थ कौनसे पदसे उद्धृत कियाहै सो नहीं विदित होता और उपनयनका सम्बन्धभी शायद कन्याके साथ लगाया होगा क्योंकि विनाउपनयनके वेद नहीं पढायाजाता, दयानंदजीके मतमें कन्याकाभी उपनयन लिखाहै धन्यहै (संस्कृतात्मा द्विजः शनैः) इसमें द्विजशब्दसे केवल ब्रह्मचारीहीका ग्रहण होता है कन्याका नहीं और वेद कन्याको न पढाना यह पूर्वही लिखचुकेहैं इति ॥

* भास्करप्रकाशके कर्ताको जब कोई युक्ति न सूझी तो अपनी ओरसे एक अधिकारमीमांसा बनाई पर इससे क्या शूद्रको वेदाधिकार सिद्ध हो सकता है ?।

सृष्टिक्रमप्रकरणम् ।

स० पृ० ५४ पं० १४ जो जो सृष्टिक्रमसे विरुद्ध है वोह सब असत्यहै जैसा विनामातापिताके योगसे पुत्रका होना तथा १२ पंक्तिमें जो ईश्वरके गुण कर्म स्वभाव और वेदके अनुकूलहो वोह सब सत्य और उसके विरुद्ध असत्यहैं ॥ ५३ । २२

समीक्षा–नजाने स्वामीजी स्वप्नावस्थामें कभी महम्मद साहबकी तरह ईश्वरके पास होआयेथे जो उसने इन्हें सारी सृष्टिका क्रम उपदेश करदिया जिससे इन्हें यह बात निर्भ्रान्त मालूम होगईहै कि ईश्वरकी सृष्टिका विषय इतनाही है वेदमें तौ ऐसा लिखाहै कि ॥

एतावानस्यमहिमातोज्यायांश्चपूरुषः । पादोस्यविश्वाभूतानित्रिपादस्यामृतंदिवि ॥ यजु० अ० ३१ मं० ३

ईश्वरकी विभूति इतनीही है यह नहीं किन्तु इससेभी अधिकहै, यह जो कुछ विश्व जीवों सहितहै यह उसकी महिमाका एक भागहै, और शेष तीन भागमें प्रकाशमान मोक्षस्वरूप आपहै, और ब्राह्मणवाक्यभी कहते हैं (नाहं विदाथ नतं विदाथ) हे मैत्रेयी ! मैं कौनहूं तू नहीं जानती सो कौनहै यहभी तू नहीं जानती, और गीतामेंभी लिखा है कि (बुद्धेः परतस्तु सः) कि वोह परमेश्वर बुद्धिसे परे हैं जब वोह बुद्धिसे परेहैं तौ उसके कार्य पूर्णतासे कौन जानसकताहै पर स्वामीजी तौ शरीररहतेभी सृष्टिका क्रम सब उससे पूछिआये क्योंजी ॥

तस्मादश्वाअजायन्तये केचोभयादतः ॥ गावोहजज्ञिरेतस्मात्तस्माज्जाताअजावयः यजु० अ० ३१ मंत्र ८

उस परमेश्वरसे अश्व और जो कोई दूसरे पशु ऊपरनीचेके दांतवाले हैं उत्पन्न हुए उससे गौ बैल उत्पन्नहुए उससे भेड बकरी उत्पन्न हुई ॥ अब स्वामी जी बतावें कि आप तौ उत्पत्ति स्त्रीपुरुषके योगसे मानते हैं यह घोडे बैल भेडबकरी कैसे उत्पन्न हुए औरभी सुनिये ॥

योवैब्रह्माणंविदधातिपूर्वम् । श्वे०

जिस परमेश्वरसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, जब आप स्त्रीपुरुषके योगसे उत्पत्ति मानते हैं तौ आपने ईश्वरकीभी लुगाई बनाई होंगी जिससे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और घोडे आदिके उत्पन्न करनेकोभी स्त्रियें होनी चाहिये फिर वे ईश्वरकी स्त्रियें कहांसे आईं यह प्रश्न होगा इससे यह आपका

कपोलकल्पित सृष्टिक्रम सब भ्रष्ट हुआ जाता है धन्य है उसकी महिमाको जाननेकी कहां सामर्थ्य है वोह सब कुछ करता है उसे कोई जान नहीं सक्ता क्योंकि (परास्य शक्तिर्विविधैवश्रूयते) उसकी पराशक्ति अनेक प्रकारकी सुनी जाती है अबभी कभी २ ऐसे आश्चर्य प्रतीत होते हैं जो कभी पूर्व नहीं हुए सृष्टिक्रमतौ दूररहै स्वामीजीको अपनी खबर नहीं है यदि खबर होती तौ आप कहीं कुछ कहीं कुछ यह विरुद्धतासे भराहुआ 'सत्यार्थप्रकाश' न लिखते, तथा पहला सत्यार्थप्रकाशभी भ्रष्ट होजानेसे आपको वोह अप्रमाण कर नया गढना न पडता, जोकि यहां आपने सृष्टिक्रमका बहानाकर टट्टीकी ओलटमें शिकार खेलाहै, जो बात समझमें नहींआई लिख दियाकि सृष्टिक्रमके विरुद्धहै कहीं तो लिखदिया होता कि सृष्टि क्रम इतना है जो मालूम तौ होजाता फिर आपको वैसेही प्रमाण देते, वेदानुकूलताका वर्णन आगे लिखेंगे ॥

स० पृ० ५७ पं० १ 'सम्भवति यस्मिन्ससम्भवः' कोई कहै किसीने पहाड उठाये मृतक जिलाये समुद्रमें पत्थर तराये परमेश्वरका अवतार हुआ यह सब बातें सृष्टिक्रमके विरुद्ध होनेसे असंभव हैं ॥ ५६। १६

समीक्षा–स्वामीजीका मत तौ उनकी बुद्धिहै जो बात इनकी बुद्धिके अनुकूल हो वही सत्य जो बुद्धिके प्रतिकूल हो वोह सृष्टिक्रमकेभी प्रतिकूल होगी आप वेदानुकूल और सृष्टिक्रमानुकूल क्यों नाम धरते हो यों कहो कि हमारी बुद्धिके अनुकूल होना चाहिये, यदि किसी योगीसे आपकी भेट होती वोह मुर्दाभी जिलाकर दिखा देता और आपकी इस बुद्धिकोभी सुधार देता, तथापि जिन ग्रंथोंका आपने सत्यार्थप्रकाशमें प्रमाण लिखाहै उसीसे हम यह सब बातें दिखातेहैं महाभारतके अश्वमेध पर्व के ६९ अध्यायमें देखो श्रीकृष्णने परीक्षितको जो मृतक उत्पन्न हुआथा पुनर्जीवित किया, वाल्मीकिमें लिखा है कि रामचंद्रके राज्यमें एक शंबुक नाम शूद्र तप करताथा इस कारण उस अनधिकारीके पापसे एक ब्राह्मणका पुत्र मरगया. रामचंद्रने उस शूद्रको मार ब्राह्मणकुमारको जीवित किया और श्रीकृष्णने गोवर्द्धन उठाया, महावीरजी लक्ष्मणजीके अर्थ संजीवन बूंटीवाला पहाड़ उठाला येथे, समुद्रपर पुल बांधा हुआ आजतक मौजूदहै, आंखें होय तो देख आओ, यह लंकाकाण्डमें स्पष्ट है, और (आप्तोपदेशः शब्दः) शब्द

१ उत्तरकाण्ड ।

प्रमाण आप मानही चुकेहैं सो वाल्मीकिजी पूर्ण आप्त थे उन्होंनेही नल नीलको लिखा है कि इन्होंने पुल बांधा, यह पत्थर समुद्रमें नहीं तौ क्या आपके सत्यार्थप्रकाशपर तरेथे और सम्भव किसे कहते हैं जो कुछभी होजाय उसे संभव कहते हैं समर्थ पुरुषोंसे जो सम्भव है वही असमर्थों-को असंभव है अवतार विषय सप्तमसमुल्लासमें लिखेंगे इससे यहभी विदित होगया कि शूद्रको तपकरनेका अधिकार नहीं है पर जो कहीं आज दिन रेलतार न होता तौ स्वामीजीको यहभी असंभव विदित होता ॥

पठनपाठनविधिप्रकरणम् ।

स० पृ० ६८ पं १७ आर्षग्रंथोंका पढना ऐसाहै जैसा कि समुद्रमें गोता लगाना और बहुमूल्यमोतियोंका पाना अष्टाध्यायी महाभाष्य पढाना पं० १९ यास्कमुनिकृत निघंटु पं० २१ तदनन्तर पिंगलाचार्यकृत छन्दोंग्रन्थ पढै पं० २३ फिर मनुस्मृति वाल्मीकिरामायण और महाभारतके अन्तर्गत विदुरनीति आदि काव्य रीतिसे पदच्छेद आदि पढै पृ० ७० पं० ९ आयुर्वेदचरकसुश्रुत चारवर्षमें पढै पृ० ७० पं० १७ नारदसंहिता आदि आर्षग्रंथ पढै पृ० ७० पं० २२ ज्योतिःशास्त्र सूर्यसिद्धान्तादि जिसमें बीजगणित अंकविद्या भूगर्भ यथावत् सीखै फिर पृ० ७१ पं० ४ से पूर्वमीमांसा व्यासकृतभाष्य वैशेषिक गौतमकृत भाष्यसहित, न्यायसूत्र वात्स्यायनभाष्यसहित पतञ्जलिकृतयोगपर व्यासकृत भाष्य, कपिल मुनिकृत सांख्यपर भागुरिमुनिकृत भाष्य, वेदान्तपर वात्स्यायन और बौधायनमुनिकृत भाष्य वृत्तिसहित पढावै, इन सूत्रोंको कल्पके अंगोंमें भी गिन्नाचाहिये, ऋक्-यजु-साम अथर्व चारों वेद ईश्वरकृत हैं वैसे ऐतरेय शतपथ साम और गोपथ चारों ब्राह्मण, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त निघण्टु, छन्द, और ज्योतिष, छःवेदोंके अंग मीमांसादि वेदोंके उपांग आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, और अर्थवेद यह चारवेदोंके उपवेद, इत्यादि सब ऋषि मुनियोंके किये हुए ग्रंथ हैं, इनमें जो जो वेदविरुद्ध प्रतीत होवै उस उसको छोडदेना, क्योंकि वेद ईश्वरकृत होनेसे स्वतः प्रमाण, अर्थात् वेदका प्रमाण, वेदहीसे होताहै, ब्राह्मणादि सब ग्रंथ परतः प्रमाण वेदाधीन हैं, और पृ० ६९ में, पं० १ ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, मांडूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, इन दश उपनिषदोंको पढना ॥ ६८।२६ से ७१ पृ० तक ।

समीक्षा–यहां तौ स्वामीजीने बडीभारी चालखेली है जरा आप आपने ऊपर लिखे हुएको तौ विचार कीजिये जो आप सत्यार्थप्रकाश पृ०

७१ पं० १ में लिखते हो कि (ऋषिप्रणीत ग्रंथोंका इस लिये पढना चाहिये कि वे बड़े विद्वान् सब शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे[1]) जब कि ऋषि प्रणीत ग्रंथोंमें भी आप लिखते हैं कि वेदानुकूल जो बात होगी वोह मानी जायगी, तौ उन ऋषियोंकी पूर्णविद्वत्ता कहां रही, और वे धर्मात्मा किस प्रकार होसक्ते हैं, जो वेदविरुद्ध कोई बात कहैं यह आपने पूर्ण विद्वान् ऋषियोंकी निन्दा करी है तौ आपको मनुजीके वाक्यानुसार हम यह श्लोक भेंट करते हैं ॥

योवमन्येततेमूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः ।
ससाधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिकोवेदनिन्दकः ॥ मनु० २।११

जो वेद और आप्त पुरुषोंके किये शास्त्रोंका अपमान करताहै उस वेद निन्दक नास्तिकको जाति पंक्ति और देशसे बाहर निकाल देना चाहिये॥

अब कहिये आप इन्हीं महात्माओंके ग्रंथोंमें वेदविरुद्धता ठहराते हो तौ अब आपकी क्या दशा कीजाय, जब आपको वेदानुकूलही प्रमाण है तौ वृथा और ग्रंथोंमें भटकते हो क्योंकि आपको तौ वही बात प्रमाण होगी जो वेदमें होगी, फिर औरोंके माननेकी आवश्यकता क्या है, पर ऐसा करनेसे आपका काम कैसे चल सकताहै आप तौ अपने अनूकूल होनेसे सब कुछ मानतेहैं. भला यह तौ कहिये यह सत्यार्थप्रकाशकीरचना कौनसे वेदके अनुकूल है, आप तौ प्राचीन ऋषियोंसेभी अपनेको अधिक मानते हो उन महात्माओंका लेखतौ वेदविरुद्ध होगया जोकि पूर्ण विद्वान् थे, और आपका लेख जो स्वार्थपरता और वेदविरुद्ध अर्थोंसे पूर्ण है सत्यहै, धन्यहै यह बडाईहीतौ आपका गुणप्रगट करती है. भला यह तौ बताओ कि (अहरहः सन्ध्यामुपासीत, स्वर्गकामो यजेत) अर्थात् रोजरोज संध्या करो स्वर्गकी इच्छा हो तौ यज्ञकरै यह विधिवाक्य यज्ञोपवीतमंत्रोंके ऋषिदेवता और उनके प्रयोग, यह पंचयज्ञ आदि यह कौनसे मंत्रभागके अनुकूलहैं, और कौनसे मंत्र इनके विधायकहैं बताओ तौ सही जब मंत्रभागमें यह वार्ता नहीं तौ आपकेमतानुसार यह विधिकर्मकाण्ड सब वेदविरुद्ध हुआ, और यह पठन पाठन शिक्षा कौनसे मंत्रभागके अनूकूलहै, और संन्यासी होकर चोगा बूट जूता पहरना, हुक्का पीना कुरसी मेजकोही इस्तमालमें लाना विरागी

---

१ इसीके आगे लिखते हैं कि और अनर्षि जिनका आत्मा पक्षपात सहितहै उनके बनाये हुए ग्रंथभी वैसेही हैं । इस वचनसे आर्ष अनार्ष एकसे बनाये और दयानंदके ग्रंथभी पक्षपाती होनेसे वैसेहीहैं ।

होकर रुपया जमाकरना यह कौनसे मंत्रभागके अनूकूलहै महात्माजी जब आप वेदके अर्थ लिखने बैठते हो तौ आप उसके अर्थको ब्राह्मण निघण्टु महाभाष्य उपनिषदसे सिद्धकरतेहो, कि इसशब्दका निघण्टुमें यह अर्थ है, शतपथमें इसका आशय इसप्रकार कथन कियाहै, इस कारण इसका यह अर्थ हुआ, जब यह दशाहैकि विना ब्राह्मण निघण्टुके आप वेदका अर्थ सिद्धनहीं करसक्ते तौ वे ब्राह्मण निघण्टु वेदके अर्थको सिद्ध करनेसे स्वतः सिद्ध और स्वतःप्रमाण क्यों नहीं क्योंकि मंत्रवर्णनमें तौ यह लिखाही नहीं, कि इसका अर्थ इस प्रकार कर करना, यह विधि तौ ब्राह्मण निघण्टु आदिमें ही कथनकरी है, कि मंत्रका यह अर्थ है और यह इसके प्रयोगकी विधि है इससे इनका वेदवत् प्रमाणहै इन ग्रंथोंमें अंशभी वेद विरुद्ध नहीं है और इसीकारणसे (मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्) मंत्र और ब्राह्मणका नाम दोनों मिलकर वेद कहा जाताहै अब कहिये इन ग्रंथोंसे अर्थ करनेमें वेदानुकूलता आपकी कहां गई और जिस ग्रंथमें थोडाभी असत्यहै आप उसे त्यागन करने कहतेहैं जैसाकि स० प्र० पृ० ७१ पं० ३० में लिखा है (विषसंपृक्तान्नवत् त्याज्याः) जैसे अत्युत्तम अन्न विषसे संयुक्त होनेसे छोडने योग्य होता है वैसेही असत्यतामिश्रित ग्रंथ त्याज्य हैं और पृ० ७२ पं० १२ (असत्यमिश्रं सत्यंदूरतस्त्याज्य-मिति) असत्यसे युक्त सत्यभी दूरसे छोडना चाहिये ऐसेही असत्य मिश्रित ग्रंथभी त्यागने, क्योंकि जो सत्यहै सो वेदादि सत्यशास्त्रोंकाहै मिथ्या उनके घरकाहै वेदके स्वीकारमें सब सत्यका ग्रहण होजाताहै और जो इन मिथ्याग्रंथोंसे सत्यका ग्रहणकरना चाहै तौ असत्यभी उसके गलेमें मढजाताहै यह पृ० ७२ पं० ९ से १३ पंक्तितक कथन है ॥

जो यह दशाहै तौ ब्राह्मणादि ग्रंथोंमेंभी आपके कथनानुसार अस-त्यहै तौ विषवत् होनेसे इनकाभी त्यागन करना चाहिये, फिर इनको क्यों मानते हो यह आपका बडाभारी अन्यायहै कि जिस थालीमें खांय उसीमें छेदकरैं, यह आपकी बडी भारी भ्रान्तिहै, कि ब्राह्मणादि ग्रंथोंमें असत्य और वेदविरुद्धता मानते हो यदि आप इनमें भी असत्य और वेदविरुद्ध बताते हो तौ फिर इन्ही का प्रमाण देते आप क्यों नहीं लजाते, आप अपने पूर्व लेखको बड़ी जल्दी भूलगये, कि विष मिला अमृतभी विषही हो जाताहै बस इसीने मारदिया आपका सत्यार्थप्रकाश और वेदभाष्यभूमिका असत्य होनेसे त्याज्यहै ॥

स० पृ० ७१ पं० १७ नीचे लिखे जालग्रंथ समझने चाहिये ॥ ७२। ६ व्याकरणमें कातंत्र, सारस्वतचन्द्रिका, शेखर, मुग्धबोध, कौमुदी मनोरमादि, कोशमें अमरकोशादि, छन्दोंग्रंथमें वृत्तरत्नाकरादि, शिक्षामें 'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयंमतंयथा' इत्यादि, ज्योतिषमें शीघ्रबोध, मुहूर्तचिन्तामणि आदि, काव्यमें नायिकाभेद, कुवलयानंद रघुवंश, माघ, किरातार्जुनीय आदि, मीमांसामें धर्मसिंधु, व्रतार्कादि, वैशेषिकमें तर्कसंग्रहादि, न्यायमें जागदीशी आदि, योगमें हठप्रदीपिकादि, सांख्यमें सांख्यतत्त्वकौमुद्यादि, वेदान्तमें योगवासिष्ठ पंचदश्यादि, वैद्यकमें शार्ङ्गधरादि, स्मृतियोंमें एक मनुस्मृति इसमेंभी प्रक्षिप्त श्लोक अन्य सब स्मृति सब तंत्र ग्रंथ सब पुराण सब उपपुराण तुलसीदासकृत भाषा रामायण रुक्मिणीमंगल आदि और सब भाषा ग्रंथ यह सब कपोलकल्पित मिथ्या ग्रंथ हैं पृ० ७० पं० २९ परन्तु जितने ग्रह जन्म पत्र राशि मुहूर्त आदि फलके विधायक ग्रंथ हैं उनको झूंठ समझकै कभी न पढै ॥

समीक्षा—यहां तौ कौमुदीकी यह निन्दा और जब आप मरे तौ निजवस्तेमें वैयाकरणसर्वस्व और सिद्धान्तकौमुदी यह दो ग्रंथ निकले, इन व्याकरणोंके ग्रंथोंमें क्या मिथ्यापना है क्या इन ग्रंथोंने अष्टाध्यायीका खंडन किया है, कौमुदी आदिकोंमें तौ पाणिनिकृत अष्टाध्यायीके सूत्रोंकी वृत्ति की है यदि वृत्ति करनेहीसे वे जाल ग्रंथ आपने बताये तौ तुम्हारा रचित वेदाङ्गप्रकाश जो अष्टाध्यायीकी भाषाटीका कौमुदीकी रीतिपरहै वोह भी मिथ्याही होना चाहिये कोशमें यदि निघण्टु जिसमें वैदिक शब्दहैं पढै और अमरकोशादि न पढै तौ लौकिक शब्दोंके अर्थ आपके सत्यार्थप्रकाश या वेदभाष्यभूमिकासे करै काव्योंसे आपकी शत्रुता क्यों है, क्या यह भी आजीविकाकोही रचना कियेहैं यदि यह काव्य जिनसे व्युत्पत्ति होती है न पढैं तौ क्या आपका बनाया संस्कृत वाक्यप्रबोध जिसमें सैकडों अशुद्धि भरी पडी हैं उसे पढैं, जो और भी बुद्धिभ्रष्टहोजाय, तर्कसंग्रहमें कौनसी बात वैशेषिकके विरुद्धहै, और आपने भी तौ ९४ पृष्ठसे ९६ पृष्ठतक तर्कसंग्रहही लिखीहै, यह आपकी बड़ी भारी चालाकी है, कि कोई हमारा चेला सत्यार्थप्रकाशमेंसे निकालकर अलग छपालेगा, तौ तर्कसंग्रहके स्थानमें यही काम आवैगा और हमारा नाम होगा, यह लिखा तौ होता, कि तर्कसंग्रहने कोनसी आपकी रोजी छीनली और उसमें विरुद्ध कौनसी बातहै पर हठको क्या करिये और

जब मनुमें प्रक्षिप्त श्लोक हैं तौ यह भी विषमिश्रित अन्नकी नाईं आपने त्यागन क्यों नहीं किया, यदि इसे भी छोड़ते तौ काम कैसे चलता पुराणोंकी सिद्धि आगे चलकर करैंगे, तुलसीदासजीने क्या बात विरुद्धताकी लिखीहै और जब सब भाषाके ग्रंथ कपोकलल्पित हैं तौ आपका सत्यार्थप्रकाश वेदभाष्य तथा भूमिका आर्य्योद्देश्यरत्नमाला आदि जो कुछ आपकी भाषाकी गढंतहै यह भी कपोलकल्पित और त्याज्यहै, भाषाकी अतिव्याप्ति होनेसे, जो आप अपनी बनाई भाषा माने तौ औरोंके बनाये क्यों प्रमाण नहीं ? बीमारी होनेसे आप तौ अंग्रेजी दवाई उड़ाना और शार्ङ्गधरको जाल ग्रंथ बताना, धन्यहै यदि जन्मपत्र मुहूर्त मिथ्याहैं तौ संस्कार विधिमें यज्ञोपवीत विवाहमें पुष्य-नक्षत्र शुक्लपक्ष उत्तरायण आदि यह मुहूर्त्तविधि क्यों लिखी हैं, अब सुश्रुतकाभी प्रमाण सुनिये जिसके प्रमाण आप सत्यार्थप्रकाशमें बहुधा लिखते हैं ।

उपनयनीयस्तुब्राह्मणः प्रशस्तेषुतिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रेषुप्रशस्तायां दिशि शुचौसमेदेशे चतुर्हस्तं चतुरस्रं स्थंडिलमुपलिप्य गोमयेनदर्भैः संस्तीर्य पुष्पैर्लाजभक्तैरत्नैश्च देवताः पूजयित्वा विप्रान् भिषजश्चेत्यादि ॥ सुश्रुतसूत्रस्थान अ० २

अर्थ--दीक्षा योग्य तो ब्राह्मणहै अच्छी तिथि करण मुहूर्त्त अच्छे(पुष्य-हस्त श्रवण अश्विनी) नक्षत्रमें उत्तर वा पूर्व श्रेष्ठ दिशामें पवित्र समान देशमें चौकोन चार बिलायंद अथवा चार हाथकी वेदी रचे, उसको गोवरसे लीप उसपर कुशा बिछावै पुष्पखीलैं रत्नादिसे देवताओंका पूजन कर ब्राह्मण वैद्योंका पूजन करै (जब शिष्यहो) पुनः शकुन ॥

ततोदूतनिमित्तशकुनमंगलानुलोम्येनातुरगृहमभिगम्योपविश्यातुरमभिपश्येत् स्पृशेत् पृच्छेच्च० । सु० सूत्र० अ० १०

अर्थ--जब दूतके साथ वैद्य जाय तौ निमित्त--सुन्दरगन्धादि शकुन--पक्षियोंकी चेष्टादि मंगल स्वस्तिक पूर्ण घटादि इनको विचारै फिर रोगीके पास जाय देखै छुवै और पूछै ॥

इन वाक्योंसे स्पष्टहै कि, सुश्रुत आदि महर्षिभी ज्योतिष शकुन ग्रह नक्षत्रादि अनुसार शुभाशुभ फल मानते थे, जब आपने इन ग्रंथोंको

प्रमाण माना है तौ मुहूर्त्तादि स्वयं सिद्धही हैं तिससे ग्रहादि फलका न मानना आपकी बड़ी भूल है वेदसे आगे लिखैंगे ॥❀

पृ० ७२ पं० ४ पुराणइतिहासप्रकरणम्।

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति ॥

यह गृह्यसूत्रादिका वचनहै जो ऐतरेय शतपथादि ब्राह्मण लिख आये हैं इन्होंके इतिहास पुराण कल्पगाथा और नाराशंसी यह पांच नाम हैं श्रीमद्भागवतादिका पुराण नाम नहीं ॥ ७२। २९

समीक्षा—नमस्कृत्यगुरुंशान्तंपुरस्कृत्यश्रुतेर्मतम्
तिरस्कृत्यचमन्दोक्तिं पुराणेकिंचिदुच्यते १

समीक्षा—स्वामीजीने पुराणोंके उड़ानेकी चेष्टा की परन्तु आपसे क्या पुराण अन्यथा किये जाते हैं सुनिये पुराण शब्द ऐतरेय शतपथादिका वाचक नहीं है

मध्याहुतयोहवा एतादेवानांयदनुशासनानिविद्यावाकोवाक्यमितिहासः पुराणङ्गाथानाराशꣳस्यः यएवं विद्वाननुशासनानि विद्यावाकोवाक्यमितिहासपुराणं गाथा नाराशंसीरित्यहरहः स्वाध्यायमधीतेइत्यादि शत० अ० ११ प्र० ३ ॥ पुनस्तत्रैव क्षीरोदनमाꣳसौदनाभ्याꣳ हवाएषदेवांस्तर्पयाति यएवंविद्वान्वाकोवाक्यमितिहासःपुराणमित्यहरहः स्वाध्यायमधीते त एनन्तृप्तास्तर्पयन्ति सर्वैः कामैः सर्वैर्भोगैः। शत० ॥ ११।५। ७।९

आशय यह है कि विद्या वाक् वाक्य इतिहास पुराण गाथा नाराशंसी इनका पढना अवश्य है जो इनको अध्ययन करते हैं देवता प्रसन्न होके उनके सब कार्य पूर्ण करते हैं ॥

सयथार्द्रैन्धाग्नेरभ्याहितस्यपृथग्घूमाविनिश्चरन्त्येवंवारेऽस्य महतोभूतस्यनिश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसइतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि श० ४ प्र० ब्रा० ४.

* भा० प्र० से इस प्रसंगमें कुछ करते न बना पुराणोंके विरोध बे पते लिखेहैं जिसका उत्तर धर्मदिवाकरमें दिया है।

भावार्थः- जिसप्रकारसे गीले इंधनके संयोगसे अग्निमें नानाविधि धूम प्रगट होते हैं इसीप्रकार उस परमात्माके ऋक्, यजु, साम, अथर्व, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान, अनुव्याख्यान यह सब श्वासभूत हैं ॥

इसमें इतिहासपुराणादि पांच नाम पृथक् २ ग्रहण कियेहैं तथा औरभी कहते हैं ।

सहोवाच,ऋग्वेद भगवोध्येमि यजुर्वेद ँसामवेदमाथर्वणंचतुर्थ मितिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदं पित्र्य ँराशिं दैवं निधिंवाको वाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्र विद्या ँसर्पदेवयजनविद्यामेतद्भगवोध्येमि ॥ छां० प्र० ७

नारद बोले ऋग्वेदको स्मरण करताहूं तथा साम, यजु, अथर्व वेदको स्मरण करताहूं (इतिहासपुराणं पंचमंवेदानांवेदं) और इतिहास पुराण पांचवां वेद पढ़ा है (पित्र्यं) श्राद्धकल्प (राशिं) गणितं दैवमुत्पातज्ञानम् जिससे देवताओंके किये हुए उत्पातका ज्ञान होताहै (निधिं) महाकालादि निधिशास्त्र (वाकोवाक्य) तर्कशास्त्र (एकायनं) नीतिशास्त्र (देवविद्यां) निरुक्तम् (ब्रह्मविद्याम्) ब्रह्मसम्बन्धी उपनिषद् विद्याकू (भूतविद्यां) भूततंत्रकू (क्षत्रविद्यां) धनुर्वेदकू (नक्षत्रविद्यां) ज्योतिषकू (सर्पदेवयजनविद्यां) सर्पविद्यागारुडिगन्धयुक्त नृत्यगीतादि वाद्य शिल्पज्ञानकू भी मैं स्मरण करताहूं ॥

देखिये इस छान्दोग्यके वाक्यसे कितनी विद्या सिद्ध होगई और यहांभी पुराण इनसे पृथक्ही ग्रहण कराहै और सुनिये ॥

अरेस्यमहतोभूतस्यनिश्वसितमेवैतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोथर्वांगिरसइतिहासः पुराण विद्या उपनिषदः श्लोका सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्ट ँहुतमाशितंपायितमय ञ्चलोकः परश्चलोकः सर्वाणिचभूतान्यस्यैवैतानिसर्वाणिनिश्व सितानि ॥ बृह० अ० ६ । ११

उस परमेश्वरके निश्वसित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवद, अथर्ववेद, इतिहास पुराणविद्या उपनिषद श्लोक सूत्र व्याख्यान अनुव्याख्यानहैं जिसमें कोई कथाप्रसंग होताहै सो इतिहास १ जिसमें सर्गादि जगतकी पूर्व अवस्थाका निरूपण होताहै सो पुराण २ उपासना और आत्मविद्याका

प्रतिपादक वाक्य है सो विद्या ३ उपास्य देवके रहस्यका नाम उपनिषद्है ४ जो श्लोकनामसे मंत्र कहे जातेहैं वे श्लोकहैं ५ जो संक्षिप्त अर्थका प्रतिपादक वाक्य है सो सूत्र है ६ जिस वाक्यमें तिसका विस्तार होताहै सो व्याख्यानहै और जिस वाक्यमें व्याख्यानको भी स्पष्ट किया जाय सो अनुव्याख्यानहै ॥

पुनः आश्वलायनसूत्रं अ० ३ पंचयज्ञप्रकरणम् ।

अथस्वाध्यायमधीयीतऋचोयजूꣳषिसामान्यथर्वांगिरसोब्राह्मणानिकल्पान्गाथानाराशꣳसीरितिहासपुराणानीत्यमृताहुतिभिर्यदृचोऽधीतेपयसः कुल्याअस्य पितॄन् स्वधाउपक्षरान्ति यद्यजूꣳषिघृतस्यकुल्यायत्सामानिमध्वःकुल्यायदथर्वांगिरसः सोमस्य कुल्यायद्ब्राह्मणानिकल्पान् गाथा नाराशꣳसीरिति हासपुराणानीत्यमृतस्यकुल्याःसयावन्मन्येततावदधीत्यैतयापरिदधातिनमोब्रह्मणे नमोस्त्वग्नये नमः पृथिव्यैनमओषधीभ्योनमोवाचेनमोवाचस्पतयेनमोविष्णवे महते करोमीति ॥

आशय यहहै कि जो ऋगादि चारों वेदोंको और ब्राह्मणादि ग्रंथोंको कल्प गाथादि सहित पढते हैं उनके पितरोंका स्वधासे अभिषेक होता है, ऋग्वेदके पढनेवालेके पितरोंकू दूधकी कुल्या, यजुर्वेदके पढनेवालोंके पितरोंको घृतकी कुल्या, सामके पढनेवालेके पितरोंकू मधुकी कुल्या, अथर्वाङ्गिरसके पढनेहारेके पितरोंकू सोमकी कुल्या, और ब्राह्मण कल्प नाराशंसी इतिहास पुराणके पाठ करनेवालेके पितरोंकू अमृतकी कुल्या प्राप्त होती है, इसकारण इनका पाठ करना, ईश्वर अग्नि पृथ्वी वाक्पति विष्णु देवको नमस्कार है ॥

और महाभाष्यमेंभी १ आह्निकमें शब्दप्रयोगविषयमें पुराणको पृथक् गिनाहै ॥

सप्तद्वीपावसुमती त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदाः सांगाः सरहस्याबहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेद एकविंशतिधाबह्वृच्यन्नवधाऽथर्वणो वेदो वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमित्येतावाञ्छब्दस्य प्रयोगविषयइति ।

सातद्वीप सहित पृथ्वी तीनों लोक शिक्षाकल्पादि अंगसहित चारों वेद (सरहस्याः) उपनिषद् एकसौ एक शाखा यजुर्वेदकी, सहस्र शाखा सामवेदकी, इक्कीस शाखा ऋग्वेदकी नौ शाखा अथर्ववेदकी (वाकोवाक्यम्,) तर्कादि इतिहास पुराण वैद्यक इनमें शब्दप्रयोग होताहै, यदि नाराशंसीका नामही पुराण होता तौ साङ्ग लिखकर फिर पुराण लिखनेकी क्या आवश्यकता थी, पूर्वोक्त ग्रंथोंके वाक्यसे यह बात सिद्धहै कि, ब्राह्मणभाग उपनिषद् सूत्रादिसे पृथक् ही कोई पुराण और इतिहास संज्ञावाले ग्रंथ हैं, यदि इतिहासका पुराण विशेषण मानो तो इतिहास पुँल्लिंग और पुराण नपुंसकलिंग है, सो पुल्लिंग और नपुसंकलिंगका विशेषण हो नहीं सक्ता, इससे यह विदित होताहै कि पुराणसे इतिहासभी कोई पृथक् ग्रंथ है, सो न्यायके भाष्यकार महर्षि वात्स्यायनजी चतुर्थ अध्याय प्रथम आह्निकके ६२ सूत्रपर जो कथन करते हैं सो आपके सामने दिखाया जाताहै, जिससे विदित हो जायगा कि ब्राह्मणादि भागसे अतिरिक्त कोई पुराणेतिहास संज्ञक ग्रंथहै ॥

समारोपणादात्मन्यप्रतिषेधः । न्या० अ० ४ आ० सू० ६२

(भाष्यम्) तत्र प्राजापत्यामिष्टिं निरूप्य तस्यां सार्ववेदसं हुत्वाऽऽत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेदितिश्रूयते तेन विजानीमः प्रजावित्तलोकैषणायाश्चव्युत्थाय भिक्षाचर्य्यं चरन्तीति, एषणाभ्यश्च व्युत्थितस्यपात्रचयान्तानि कर्म्माणि नोपपद्यन्ते इतिनाविशेषेणकर्तुः प्रयोजकफलं भवतीतिचातुराश्रम्य विधानाच्चेतिहासपुराणधर्मशास्त्रेष्वेकाश्रम्यानुपपत्तिः तदप्रमाणमितिचेन्न प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते तेवा खल्वेते अथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यवदन् ‘इतिहासपुराणं पंचमंवेदानांवेदइति’ तस्मादयुक्तमेतदप्रामाण्यमिति, अप्रमाणेचधर्मशास्त्रस्य प्राणभृतां व्यवहारलोपाल्लोकोच्छेदप्रसंगः दृष्टप्रवक्तृसामान्याच्चाप्रामाण्यानुपपत्तिः यएव मंत्रब्राह्मणस्यद्रष्टारः प्रवक्तारश्च तेखल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्यचेति विषयव्यवस्थापनाच्च यथाविषयं प्रामाण्यम्, अन्योमंत्रब्राह्मणस्य विषयोऽन्यश्चेतिहासपुराणधर्मशास्त्राणामिति, यज्ञो मंत्रब्राह्मणस्य लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य लोकव्यवहारव्यवस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयःतत्रैकेनसर्वंव्यवस्थाप्यत इति यथाविषयमेतानिप्रमाणानि इंद्रियादिवदिति.

(भाषा) प्राजापत्य इष्टिका निरूपण करके उसमें सार्ववेदसनाम याग करनेके अनन्तर अग्निको आत्मामें समारोपण करके ब्राह्मण संन्यासाश्रमको धारण करै ऐसी विधि श्रुतियोंमें लिखी है, इससे जाना जाता है कि प्रजावित्तस्वर्लोकादिकी इच्छासे निवृत्त हुएको यतिधर्मका आचरण करना उचितहै, और इसीकारण संन्यासीको पात्र चयान्तादि क्रियायें नहीं होती, इसहेतु यावत् कर्म मात्रके सभी अधिकारी नहीं हो सक्ते, किन्तु भिन्न भिन्न कर्मोंके भिन्न २ अधिकारी होतेहैं, और यदि यह कहो कि हम एकही कोई आश्रम मानेंगे, अनेक आश्रम न मानेंगे तब सभीका कर्माधिकार एकही होगा तो ऐसा नहीं हो सक्ता क्योंकि इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्रके ग्रंथोंमें अनेक आश्रमकी विधि लिखी लिखाई है, तब एकही आश्रम कैसे हो सक्ता है, नचेत एक कहो कि इतिहासादि ग्रंथोंका प्रमाणही नहीं मानते हैं, तौ यहभी नहीं हो सक्ता है क्योंकि प्रमाणभूत ब्राह्मण इतिहासादि ग्रंथोंके प्रमाणकी आज्ञा करताहै, तथा यह अथर्वाङ्गिरसभी इसका प्रमाण कहतेहैं कि इतिहासपुराण वेदोंमें पांचवाँ वेदहै, इससे इनका प्रमाण नहीं है ऐसा कहना महा अनुचितहै और धर्मशास्त्रका प्रमाण न करोगे तौ प्राणियोंका व्यवहार लोप होनेसे सृष्टिही उच्छिन्न होजायगी, और दोनोंके देखने और कथन करनेहारेभी तौ एकही हैं, जो मंत्रब्राह्मणके द्रष्टा वक्ता हैं, वही धर्मशास्त्र पुराण इतिहासके कहनेहारे हैं, फिर इनका अप्रमाण कैसे होसक्ताहै, तथा भिन्न भिन्न विषयोंके व्यवस्थापन करनेसे भी तो यथा विषय इनका प्रमाणहै, मंत्र ब्राह्मणका विषय और है और धर्मशास्त्र पुराण इतिहासादिका विषय और है, यज्ञ मन्त्र और ब्राह्मणका और लोक वृत्तान्त इतिहासपुराणका, तथा लोकवृत्तान्त व्यवस्थापन धर्मशास्त्रका विषयहै उनमेंसे एकसे सबही विषय नहीं व्यवस्थापित होते, इससे यथा विषयमें सबही प्रमाण इन्द्रियोंकी नाईं अर्थात् जैसे रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द इत्यादि सबही विषय किसी एकही इन्द्रीसे नहीं जाने जाते इसकारण इन पांचोंके क्रमसे नेत्र जिह्वा नासिका त्वक् कर्ण सभी पृथक् २ प्रमाण माने जाते हैं इत्यादि इससे स्पष्टरूपसे जान पडताहै कि यज्ञरूप प्रतिनियत असाधारण विषयोंके प्रतिपादक मंत्र ब्राह्मण ग्रंथोंसे अतिरिक्तही कोई पुराणेतिहास संज्ञक लोकवृत्तरूप असाधारण विषयोंका प्रतिपादक वाक्यकलाप है यदि ब्राह्मणभागोंकी इतिहास पुराण पदार्थता ऋषियोंको अभिमत होती तो वोह पुराणादिके प्रामाण्य व्यव-

स्थापन करनेकी इच्छासे उनके अप्रामाण्यकी शंका करके (प्रमाणभूत ब्राह्मण इतिहास पुराणोंकी अभ्यनुज्ञा करतेहैं) इत्यादि पूर्वोक्त बहुतसा कैसे कहते, और प्रयास करते ब्राह्मणको इतिहास पुराणसंज्ञक होनेमें वैसा कहना असंगत होता जिसकी बुद्धि कुछभी ठिकाने होगी और कैसाभी मूर्ख क्यों न हो पर अपने प्रमाणका साधक अपनेको कभी न कहेगा और सुनिये वेदमें भी इतिहास पुराणका वर्णन है।

सबृहतीं दिशमनुव्यचलत्[1] तमितिहासश्च पुराणञ्च गाथाश्च नाराशꣳसीश्चानुव्यचलन्[1] इतिहासस्यचवैसपुराणस्यच गाथानांच नाराशꣳसीनांच प्रियंधाम भवति य एवंवेद ॥ अथर्व० का० १५ प्र० ६ अनु० १ मं० १२

यह बात वेदसेभी स्पष्ट होगई अब इसके गोपथ ब्राह्मणका लेख देखिये।

एवमिमेसर्वेवेदानिर्मितास्सकल्पाःसरहस्याःसब्राह्मणाःसोपनिषत्काः सेतिहासाःसान्वाख्याताः सपुराणाःसस्वराः ससंस्काराःसनिरुक्ताःसानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवाक्यास्तेषां यज्ञमभिपद्यमानानां छिद्यते नामधेयं यज्ञमित्येवमाचक्षते (गोपथपूर्वभागः द्वितीयप्रपाठकः)

यदि ब्राह्मणग्रंथोंहीमें इतिहास पुराणका अन्तर्भाव होता तौ गोपथमें इस प्रकार कल्प ब्राह्मण उपनिषद् इतिहास पुराणादि पृथक् पृथक् कैसे लिखते इससे भी ब्राह्मणसे अतिरिक्तही पुराण इतिहास जाना जाताहै, इस कारण जो पुराणको इतिहासका विशेषण कहते हैं सो प्रमादी हैं क्योंकि सेतिहासाः सपुराणाः ऐसा पृथक् कहनाही इनमें भेद प्रतीति कराता है, जब इतिहाससहित और पुराणसहित ऐसे दो शब्द कहे तौ निःसंदेह यह दोनों पृथक्ही हैं, और सूत्रकारनेभी तौ अश्वमेधप्रकरणमें आठवें दिन इतिहास और नवमें दिन पुराण पाठ लिखाहै, अब यह तौ निश्चय होगया कि पुराण इतिहास आदि ब्राह्मणोंसे अतिरिक्तही

१ वह बडी दिशाको गया और उसके पीछे इतिहास पुराण गाथा और नाराशंसी चली जो ऐसा जानताहै वह इतिहास गाथा और नाराशंसीयोंका प्यारा घर बनता है। इसमेंभी इतिहास पुंलिङ्ग, पुराण नपुंसकलिंग है इससे विदित होगया कि पुराण भिन्नहै यही बहुत है।

कोई ग्रंथहै, परन्तु अब पुराण किसे कहते हैं और वोह कैसे बना उनके सुनने वा पढनेसे क्या लाभहै सो मनुस्मृति और महाभारतादि ग्रंथोंसे दिखलाते हैं, कि महाभारतमेंभी पुराण सुननेकी विधि लिखी है इससे भारतसे पृथक् पुराण हैं यह सिद्ध होताहै ॥

स्वाध्यायंश्रावयेत्पित्र्येधर्मशास्त्राणिचैवहि ।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणान्यखिलानिच ॥ मनु०

श्राद्धमें वेद धर्मशास्त्र आख्यान इतिहास पुराण सूत्रादि इन सबको सुनावै इससे विदित होता है कि, मनुस्मृति पुराण नहीं है किन्तु पुराण किसी और ग्रंथका नाम है और देखिये ।

पुराणमितिहासश्च तथाख्यानानि यानि च । महात्मनां च चरितं श्रोतव्यं नित्यमेव तत् ॥ महाभारते दानधर्मे—ये च भाष्य विदः केचिद्ये च व्याकरणे रताः ॥ अधीयंते पुराणानि धर्मशास्त्राण्यथापि च ॥ ९० अ० ॥

पुराण इतिहास आख्यान महात्माओंके चरित्र नित्य सुनने योग्य हैं १ कोई महाभाष्य जाननेवाले जो व्याकरणमें प्रीति रखते हैं तथा जो धर्मशास्त्र और पुराण भी पढते हैं फिर वाल्मीकिरामायण बालकाण्डमें राजा दशरथ और सुमन्त्रका सम्वाद इस प्रकारहै कि जिससे पुराण प्राचीनही प्रतीत होतेहैं ।

एतच्छ्रुत्वारहः सूतो राजानमिदमब्रवीत ॥ श्रूयतां यत्पुरावृत्तं पुराणेषु मया श्रुतम् ॥ वाल्मी० बालकाण्ड ॥

यह सुनकर सूतने एकान्तमें राजासे कहा सुनो महाराज! यह प्राचीन कथाहै जो पुराणोंमें मैंने सुनीहै इसके अनन्तर सम्पूर्ण रामजन्मका चरित्र जो भविष्य था सब राजाको सुनाया कि रामचंद्र तुम्हारे यहां उत्पन्न होंगे शृंगी ऋषिको बुलाइये और वैसाही हुआ ॥

एवं वेदे तथा सूत्रे इतिहासेन भारतम् ।
पुराणेन पुराणानि प्रोच्यन्ते नात्र संशयः ॥

इस प्रकार वेदोंमें सूत्रोंमें इतिहाससे भारतका ग्रहण और पुराणोंसे अष्टादश पुराणोंका ग्रहण होताहै और महाभारतमें लिखाहै कि—

अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ।
पश्चाद्भारतमाख्यानं चक्रे तदुपबृंहितम् ॥ महा०

अठारह पुराणोंको व्यासजी संकलित करके फिर महाभारतकी रचना करते हुए अब पुराणोंका लक्षण कथन करते हैं ॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ॥

सृष्टिकी उत्पत्ति प्रलय वंश मन्वन्तर वंशानुचरित्र यह पुराणके पांच लक्षण हैं, जिसमें यह पांच लक्षण हों वोह पुराण कहाताहै लिंग पुराणके प्रथम अध्यायसे विदित होताहै कि पुराणोंका बडा विस्तार था जो ब्रह्माजीने बनाये थे व्यासजीने उन विस्तृत ग्रंथोंको संक्षिप्त करके अठारह विभाग करदिये हैं, क्या यह कथायें व्यासजीसे पूर्व नथीं जो यह माना जाय कि पुराण नवीन हैं और स्वामीजीने ३२६ पृष्ठमें (कर्ता) यह शब्द लिखाहै जिसके माने बनानेवालेके हैं सो यह उनकी भूल है वहां (कृत्वा) शब्द है (जिसके अर्थ संक्षेपसे करके) के हैं इतिहासोंको महाभारतमें मिलादिया इस कारण इतिहास नाम महाभारतका होगयाहै इससे यह न समझना चाहिये कि पुराण आधुनिक हैं किन्तु जगत्की पूर्व[1] अवस्था कहनेसेही इनका पुराण नामहै व्यासजीने इन कथाओंका संग्रह किया है और उसमें जिस अवतार और जिस बातकी प्रधानता रक्खी है उसी नामपर उस पुराणका नाम रखदियाहै विना पुराणोंके और ऐसा कौनसा ग्रंथ है जिसमें सब पूर्व राजोंके चरित्र वर्णन हैं इसी कारण लिखाहै कि ॥

पुराणंमानवोधर्मः सांगोवेदश्चिकित्सितम् ।
आज्ञासिद्धानिचत्वारि नहन्तव्यानि हेतुभिः ॥ १ ॥ भा०

"पुराण मनुस्मृति साङ्गवेद चिकित्सा इन चारोंकी आज्ञा स्वतःसिद्धहै जब ब्राह्मणादि ग्रंथ पुराणोंकी महिमा कहते हैं तौ पुराणोंको क्यों न माने जहां सज्जन पुरुष बैठे हों उनमें कोई किसीकी बड़ाई करे तौ वोह बड़ाई किया हुआ बड़ाई करनेवालेसे अलग होताहै इसी प्रकार जब पुराणोंकी महिमा ब्राह्मणादि ग्रंथोंमें है तौ ब्राह्मणादिकोंसे अति-

---

१ भास्कर प्र० इस प्रकरणका आशयतक नहीं समझा असली बात छिपागये इतिहासका नाम पुराणका नाम

रिक्तही कोई पुराण ग्रंथहै यह स्पष्ट विदित होताहै और बुद्धिमानोंको मानना उचित है ॥

तिलकप्रकरणम् ।

स० पृ० ७३ पं० १९ उर्द्धपुण्ड्र त्रिपुण्ड्र तिलक कंठी माला धारण एकादशी आदि व्रत तीर्थ नारायण शिव भगवती गणेशादिके स्मरण करनेसे पापनाशक विश्वास यह विद्या पढने पढानेके विघ्नहैं ॥ ७४ । ११

समीक्षा—क्योंजी मस्तकपर तिलक लगानेमें कौनसी हानिहै इसके लगानेमें कौनसा पापहै तिलक बहुधा चन्दनका लगाते हैं जिससे चित्त प्रसन्न हो शीतलता आरोग्यता होतीहै, परन्तु तिलक लगाने में भेद इस कारण होगये कि जैसे आपने नमस्तेकी परिपाटी अपनी समाजमें चलाई है कि जहां नमस्ते किया कि दयानंदी मालूम होगये परमात्माजयति कहतेही इन्द्रमणिके पंथी विदित होने लगे, इसी प्रकार ऊर्ध्वपुण्ड्र त्रिपुण्ड्र आदि तिलकोंसे यह बात स्पष्ट होजाती है कि यह अमुक पुरुषके शिष्यहैं जैसे शेरके चिह्नसे गवर्नमेंटकी वस्तु सेना आदि विदित होतीहैं वैसेही यह चिह्नहैं और देवताके पूजन उपरान्त स्वयंभी तिलक धारण करै जिस देवताके अर्चन पूजन तिलकका जो विधान है वैसाही आप तिलक धारण करै जिससे बिना पूछे उसका उपासना वृत्तान्त विदित होजाय वाल्मीकिरा०अयो०का०सर्ग १६।९ रामचंद्रका तिलकलगाना लिखाहै ॥

वराहरुधिराभेण शुचिना च सुगंधिना । अनुलिप्तं परार्ध्येन चन्दनेन परंतपम् । अर्थ महाराज रामचंद्र सुगंधियुक्त लालचंदन लगायेथे चन्दनके गुण राजनिघंटुमें इस प्रकारहैं ॥

श्रीखंडं कृटुतिक्तशीतलगुणं स्वादेकषायं किय-
त्पित्तभ्रांतिवमिज्वरक्रिमितृषासंतापशांतिप्रदम् ।

कहकर वार्ते बनाई कथाभाग होनेसे ब्राह्मणका नाम पुराण बतायाहै गोपथमें परीक्षितकी कथा बताकर उसे पुराण बतायाहै हम अथर्ववेदमें परीक्षितकी कथा दिखातेहैं तब भा०प्र० के कर्ताके गलेमें उलटी आपडी अब वेदको भी पुराण मानो जनः(सभद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परीक्षितः अथर्वकां०२०पु०१२७राजा परीक्षितके राजमें सब मनुष्य आनन्द करतेथे, मं १०कहिये अब क्याकरोगे मिथ्या वातें बनानेसे काम नहीं चलता सदा यहां रहना नहीं है पंडितभीमसेनकी समान तुमभी अपनी आत्मा शुद्धकरो और तुम्हारे गुरु बाबा दयानंन्द नेभी तो यजुर्वेद आ० १२ मं० ४ 'वामदेव्यंसाम' इसका अर्थ वामदेव ऋषिका जाना वा पढाया साम कियाहै तो बामदेवके पीछे यह मंत्र बनाया पहले और आपके मतमें तो यजुर्वेद पुराणही ठहरैगा और गुरुघंटालके मतमें वामदेवके पीछेका चलो भीमसेनजीके पीछे छोटे मोटे स्वामी आपभी बनबैठे पर इतने परभी दयानन्दी पूर्ण श्रद्धा ग्रंथोंकी नहीं करते ।

वृष्यं वक्ररुजापहं प्रतनुते कीर्तिं तनोर्देहिनां
लिप्तं सुतमनोजसिंधुरमदारंभातिसंरंभदम् ॥ १ ॥
वेट्टचंदनमतीव शीतलं दाहपित्तशमनं ज्वरापहम् ।
छर्दिमोहतृषिकुष्ठतैमिरोत्कासरक्तशमनं च तिक्तकम् ॥ २ ॥

चंदनके गुण यह हैं कटु तिक्त शितल स्वादिष्ठ कसैलाहै और पित्त भ्रांति वमन ज्वर गरमी कृमि तृषा संताप इनकी शान्ति करनेवाला वृष्य मुखरोगहारक देहमें लगानेसें कान्तिका देनेवाला और सुगंधि करनेहारा है तथा रुचिकारक है १ मलयागिरिके निकटके पर्वतोंपर जो चंदन होताहै उसे वेट्ट कहते हैं वोह चंदन अत्यन्त शीतल है दाह पित्त ज्वरका शान्तिकारक व मनमोहन तृषा कुष्ठ तिमिर कास रक्तदोषका शमन करनेहारा और तिक्तभी है आप तिलक लगाना निषेध करते हैं देखिये इस विषयमें मनुजी लिखते हैं ॥

मंगलाचारयुक्तःस्यात्प्रयतात्माजितेन्द्रियः ।
जपेच्चजुहुयाच्चैवनित्यमग्निमतन्द्रितः ॥ १४५ ॥
मंगलाचारयुक्तानांनित्यञ्च प्रयतात्मनाम् ।
जपतांजुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते ॥ १४६ ॥

चंदन रोली आदिका लगाना मंगल है गुरुसेवा आचार है इन दोनोंसे युक्त हो तथा बाहरी भीतरी शौचसे युक्त जितेन्द्रिय रहै गायत्रीआदिका जप और होमको नित्य आलस्यरहित होकर करै ॥१४५॥ चंदन आदि लगाने गुरुसेवा करने जितेन्द्रिय रहने गायत्री जप और हवन करनेसे दैवी मानुषी उपद्रव नहीं होतेहैं ॥ १४६ ॥ मनु–अ० ४ त्र्यायुषंजमदग्ने० इसयजु० अ०३ मं० ६२ से यज्ञकी विभूति लगाते है.

यदि स्वामीजी चंदन लगाते होते तौ बुद्धिको भ्रांति न होती न मगज़को इतनी गरमी चढ़ती पर आपके चेले वार्षिकोत्सवमें खूब चंदनलगातेहैं यह बडी विपरीत करतेहैं परन्तु एक दिन लगानेसे बुद्धि शुद्ध नहीं होती होय कहांसे उस एक दिनमें भी उसमें बहुतेरी केशर डाल देते हैं जिससे बुद्धि ज्यों की त्यों रहती है और जब गणेश शिव देवी आदि नाम आप ईश्वरके लिख चुके हैं तौ क्या इन नामोंसे पाप दूर न होंगे ईश्वरका नामही पाप दूर न करैगा तो क्या आपके कल्पित

ग्रंथ दूर करेंगे इसकी विशेष महिमा नाम तीर्थ और व्रत तथा देव प्रकरणमें लिखेंगे जिस प्रकारसे नामादि जपनेसे मनुष्योंके पाप दूर होतेहैं

स० पृ० ७२ पं० १४ तुम्हारा मत क्या है (उत्तर) हमारा मत वेदहै जो जो वेदमें करने और छोडनेकी शिक्षा की है उस उसका हम यथावत् करना छोडना मानते हैं॥ ७३। ५

समीक्षा–क्या जो कुछ आपने सत्यार्थप्रकाशमें लिखाहै उसमें आपने सब वेदहीके मंत्र लिखे हैं जब आपका मत वेदही है तौ क्यों चरक सुश्रुत स्मृति उपनिषदादिमें घुसते हो वेदहीके मंत्र सब लिखे होते कोई यज्ञ किया होता तौ जानते कि तुम्हारा मत वेद है वेदमें आपके यही लिखा होगा कि संन्यासी रुपये जोडे नफेसेपुस्तकें वेचे दुशाला ओढे॥

इति श्रीदयानंदतिमिरभास्करेसत्यार्थप्रकाशान्तर्गततृतीयसमुल्लासस्य खंडनं सम्पूर्णम्॥

श्रीगणेशाय नमः।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतचतुर्थसमुल्लासस्य खंडनम्।

समावर्तनविवाहप्रकरणम्।

स० पृ० ७८ पं० १८

असपिंडा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥ मनु० ३। ५

जो कन्या माताके उसकी छः पीढियोंमें न हो और पिताके गोत्रकी न हो उस्से विवाह करना योग्य है इसका प्रयोजन यह है कि–

(परोक्षप्रिया इव हि देवाःप्रत्यक्षद्विषः)

यह निश्चित बात है कि जैसे परोक्ष पदार्थमें प्रीति होतीहै वैसी प्रत्यक्षमें नहीं जैसे किसीने मिश्रीके गुण सुनेहों और वोह खाई नहो-उसका मन उसीमें लगा रहताहै जैसे किसी परोक्ष वस्तुकी प्रशंसा सुनकर मिलनेकी उत्कट इच्छा होतीहै वैसेही दूरस्थ अर्थात् जो अपने गोत्र वा माताके कुलमें निकट सम्बन्धकी न हो उसी कन्यासे वरका विवाह होना चाहिये निकट और दूर विवाह करनेमें यह गुण है १ जो बालक बाल्यअवस्थासे निकट रहतेहैं परस्पर क्रीडा लड़ाई और

प्रेम करते एकदूसरेके गुणदोष स्वभाव वा बाल्यावस्थाके विपरीत आचरण जान्ते और जो नंगेभी एकदूसरेको देखतेहैं उनका परस्पर विवाह होनेसे प्रेम कभी नहीं होसक्ता २ दूसरा जैसे पानीमें पानी मिलनेसे विलक्षण गुण नहीं होता वैसे एकगोत्र पितृ वा मातृकुलमें विवाह होनेमें धातुओंके अदलबदल नहीं होनेसे उन्नति नहीं होती, ३ तीसरे जैसे दूधमें शुंठयादि औषधियोंके योग होनेसे उत्तमता होतीहै वैसेही भिन्नगोत्र मातृपितृ कुलसे पृथक् वर्तमान स्त्रीपुरुषोंका विवाह उत्तमहै ४ जैसे एकदेशमें रोगी हो वह दूसरे देशमें वायु और खानपानके बदलनेसे रोगरहित होताहै वैसेही दूरदेशस्थ विवाह होना उत्तम है ५ निकट संबंध करनेसे एकदूसरेके निकट होनेमें सुखदुःखका भान और विरोध होनाभी संभवहै और दूरदेशके विवाहमें दूर २ प्रेमकी डोरी लम्बी बढजाती है ६ छठे दूरदूर देशमें वर्तमान और पदार्थोंकी प्राप्तिभी दूर संबंध होनेमें सहजतासे हो सक्तीहै धोरे होनेमें नहीं इसलिये (दुहिता दुर्हिता दूरेहिता भवतीति निरुक्त०) कन्याका नाम दुहिता इसकारणसे है कि इसका विवाह दूर देशमें होनेसे हितकारी होताहै ७ कन्याके पितृकुलमें दारिद्र होनेकाभी संभवहै क्योंकि जब जब कन्या पितृ कुलमें आवैगी तबतक इसको कुछ न कुछ देनाही होगा ८ आठवाँ कोई निकटसे एकदूसरेको अपने पितृकुलके सहायका घमंड और जब कुछभी दोनोंमें वैमनस्य होगा तब स्त्री झटही पिताके कुलमें चली जायगी एकदूसरेकी निन्दाभी अधिक होगी और विरोध क्योंकि प्रायः स्त्रियोंका स्वभाव तीक्ष्ण और मृदु होताहै इत्यादि कारणोंसे पिताके एकगोत्र माताकी छः पीढी और समीप देशमें विवाह करना अच्छा नहीं ॥ ७९ । १८

समीक्षा—वाह अच्छा तात्पर्य निकाला गोत्रके अर्थ आपने धोरेके किये दूर देशमें विवाह करै दूर वस्तुमें प्रीति होतीहै प्रत्यक्षमें नहीं तौ यदि वोह दूरहो और पितृकुल वा मातृकुलकी लड़की हो उससे विवाह करले, धोरे नहोनी चाहिये, तौ दूरमें होनेसे आप सम्बन्धीभाई बहनके विवाहमें भी अनुमति दे देंगे, जैसा कि यवनोंमें होता है और दूरवस्तुमें प्रीति होगी धोरेमें नहोगी तौ जब वोह दूरकी स्त्री धोरे आई तौ फिर वोह दूर कहां रही और स्त्रीपुरुषका संग होते ही प्रीति दूर होजानी चाहिये सो ऐसा देखनेमें नहीं आता, किन्तु

निकट रहनेसे तौ प्रीति अधिक बढती है, इस श्लोकमें आप भूल रहेहैं आचार्योंने सात पीढीका त्याग कियाहै आप छः पीढीका त्याग लिखते हैं और जब कि दूर देशकाही अभिप्रायहै तौ छः पीढीका आपने त्याग क्यों किया, आप यहां धर्मशास्त्रकी मर्यादा मेटतेहैं सुनिये माताका कुल तौ ननसाल होती है और पितृकुलके लड़के लडकियोंका परस्पर भगिनीभाईका सम्बन्ध होताहै । इसकारण वहां विवाह वर्जितहै इसीप्रकार अपने गोत्रमेंभी विवाह नहीं होता, क्योंकि जिनका गोत्र एक है वोह सब एक ऋषिके सन्तान वा शिष्य होनेसे भाई भगिनीवतहैं, जो अपने संबन्धी हैं चाहै सहस्त्रकोश क्यों नहों धोरे और अपने कहलाते हैं जिनसे संबंध नहीं वोह धोरेभी दूरहीहैं स्वामीजीने तौ यहां यवनोंकोभी छेक दिया, जो आप गोत्र और माताकुलका अर्थ धोरेका करते हैं आपको तौ विवाहकीभी आवश्यकता नहीं और जाति कर्मसे मान्ते हो फिर क्यों ऐसा अंड बंड कथनकर दिया फिर जो आपने लिखांकि (निकट और दूरके विवाह के यह गुण हैं) यह भ्रांतिसेही कहाहै क्योंकि गुण तौ आपने दूरकेही लिखे धोरेके तौ दोष बताये दोनोंमें आपका गुणशब्द नहीं घटसक्ता दूसरे जो बाल्यावस्थासे एकसाथ रहते हैं उनमें तौ प्रीति अधिक देखी जातीहै, और बाल्यावस्थाके साथी एकदूसरेका मर्मभी जान्ते और परस्पर नमते रहते हैं और लडके लडकी ऐसे कम देखनेमें आते हैं जो साथ बालकपनमें खेलेहों, और फिर उनका विवाह हुआहो, क्योंकि लड़कोंके साथ लड़कियोंके खेलनेकी रीति नहीं है और फिरभी कन्या शीघ्र युवावस्थाको प्राप्त होतीहैं, और बालक अधिक कालमें युवा होते हैं इसकारण बराबरकी अवस्थाकाभी व्याह कम होताहै जहां होताहै उसका कारण लोभहै ॥

तीसरे मातृकुलमें विवाह होनेसे धातुओंका अदलबदल न होनेसे उन्नति नहीं होती यहभी आपका कथन भ्रम मात्रहै, क्योंकि धातुओंके तो अदलबदलसे रोग उत्पन्न होता है उन्नति कैसी, उस्से तौ हानि होती है तौ सब कुलोंमें बडी भारी उन्नति होती, सो भी सबमें देखनेमें नहीं आती और यदि दूसरे कुलकी धातु निकम्मी हुई तौ हानिही हुई, उन्नति कहां इस कारण मातृकुल धातुकी उन्नतिके अर्थ त्याग न किया है यंह आपका महाभ्रम है ४ (चौथे रोगी दूर देशमें जानेसे जैसे नीरोग होजाता है वैसेही विवाह उत्तम है) धन्यहै अच्छा कथन किया

सुनिये तौ यदि रोगी उस देशमें जाय जहांकी वायु जल शुद्ध हो तौ आराम हो जायगा परन्तु जहां की वायु और जल शुद्ध न हो वहां तौ मरही जायगा क्योंकि अच्छा हृष्ट पुष्टभी मनुष्य कहीं दूर जाय तौ पानी खराब होनेसे वोह बीमार होजाता है, विवाहमें तौ कन्याही अपने घरसे जाती है क्या वह बीमार होती है जो दूर देशमें जानेसे आराम होजाता है या दूलह और वराती जो बीमार होते हैं वो बरातमें जाते हैं, दूर देशसे शायद आपका मतलब इंग्लिस्तानका होगा या और किसी विलायतका, क्योंकि समुद्रकी यात्रासेही दीर्घ कालका रोगी आरोग्य होता है, धन्य है अच्छी फजूल खर्ची बताई, और यदि पश्चिमोत्तर देशकी कन्या गंगापार जायँ तौ पानी खारी मिलनेसे बहुत दिनोंतक दुःख उठाना पडता है, बहुधा बीमार हो जाती हैं और बहुत दिनोंमें उनका स्वभाव समतापर आता है और बीस पच्चीस कोशतक तौ वायुभी नहीं बदलती आपको यह लिख देना उचित था, कि इतनी दूर और अमुक देशमें विवाह करना चाहिये, यदि वहां नहो तौ रहो ब्रह्मचारी क्योंकि आपके मतमें विवाह वायुके अदलबदलके अर्थ हैं तौ जो रोगी हो वोह विवाह करै, जो विषय करनेसे और भी दुर्बल होकर शीघ्रहीं जीवनसे हाथ धो बैठे यह आपने क्यों झगडा उठाया वायुकी शुद्धि तौ हवनसेही होजाती ५ पांचवें निकट व्याह होनेसे दुःख सुखका भान विरोध होनाभी संभवहै यहभी कहना मिथ्याही है क्या यहां आप तारविद्या भूलगये पांच मिनटमें तारद्वारा चाहे जहां सुखदुःख की खबर भेजदी जाती है सुखदुःखका भान तौ परदेशमेंभी होसक्ताहै किन्तु जो निकट विवाह होगा तो सुखदुःखमें सहायता शीघ्र हो सक्ती है, दूरमें खर्चभी पड़ता है और समयपर सहायताभी नहीं प्राप्त होती और विरोध क्या दूर देशके विवाहमें नहीं होता है जो कुपात्र होगा वोह धोरे दूर दोनोंमें विरोध करैगा, किन्तु जो दूर विवाह होता है उसमें बहुधा विरोध रहता है और कारण यहहै वोह तौ कहते हैं कि हम अभी लेजायँगे लड़कीके माता पिता कहते हैं तीजो बीते भेजैंगे, कन्या भी दूर घर होनेसे दो चार वर्षको माता पिताके दर्शनसे वंचित रहती है, इस कारण मातापिताकाही ध्यान लगाये रहती हैयदि धोरे घर हुआ तौ तकरारही नहीं चाहै जब बुलालो चाहै जब लेजाओ दूर देशमें कन्याको चाहै जितना दुःखहो कोई पूछनेवालाही नहीं, निकट होनेसे अपने नगरवासियों तथा लड़कीके पिता आदिके

संकोचसे अधिक दुःख नहीं देसक्ते तथा वायु जल अपने अनुसार होनेसे शरीरमें विषमताभी नहीं आती ६ छठे दूर देशमें विवाह होनेसे पदार्थोंकी प्राप्ति सहजमें हो सक्ती है, यहभी दयानंदजीका कथन मिथ्याही है क्या बिना पैसे कोई वस्तु प्राप्त हो सक्ती है जिसका व्याह हुआ है उसकोभी बिना दाम कुछ वस्तु प्राप्त नहीं हो सक्ती यदि एक दो बार मुफ्तमें आगई तौ बारबार कौन भेज सक्ताहै. कन्याका पिता मुफ्तमें कुछ मँगाही नहीं सक्ता और संबंधियोंका सौदा देरमेंभी आता है और यदि एक पैसेका पोस्ट कार्ड भेज दीजिये छठे दिन कलकत्ते बंबई आदिसे चाहे जो कुछ मंगा लीजिये, अथवा वेल्यूपेबिल मँगाकर रुपयाभी यहीं जमाकर वस्तुग्रहण कर लीजिये, और दूर व्याहनेसेही कन्याको दुहिता नहीं कहते हैं किन्तु यह अर्थ है कि कन्या दूर रहकरभी हितही करती है पराये घरकाही धन होती है इसीकारण इसे दुहिता कहते हैं अथवा अपने पाससे जो दूर अर्थात् पृथक् कर दी जाय चाहै धोरे हो या दूर, दूरही है ७ सप्तम पितृकुलमें कन्या आवैगी तौ दरिद्र करेगी क्योंकि कुछ न कुछ देनाही होगा यहभी भ्रममात्र है और इसका आशयभी कुछ अस्तव्यस्तसा विदित होता है कन्याको तौ जहाँ जायगी वहीं कुछ न कुछ देनाही पडेगा कोई कन्याको घर तौ देही नहीं देगा आपका आशय ऐसा विदित होता है कि कन्याको बहुत कुछ देना परन्तु फिर पितृकुलवालोंपर दया आगई और कुलोंको कोई लूटले तो भी जी न दुखे कन्याको तौ पिता माता दूर धोरे क्या शक्ति अनुसार सबही अवस्थामें देते रहते हैं ८ आठवें घमंड हो जायगा लडाई होगी कन्या माके घर चली जायगी स्त्रियोंका स्वभाव तीक्ष्ण मृदु होताहै इत्यादि यहभी विरुद्धही लेखहै भला यह तौ कहिये कि सहायता पाकर घमंड किसे नहीं होता और जिससे सहाय मिले उससे तो कोई लड़ता नहीं फिर वे परस्पर सहायक रिश्तेदार क्यों लड़ैंगे सहायता बडी चीज है यदि आपको सहायता न मिलती तौ सत्यार्थप्रकाशही क्यों बनाते और जो मनमें आता वो ही अंडबंड लिख डालते और लड़ाईवालोंको धोरे दूर सब जगह क्लेशही अच्छा लगता है और जब छोटी उमरकी स्त्री घरसे निकलती हैं तो जिनके मातापिताके घर १०० या २०० मीलपर हैं वे रेलमें बैठकर चलदेती हैं और मार्गमें भ्रष्टहोती हुई घर पहुँचती हैं और उनके दुष्कर्मोंकी ओर कोई नहीं ध्यान

करता यह बात देखी हुईहै और एक नगरमें विवाह होनेसे व्यग्र चित्तहो यदिपिताके घर जांय तौ थोडीही देरमें पहुँचनेके कारण दुष्कर्मसे बचसक्ती हैं, तथा अधिक संकोचसे अनिष्टसे बची रहती हैं और स्वभावतौ जिसका जैसाहै वोह बदलताही नहीं चाहे धोरे व्याहहो या दूर मेरा इस कहनेसे यह प्रयोजन नहीं कि परदेशमें विवाह ही मतकरो चाहै जहाँ करो किन्तु मातृ पितृ कुल सपिंड होनेका कारण धर्मशास्त्रमें वर्जितकिये हैं, क्योंकि जो सपिंड हैं उनमें विवाह नहीं हो सक्ता (जिनका एक पिंड हो अर्थात् एक कुल हो उसे सपिंड कहते हैं) आगे पितृ कर्ममेंभी इसका वर्णन होगा, इसमें हम स्वामीजीकोभी दोष नहीं देते क्योंकि वे विचारे संन्यासी थे इन बातोंको क्या समझैं पर तौभी चेलोंको बहकानेको यही बहुत है स्वामीजीके तौ कोई बेटाबेटीभी नहीं फिर इस विषयमें क्यों हस्तक्षेप किया ?

और (परोक्षप्रिया इवहि देवाः प्रत्यक्षद्विषः) इसके अर्थमें तौ आपने वो ही मसलकी है कि कहींकी ईंट कहींका रोडा भानमतीने कुनवा जोड़ा कहाँका प्रसंग कहाँ लिख बैठे यह देवताप्रकरणकी बातहै कि देवता परोक्षप्रियहै प्रत्यक्षसे द्वेष करतेहैं इसी कारण ॥

"तंवा एतं वरणंसन्तं वरुण इत्याचक्षते" 'तंवाएतं मुच्युं सन्तं मृत्युरित्याचक्षते' 'तंवाएतमंगरसंसन्तमंगिराइत्याचक्षते' गोपथे 'अग्निर्ह वैतमग्निरित्याचक्षते' शतपथे 'तत् रन्द्रो मखवान् भवन्मखवान्ह वैतं मघवानित्याचक्षते परोक्षं परोक्षकामाहि देवाः श० १४ । १ । १ । १३

गोपथ ब्राह्मणके प्र० प्रपा० कारि० ७ में लिखाहै कि देवता परोक्षप्रियहैं प्रत्यक्षसे द्वेष करतेहैं इस कारण वरण शब्दको वरुण मुच्युको मृत्यु और अंगरसको अंगिरा कहते हैं शतपथमें लिखा है देवता परोक्षकामा है इसकारण परोक्षमें अग्रिको अग्नि अश्वुको अश्व और मखवान्को मघवान् कहतेहैं इत्यादि, दयानंदजीने विवाहमें प्रसंगलगादिया ॥

स० पृ० ८१ पं० ६ सोलहवें वर्षसे लेकर चौबीस वर्षतक कन्या और पच्चीस वर्षसे लेकर ४८ वर्षतक पुरुषका विवाह उत्तमहै सोलहवें और पच्चीसमें विवाह करै तो निकृष्ट अठारह वीसकी स्त्री तीसपैंतीस चालीस वर्षके पुरुषका विवाह मध्यग है इसमें विद्याभ्यास अधिक हो जाता है (प्रश्न) ॥

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षाच रोहिणी।
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥
माताचैव पितातस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैवच।
सर्वे ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥

यह श्लोक पाराशरी और शीघ्रबोधमें लिखेहैं अर्थ यह कि, कन्याकी आठवें वर्ष गौरी नवमें वर्ष रोहिणी दशवें वर्ष कन्या और उसके आगे रजस्वला संज्ञा होजाती है १ दशवें वर्षतक विवाह न करके रजस्वला कन्याको माता पिता और उसका बडा भाई देखें तौ यह तीनों नरकमें गिरतेहैं पृ० ८२ पं० १४ आठवें नौमें वर्षमें विवाह करना निष्फलहै जैसे आठवें वर्षकी कन्यामें पुत्र होना असंभव है वैसेही गौरी रोहिणी आदि नाम देनाभी असंभवहै गौरी आदिनाम पार्वती रोहिणी वसुदेवकी स्त्रीका है उसे तुम माताकी तरह मान्ते हो फिर विवाह कैसे संभवहै इसलिये इसका प्रमाण छोड़ वेदोंका प्रमाण किया करो ८२।११ फिर पृ० ८३ पं० ८ में लिखते हैं ॥

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ॥ ऊर्ध्वंतुकालादेतस्माद्विंदेत सदृशं पतिम् ॥ अ० ९ श्लो० ९०

अर्थ–कन्या रजोदर्शन हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पतिकी खोजकरके अपने पतिको प्राप्त होवै जब प्रतिमास रजोदर्शन होता है तौ तीनवर्षमें छत्तीस बार रजस्वलाहुई पश्चात् विवाह करना योग्य है गुणहीनके साथ न करै चाहै क्वारीही रहै ॥ ८४।९

स० पृ० ८२ पं० २१ सुश्रुतमें भी लिखा है ॥

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थःस विपद्यते ॥
जातोवा न चिरंजीवेज्जीवेद्वादुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायांगर्भाधानं न कारयेत्॥अ०१०४७।४८

सोलह वर्षसे न्यूनअवस्थावाली स्त्रीमें २५ वर्षसे न्यून पुरुष जो गर्भको स्थापनकरै तौ वोह कुक्षिमें प्राप्तहुआ गर्भ विपत्तिको प्राप्त होता है जो उत्पन्न होतौ चिरकालतक न जीवै और जीवै तौ दुर्बलेन्द्रिय हो इस कारण अति बाल्यावस्थामें गर्भस्थापन न करै (८४।१९) पुनःपृ०८३ पं०१९लड़-

कालड़कीके आधीन विवाह होना उत्तम है यदि माता पिता करैं तो लड़का लड़कीसे सम्मति करले उनकी प्रसन्नताके विना न होनाचाहिये ८९ । ४

पृ० ८९ पं० २२ जबतक ऋषि मुनि राजा आर्य्य लोग ब्रह्मचर्य्यसे विद्या पढके स्वयंवर विवाह करतेथे तबतक इसदेशकी उन्नतिथी जबसे बाल्यावस्थामें पराधीन विवाह अर्थात् माता पिताके आधीन होने लगा-तबसे देशकी हानि हुई (८७ । ६) पृ० ९२ पं० २६ कन्या और वरका विवाहके पूर्व एकान्तमें मेलनहोना चाहिये क्योंकि युवावस्थामें स्त्री पुरुषका एकान्त वास दूषणकारकहै परन्तु जब एक वर्ष वा छः महीने विद्या पूर्ण वा ब्रह्मचर्याश्रमके रह जायँ तौ उन कन्या और कुमारोंके फोटोग्राफ उतारके दोनोंके अध्यापक अध्यापिकाओंके पास भेजदेवैं जिस २ का रूप मिलजाय उसउसके इतिहास अर्थात् जन्मसे लेके उस दिनपर्यंत जन्म चरित्रका पुस्तकहो उसको मँगाकर अध्यापक लोग देखैं जब दोनोंके गुणकर्म स्वभाव सदृश हों तब जिस २ के साथ जिस जिसका विवाह होना योग्य समझैं उस उस पुरुष और कन्याका प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और वरके हाथमें दें और उनकी भी सम्मति लें दोनों अध्यापकोंके सामने विवाह करना चाहै तौ वही नहीं तौ कन्याके माता पिताके घरमें हो जब वे सम्मत हों तब उनका अध्यापकों वा माता पितादि भद्र पुरुषोंके सामने उन दोनोंकी आपसमें बातचीत कराना शास्त्रार्थ कराना और जो कुछ वे गुप्तव्यवहार पूछे सोभी सभामें लिखके एक दूसरेके हाथमें देकर प्रश्नोत्तर करलेवैं तथा खानपानका उत्तम प्रबन्ध होना चाहिये जिससे उनका शरीर जो विद्याध्ययनादिसे दुर्बल होरहाहै पुष्टहोजाय पश्चात् जिस दिन कन्या रजस्वला होकर जब शुद्ध हो तब वेदी मंडप रचै अनेक सुगंधित द्रव्य घृतादिका होम विद्वान् पुरुष और स्त्रीका यथायोग्य सत्कार करैं फिर जिस दिन ऋतुदानदेना योग्य समझैं, उसीदिन संस्कारविधि पुस्तकस्थ विधिके अनुसार सब कर्म करके मध्यरात्रि वा दशबजे अति प्रसन्नतासे सबके सामने पाणिग्रहणपूर्वक विवाहकी विधिको पूराकर एकान्त सेवनकरे, पुरुष वीर्य स्थापन और स्त्री वीर्याकर्षणकी जो विधि है उसीके अनुसार दोनों करैं पुनः पृ० ९३ पं० २५ जब वीर्यका गर्भाशय में गिरनेका समय हो उस समय स्त्री और पुरुष दोनों स्थिर और नासिकाके सामने नासिका नेत्रके सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्न चित्त रहैं डिगैंनहीं पुरुषअपने शरीरको ढीला छोडैं और

स्त्री वीर्य प्राप्तिके समय अपान वायुको ऊपर खींचैं, योनिको ऊपर संकोचकर वीर्यका ऊपर आकर्षण करके गर्भाशयमें स्थित करै, पश्चात् दोनों शुद्धजलसे स्नानकरैं सोंठ केशर असगंध छोटी इलायची सालम मिश्रीमिला दूध पीकर अलग २ सो रहैं यह बात रहस्यकी है इतनेहीमें समग्र बातें समझलेनी चाहिये, विशेषलिखना उचित नहीं जब गर्भ स्थित होजाय तब पृ० ९४ पं० १७ गर्भमें दो संस्कार एक चौथे महीनेमें पुंसवन आठवें महीनेमें सीमन्तोन्नयनकरै पृ० ९४ पं० २५ ॥ संतानके कानमें पिता (वेदोसीति, अर्थात् तेरा नाम वेदहै सुनाकर घृत और शहद्को लेकर सोनेकी शलाकासे जीभपर ओम् अक्षर लिखकर मधु और घृतको उसी शलाकासे चटवावै पुनः पृ०९५ पं० २ पुष्टिके अर्थ स्त्री अनेक प्रकारके उत्तम भोजन करै और योनिसंकोचादिभी करै संतानके दूध पीनेके लिये कोई धाय रक्खै जो बालकको दूध पिलाया करै स्त्री दूधबंद्करनेके अर्थ स्तनके अग्रभागपर ऐसा लेपकरै जिससे दूध स्त्रवित नहो और नामकरणादि संस्कृत विधिकी रीतिसे यथाकाल करता जाय ॥ १०९४ पं० २३ से ९७ तक.

समीक्षा–ऊपर लिखी हुई सत्यार्थप्रकाशकी वार्ताओंका सिद्धान्त यह है कि २५ वर्षमें कन्या और अडतालीस वर्षमें पति विवाह करै सो विवाह क्या वस्तु है इस वार्ताको लिखकर पश्चात् इसके, स्वामिजीके सब वाक्योंका खंडन करेंगे प्रथम विवाहकी परिभाषा कहते हैं ॥

(भार्यात्वसंपादकग्रहणम्) जिसके भरण पोषणका भार सदैवको शिरपर लिया जाय उसका जो भाव उसको भार्यात्व कहते हैं और संपादन अर्थात् उक्त भावका उत्पन्न करनेवाला ऐसे जो ग्रहण अर्थात् ज्ञान वा भार्याका भाव जिस ज्ञानसे उत्पन्न होवै उसका नाम विवाहहै (तस्य स्वीकाररूपं ज्ञानं विशेषस्य समवायविषयः तयोर्भेदात् वरकन्ययोः विवाहकर्तृत्वकर्मत्वेति) अर्थात् भार्याका स्वीकार रूप जो बिशेष ज्ञानहै तिसमें समवाय और विषय दो प्रकार के भेद होनेसे विवाहमें वरका कर्तृत्व और कन्याका कर्मत्व स्पष्ट प्रतीत होता है इससे विवाह शब्दके कहनेसे यह बात आती है कि वर और कन्याके विशेष संयोगका भाव मनमें उदय होता है, विशेष संयोग कहनेका भाव यह है कि पुरुष स्त्रीका आत्मा मन शरीरके भरण पोषण रक्षा आदिका भार अपने ऊपर लेना स्वीकार करताहै, इस प्रकारके संयोगको छोड़ और किसी

प्रकारके संयोगको विवाह नहीं कह सक्तेहैं, इस प्रकारके संयोगका अविच्छेद संबंध होताहै अब वोह विवाह कितनी अवस्थामें होना चाहिये सो निर्णय किया जाताहै, अंगिरा ऋषिनेभी (अष्टवर्षाभवेद्गौरीति) यही श्लोक लिखाहै जो पराशरजीने लिखाहै, यह केवल संज्ञामात्र बांधी है कि आठ वर्षकी जो कन्याहो उसे गौरी जो नव वर्षकी बालिका हो उसकी संज्ञा रोहिणी, जो दश वर्षकी हो उसका नाम कन्या होता है इससे आगे रजस्वलाका समयहै जो बहुधा द्वादश वर्षकी अवस्थातक हो जाताहै और जो स्वामीजीने यह लिखा है कि गौरीपार्वतीका नाम है सो क्या पार्वती सदा आठही वर्षकी रहती है और रोहिणी नौही वर्षकी रहती है और जो नामके अनुसारही अर्थ करते हो तौ चंपा भागवती आदि नामानुसारही कर्मभी होने चाहिये, तुम्हारा नाम दयानंद था, तुम्हें सदा आनंद रहना चाहिये था, फिर जब मुरादाबादमें आये थे तौ मेरे सामने कहा था, कि आजकल शरीर दुःखी है दस्त होते हैं फिर नामानुसार अर्थ माने तौ व्याकरणमें जिन शब्दोंकी नदी संज्ञा मानी है तौ क्या वे शब्द पानी होकर बहते हैं इससे यह उच्चारणमात्र संज्ञा बांधी है वे बालिका पार्वती वा रोहिणी नहीं होजातीं जब हम कहें कि यह बालिका रोहिणी है तौ जानलेना कि[1] इसकी अवस्था नौ वर्षकी है कन्या कहनेसे दश वर्षकी अवस्था प्रतीत होती है और इसी समयमें विवाहभी कर देना योग्य है जबतक रजस्वला नहो क्यों रजस्वला होने उपरान्त वोह नारी सन्तानोत्पत्तिके योग्य होजाती है इसीसे आठ वर्षसे लेकर १२ वर्ष पर्यंत कन्याका विवाहकालहै जैसा मनुजी लिखते हैं ॥

त्रिंशद्वर्षोवहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् ॥ त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥ मनु० अ० ९ श्लोक ९४

तीस वर्षका पुरुष बारह वर्षकी कन्यासे विवाह करै जो मनोहर हो और चौवीस वर्षवाला आठ वर्षकी अवस्थावाली बालिकाके संग विवाह करले इससे शीघ्र करनेमें धर्ममें पीड़ा होती है यही मनुजीकी विवाह करनेमें आज्ञाहै इसीका आशय ले पाराशरजीने श्लोक बनाये हैं जब कि शास्त्रोंमें ऋतुमती स्त्रीके पास न जानेसे महादोष कथन किया है उसका कारण यह है कि वोह समय सन्तानोत्पत्तिका होताहै और

१ यहां समयकी अवधि दिखाईहै ।

ऋतुदान विना विवाहके कहां यदि विवाह हो जाय तौ ऋतुसमयमें संयोग होनेसे कदाचित् संतानकी उत्पत्ति होजाती है इसी कारण ऋतुधर्म जिसे होने लगा हो तो उसका विवाह नहीं करनेसे माता पिता पापभागी होते हैं इसीसे पराशरजीने 'माता चैवेति' यह श्लोक लिखाहै कि ऋतुमती होनेसे पहले विवाह कर देना नहीं तो पापभागी होना पडेगा और सुश्रुतमेंभी लिखा है अध्याय १० ॥

अथास्मै पंचविंशतिवर्षाय द्वादशवर्षीं पत्नीमावहेत् ॥

विद्यासंपन्न पुरुषको जिसकी अवस्था २५ वर्षकी हो उसको बारह वर्षवालीसे व्याह करना योग्य है इससे यह सिद्ध होता है कि पुरुषकी अवस्था २५ वर्षसे कम न हो जब विवाह करै और कन्याकी १० अथवा बारह वर्षसे कम न हो उस समय विवाह कर दे तौ उसमें बहुत गुण प्राप्त होते हैं, क्योंकि विवाहका अभिप्राय वर वधूके अच्छेद्य संयोगसें कामोपभोगपूर्वक सृष्टिप्रवाह चलानेका है संयोगमें वियोग नहोनेके कारण सहवास लज्जा भय अनुराग और स्नेह यह सब बाल्यावस्थाभ्यस्त होने चाहिये, यह बात सब कोई जान्ते हैं कि जिसका जितना अधिक सहवास होता है उसके दुःख और सुखका उसे उतनाहीं अधिक दुःख सुख भागी होना पडता है, और स्त्रियोंको तौ अधिकही होता है, जैसे कि माता पिताकी अपेक्षा पुत्रकी अधिक सहभागिनी होती है, इस प्रकार बाल्यावस्थाभ्यस्त सहवास स्त्रियोंके अच्छेद्य संयोगका मुख्य कारण है इसी प्रकार लज्जा और भयका जितना अभ्यास बालकपनसे हो उतनाही अच्छाहै, विवाहिता लडकीं विवाहके दिनसेही घूँघट काढने लगती है, और कई प्रकारकीं सुसरालकी रीति पालन करने लगती है, और साससमुरका भय उसी दिनसे चित्तपर आजाताहै, कई प्रकारके पतिसम्बन्धी व्रत नियम पालन करने लगती है, ससुरालके देशके मनुष्योंसे अधिक लज्जा करती हैं उनसे भाषणतक नहीं करती और गृहस्थके कामकाज रसोई, सीना, गोटा, किनारी, आदि जो कुछ गृहस्थ सम्बन्धी कर्म हैं जो स्त्रीको अति आवश्यक हैं मन लगाकर सीखती है, जिससे कि द्विरागमन पर्यन्त गृहकार्योंमें चतुर हो जाती है, यदि सोलह वर्ष वा पच्चीस वर्षकी अवस्थामें विवाह करै तौ इसमें स्त्रियोंमें दुश्चरित्र होनेकी बडी शंकाहै क्योंकि ॥

पानंदुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोटनम् ॥ स्वप्नोन्यगेहवासश्च नारीणां दूषणानि षट् ॥ मनु० अ० ९ श्लो० १३

मद्यपान, खोटे पुरुषोंका संग, पतिका वियोग, घूमना, पराये घरका वास, और अधिक सोना यह स्त्रियोंके छः दूषणहैं सो सुसरालमें रहने अथवा कन्या अवस्थामें विवाह होनेसे यह सब दोष बचतेहैं, विवाहित बालिका बहुत नहीं फिरती सबेरी उठना पडताहै तथा सुसरालियोंके भयसे लज्जादिक सब बनी रहती हैं, पतिसेभी बहुत वियोग नहीं रहता. अब बडी अवस्थाका विवाह सुनिये वे माता पिताकी प्यारी होनेसे भय नहीं करती, परदा किसीसे नहीं करतीं, यदि कुछ माता आदि शिक्षा करें तौ ध्यान नहीं देतीं, और विना व्याही बहुधा तमासे देखतीं गुडिये खेलती इधर उधर भ्रमण करती रहती हैं, और दुर्जनोंकी गोष्ठीमेंभी बैठनेका संभवहै मद्य नहीं तौ भंगतौ चाखतीही हैं, यदि बहुत सोना देखकर माता कहती है बेटी उठ बहुत मत सोवै तौ यही कहती है कि मा तू तो हमें सोनेभी नहीं देती है, यदि मा घरमें बैठनेको कहैं तौ वोह कहती हैं कल हमारे घर बसन्ती और हिरियाभी तौ आईथीं, उनकी माने उन्हें नहीं वर्जा, तू हमारेही पीछे पडी रहै है, बस यह कह चल दी और मनुजीके उक्त दोषोंको सार्थ करने लगी, फिर उनका पतिके साथ अच्छेद्य संयोग किस प्रकारसे हो, इसी प्रकार स्नेह और अनुराग जितने बालपनसे अधिक अभ्यस्त होंगे उतनेही अधिक बलवान रहैंगे, फिर त्रयोदश वर्ष प्रारंभमें कामका संचार होजाताहै किसीपर दृष्टि जा पड़ी वा किसी धूर्त पुरुषने वशमें करलिया तौ बस सब कुछ गया पतिव्रत तौ गया अवचाट लगगई ॥

गावस्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ती नवंनवम् ।

जैसे गायें वनमें नवीन तृण चाहती हैं इसी प्रकार स्त्री नवीन नवीन पुरुषोंकी चाहना करती हैं यह दशा उनकी होती है, जिनका पतिसे अभ्यस्त अनुराग नहीं है इस कारण थोडी अवस्था १० वा बारहवर्षमें कन्याका विवाह करना, यदि यह कहो कि युवाअवस्थामें स्त्री रुचि अनुसार वर ढूँढ लैंगी तौ व्यभिचारिणी न होंगी, तौ इसका उत्तर यह है कि प्रायशः स्त्री जाति पुरुषोंमें पतिको अन्यान्यगुणोंकी अपेक्षा सुन्दरतायुक्त होना अधिक चाहती हैं, जैसे कि पुरुष सुंदर स्त्री ढूँढते हैं और यह भी एक बात है कि पुरुषको स्त्री और स्त्रीको पुरुष तबतक

अच्छा लगता है कि जबतक भोगा नहो, भोग उपरान्त सुन्दरभी रूप-रहित लगतेहैं, और पतिका प्रेम बालकपनसे अभ्यस्त न होनेसे वे दूसरे उससे अधिक सुन्दर पुरुषसे प्रीति करसक्ती हैं और अभ्यस्त प्रेममें यह बात नहीं होती, वोह तौ सर्वांगमें वस जाताहै. और बाल-विवाह मत करो, यह कहना ठीक नहीं किन्तु बाल लडकेका विवाह करना किसी प्रकार उचित नहीं यदि दश वर्षकी लडकीसे विवाह किया तौ बीस वर्षका पति होना योग्यहै वा १५ वर्षका इससे कमती किसी प्रकार नहीं यहांतक महात्माओंने मर्यादा करदीहै, कि इससे कमती अवस्थाका विवाह नहोना चाहिये तौ इस समयकी प्रथाके अनुसार पांच वा तीन वर्षमें द्विरागमन होताहै फिर एक या दोवर्षमें आवाजाई खुलतीहै जिसको (रौना) कहतेहैं इस समयतक स्त्रीकी अवस्था पन्द्रह वा सोलह वर्षकी होजाती है और वरभी २५ वर्ष वा २६ वर्षकी अवस्थाका होजाताहै और १५ वर्षमें विवाह हुआ तौ २१ वर्षका होजाताहै, इसी पांच वर्षमें स्त्री घरके सब कार्योंमें चतुर होजातीहै और कार्यमात्र विद्याभी पढसक्तीहै जिससे अपना और बालक जो हो उसका पालन यथावत् कर सकै,और यही सुश्रुतकार भी कहते हैं कि१६ वर्षकी स्त्री२५ वर्षका पुरुष यह संयोगके और गर्भधारण स्थापनके योग्य होते हैं कुछ यह इस श्लोकका अर्थ यह नहीं है कि इतनी अवस्थामें विवाह करै यह तो संयोगका समय लिखा है विवाहका नहीं है वाग्भटने १६ और२०वर्षकी आयुमें स्त्री पुरुषोंका संयोग माना है पर विवाह नहीं, और इसी प्रकार होताही है लडकालडकीके आधीन विवाह होनेमें यह दोष है कि स्त्री रूपकी प्यासी होती है जाने कौनसे जातिके पुरुषको पसन्द करै क्यों कि "भिन्नरुचिर्हिलोकः" मनकी रुचि सबकी भिन्न होती है तौ ऊंच नीच संयोग होनेसे वर्णसंकरकी उत्पत्ति होती है और यहभी देखा जाता है कि बडी अवस्थावाली अनव्याही बहुतायतसे रूप देखकरही मोहित होती है और हुईभी है यह इतिहासोंमें श्रवण किया है, यह स्वयंवर क्षत्रियोंमें बहुधा होता था, जिसमें क्षत्रिय जातिके राजा एकत्र होते थे, स्वामीजीने जाति वर्ण सब मेंट सबहीके वास्ते लिख दिया मानो वर्णसंकरकी उन्नतिका द्वार खोल दिया॥

और जब कि कन्यादान शब्द विवाहमें कहा जाता है तौ कन्या बिना पिताकी अनुमति स्वयं कैसे पतिवरण करसक्ती है, जब कि दान दिया जाता है तो देनेवालेको अधिकार है चाहै जिसे दे दे, परन्तु दाताको

पात्रापात्रका विचार अवश्य कर्तव्य है, आपने तौ कन्यादानकी प्रथाही मेटनी विचारी है मनुजी स्त्रीकी स्वाधीनता नहीं अंगीकार करते हैं सुनिये ॥

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्ययौवने॥ पुत्राणांभर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतंत्रताम्॥१४८॥अ०५ मनु०
यस्मै दद्यात्पितात्वेनां भ्राताचानुमते पितुः॥
तं शुश्रूषेतजीवंतं संस्थितं च न लंघयेत्॥ १५१ ॥

बाल्यावस्थामें पिताके वशमें यौवनमें पतिके वशमें भर्त्ताके मरनेपर पुत्रोंके वशमें स्त्री रहै परन्तु स्वतंत्र कभी न रहै ॥ १४८ ॥ जिसे इसको पिता दे वा पिताकी अनुमतिसे भ्राता देदे उसकी यावज्जीवन सेवा करती रहै और मरनेपरभी श्राद्धादि करै कुलके वशीभूत रहै मर्यादाको न लंघन करै, इत्यादि प्रमाणोंसे स्त्री स्वयं पतिवरण नहीं करसक्ती स्वयंवर राजोंमें होता है ॥

और आर्य लोगभी थोडी अवस्थामें विवाह करते थे, रामचन्द्र महाराजका १५ वर्षकी अवस्थामें विवाह हुआ था यह वाल्मीकिसे सिद्धहै सोई हम पीछे लिख चुके हैं दशरथजी विश्वामित्रजीसे क्या कहते हैं ॥

ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः ।
न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामिसहराक्षसैः॥ बाल०स० २०श्लो०२

हे विश्वामित्रजी अभी रामचन्द्र सोलह वर्षसे भी कम हैं यह राक्षसोंसे युद्ध नहीं कर सक्ते, इसी समय रामचन्द्र उनके संग गये और यज्ञकी रक्षा कर धनुष तोड जानकी विवाही कहिये यह विवाह कैसा हुआ और अभिमन्युकाभी थोडीही अर्थात् १४ वर्षकी अवस्थामें हुआथा और विवाहसे थोडेही दिन पीछे भारतके युद्धमें मृतक हुए उस समय उनकी स्त्री उत्तरा गर्भवती थी, और उससे राजा परीक्षित् उत्पन्न हुए कहिये जो २५, ३०, ४८ वर्षतक बैठे रहते तौ पाण्डवोंका वंश समाप्तही हो चुकाथा, तथा और भी पंचदश वर्षकी अवस्थामें विवाहके प्रमाण हैं और इस समय तौ पन्द्रह बीस वर्षकी अवस्थातक विवाह करही देना चाहिये क्योंकि इस समय सब लोग जो चारों वर्णके हैं बहुधा बालकोंको फारसी पढाते हैं और इस फारसीने ऐसी दुर्दशा करदी है. कि

१ भा० प्र० कहताहै बालकपनमें पिताका कहा माने, धन्यबुद्धि तो क्या वृद्धाअवस्थामें पतिका कहना न माने पुत्रोंकीही बात माने धन्य पक्षपात ।

थोड़ी अवस्थामेंही बालक फारसीके शेर गजल दीवान आदि पढकर कामचेष्टामें अधिक मन लगाते हैं और अनुचित प्रीति करके तेल फुलेल सुरमा डाले चिकनिया बने फिरते हैं जिनके स्त्री हुई वोह तौ कथंचित ठीक रहते हैं, जिनके न हुई वे बाजारमें जाकर अथवा शून्य मंदिरमें बैठकर वीर्यको स्वाहा करने लगे, उपदंश मूत्रकृच्छ्र होगया बस तीस वर्षतक खातमा प्रगटके ब्रह्मचारी बड़े भारी भीतर मसाला कुछभी नहीं यदि स्त्री हो तौ २०, पच्चीस वर्षमें एक या दो सन्तान होजाती हैं, जो पिताकी तीस चालीस वर्षकी अवस्थातक पुत्र समर्थ होकर पिताकी सहायताके योग्य होजाताहै क्यों कि इस समय ५० अथवा ६० वर्षकी अवस्थामेंही बहुधा मृत्यु होजाती है जब ४८ वर्षमें (जो क्षीण अवस्था होती है) जैसा लिखा है कि, "चतस्रोवस्थाःशरीरस्य वृद्धिर्यौवनं संपूर्णता किंचित्परिहाणिश्चेति आषोडशाद्वृद्धिः आपंचविंशतेर्यौवनं, आचत्वारिंशतः सम्पूर्णता, ततः किंचित्परिहाणिश्चेति" अर्थ इस शरीरकी चार अवस्थाहैं, वृद्धि यौवन सम्पूर्णता और किंचित्परिहाणि जन्मसे लेकर १६ वर्षतक वृद्धि अवस्था कहाती है अर्थात् बढती है और सोलह से २५ वर्षतक युवावस्था रहतीहै २५ से लेकर ४० वर्ष पर्यंत सम्पूर्णता अवस्था कहातीहै पुनः ४० वर्षसे उपरांत कुछ कुछ घटने लगती है ४८ में व्याह किया तौ दो तीन वर्ष उपरान्तही पूर्ण जराग्रस्त पुरुष और पूर्ण युवावस्था युक्त स्त्री होती है तौ बस "वृद्धस्य तरुणी विषम्" बुढेको तरुणी विषहै उनको तौ बहुत प्रसंग भाताही नहीं, बस वे किसी और नव युवाकी खोज करके धर्मच्युत होती हैं, और जो यह कहो कि ब्रह्मचर्यसे आयु बढती है सो यहभी नहीं देखा जाता क्यों कि स्वामीजीने तौ पूर्णतासे ब्रह्मचर्य धारण कियाथा परन्तु अट्ठावन ५८ वर्षकी अवस्थाहीमें शरीर छूट गया यदि स्वामीजीका ४८ वर्षमें किसी बीस वर्षकी अवस्था युक्त स्त्रीसे विवाह होता तौ वोह बिचारी अब शिर पटकती या नहीं हां प्राणायामसदाचार तपादि करनेसे निश्चय आयु वृद्धिको प्राप्त होती है केवल वेद वेद वाणीसे कहने तथा श्रुतियें पढनेहीसे धर्मात्मा नहीं होता क्योंकि ॥

सुश्राव जपतां तत्र मंत्रान् रक्षोगृहेषु वै ।
स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानान्ददर्श सः ॥ वा० सुन्दर० १३।१४

राक्षसोंको घरोंमें मंत्रजपते महाबीरजीने सुना तथा कितनेही राक्षसोंको स्वाध्याय (वेद) में निरत देखा दुष्कर्मसे राक्षसत्व न छूटा यदि ब्रह्मचर्यही आयुकी वृद्धि करनेवाला होता तौ स्वामीजी की आयु ४०० वर्षकी होती क्योंकि वे अपनेको योगीभी तौ मान्ते थे अथवा पूरे सौ ही वर्षकी होती जो ब्रह्मचर्यसेही आयु बढती है तौ आपका ब्रह्मचर्य ठीक नहीं और जो ब्रह्मचर्य्य ठीकथा तौ आयु क्यों नहीं बढी ब्रह्मचर्यसे तौ वीर्यकी अधिकता होती है जिससे शरीरमें पूर्ण बल होताहै जैसा योगशास्त्रमें लेख है (ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः पा० २ सू० ३८) अर्थात् ब्रह्मचर्यसे वीर्यका लाभ होता है हां योगाभ्यास प्राणायाम समाधीसे आयुकी वृद्धि होती है अन्यथा आयु पूर्वकर्मानुसार निर्णीत होतीहै जैसे नीतिमें लिखाहै कि ॥

आयुःकर्मचवित्तंचविद्यानिधनमेवच ।
पंचैतानीह सृज्यन्तेगर्भस्थस्यैवदेहिनः ॥

आयु कर्म धन विद्या मरण यह पांच वस्तु देहीके गर्भमें ही नियत हो जाती हैं सबही बात कर्मानुसार होती है इसी प्रकार जिसके कर्ममें वैधव्य है क्या उसे कोई मेंटनेको समर्थहै यदि कर्म मिथ्या हो जाय तौ जगत्की व्यवस्थाही मिटजाय यह मरण जीवन सबही कर्मानुसार है यदि बडेहुए विवाह हो तौ क्या बडी उमरमें कोई विधवा नहीं होती क्या बडी उमरमें विवाह करके कोई कर्मको मेटसकताहै इस समयके विवाह और संयोगकी रीति वाग्भटके अनुसार होनी चाहिये क्योंकि कलियुगके वास्ते यही अधिकांशमें प्रमाण है ॥

अत्रिः कृतयुगेचैवत्रेतायांचरकोमतः ।
द्वापरे सुश्रुतः प्रोक्तः कलौ वाग्भटसंहिता ॥

सत युगमें अत्रिसंहिता त्रेतामें चरकसंहिता द्वापरमें सुश्रुत और कलियुगके लिये वाग्भटसंहिता है अब देखना चाहिये कि वाग्भट किस समयमें स्त्री पुरुषका संयोग कथन करता है ॥

पूर्णषोडशवर्षास्त्रीपूर्णविंशेनसंगता ।
शुद्धेगर्भाशयेमार्गे रक्तेशुक्रेऽनिलेहृदि ॥ १ ॥
वीर्यवंतंसुतंसूतेततोन्यूनाब्दतः पुनः ।
रोग्यल्पायुरधन्योवागर्भोभवतिनैववा ॥ २ ॥

पूर्ण सोलह वर्षकी स्त्री बीस वर्षकी अवस्थावाले पुरुषके साथ संगकरनेसे शुद्धगर्भाशय और गर्भाशयका मार्ग तथा रुधिर वीर्य और पवन हृदयमें होनेसे स्त्री सामर्थ्यवान् पुत्रको प्रगट करतीहै इससे न्यून अवस्था वाले पुरुष और स्त्रीके संयोग होनेसे रोगी और अल्पायु और दुष्टबालक होता है वा गर्भही नहीं रहता और—

द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वमापंचाशत्समाःस्त्रियाः ॥
मासिमासिभगद्वारात्प्रकृत्यैवार्त्तवंस्रवेत् ॥

बारह वर्षसे लेकर५०वर्षकी अवस्था पर्यन्त महीने२स्त्री रजोवती होती है अब इस सब कथनका तात्पर्य यहहै कि, दशवर्षसेऊपर तौ कन्याका विवाह करै और सोलह बीसवर्षकी अवस्थामें पुरुषका विवाह करना इससे कमती कभी न करै कभी न करै यह सिद्धान्त है इसमेंभी १६ वर्ष मध्यम और बीस वर्षका विवाह उत्तम है इसमें विद्याभी पूर्ण होजायगी और कठिन रोग जो बालावस्थाके हैं उनसेभी बचजायगा आगे प्रारब्ध तौ बलवान् हैही पुनः तीन अथवा पांचवर्षमें द्विरागमनके होनेतक दोनों की अवस्था वैद्यकके अनुसार पूर्ण हो जायगी और जो१६ । २० में विवाहहो तो द्विरागमनकी आवश्यकता नहीं अब वर कन्याके फोटोग्राफ (अर्थात् तसबीर वा प्रतिबिंब) की लीला सुनिये भला इसमें कौनसी श्रुति प्रमाण है कि वरकी तसबीर कन्याके और कन्याकी वरके अध्यापकोंके पास जाय जब वरकी तसवीर कन्याके पास गई तौ वोह सूरतके सिवाय और क्या देख सक्ती है और जीवनचरित्र कहांसे आवे जबकि दोनों ही अध्यापकोंके पास पढते हैं और उससमय जीवनचरित्रकी आवश्यकता क्याहै क्योंकि केवल विद्या अध्ययनके सिवाय और उनका जीवनचरित्र क्या होगा यही कि अमुक २ ग्रंथ पढे हैं वा और कुछ यदि और कुछ हो तौ वोह क्या हो और उसमें कौनसे चरित्र लिखेजांय यही प्रयोजन होगा कि जिस दिनसे जन्मलिया आठवर्षतक खेला फिर पढने लगा इसके सिवाय और क्या होगा और उस जीवनचरित्रका लेखक और साक्षी कौन होगा आप या आपके चेले और यदि अध्यापक लिखैं तौ एक २ अध्यापकके पास ५० शिष्यहों और वोह एक २ का २५ वर्षका जीवन चरित्र बनावै तौ विद्यार्थियोंको कौन पढावै और फिर विनालाभ २५ वर्षका इतिहास लिखने कौन बैठेगा और एक पुस्तक हो तौ लिखभीदे जहां पचास वा साठ हों वहां की क्या ठीक क्योंकि जब

अध्यापकोंके पास विद्यार्थी रहे तौ उनकी व्यवस्था वेही ठीक जान्तेहैं जब वे धन लेकर पुस्तकें बनावेंगे तौ यहभी होसक्ता है कि अधिक धन देने वालेके औगुणोंको छिपाकर गुणही लिखेंगे क्योंकि वे तौ यह जान्तेही हैं कि यदि अवगुण लिखेंगे तौ विवाह नहीं होनेका और इसी प्रकार लडकी भी करसक्ती हैं कि जो कुछ घरसे खर्च आवै कुछ जीवनचरित्र लिखने वालेकीभी भेंट करेंगी क्यों कि जब ४००रुपयेतककेनौकरभी बहुधा घूंस खाते हैं तौ जीवनचरित्र लिखनेवालेकी क्या कथा है "जेहि मारुत गिरि-मेरु उडाहीं । कहो तूलकेहि लेखेमाहीं ।" यदि कहो कि सब ऐसे नहीं होते हैं तौ और सुनिये यदि उन्होंने लडकेलडकीके अवगुणका जीवनंचरित्र लिखातौ अब उनसे कौन विवाहकरै वे किसकी जानको रोवैं विधवाका तौ आपने नियोगभी लिखा और ग्यारह भर्ता करने लिखे परन्तु वे कारी क्या करैं वे पति करैं या नहीं वा कुछ ग्यारहसे अधिक करैं यह कुछ स्वामीजीने लिखा नहीं क्योंकि जो अवगुणयुक्त हैं उनसे विवाह कौन करै और तसबीर देखकर पसन्दकरने उपरान्त उस्से अधिक रूपगुण मिलनेसे वे स्त्री दूसरेके संगकरनेकी इच्छा कर सक्ती हैं इस्से तसबीर मिलाना ठीक नहीं शोककी बात है कि जन्मपत्र जिससे रूप रंग स्वभाव विद्या आयु आदि सब कुछ विदित होजाय वोह तौ निकम्मा और यह तसबीर मिलाना ठीक धन्य है इस बुद्धिपर इसकारण यही उत्तम है कि माता पिताको पुत्रका अधिक स्नेह होनेसे वे चित्तलगाकर कुलगुणसम्पन्न पुरुषको आपही देखैं, तथा उसके व्यवहारकी परीक्षा स्वयं अपने संबंधियोंके द्वारा करावैं जैसा कि अब भी होता है हां नाई आदिके भरोसे सम्बन्ध कर देना महामूर्खता है, स्वयं देखना चाहिये और बालकपनसे आठवें वा दशमें वर्षतकका इतिहास क्या कार्य देगा, क्या धूरिमें लोटना पडे २ मूत्रादि करना भोजनको हप्पा पानीको मम्मा कहना यह भी उसमें लिखाजायगा, जब कि यज्ञोपवीत होकर गुरुके विद्यापढने गये तौ सिवाय पढनेके और क्या जीवनचरित्र होगा यह जीवन वृत्तान्त अपने जन्मपत्रके स्थानमें चलानेका विचार कियाहै (जिस जन्मपत्रसे कुलगोत्र जन्मदिन आदि सबकुछ विदित हो जाता है) अब स्वामीजीको यह पूछते हैं कि तुम्हारे माता पिता और तुम्हारा जीवनचरित्र ४० वर्षतकका कहांहै यदि कोई चेला कहैं किदयानंददिग्विजयार्क दयानंदजीका जीवनचरित्र है सो यह तौ किसी बालपरिश्रमीने उनकी मृत्युके उपरान्त रचाहै और जो कहो स्वामीजी

बनाकर रखगयेहैं तौ विनासाक्षी स्वयंलिखित प्रमाण नहीं क्यों किं अपना चरित्र आपही कोई लिखै तौ वोह अवगुण नहीं लिखता बडाईकी इच्छासे इसकारण वोह जीवनचरित्र प्रमाण नहीं, और पढानेवालोंके सामने विवाह करनेको कहतेहो पर थोडीसी ओलटसे कहतेहो, प्रत्यक्ष ही क्यों नहीं कहदेते किं ईसाई होजाओ, क्यों कि ईसाइयोंमें यह प्रथा प्रचलितहै कि पादरी साहब स्कूलोंमें विवाह करा देते हैं, जिसे गिरजाघर कहते हैं प्राचीनसमयसे तौ आजतक पिता माता भाई सम्बन्धियोंके सन्मुख कन्याके ही घर विवाह होता चलाआयाहै, फिर आपने यहभी खूबही लिखाहै (कि कन्या और वरकी सम्मति लेकर पश्चात् पितासे अध्यापकलोग कहैं) वोह मुलाकात कराकर पितासे खबर करना यही रीतिसंशोधनकी उच्चश्रेणीका नियमहै, जब कन्याके सामने बीस पुरुषोंका फोटो आया तौ सबमें कोई न कोई लटक अन्दाज निराली होगी पसन्द किसे करैं लोकानुसार-एकको स्वीकार करनापडैगा परन्तु चित्तमें वोह और पुरुषोंका भी कटाक्ष समाया रहैगा और यही व्यभिचारका लक्षणहै क्यों कि सब अपनेसे उत्तमहीको चाहतेहैं स्वामीजीने गुणकर्म मिलाने लिखा कन्याकी इच्छा विशेषमें हुई वे अध्यापक गुण मिलाने लगे और कहने लगे किं इसमेंसे कोई पसन्दकरलो तौ अब चाहैं लाचारीसे वे अंगीकार करलें पर मनमें तौ औरही पुरुष रहा और यही दशा पुरुषोंकी है तौ अब कहिये वोह पतिकी और परस्परकी सम्मति कहां रही यह तौ बडी पराधीनी होगई और गुण कर्म क्या मिलावैं कर्म तौ सबका पढनाही ठहरा फिर मिलावै क्या यही कि जो पुस्तक लडका पढता हो वही लडकी और आपने अध्ययनके सिवाय सीना रसोई आदि सिखाना तौ लिखाही नहीं बस व्याह होनेपर दोनों पुस्तकैं आदि पढैं गृहस्थीका कार्य आपके शिष्य वर्ग कर आया करैंगे और कदाचित् कोई कन्या रूमाल काढना जान्ती हो तौ उसका पतिभी रूमाल काढनेवाला होना चाहिये नहीं तौ कर्म कैसे मिलेगा और गुण कौनसे मिलाये जांय यदि किसीमें तमोगुण हो तौ दूसरा भी तमोगुणी होना चाहिये जो रातदिन लडाई हो और यह कैसी बात कही गुण कर्म न मिलैं तौ कारी रहो विधवाकी तौ कामाग्नि बुझानेको यह दया करी कि ११ पतितक करनेमें दोष नहीं और कुमारीपर यह कोप कि व्याहही न करो भला उसकी सन्तान उत्पत्तिकी इच्छा और कामबाधाको कौन पूर्ण करैगा खूबही भंग पीकर लिखा है और निर्धनसे तौ आपकी रीतिसे

विवाह बनही नहीं सक्ते क्योंकि जब पूर्ण विदुषी स्त्री आई तब रसोई कौन करे लाचार किसीको नौकर रखना पडैगा उनके पास इतना द्रव्य है नहीं अब लगा क्लेश होने सब पढे अब, रसोई कौन करै शायद शूद्र मिलजाय तौ आश्चर्य नहीं मेरे कहनेका यह आशय नहीं कि कन्याको मत पढाओ पढाना बेशक चाहिये परन्तु गृहस्थकें कार्यभी प्रबलतासे सिखाने चाहियें जिनका प्रतिक्षण प्रयोजन पडता है जिसके जाने विनाभी क्लेश होता और स्त्री फूहर कहाती है॥

और–स्वामीजीने वह गुप्त बात न लिखी कि क्या पूछै यही कि उपदंश नपुंसकतादि रोगतौ नहीं हैं वा आकर्षण स्थापन आता है या नहीं सो यह बात विनापरीक्षा किये कैसे विदित हो सक्तीहै जो गुप्तबात है उसे अध्यापक कैसे देखें क्या वे भी किसी प्रकार उनसे निर्लज्जतायुक्त भाषण करैं शोक! गुप्त बातको खोलहीकर लिखदेते कि विवाहसे प्रथम एकबार संयोगभीहो जाय तौ सब भेद खुलजाय यदि पुष्टता आदिक हो तौ वरण करैं नहीं तो दूसरेकी फिक्र करैं अन्यथा निज दोष देखने कहनेवाले बहुत थोड़े हैं पर कन्याकी परीक्षा कि यह वन्ध्या तौ नहीं है किसी अच्छे डाक्टरसे करानी चाहिये क्यों कि बांझ हुई तौ सन्तान कहां अथवा दो चार मास विवाहसे प्रथम संयोग होता रहै जो गर्भ स्थितहो जाय तौ विवाह करले नहीं तौ त्यागन करदे इसप्रकार करनेसे कोई विवाहित पुरुष निर्वंश न होगा और स्वामीजीकी इष्ट सिद्धिभी होगी और जिनके पास धन आदिका प्रबन्ध न होवै क्या वे बैठे हुए आपको आशीर्वाद दें. बहुत ऐसे हैं जो रोज लाते और गुजरान करते हैं वे भला खानपानका प्रबन्ध (इकरारनामा) कैसे लिख सक्ते हैं बस धनी थोडे निर्धन बहुत विवाहित थोडे क्वारेक्वारी अधिक होनेसे कामाग्निसे पीडित हो कुमार्गमेंही पदार्पण करैंगे और अडतालीस वर्षका कृश शरीर दस-बीस दिन उत्तम भोजन करनेसे कैसे यथेच्छ पुष्ट हो जायगा वाह स्वामीजीकी वैद्यक तौ पूर्ण है और इस जरामुख अवस्थाका फोटोभी मनोहर होगा विवाहका समय भी कैसा अद्भुत रक्खा है जब रजस्वलासे शुद्ध हो उस दिन विवाह करै और आपकी बनाई संस्कारविधिके अनुसार व्याह करावै, यह तौ बडीही अलौकिक बात कही जब आपकी संस्कारविधि नहीं थी, तो काहेके अनुसार विवाह होताथा, भला अब तौ आप कहते हो ब्राह्मणोंने ग्रंथ कल्पना कर लिये पूर्व ऋषि मुनि

विवाह क्रिया कौनसे ग्रंथके अनुसार करते थे क्यों कि यह आपकी पुस्तक तौ जबतक बनी ही नहींथी, तौ उनके विवाहादिकभी अशुद्धही हुए और स्वामीजीने उसमें बनायाही क्या है वेद मंत्र तौ पूर्वकालसेही थे, आपने उसमें भाषा लिखदी है और पठनपाठन विधिमें सब भाषा ग्रंथ त्याज्य माननेसे यहभी भाषा मिश्रित होनेसे त्याज्यही है कार्य मंत्रोंद्वारा होताहै भाषासे कुछ प्रयोजनही नहीं फिर दयानंदजीने उसमें क्या बनाया मंत्र उलट पुलटकर दियेहैं और जहां अबभी यह संस्कारविधि नहीं है वहांके लडका लडकी क्या कारेही रहैं और संस्कारविधिकी शिक्षा कैसी उत्तम है " पुरुष स्त्रीकी छातीपर हाथ धरकै स्त्री पुरुषके हृदयपर हाथ धरकै कहै तुम मेरे मनमें सदा वस्ते रहो " जहां कुटुम्बी वृद्ध बैठें हों वहां नारियोंकी यह ढीठता, यह आपका कन्याका अधिक अवस्थाका विवाह और नियोग यह दो लज्जानाशक व्यभिचारके खंभेहैं, फिर विवाह करतेही दोनों स्त्री पुरुष एकान्त सेवन करने चले जांय यह कौन धर्महै कि शतशः स्त्रीपुरुष विवाहमें उपस्थित हों और वे दोनों स्त्रीपुरुष लाज शील छोड दस ग्यारहही बजे एकान्त सेवन करने चले जांय और वीर्यस्थापन और वीर्यआकर्षण दोनों स्त्रीपुरुष करैं भला कहीं आपने इसकी क्रियाभी तौ नहीं लिखी शायद गुप्त किसीको बताई हो जब स्त्रीने वीर्याकर्षणका पहलेसे अभ्यास किया होगा जब ही तौ आकर्षण करसक्ती है नहीं तौ नहीं और पुरुषने स्थापनका अभ्यास किया होगा तभी तौ आता होगा नहीं तौ क्यों कर आसक्ताहै और आकर्षण विना आसन योगक्रियाके आ नहीं सक्ता यह क्रियायें कन्या और पुरुषोंको कौन सिखावै तौ यहभी अध्यापक वा अध्यापिकाओंके शिर मढोगे क्यों हमें लिखते लाज आती है कि स्त्रीका जबतक पुरुषसे संयोग न हो तबतक उन्हें स्वयं आकर्षणका अभ्यास कैसे हो सक्ताहै इसी प्रकारपुरुषकोभी अभ्यासमें स्त्रीकी आवश्यकता है तौ उनके अभ्यासके अर्थ स्त्रीपुरुषभी नौकर रखने चाहियें यह विधि स्वामीजीने न जाने कहां सीखी जब यह विधि आती होगी तभी तौ लिखा और सास ससुरभी प्रसन्न होते होंगे कि हमारी पुत्री वीर्याकर्षण कररही है और जामाता स्थापन कररहेहैं " पति स्त्रीसे कहे कि मैं अब वीर्य स्थापन करताहूं वोह कहती जाय हाँ छोडो मैं आकर्षण करतीहूं " यह रीति तौ वेश्याओंकोभी लज्जित करती है यह बात आपने किस देशकी रीतिके अनुसार लिखी है शायद यह आपके त्रिविष्टप अर्थात

कल्पित तिब्वत नामक स्वर्गकी होगी और बिना कहे स्त्री जान नहीं सक्ती कि कब वीर्यपात होगा तौ जब पति कहैगा मैं छोडताहूं तौ वोह बाला निर्लज्ज हो क्यों कर कहसक्ती छोडो मैं ग्रहण करनेको उपस्थितहूं उधर लडकीकी मातापिताभी प्रसन्न होते हैं कि पुत्री गर्भधारण कररही है खाक पडे ऐसी रीतिपर जो जंगलियोंमेंभी नहीं होती होगी, यद्यपि स्वामीजीका कामशास्त्रमें अधिक अभ्यास प्रतीत होता है परन्तु मैंने वृद्ध लोगोंसे यह बात सुनी है और वैद्यकके ग्रंथोंमें देखा भी है कि जबतक स्त्रीका रज और पुरुषका वीर्य नहीं मिलता तबतक गर्भकी स्थिति नहीं होती सो जबतक रजवीर्य न मिलैं तौ चाहैं अपानवायुसे स्त्री खींचे चाहें संकोचन करै वा सब अंग सीधे कर आकर्षण करै तौ भी गर्भकी स्थिति कठिनहै और जो स्वामीजीकाही कथन सत्य होता तौ सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधिके पूर्व सृष्टिही न होती बहुत क्या यदि यह झगडे होते तौ दयानंदजीकाभी जन्म असंभव था यदि गर्भका तत्काल धारण करना स्त्रियोंके आधीन होता तौ क्यों कोई स्त्री वंध्या होती और पुत्रादिकोंके हेतु जपतपका क्यों विधान होता, यह आपकी बात रहस्यकी तौ नहीं किन्तु निर्लज्जतासे भरी और वर्णव्यवस्थाका सत्यानाश करने हारी है, यह स्वामीजीकेही लेखका उत्तरहै जितने दोष उस असभ्य लेखमें भरे हैं उन्हें खोलकर दिखा दियाहै जिससे कि मनुष्य इस सभ्यतानाशक अन्धकूपसे बचैं अपनी ओरसे एक अक्षरभी नहीं लिखा खबरदार दयानंदजीके पंथमें आनेसे यह अनर्थ करने पडेंगे इससे विचार कर इधर पैर रखना. चौथे आठवें महीनेके संस्कारसे क्या फायदा बिचाराहै " प्राचीन लोगों में तौ संस्कारोंसे निर्मल बुद्धि आरोग्यता शुभ कर्म युक्त सन्तान संस्कार करनेसे होताहै ऐसा मानते हैं" और स्वामीजीने हवनमें तौ वेद मंत्र कंठ रहनेका लाभ बतायाहै यहां संस्कारसे क्या सिद्धिहै और क्या जानेकि वोह शूद्रही होजाय तौ यह गर्भाधानके दो संस्कार मिथ्याही होजायंगे और संस्कारकी स्वामीजीने आवश्यकता काहेको लिखी वे तौ लिख चुके हैं कि 'अनुपनीतमध्यापयेत्' बिना यज्ञोपवीत हुए शूद्रको मंत्र सं० छोड सब शास्त्र पढावै तौ संस्कारकी क्या आवश्यकताहै जब ४८ वर्ष उपरांन्त ब्रह्मचर्य हो चुकैगा तब वर्णोंमें योग्यतासे करदियाजायगा बालकको सुवर्णकी शलाकेसे घी शहद चटाना ओम् जीभपर लिखना बालकके कानमें तेरा नाम वेद है ऐसा कहना इससे क्या प्रयोजन है

तथा संस्कार विधिके अनुसार बालकसे ऐसी बातें करना जैसे कोई बडोंसे कहे "हे बालक! मैं तुझे मधु घृतका भोजन देताहूं तुझे मैं वेदका दान देताहूं हे बालक! भूर्लोक अन्तरिक्षलोक स्वर्गलोकका ऐश्वर्य तुझमें मैं धारण करताहूं" विचारनेकी बातहै क्या यह स्वामीजीका तंत्र नहींहै आप ऐसे कहांके परमेश्वरके दारोगा हैं कि तीनों लोकका ऐश्वर्य चाहैं जिसे हाथ उठाय दे दिया, अब और बालक क्या भूंखे मरेंगे, और जिसे त्रिलोकीका ऐश्वर्य मिलगया तौ वोह दरिद्र न होना चाहिये और जब सबके संस्कारकी यही विधि हैं तो कोईभी दरिद्री न होना चाहिये, और तेरा नाम वेद है यह कानमें कहैं भला वोह दस दिनका बालक क्या समझैगा कि वेद किसे कहते हैं आठ दश वर्षकी लडकी तौ वेद मंत्रोंको नहीं समझती यह दस दिनका बालक वेदतक समझताहै क्या खूब और जो कहो कि यह कथन मात्रहै तौ जन्मतेही बालकको क्यों झूठमें फंसाना इत्यादि दयानंदजीने ऐसे मिथ्या संस्कार लिखे हैं जो प्राचीन प्रथाके विरुद्ध हैं ॥

अब (त्रीणिवर्षाणि) इस श्लोकका आशय सुनिये (यदि स्वामीजीका अर्थ मानें कि रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पतिको खोजकर अपने तुल्य पतिको प्राप्त होवे) यह साक्षात् स्त्रीके व्यभिचारिणी बनानेकी विधि महात्माजीने लिखी है माता पिता चैन करैं और स्त्री पति खोजती फिरै और आपही विवाहभी करले गुणकर्ममें पुष्टि आदिभी देखले खूब इस श्लोकका अर्थ बिगाड़ा है इसका अर्थ यह है कि (जिस कन्याके पितामातादि विशेषगुणवाले वरका न देसकें तो वोह ऋतुमती होनेपर तीन वर्षतक (उदीक्षेत) अपने पिता आदि कुटुम्बियोंकी प्रतीक्षा करै कि यह विवाह करदें जब यह समयभी बीत जाय तौ अपनी जातिके पुरुषको जो अपने कुलगोत्रके सदृशहो उसेही वरण करै यह आपद्धर्म है अन्यथा स्त्रीको स्वयंवरण करनेका नृपकुल छोड़कर अधिकार नहीं है और फिर पीछेसे आपने लिखा कि योनिसंकोचन करै स्वामीजीको इसका बड़ा ध्यान रहताहै छिः छिः ऐसी घिनोनी बातोंसे सत्यार्थप्रकाश पूर्ण है आपने औषधी संकोचनकी नहीं लिखी याद होती तौ लिखते और बालकको धायका दूधपिलाना लिखाहै यह सर्व साधारणसे नहीं निभ सक्ता जिनके पास इतना द्रव्य नहीं है वे क्यों कर दूध पिलानेवाली स्त्री नौकर रख सक्ते हैं इस कारण एकसा सबको कथन करना वृथाहै, फिर वोह धाय कौन वर्णकी हो यह आपने नहीं लिखा

उसका दूधपान करते २ बालकके स्वभावमें कुछ न्यूनाधिकता तौ नहीं होजायगा धायकालक्षणभी तौ लिखे होते ॥

अब इस सबका सिद्धान्त यही है कि वेदशास्त्रानुसार कन्यासे वर दूना होना उत्तम है ड्योढा मध्यम है और जो आठ सात वर्षके कन्या वरका विवाह करते हैं वे वेदशास्त्रविरुद्ध करते हैं और इसी कारण वे पछताते और दुःखभागी होते हैं इस अवस्थामें विवाह कभी न करै कभी न करै ॥

एक बात और लिखनी है कि जो ब्रह्मचर्य धारण कराना चाहै और बलबुद्धियुक्त संतान होनेकी इच्छा करै वोह अपने संतानको संस्कृत विद्याहीका उपदेश करावै पढावै उसीसे ब्रह्मचर्य निभ सक्ता है और प्रथमही फारसी भूलकरभी न पढावै, कि फारसी पढतेही स्वभावमें कामचेष्टा आजाती है थोड़ी अवस्थामें इधर उधर विषय करनेसे गरमी आदिरोगोंसे पीडित हो जाते हैं जिनका फिर जन्मभर ठीक नहीं लगता, और यह रोग प्राणोंके संगही बहिर्गत होतेहैं इस कारण प्रथम संस्कृत पढाना जिसमें धर्मनिरूपण है विषयकी निवृत्ति है और जिन्होंने ब्रह्मचर्य नहीं धारण किया वे हकीमजीको हाथ दिखलाते और पुष्टिकी दवा पूछते फिरते हैं, स्त्रियें संतानोंके हेत बाबाजीकी अलगही सेवा करती हैं यह आचरण बडाही निषिद्धहै इसीसे देश अधोगतिको प्राप्त होरहा है इसके आगे वर्णव्यवस्थामें लिखा जायगा ❀ ॥

वर्णव्यवस्थाप्रकरणम् ।

स० पृ० ८९ पं० २१ (प्रश्न) क्या जिसके माता पिता ब्राह्मणहों वोही ब्राह्मणी ब्राह्मण होताहै और जिसके माता पिता अन्य वर्णस्थ हों उनका संतान कभी ब्राह्मण होसक्ता है (उत्तर) हां बहुत होगयेहैं होतेहैं और होंगे जैसे छान्दोग्य उपनिषदमें जाबालि ऋषि अज्ञातकुल महाभारतमें विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मातंग ऋषि चांडाल कुलसे ब्राह्मण होगये थे पृ० ८६ पं० ३ अबभी जो उत्तम विद्या स्वभाववाला है वही ब्राह्मणके योग्य होताहै और मूर्ख शूद्रके योग्य होताहै रजोवीर्यके योगसे ब्राह्मण शरीर नहीं होता ॥ ८७ । १३

समीक्षा—अब यहांसे स्वामीजी जन्मसे वर्ण छोड गुणसे जाति मानने लगे और यहींसे वर्णसंकर करनेकी नीमडाली कि बहुत शूद्र ब्राह्मण

❀ भा० प्र० इस प्रकरणपर कुछ नहीं कहा गया केवल हाथ पैर पीटेहैं ।

होगये पहले कथा छान्दोग्यकी सुनिये जिसमें जाबालिजीका वर्णन है जिसमें उनको विद्याध्ययन कराई है यह प्रसंग नहीं है कि वोह ब्राह्मण होगये वोह तौ थेही ब्राह्मण जब वोह गौतमजीके पास पढने गये तौ गौतमजीने पूछा ॥

किंगोत्रोनुसौम्यासीति सहोवाचनाहमेतद्वेदभोयद्गोत्रोहमस्म्य पृच्छंमातरꣳसामाप्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरंती-परिचारिणीयौवने त्वामलभेसाहमेतन्नवेद यद्गोत्रस्त्वमासि जबालातुनामाहमस्मि सत्यकामोनामत्वमसीतिसोहꣳसत्यकामोजाबालोस्मि भोइ ति तꣳहोवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हतिसमिधꣳसौम्याहरेति छान्दोग्ये० प्र० ४ खण्ड ४

कि हे सौम्य! तेरा क्या गोत्रहै जाबालि बोले यह मैं नहीं जान्ता मन मातासे यह पूछाथा उसने कहा मैं घरके कामकाजमें फंसीरहीथी युवावस्थामें तेरा जन्म हुआ पिता परलोक सिधारे मुझे गोत्रकी खबर नहीं तुह्मारा नाम सत्यकाम मेरा नाम जबालाहै यह बात सुन. गौतमजीने जाना कि ब्राह्मण विना सत्ययुक्त छलरहित ऐसे वाक्य और कोई नहीं कहसक्ता क्योंकि ''ऋजवो हि ब्राह्मणाः''ब्राह्मण स्वभावसे सरल होते हैं, इस्से उसे निश्चय ब्राह्मण जानकर कहा कि समिधा लेआ और विधिपूर्वक उपनयन कराकर विद्या पढाई, केवल जाबालिका गोत्र नहीं विदित था उसकी माको उसकी याद नहीं थीः यदि वोह क्षत्रियादि वर्ण होता तौ उसकी माता उसे अवश्य बतादेती, उसे तौ विद्या अध्ययन करनेमें ऋषिने ब्राह्मण निश्चय विचार अध्ययन कराया स्वामीजीने यह विवाह प्रकरणमें झगडा उठाया है जाबालिके इतिहाससे ब्राह्मण होना सिद्धहै अब भी बडे एल एल डी द्विजातियोंसे गोत्र प्रवर पूछिये तौ वे आपका दम भरनेवाले मुख देखते रहजायँगे तौ क्या वे शूद्र हैं ॥

अब विश्वामित्रका चरित्र सुनिये जिनको आजतक कौशिक अर्थात कुशिकके वंशमें उत्पन्न और गाधिपुत्र सब कोई जानते और कहते हैं, इनकी कथा प्रसिद्ध बहुत है वाल्मीकिसे सार लेकर लिखते हैं कि वशिष्ठजीसे कामधेनुके मांगनेपर न मिलनेसे क्रोधित हो युद्ध कर हार गये तौ ब्रह्म तेजको क्षत्रबलसे अधिक समझ तप करनेको चलेगये और कई सहस्र वर्ष तप करकेभी ब्रह्मबलकी प्राप्ति न हुई पश्चात पुनः अत्युग्र

तपस्या कर ब्रह्माजीके वर देने और वशिष्ठके अंगीकार करनेसे ब्रह्म तेजयुक्त हुए यह बात नहीं कि वोह ब्राह्मण अपनेको कथन करें, आजतक उन्हें कौशिक कहते हैं और उनकी संतानको क्षत्री कहते हैं ब्रह्मतेजकी उनको प्राप्ति हुई सो इस कारणसे नहीं यत्न किया कि उच्च गोत्र ब्राह्मणकी कन्यासे विवाह करें केवल यही इच्छाथी कि जैसे वशिष्ठके ब्रह्मदंडने सब मेरे अस्त्र निष्फल करदिये ऐसाही मेरे अस्त्रका प्रभाव हो जाय सोभी बहुत तपसे और ब्रह्माजीके वरसे तथा वसिष्ठ ऐसे त्रिकालदर्शीके ब्रह्मर्षि कहनेसे विश्वामित्रने अपनेको कृतार्थ माना और यह जो स्वामीजीने लिखा कि (उत्तम विद्यावाला ब्राह्मणके योग होसक्ताहै मूर्ख शूद्र होताहै) तौ क्या विश्वामित्रमें उत्तम विद्या नथी क्या वेद नहीं पढे थे वे तौ बड़े विद्वानथे क्यों कि बहुतसे मंत्रोंके संग उनका नाम उच्चारण किया जाताहै, यदि पढनेहीसे ब्राह्मण होता तौ विश्वामित्रजीको इतना परिश्रम क्यों करना पडता, और सभी विद्यावान् ब्राह्मण कहलाते हजारों वर्ष तप करकै ब्रह्माके वरसे एक राजऋषि ब्रह्मर्षि कहलाया, देखिये कलियुगकी महिमा अब सत्यार्थप्रकाशके चार अक्षर पढकै नाई गड़रियेभी ब्राह्मण बन्ते हैं, इनको दयानंदका वरदान है और स्वामीजीने दोही वर्ण प्रधान रक्खे हैं दो वर्ण गड़ाप गये क्षत्रिय वैश्य इनको कुछ न लिखा इनमेंभी विद्यावान् और मूर्ख होतेहैं जब विद्यावान् ब्राह्मण और मूर्ख शूद्र कहाते हैं तौ दोही वर्णोंकी आवश्यकता है यह चार वर्ण मानने वृथाही हुए परन्तु विश्वामित्रकी उत्पत्ति भी ब्रह्म तेजसे है जब विश्वामित्रकी बडी भगिनी सत्यवती ऋचीक ऋषिने विवाही उस सत्यवती और उसकी माताकी प्रार्थनासे उन्होंने दो चरु बनाकर कहा एक इसे तुम भक्षण करना और यह अपनी माताको देना दोनोंके पुत्र होंगे, जब पुत्रीने मातासे यह सब वृत्तान्त कहा तब उसने चरु बदल कर खालिया पश्चात् ऋषिने अपनी स्त्रीमें क्षत्र तेज देखकर कहा यह क्या कारण जो तुम्हारा गर्भ क्षत्रतेजयुक्तहै, तब उसनें वृत्तान्त कहा कि चरु बदल गया ऋषिने कहा कि तुम्हारे पुत्र क्षत्रधर्मयुक्त होगा और उसके ब्रह्मज्ञानी, स्त्रीने कहा ऐसा नहो, चाहै पोता होजाय ऋषिने कहा मेरे पोते बेटेमें भेद नहीं पोताही होगा उससे परशुराम हुए सत्यवतीकी माताके ब्रह्मतेज युक्त विश्वामित्र हुए जब कि असलमें ही ब्रह्म तेज से युक्त हैं तब उनके ब्रह्मर्षि हो जानेमें क्या आश्चर्य है, जो स्वयं ब्रह्मतेजसे युक्त और तपभी महाकर चुके हैं इससे कुछ आश्चर्य नहीं, यह वाल्मीकि बालका

ण्डका सारहै और महाभारत अनुशासन पर्वमें भी यह कथा इसी प्रकारहै चरु बदलनेपर ऋषि कहतेहैं अ० ४ ॥

मया हि विश्वं यद्ब्रह्म तच्चरौ सन्निवेशितम् ।
क्षत्रवीर्यं च सकलं चरौ तस्यानिवेशितम् ॥

मैंने तुह्मारे चरुमें पूरा ब्राह्मणपन रक्खाथा और तुह्मारी माताके चरुमें पूरा क्षत्रियपन स्थापन कियाथा, जिससे तुह्मारे उत्तम ब्राह्मण और तुह्मारी माताके क्षत्रिय सन्तानहो सो तुमने उलटा किया ॥

तस्मात्सा ब्राह्मणश्रेष्ठं माता ते जनयिष्यति ।
क्षत्रियन्तूग्रकर्माणं त्वं भद्रे जनयिष्यसि ॥

इससे तुह्मारी माताके ब्राह्मण श्रेष्ठ होगा और तुह्मारे उग्रकर्मा क्षत्रिय जन्मैगा ॥

विश्वामित्रं च जनयद्गाधिभार्या यशस्विनी ।
ऋषेः प्रसादाद्राजेन्द्र ब्रह्मर्षिं ब्रह्मवादिनम् ॥
ऋचीकेनाहितं ब्रह्म परमेतद्युधिष्ठिर ।

गाधिकी यशस्विनी भार्याने हेराजन् ! ऋषिके प्रसादसे ब्रह्मर्षि ब्रह्मवादी विश्वामित्रको प्रकट किया: उनके गर्भमेंही ऋचीक ऋषिने ब्रह्मत्व स्थापन कियाथा यह जन्मसेही ब्रह्मर्षि ब्रह्मवादीथे और मातासे आये क्षत्रियपनको १५००० वर्ष तप करके निवृत्त किया, विश्वामित्र उत्पत्तिसे ही ब्राह्मणथे इनका कटाक्ष वृथाहै. देवसृष्टि और ऋषिसृष्टि अलौकिक होती है देवर्षिसृष्टिमें मनुष्योंकी मर्य्यादाका नियम नहीं है मानुषी शास्त्रकी मर्यादा देवताओंपर ऐसा अधिकार नहीं कर सकती जैसा मनुष्योंपर भारतमें देव दैत्योंका जन्म अलौकिक हुआ है, जैसा यज्ञकुण्डसे द्रौपदीका होना इन्द्रादि देवताओंके पांचों पुत्रोंसे विवाह करना यह सब कुछ मनुष्योंपर नहीं लगता जब ऐसी सृष्टि होती है तभी कोई घोर संग्राम होता है पृथ्वीका भार उतारा जाता है यह विचित्र बात मनुष्योंमें नहीं लगती जो शापादिके कारण कभी २ ऐसा हुआ करता है यह शास्त्रका विधान नहीं है ॥

विश्वामित्रने परिश्रम तपका क्यों किया वोह तौ विद्यावान थे-इससे प्रत्यक्ष यह बात सिद्ध होती है कि केवल विद्या पढनेसे ब्राह्मण नहीं होता

(विश्वामित्रने जब त्रिशंकुको यज्ञ कराया था तौ ऋषियोंने कहा था कि जहां क्षत्रिय याजक, चांडाल यजमान, वहां हम नहीं जायँगे[1]) इससे जन्मसे जाति सिद्ध है यदि कहौ कि यह अधिक आयु और सहस्रों वर्ष तप करनेकी बात मिथ्याहै किसीने मिलादी है तो इसमें प्रमाण क्या है दोनों बातें एकही पुस्तकमें हैं; यदि वोह किसीने मिला दिया है तो यह उत्तर हो सक्ता है कि यह ब्रह्मर्षि होनेकी बात किसीने मिलादी हो तौ क्या आश्चर्य इसीप्रकार मतंग काभी चाण्डालसे ब्राह्मण होना मिथ्याही लिखा इस झूठकाभी कहीं ठिकाना है उसने जब ब्राह्मण होनेके निमित्त तप किया तब उससे इन्द्रने कहा—

ब्राह्मण्यं प्रार्थयानस्त्वमप्राप्यमकृतात्मभिः ।
विनशिष्यसि दुर्बुद्धे तदुपारम माचिरम् ॥ १ ॥
देवतासुरमर्त्येषु यत्पवित्रं परं स्मृतम्
चाण्डालयोनौ जातेन नतत्प्राप्यं कथञ्चन ॥ २ ॥
तदुत्सृज्येह दुष्प्रापं ब्राह्मण्यमकृतात्मभिः
अन्यं वरं वृणीष्व त्वं दुर्लभोयं हि ते वरः ॥ ३ ॥

महा० अनु० प० अ० २७

जब मतंगने ब्राह्मणहोनेके निमित्त तप किया तब इन्द्रने उसके वर मांगनेपर कहा हे दुर्बुद्धि ! तू ब्राह्मणहोना चाहताहै जो साधारण मनुष्योंको प्राप्त नहीं हो सकता तू नष्ट होजायगा इसकारण इस विचारसे उपराम कर ! देवता असुर मनुष्योंमें ब्राह्मणपन परमपवित्र माना गयाहै उस ब्राह्मणपनको चाण्डालयोनिमें उत्पन्न हुआ कभी प्राप्त नहीं होसकता २ फिरभी जब उसने तप किया तो अन्तमें इन्द्रने कहा, अशुद्ध शरीरवालोंको जो प्राप्त नहीं हो सकता ऐसे ब्राह्मणपनके वरको छोडकर तुम अन्यवर मांगो यह वर दुर्लभहै तुम ब्राह्मण नहीं होसकते ॥

बाबाजी कहते हैं ऋषि था ब्राह्मण हुआ इस झूठका कहीं ठिकानाहै । मनुजीभी जन्मसे जाति मानते हैं यदि पढे हुएकाही नाम ब्राह्मण होता तो मूर्ख ब्राह्मण होतेही नहीं, परन्तु मनुजी बेपढे भी ब्राह्मणमें ब्राह्मण शब्दप्रयोग करतेहैं ॥

---

१ वाल्मीकि रामायण बा० कां० स० ५९ श्लो० १३ क्षत्रियो याजको यस्येति।

यथाकाष्ठमयो हस्तीयथाचर्ममयोमृगः ॥ यश्चविप्रोन धीयानस्त्रयस्तेनाम बिभ्रति ॥ अ० २ श्लो० १५७
ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ॥ तस्मैह व्यंनदातव्यं नहिभस्मनि हूयते ॥ अ० ३ श्लो० १६८

जैसे काठका हाथी चमडेका मृग नाममात्र होतेहैं, इसी प्रकार बेपढा ब्राह्मण केवल नामका ब्राह्मण है १५७ बेपढा ब्राह्मण तुनकोंकी अग्निकी तरहसे शान्त होजाताहै, उसे हव्य कव्य न देनी चाहिये उसे देना राखमें होम करनाहै १६८ अब विचारिये यदि बेपढे शूद्रही होते तौ ब्राह्मणको विद्या रहित होनेसे मनुजीनें कैसे ब्राह्मण माना यदि ब्राह्मणकी कोई पदवी होती तो बेपढेका नामही ब्राह्मण न होता जैसे कि वकील तो वही कहावेगा जो पासकर चुका होगा और यदि बेपढेका नाम वकील कहदें तो भ्रान्ति नहीं तो और क्याहै इसी प्रकार यदि ब्राह्मण कोई पदवी होती या विद्वानहीका नाम होता तो मनुजी यह न लिखते कि वोह नामका ब्राह्मण है ब्राह्मणतो है चाहै पढानहीं है अपने कर्म नहीं करता इससे मूर्ख है इससे सिद्धहै कि वर्ण जन्मसे है कर्मसे अधिकार होताहै, वर्ण नहीं. और स्वामीजी, जन्मसे जाति नहीं मानेंगे तौ यह सामवेदका ब्राह्मण क्या कहताहै इसेभी न मानोगे क्या ॥

अङ्गादङ्गात्सम्भवसिहृदयादधिजायसे ॥ आत्मासिपुत्रमा मृथाःसजीव शरदः शतम् ॥ १ ॥ सामवेदस्यब्राह्मणभागे
और आत्मावैजायतेपुत्रः । ब्राह्मणम् २ ॥

यह दयानंदजीनेही सत्यार्थप्रकाश पृ० १२० पं० ४ में लिखाहै अर्थ हे पुत्र तू अंग २ से उत्पन्न हुए वीर्यसे और हृदयसें उत्पन्न होताहै तू मेरा आत्माहै मुझसे पूर्व मतमरै किन्तु सौ वर्षतक जी १ आपही पुत्ररूपसे उत्पन्न होताहै यह ब्राह्मणवाक्य हुआ, अब विचारनेकी बात है कि, जब संतान अंगअंगसे उत्पन्न हुए वीर्यसे उत्पन्न होता है और पिताका आत्माहै तौ यह असंभवहै कि, पिताके गुण उसमें न आवैं और जिसमें पिताके गुण वा माताके गुण न आवैं वोह संदिग्ध पुत्र है जो कि पि-

१ सन् १८९७ सत्यार्थप्रकाश पृ० १२४यह मंत्र निरु० ३।४के पतेका लिखाहै जिसमें 'आत्मा वै पुत्रनामासि' ऐसा पाठ लिखाहै पहलेमें ऊपरका वचन सामवेदका लिखाहै अब चेले पता लगावैं स्वामीको झूठलावैं ।

ताका आत्माहै और जो पिताके प्रत्येक अंग और वीर्यसे उत्पन्न होताहै उसे दयानंदजी झट दूसरेका बनाये देतेहैं भला कभी वीर्यका प्रभाव छूटता है कभी नहीं आमकी गुठलीसे आमही उत्पन्न होताहै चाहें आम-खट्टे हों बबूरसे बबूरही उत्पन्न होताहै इसी प्रकार ब्राह्मणसे उत्पन्न हुआ ब्राह्मणही होताहै चाहे वोह विद्याहीन मूर्खहो, हाँ इतना तौ ठीकहै कि, मूर्ख ब्राह्मणकी प्रतिष्ठा नहीं होती अब इस मंत्रसे ही बुद्धिमान जान लेंगे कि, जिस वर्णका पिता है उसी वर्णका पुत्र होगा क्योंकि वोह पिताके प्रत्येक अंगसे उत्पन्न होताहै अब सृष्टि उत्पत्ति विषयमें भी जाति जन्मसेही सिद्ध होतीहै यह लिखा जाताहै दयानन्दजीने अङ्गादङ्गा-दिति यह सामवेदका मंत्र लिखा है परन्तु यह ब्राह्मण है मंत्र नहीं तीसरी सं० प्र० में बदलाहै ॥

पृ० ८७ पं० २१ ब्राह्मणोस्यमुखमासीद्बाहूरा जन्यः कृतः । ऊरूतदस्ययद्वैश्यः पद्भ्याᳩशूद्रो अजा यत । यजु० अ० ३१ मं० ११

इसके अर्थ स्वामीजी स० पृ० ८८ पं० ३ में लिखते हैं (अस्य) पूर्ण व्यापक परमात्माकी सृष्टिमें मुखके सदृश सबमें मुख्य उत्तम हो वोह ब्राह्मण बलवीर्यका नाम बाहूहै वोह जिसमें अधिकहो वोह क्षत्रिय. ऊरू कटिके अधो और जानुके ऊपर भागका नामहै, जो सब पदार्थों और सब देशों में ऊरूके बलसे आवै जावै वोह वैश्य और जो पद्भ्यां पगके अर्थात् नीच अंगके सदृश मूर्खत्वादि गुणवाला हो वोह शूद्रहै॥८९।७

पृ० ८८ पं० १० । यस्मादेतेमुख्यास्तस्मान्मुखतोह्य सृज्यन्त इत्यादि० श०

जैसा मुख सब अंगोंमें श्रेष्ठहै वैसे पूर्ण विद्या और उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त होनेसे मनुष्य जातिमें उत्तम ब्राह्मण कहाता है, जब परमे-श्वरके निराकार होनेसे मुखादि अंग नहीं हैं, तौ मुखसे उत्पन्न होना अस म्भवहै और जो मुखादि अंगोंसे ब्राह्मणादि उत्पन्न होते तौ उपादान कारणके सदृश ब्राह्मणादि आकृति अवश्य होती, जैसा मुखका शरीर गोलमाल है वैसेही उनके शरीरकाभी गोलमाल मुखाकृतिके समान होना चाहिये, क्षत्री वैश्य शूद्रोंका शरीर बाहु ऊरू चरणके समान आकारका होना चाहिये और जो कोई तुमसे प्रश्न करेगा

जो जो मुखादिसे उत्पन्न हुएथे उनकी ब्राह्मणादि संज्ञाहो तुम्हारी नहीं क्योंकि जैसे सब लोग गर्भाशयसे उत्पन्न होते हैं वैसेही तुमभी हो तुम मुखादिसे उत्पन्न न होकर ब्राह्मणादि संज्ञाका अभिमान करतेहो इसलिये मुखादिसे उत्पन्न होनेका अर्थ अशुद्ध और हमारा अर्थ सच्चा है ॥ ८९ ॥ २५ ॥

समीक्षा-स्वामीजी कहीं तौ बुद्धिके पीछे लाठी लेकर दौडतेहैं, पुरुषसूक्तके मंत्रमें सृष्टि उत्पन्न होनेका वर्णन है आप गुणकर्मके गीतगाने लगे सुनिये इस्से पूर्व यह मंत्र है ॥

यत्पुरुषंव्यदधुः कतिधाव्यकल्पयन्। मुखङ्किमस्यासीत्किम्बाहू किमूरूपादाउच्येते यजु० अ० ३१ मं० १०

(प्रश्न) जिस परमेश्वरका यजन किया उसकी कितने प्रकारोंसे कल्पना हुई उसका मुख भुजा ऊरू कौन हुए और कौन पाद कहे जाते हैं, इसके उत्तरमें (ब्राह्मणोस्येति) यह मंत्र है जिसका भाष्य दयानंदजी अशुद्ध करते हैं इसका अर्थ यह है कि (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (अस्य) इस परमेश्वरका (मुखम्) मुख (आसीत्) हुआ (राजन्यः) क्षत्री (बाहुः कृतः) बाहुरूपसे निष्पादित हुआ अस्य यत् ऊरू तत् वैश्यः) इसकी जो ऊरूहै तद्रूप वैश्य हुआ (पद्भ्यां) चरणोंसे (शूद्रः) शूद्र (अजायत) उत्पन्न हुआ. इस प्रकारसे इस मंत्रका अर्थ है इस मंत्रमें कोई ब्राह्मण क्षत्रीके लक्षण नहीं पूछताहै किन्तु यह ईश्वरके विषय प्रश्न है इसमें कल्पना और उत्पत्ति दोनों प्रकरणहैं उसके मन श्रोत्रादि सबका उल्लेख किया है यदि यह अर्थकरैं कि, जो ऊरूके बलसे आवै जावै वोह वैश्यहै तौ यह जितने ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र आदि परदेशमें आते जाते तथा यात्रा करतेहैं तथा राजाकी सेना यह ऊरूकेही बलसे परदेशमें जातेहैं तौ यह सबही वैश्य होने चाहिये और जो रेलके बलसे परदेश जाय उनका क्या नामहै यह आपने नहीं लिखा वेदमें तो आपने रेल तारका वर्णन निकालाहै, धन्य है यवन म्लेच्छ सबही परदेश आने जाने वालोंको आपने वैश्य बनादिया, परन्तु वे अपने नगरमें काहेके बलसे चलते हैं जो और कुछ बल होय तो जाने दीजिये और यदि घरमें भी जांघोंहीके बलसे आनाजाना है तौ सब जगतही वैश्य होगया, खूब निवटे ऊपर आपने ब्राह्मण और शूद्र दोही वर्ण रक्खे इस तीसरेमें सबको मेट एकही रक्खा (और पद्भ्यां पगके

सदृश मूर्खत्वादि गुण होनेसे शूद्रहैं) यह स्वामीजीने एकही विचित्र बात कही है क्या चरण भी मूर्ख होते हैं चरणोंके भी ज्ञानेन्द्रिय होती हैं पैरमें कौनसी मूर्खताहै, किसीका माल मारा या किसीको दुर्वाक्य कहा पैरको मूर्ख कहना ऐसा है जैसे ईट पत्थरसे बात करनी और (पद्भ्यां) चरणोंसे यह पंचमी विभक्ति कहां खोगई, और जनी प्रादुर्भावेसे अजायत बन्ताहै, जिसके अर्थ उत्पन्न होनेके हैं तब यह अर्थ होताहै कि, चरणोंसे शूद्र उत्पन्न हुए, और यही शतपथ ब्राह्मणमें लिखा है कि जिस कारणसे पूर्व सृष्टिकालसे ब्राह्मण और वर्णोंमें मुख्य और उत्तम हैं इसी कारण यह मुखसेही उत्पन्न किये गये, आगे श्रुतिमें भी उत्पन्न होनेका वर्णनहै कि (चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत) अर्थात् मनसे चंद्रमा और नेत्रोंसे सूर्य उत्पन्न हुआहै आगे इस सूक्तमें सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति लिखी है इससे सब उत्पन्न होनेका प्रकरणहै कहिये क्या इसका भी अर्थ आप कुछ बदलैंगे यही कहदो कि चन्द्रमाका नाम मनहै, चक्षुका सूर्य है, कोई कहै कि, अमुक पुरुषसे दयानंदकी उत्पत्ति हुई तौ क्या स्वामीजी उसका यही अर्थ करैंगे कि, वेदमें रेलतार निकालने, नियोग ठहराने, ग्यारह पति कराने, मूर्तिखंडन करने, विधवाकी कामाग्नि बुझाने, वर्णसंकरकी रीति चलानेवालेको दयानंद कहते हैं तौ बस फिर क्या है १०८ श्री लिखकर परमहंस सभी बन जायँगे और यह जो लिखाकि (परमेश्वरके निराकार होनेसे मुखादि अंग नहीं हैं उसके मुखसे उत्पन्न होना असंभवहै) जब परमेश्वरका आकारही नहीं है तौ यह साकार सृष्टि क्या स्वामीजीके घरमेंसे आगई निराकारसे तौ निराकारही होना चाहिये था, परन्तु उससे संसार मूर्तिमान् उत्पन्न हुआ है यथा–

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऋचःसामानिजज्ञिरे । छन्दांꣳसिजज्ञिरेतस्माद्यजुस्तस्मादजायत १ यजु० अ० ३१ मं० ७

तस्मादश्वा अजायन्त यजु० अ० ३१ मं० ८

गावोहजज्ञिरे तस्मात् यजु० अ० ४१ मं०८

चन्द्रमामनसो जातः अ० ३१ मं०१२

मुखादग्निरजायत अ० ३१ मं० १२

यदि वोह निराकार है कोई अंग उसके नहीं हैं तौ उस्से (ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद उत्पन्न हुए १ उस्से घोडे उत्पन्न हुए २ उस्से गायें उत्पन्न हुई हैं मुखसे अग्नि उत्पन्न हुआ. यह निराकारसे साकार कैसे उत्पन्न हो गये, यदि कहो कि वेदका अंगिरादिके हृदयमें प्रकाश हुआ तौ वे अंगिरा आदि कहांसे आगये, और जो कहो कि आप होगये तो स्वयंभू होनेसे वे ही ईश्वर हैं और जो कहो कि, ईश्वरने बनाये हैं तो क्या ईश्वर मनुष्याकृतिका है और गाय घोडे बकरी कहांसे उत्पन्न होगये, क्या इनकाभी किसीके हृदयमें प्रकाश करदिया था और जिनके हृदयमें कियाथा वे कहांसे आये, इसीपर स्वामीजी अपनेको तत्वज्ञानी मानते हैं, ईश्वरकी शक्तिकी कुछभी खबर नहीं वोह जो चाहै सो कर सक्ता है, धन्य है स्वामीजी परमेश्वरके अंगादि होना असंभव है तौ सृष्टि होनाभी असंभव है यह भी याद है जो सत्यार्थप्रकाश १८८ पृष्ठ में लिखा है (अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः) विना हाथ सब कुछ ग्रहण करता बिनुपग चलता विना नेत्र देखता विना कान सुन्ता है तौ इस आपके ही अर्थानुसार वोह मुखादि न होनेसे भी मुखके कार्य करता हुआ मुखसे ब्राह्मणको उत्पन्न करसक्ता है क्योंकि सर्वशक्तिमान् है और "स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रियाच" उसमें सर्वोत्तम शक्ति जिसमें अनन्त बल ज्ञान और अनन्त क्रिया है यह उसमें स्वाभाविकी अर्थात् सहजमें सुनी जातीहै इसी प्रकार इसी श्रुतिका अर्थ मनुजीने लिखा है ॥

लोकानांतुविवृद्ध्यर्थंमुखबाहूरुपादतः ।
ब्राह्मणंक्षत्रियंवैश्यंशूद्रंचनिरवर्त्तयत् मनु० अ० १ श्लो० ३१

लोकोंकी वृद्धिके अर्थ ईश्वरने मुख बाहु ऊरु चरणसे ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्रको बनाया, इससे स्वामीजीका अर्थ मिथ्याहीहै (और यह जो लिखा कि उपादान कारणके सदृश उत्पत्ति होनी चाहिये,तौ मुखसे मुखकैसे उत्पन्न होते) धन्य है इस बुद्धिको, जब उपादान कारणसे उत्पन्न होते हैं तौ जो योनिसे होते हैं वे सब योनिके आकारवाले होने चाहिये निराकारसे निराकार होना चाहिये, धन्य है यह गपोडा तौ गहरी भंगमें लिखा होगा, यही बुद्धि वेदभाष्य रचना करती है अब आगे सुनिये ॥

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥ २६ ॥

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनैः ॥
बैजिकं गार्भिकं चैनोद्विजानामपमृज्यते ॥ २७ ॥
स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्ययासुतैः ॥
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयंक्रियतेतनुः ॥ २८ ॥
प्राङ्नाभिवर्धनात्पुँसोजातकर्मविधीयते ॥
मंत्रवत्प्राशनंचास्यहिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥ २९ ॥
नामधेयंदशम्यांतुद्वादश्यांवास्यकारयेत् ॥
पुण्येतिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥ ३० ॥
मंगल्यंब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्यबलान्वितम् ॥
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्यतुजुगुप्सितम् ॥ ३१ ॥
शर्मवद्ब्राह्मणस्यस्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम् ॥
वैश्यस्यपुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्यप्रेष्यसंयुतम् ३२ मनु० अ० २
शर्मब्राह्मणस्य वर्मक्षत्रियस्य गुप्तेतिवैश्यस्य–आश्व०

• वैदिक जो पुण्य कर्म हैं उनसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंका गर्भाधानादि संस्कार करना सर्वथा विधि है, क्योंकि वैदिक संस्कार पवित्र और पापनाशकहै और लोक परलोकमें सुखका हेतु है २६ गर्भाधान संस्कार जातकर्म चूडाकरण मौंजीबंधन इनसे वीर्यादि दोषके पाप और गर्भसंबंधी पाप दूर होते हैं २७ अध्ययन व्रत हवन त्रैविद्या ऋगादि वेद यज्ञ पुत्रोत्पादन पंचमहायज्ञ इनके सम्यक् अनुष्ठान करनेसे यह शरीर ब्रह्मप्राप्ति (मुक्ति) के योग्य होता है (दयानंदजी ब्राह्मी शब्दका अर्थ यह करते हैं कि "ब्राह्मणका" अर्थात् यह शरीर ब्राह्मणका किया जाता है और व्रतके स्थानमें 'जपैर्होमैः' पाठ लिखा है व्रतसे घबराते हैं यह अशुद्ध है, क्योंकि ब्राह्मणका शरीर तौ माता पितासे बनता है) २८ नाभि छेदनके पूर्व पुरुष जातकर्म संस्कार करै और गृह्योक्त मंत्रोंसे सुवर्णकी शलाकासे मधु घृत चटवावै इससे स्वभावमें मधुरता होगी २९ दशवें या बारहवें दिन पुण्य तिथि मुहूर्त्तमें अच्छे नक्षत्रमें नाम धरै ३० ब्राह्मणका शुभ वाचक क्षत्रियका बलयुक्त वैश्यका धन पुष्टि युक्त शूद्रका जुगुप्सित नाम धरै ३१ ब्राह्मणके नामान्तमें शर्मा क्षत्रियके वर्मा वैश्यके गुप्त शूद्रके नामके अन्तमें दासपद रक्खै ॥ ३२ ॥

अब विचारनेकी बातहै जब शर्मा वर्मा आदिः चिह्न लगाकर तीन वर्णोंके नामकरण किये तथा पुंसवनादि किये तौ जब स्वामीजी गुण कर्म के अनुसार जाति मान्ते हैं तौ अभी जन्मसे तो सन्तानोंकी दशा विदितही नहीं कि बडे हुए वे चारों वर्णोंमें कौन वर्णके होजाय, फिर यह ब्राह्मणादिका नाम शर्मादि शब्द लगाकर रखना वृथा ही हुआ, यदि वोह शूद्र होगया तौ कई संस्कार वृथा होगये, और शूद्र यदि ब्राह्मण होजाय तौ उसमें कई संस्कारोंकी न्यूनता रह गई, यदि गुण कर्मसे जाति होती तौ जन्मसे संस्कार नहीं होते, परीक्षाके समय हुआ करते क्योंकि उत्पन्न होतेही पुत्रका नाम 'बी ए' रखना वृथा है, जब पढजाय तभी 'बी ए' होताहै अन्यथा नहीं. इसी प्रकार यदि ब्राह्मण कोई पदवी होती तौ परीक्षाके उपरान्त ब्राह्मण क्षत्रिय शूद्रादिकी पदवी दीजाती, जन्मसे संस्कार नहीं होते इससे स्वामीजीका गुण कर्मसे जाति मान्ना कथन सर्वथा मिथ्याहै औरभी प्रमाण सब सुनिये ॥

अष्टमेवर्षेब्राह्मणमुपनयेत् गर्भाष्टमेवा,एकादशेक्षत्रियं द्वादशेवैश्यम् आषोडशाद्ब्राह्मणस्यानतीतः कालः आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य, आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य, अतऊर्ध्वपतितसावित्रीकाभवन्ति आश्व०॥

गर्भाष्टमेब्देकुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥ गर्भादेकादशे राज्ञोगर्भात्तुद्वादशेविशः। मनु० ॥ अ० २ श्लो० ३६

ब्रह्मवर्चसकामस्यकार्यं विप्रस्यपंचमे ॥

ब्राह्मणका यज्ञोपवीत आठवें वर्षमें वा पांचवें वर्षमें १६ वर्ष पर्यंत करदे क्षत्रियका ग्यारह वर्षमें वा छःमें २२ वर्षतक होजाना चाहिये,वैश्यका बारहवें वर्षमें वा आठवें, वर्ष २४ तक होजाना चाहिये, इसके उपरान्त तीनों वर्ण गायत्रीपतित होते हैं, छोटी उमरमें यज्ञोपवीत विधि विशेष विद्या आनेके कारण मनुजीने लिखी है ॥

यहाँतकभी सब कृत्य जन्मानुसारही होते चले आये हैं क्योंकि अभीतक वेदविद्यारहित तीनों वर्ण हैं, क्योंकि उपनयन विना वेदारम्भ नहीं होता और फिर तीनोंके यज्ञोपवीतका कालभी तौ पृथक २ है यथाहि॥

वसन्तेब्राह्मणमुपनयेत् ग्रीष्मेराजन्यं शरदिवैश्यं शतपथे०

वसन्त ऋतुमें ब्राह्मणका गरमीमें क्षत्रीका शरद् ऋतुमें वैश्यका यज्ञोपवीत करना और यज्ञोपवीतके समय भोजनभी व्रतमें तीनों वर्णका पृथक् २ है यथा

पयोव्रतोब्राह्मणो यवागूव्रतोराजन्य आमिक्षाव्रतोवैश्यः

व्रती ब्राह्मणका पुत्र दुग्ध, क्षत्रियको यवागू अर्थात् यवका मोटा आटा दलके गुडके साथ पतला घोलकर पीना, वैश्य आमिक्षा अर्थात दहीसे चौगुना दूध एकगुनी खांड केशर डालकर पिये और व्रत रहै यहां भी जन्मसेही जाति चली आती है और सुनो ॥

मौंजीत्रिवृत्समाश्लक्ष्णाकार्या विप्रस्यमेखला
क्षत्रियस्यतुमौर्वीज्यावैश्यस्य शणतान्तवी ४२ अ० २
कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतंत्रिवृत् ।
शणसूत्रमयं राज्ञोवैश्यस्याविकसौत्रिकम् ४४ ॥
ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियोवाटखादिरौ ।
पैलवौदुम्बरौ वैश्योदंडानर्हति धर्मतः ४५ ॥
केशान्तिकोब्राह्मणस्य दंडः कार्यः प्रमाणतः ।
ललाटसंमितोराज्ञः स्यात्तुनासांतकोविशः४६ ॥
भवत्पूर्वंचरेद्भैक्ष्यमुपनीतोद्विजोत्तमः
भवन्मध्यंतुराजन्यो वैश्यस्तुभवदुत्तरम् ४७ मनु० अ० २

ब्राह्मणकी मेखला त्रिगुण सुख स्पर्शवाली मुंजकी करै क्षत्रियकी मूर्वासे धनुषके गुणकी समान करै वैश्यकी मेखला सनके डोरेका करै४२ब्राह्मणका कपासका यज्ञोपवीत ऊर्ध्व वृत्त और त्रिगुण होवै, सनके डोरेका क्षत्रियका, और वैश्यका मेषलोमनिर्मित बनावै ४४ ब्राह्मणोंका दंड बेल पलाशका, क्षत्रियका बट खदिरका, वैश्यका पील्ड़ वा उदुंबरका[1] करै ४५ ब्राह्मणका दंड शिरके बालतक लम्बायमान, जत्रियका ललाटतक और वैश्यका नासिकातक लम्बायमान दंड होवै ४६ ब्राह्मण ब्रह्मचारी भिक्षा मांगते समयमें भवत् शब्दको प्रथम उच्चारण करै, जैसे भवति भिक्षां देहि, क्षत्रिय मध्यमें भिक्षां भवति देहि, वैश्य अन्तमें भिक्षां देहि भवति ॥ ४७ ॥

१ गूलर ।

यहांतकभी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंकी मौंजी, यज्ञोपवीत, दंड, भिक्षामांगनेकी विधि पृथक् २ वर्णन करी है, जिस्से कि देखतेही चीन्ह लिये जांय कि यह ब्रह्मचारी कौन वर्णका है, अब गुरुके यहां पढनेसे वोह कौनसी बात उनमें प्रवेश करगई कि, वर्ण बदल गये वे मौंजी आदि तौ पूर्ण विद्या धारण करने तक धारण करेंगे और इनमें शूद्र पढने गया नहीं है वोह कैसे उच्च वर्ण होगा अच्छा अब और सुनो * ॥

अध्यापनमध्ययनं यजनंयाजनं तथा।
दानंप्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥मनु०अ०१श्लो०८८से

वेद पढना पढाना यज्ञ करना कराना दान लेना देना यह छः कर्म ब्राह्मणोंके वास्ते नियत किये गये और—

शमोदमस्तपः शौचंक्षान्तिरार्जवमेवच
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥१॥ भ० गीता

मनसे किसीका अनिष्ट चिन्तन न करना इन्द्रियोंका रोकना पवित्रता शान्ति सहना आर्जव सीधापन कोमलता ज्ञान विज्ञान आस्तिक्रता ईश्वरका मानना यह ब्राह्मणोंके स्वाभाविक कर्महैं ॥ १ ॥

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेवच
विषयेष्वप्रसक्तिश्चक्षत्रियस्यसमासतः मनु० १
शौर्य्यंतेजोधृतिर्दाक्ष्यं युद्धेचाप्यपलायनम्
दानमीश्वरभावश्चक्षात्रंकर्म स्वभावजम् भ०गी०२

प्रजाका रक्षण दान देना यज्ञ करना विषयोंमें नहीं फँसना वेद पढना यह कर्म क्षत्रियके हेतु बनाये१और शूरता तेज धृति धैर्य चतुरता युद्धसे नहीं भागना दान देना ईश्वरमें भाव करना यह क्षत्रियोंके स्वाभाविक कर्म हैं २ उसके अर्थ स्वामीजीने पृ० ९१ पं० १ (इज्या) अग्निहोत्रादि करना कराना (अध्ययन) वेद पढना पढाना यह क्षत्रियोंके कर्म लिखे हैं सो हठ धर्मी है क्षत्रिय पढावें यह आज्ञा मनुजी नहीं देते यथाहि॥

अधीयीरंस्त्रयोवर्णाःस्वकर्मस्थाद्विजातयः ॥ प्रब्रूया
द्ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः १ अ०१० श्लो०१

* भा० प्र० के कर्ता यह सब प्रमाण हजम करगये मानों एकप्रकारसे जाति जन्मसे नहीं मानली।

तीनों वर्ण अपने कर्ममें स्थित होके वेदोंको पढैं इनकौ ब्राह्मण पढावै क्षत्रिय वैश्य न पढावैं यह निश्चय है क्योंकि ॥

वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठचान्नियमस्य च धारणात्
संस्कारस्यविशेषाच्चवर्णानांब्राह्मणः प्रभुः ३

जातिकी उत्कर्षता उत्तम अंगसे उत्पन्न होने वेदके धारण करने तथा संस्कारकी अधिकतासे वर्णोंका ब्राह्मणही गुरु वा प्रभुहै. इस कारण वोही पढानेका अधिकारी होताहै ॥

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेवच
वणिक्पथंकुसीदंचवैश्यस्यकृषिमेवच मनु० ९०
कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् भ० गी०

पशुओंकी रक्षा करनी दान करना वेद पढना व्यापार करना व्याज लेना खेती करना यह कर्म वैश्योंके अर्थ बनाये १ खेती गोपाल नव व्यापार यह वैश्योंके स्वभावमें रहता है ॥

एकमेवहि शूद्रस्य प्रभुःकर्म समादिशत्
एतेषामेववर्णानां शुश्रूषामनसूयया १ मनु० ९१
परिचर्यात्मकंकर्म शूद्रस्यापिस्वभावजम् भ० गी०

शूद्रका एकही कर्म है निन्दाको छोडकर तीनों वर्णोंकी सेवा करना यह मनुजीने ठहरा दियाहै गीतामें लिखाहै शूद्रका सेवा करना यह स्वाभाविक कर्म है इससे यह बात सिद्ध होती है कि ब्राह्मणको ऐसे क्षत्रियको ऐसे कर्म करने चाहिये यह अर्थ नहीं है कि इस कर्मके करनेसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र होताहै, किन्तु चारों वर्ण प्रथम उत्पन्न हुए पश्चात् उनको कर्म सोंपे गये जैसे कोई कहै कि यज्ञदत्त तुम यह यह काम किया करो तो क्या इसके यह अर्थ होंगे कि जो अमुक २ कार्य करै वोही यज्ञदत्त होताहै, इससे विदित हुआ यज्ञदत्त किसी पुरुषका नाम पूर्वकालसे है अब उसको कार्य सौंपे गये हैं, यदि कर्म करनेसे ब्राह्मणादि होते तो ऐसे लिखते कि जो अध्ययनादि करै वोह ब्राह्मण होताहै सो यहां यह बात नहीं किन्तु उनको कार्य सौंपे हैं जैसे कि पहले तो चारों वर्णोंके नाम पीछेसे उनके काम और फिर ॥

अतीत्यहिगुणान्सर्वान्स्वभावोमूर्ध्निवर्तते

स्वभाव सबसे अधिक बलवानहै, जिसके स्वभावमें जो बातहै वोह कभी नहीं जाती, गुणीसे गुण अलग नहीं होता, और यहभी तौ सोचनेकी बातहै कि बड़ा होना कौन नहीं चाहते, यदि उपरोक्त षट् कर्मोंहीसे ब्राह्मण होता तौ वेदतौ तीनों वर्ण पढे होतेथे क्या जो पढे हैं सो पढा नहीं सक्ते, जिसने यज्ञ किया है वोह करा नहीं सक्ता, फिर तो ब्राह्मणके षट्कर्मोंको सबही कोई करसक्ते थे, और सबही ब्राह्मण होजाते, सो मनुजीने निषेध कर दियाकि और वर्ण वेद विद्या नहीं पढा सक्ते, इससे स्पष्टहै कि ब्राह्मण जाति जन्मसेही होतीहै नहीं तौ विश्वामित्र तप न करते, यदि पढेका नाम ब्राह्मण होता तौ मूर्ख ब्राह्मण ऐसा प्रयोग मानवधर्मशास्त्रमें नहीं होता, और कर्म करनेसे जाति नहीं बदलती परशुरामने इक्कीसबार पृथ्वी भरके क्षत्री मारडाले, वेभी ब्राह्मण थे उन्हें आजतक कोई क्षत्री नहीं कहता, द्रोणाचार्य अस्त्रविद्या सिखाते थे उन्हे आजतक कोई क्षत्री नहीं कहतेथे, यह महाभारतमें युद्धभी करतेथे, यहभी क्षत्री नहीं कहलाये, ब्राह्मणही कहलाये, फिर कर्ण+ जब परशुरामके पास विद्या पढने गया तौ झूंठ बोला कि मैं ब्राह्मणहूं पीछे परशुरामने क्षत्री जान शापदिया यदि पढनेहीसे ब्राह्मण होता तो उसे क्यों छिपाना पडता और गुणकर्मसेही उच्च वर्ण होता तौ कर्णमें कौनसे गुण क्षत्रीके नहींथे सबही थे, थाभी असल क्षत्री पर अपनी जातिकी खबर न होनेसे सूतपुत्र नामसे ख्यात था जिस समय द्रौपदीके स्वयंवरमें धनुष कर्णने उठा लिया उस समय द्रौपदीने कहा हम सूतपुत्रको वरण नहीं करेंगी, क्योंकि यह क्षत्रिय जाति नहीं, यह सुन कर्णने लज्जित हो धनुष रखदिया कहिये यदि गुण कर्मसे जाति होती तौ कर्ण धनुष क्यों धरता और द्रौपदी क्यों आग्रह करती कर्णमें कौन बातकी कमताई थी परन्तु सूतके पालन करनेसे सूतजाति प्रसिद्ध होगई, द्रोणाचार्यने भीलको शूद्र जानकरही धनुर्वेद न दिया। फिर आदिपर्वकी कथा सुनिये जब गरुडजी अमृत लेनेको चले क्षुधार्तहो मातासे पूछने लगे कि, हम क्या खांय, माता वा कश्यपजी बोले कि समुद्रतटमें निषादगण जो धर्मभ्रष्ट हैं उनका भक्षण करो, परंतु इनमें जो ब्राह्मण होय उसका भक्षण नहीं करना क्योंकि ब्राह्मण जगद्गुरू हैं गरुड बोले जब सब ही धर्मभ्रष्ट हैं तौं मैं कैसे जानूंगा कि यह ब्राह्मण हैं उन्होंने कहा जिसके कंठमें जानेसे अग्नि बलने लगै उसे जानना कि यह ब्राह्मण है ॥

+ भा० प्र० के कर्ताको एक आंख महाभारतपरडालकर यह प्रकरण देखना चाहिये जो सन्देह मिटजाय।

यस्ते कंठमनुप्राप्तो निर्गीर्णं बडिशं यथा ।
दहेदंगारवत्पुत्र तं विद्याद्ब्राह्मणर्षभम् ॥
आदि० अ० २८ श्लोक १०

जब गरुडजी वहां जाकर भक्षण करने लगे तब एक ब्राह्मण स्त्रीसहित मुखमें आगया, और कंठमें दाहहोने लगा गरुडजीने उसे ब्राह्मण जान स्त्रीसहित तत्काल उगल दिया ॥

ततः स विप्रो निष्क्रान्तो निषादीसहितस्तदा ९ अ० २९
(तब वह ब्राह्मण निषादीसहित निकला)

इससे प्रत्यक्ष होगया कि ब्राह्मण जाति जन्मसे है कर्मसे नहीं क्यों कि भील देशके ब्राह्मणका कर्म न करनेसेभी ब्राह्मणत्व लोप नहीं हुआ होजाता तौ गरुडके कंठमें क्यों आग प्रज्वलित होती, और स्वामीजी तौ तीनों वर्णका अड़तालीस वर्षकी अवस्थामें विवाह करना कहते हैं शूद्रका तौ यज्ञोपवीतही नहीं लिखा, वोह वेद कैसे पढ सक्ताहै और बाकी तीनों वर्ण अपनी जाति अनुसार विद्या पढतेही रहैंगे उधर कन्या भी अपने कुलानुरूप विद्या पढती रहैंगी तौ जब वे पढ चुकैंगी तौ इस समयतक तो कुछ न्यूनाधिक हुआही नहीं वैश्य वैश्य ब्राह्मण ब्राह्मण क्षत्रिय क्षत्रिय बने हैं जब व्याहकी इच्छा होगी तौ अपनेही जातिमें होगा जब विवाहही होगया तौ सारा झगड़ाही मिटगया तौ विवाहमें भी समान जन्म व्यवस्था हुई ऊंच नीच जाती रही यहां तौ विवाह जन्म जातिसेही सिद्ध होता है और जातिका नहीं इससे स्वामीजीकी कर्मसे जाति यहां भी सिद्ध नहीं होती यदि शूद्र महामूर्खको कहते हैं जिसपर पढनेसे कुछ न आवै जब ऐसा था तौ शूद्रको पढनेका उपदेश देना वा उसको उच्च जाति बनाना स्वयं मूर्खता है इससे शूद्र मूर्खको कहते हैं यह कहना मिथ्याही है ॥

स० पृ० ८८ पं० २९

शूद्रोब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैवच ॥ मनु०

शूद्रकुलमें उत्पन्न होके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यके समान गुणकर्म स्वभाववाला हो तौ वोह शूद्र ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य होजाय और जो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य कुलमें उत्पन्न हुआहो और उसके गुणकर्म स्वभाव

शूद्रके सदृश हों तौ वोह शूद्र होजाय चारों वर्णमें जिस जिस वर्णके सदृश जो २ पुरुष वा स्त्री हो वोह २ उस वर्णमें गिना जावै ॥ ९०। १३

स० पृ० ८९ पं० ४

धर्मचर्ययाजघन्योवर्णः पूर्वंपूर्ववर्णमापद्यतेजातिपरिवृत्तौ १

अधर्मचर्ययापूर्वोवर्णोजघन्यं जघन्यंवर्णमापद्यतेजातिपरिवृत्तौ२

यह आपस्तंबके सूत्र हैं धर्माचरणसे निकृष्ट वर्ण अपनेसे उत्तम २ वर्णको प्राप्त होता है और वोह उसी वर्णमें गिनाजावै जिस जिसके योग्य होवै १ वैसे अधर्माचरणसे पूर्व अर्थात् उत्तम वर्णवाला पुरुष अपनेसे नीचे नीचे वर्णको प्राप्त होते हैं और वोह उसीमें गिना जावै ॥ ९०।२१

पृ० ८९ पं० १५ इससे वर्णसंकरता प्राप्त न होगी पुनः पं० १६ (प्रश्न) जो किसीका एकही पुत्र वा पुत्री हो वोह दूसरे वर्णमें प्रविष्ट होजाय तौ उसके मा बापकी सेवा कौन करेगा और वंशोच्छेदनभी हो जायगा इसकी क्या व्यवस्था होना चाहिये (उत्तर) न किसीकी सेवाका भंग न वंशच्छेदन होगा क्योंकि उनको अपने लडके लडकियोंके बदले स्ववर्णके योग्य दूसरे सन्तान विद्या सभा और राजकी व्यवस्थासे मिलेंगे पुनः पृ० ९१ पं० २८ क्योंकि उत्तम वर्णोंको भय होगा कि जो हमारे सन्तान मूर्खत्वादि दोषयुक्त होंगे तौ शूद्र हो जायंगे और नीच वर्णोंका उत्तम वर्ण होनेके लिये उत्साह बढैगा पृ० ९२ पं० ७ शूद्रको सेवाका अधिकार इसकारण है कि, वोह विद्यासे रहित मूर्ख होनेसे विज्ञानसंबंधी काम कुछभी नहीं करसक्ता ॥ ९१। ६ से ॥

स० पृ० ८६ पं २७

येनास्यपितरोयातायेनयाताःपितामहाः ।

तेनयायात्सतांमार्गंतेनगच्छन्नरिष्यते ॥ मनु० ४ । १७८

जिस मार्गसे इसके पिता पितामह चले हों उस मार्गमें संतानभी चलै परन्तु (सताम्) जो सत्पुरुष पिता पितामह हों उन्हींके मार्गमें चलैं और जो पितापितामह दुष्ट हों तौ उनके मार्गमें कभी न चलैं तथा पृ०८७पं०८ जिसका पिता निर्धनहो क्या उसका पुत्र धनी हो तौ धन फेंकदे और जिसका पिता अन्धा हो तो क्या उसका पुत्रभी अपनी आंखे फोडलेवै जिसका पिता कुकर्मी हो तो उसका पुत्रभी कुकर्महीं करै ? पं० १४ अथवा कोई क्राश्चियन या मुसलमान होगया हो उसको भी ब्राह्मण क्यों

नहीं मानते. ८८।१३ समीक्षा. बस इतनीही स्वामी जीकी दलीलहै कि शूद्र ब्राह्मण होजाता है (शूद्रो ब्राह्मणतामेति) इसका प्रसंग स्वामीजीने चालाकीसे बिगाडकर लिखा है इसी प्रकरणका पहला श्लोक यह है ॥

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसाचेत्प्रजायते ।
अश्रेयाञ्छ्रेयसींजातिंगच्छत्यासप्तमाद्युगात् अ० १० श्लो० ६४

शूद्रामें ब्राह्मणसे पारशवाख्य वर्ण उत्पन्न होता है, जो स्त्री उत्पन्न हो और वोह ब्राह्मणसे विवाही जाय और उससे कन्याहो वोह ब्राह्मणको विवाही जाय तो वोह पारशवाख्य वर्ण सातवें जन्ममें ब्राह्मणताको प्राप्त होता है, इसीप्रकार ब्राह्मणीमें शूद्रसे बालक उत्पन्न हो और वोह शूद्रासे विवाहा जाय उस्से पुत्र हो वोहभी शूद्रासे विवाह जाय तो सातवें जन्ममें वोह पाराशववर्ण शूद्रताको प्राप्त होता है ६४ इसीकेआगेका यह श्लोक है कि (शूद्रो ब्राह्मण तामेति) इसी प्रकारसे सातवें जन्ममें ब्राह्मणकुलमें शूद्रका विवाह होता रहै तो उसको ब्राह्मणता और ब्राह्मणका शूद्रासे विवाह होता रहै तो वोह सातवें जन्ममें शूद्रताको प्राप्त होजाता है यह पारशवाख्यके विषयमेंही जान्ना ६५ परन्तु यहभी विचारना योग्य है कि यहां (ता) प्रत्यय सदृश भाव अर्थमें है जैसे जो गुड बहुत खरा होता है तो उसको कहदेते हैं कि, पेडेकी जात मिठाई है अथवा खरबूजा मिश्रीसाहै यह पुरुष यज्ञदत्तसाहै कहिये इससे क्या सिद्ध हुआ यही सिद्धहै गुड पेडा नहीं किन्तु खराअधिक है अपनी जातिमें वोह खरा अधिक है किन्तु है गुडही इसी प्रकार औरभी दृष्टान्त समझ लीजिये इससे शूद्रताका यह अर्थ है कि(शूद्रसा)परन्तु रहता अपनी जातिहीमें है इसी प्रकार वोह शूद्रभी ब्राह्मणसा सातवें जन्ममें होजाता है किन्तु रहता अपनी जातिहीमें है स्वामीजी थोडेसे पढनेहीसे शूद्रको ब्राह्मण बनाये देते हैं, भाष्यभूमिकामें आपने लिखा है कि कुचर्या, अधर्माचरण, निर्बुद्धि, मूर्खता, पराधीनता, परसेवादि दोष दूषित विद्या ग्रहण धारणमें असमर्थ हो वोही शूद्रहै यथाहि (यत्र शूद्रोनाध्यापनीयोनश्रावणीयश्चेत्युक्तंतत्रायमभिप्रायः ॥ शूद्रस्प्रजाविरहितत्वाद्विद्यापठनं धारणविचारासमर्थत्वात्तस्याध्यापनं श्रावणंव्यर्थमेवास्तिनिष्फलत्वाच्च) यह स्वामीजीकी संस्कृत है कि शूद्रमें प्रज्ञा (बुद्धि) न होनेसे विद्यापठन धारण विचारमें असमर्थ होनेसे पढाना सुन्ना निष्फलही है ॥

इस लेखसे स्पष्ट है कि, शूद्र उसको कहते हैं जिसपर पढायेसे कुछ न आवै और उसका पढानाभी मिथ्याही है फिर आपही वेद पढनेकी आज्ञा देते हो जैसा लिखाहै कि (शूद्रायावदानि–शूद्रकोभी यह वेद पढावै) तो भला जो अध्ययनके योग्यही नहीं वोह कैसे वेद पढै अब यह मंत्र (यथेमांवाचं) इसमें शूद्रपद कर्मानुसार है या जन्मसे जाति मानी है यदि कर्मसे जाति मान्तेहो तो शूद्र कैसे वेद पढ सक्ताहै, जन्मसे जाति मान्तेही नहीं अब आपके लेखमें कौन बात सत्य मानी जावै जो शूद्रको पढाना माने तो जाति जन्मसे हुई जाती है जो कर्मसे माने तो शूद्रका वेद पढना बनता नहीं (प्रज्ञाविरहितत्वात्) क्योंकि जो पढनेके योग्य नहो उसको पढनेकी आज्ञादेनेवाला मूर्खही गिना जायगा और शूद्र महामूर्खको मान्ते हो तो (शूद्रोब्राह्मण०) और(अधर्मचर्यादि) मनु और आपस्तंबके वचनोंके आपहीके किये अर्थ मिथ्या हुए जाते हैं क्योंकि जब शूद्रमें धारणाही नहीं तौ पढैगा कैसे और उत्तम वर्णको विना पढै कैसे प्राप्त होगा, इससे शूद्रपद सदा जन्मसेहै अब आपके आपस्तम्ब सूत्रोंकी बात कहते हैं कि आपस्तम्बीय गृह्य और श्रौतसूत्र तथा यज्ञपरिभाषा इनमें तो यहसूत्र हमको कहीं नहीं मिले जब यह सूत्र वहां हैंनहीं तब उत्तर देना निरर्थक है तथापि उत्तर देतेहैं, 'वह उसी २ वर्णमें गिना जावै जिस जिसके योग्यहो, यह इन सूत्रोंके किनपदोंका अर्थहै, यदि जातिपरिवृत्तौका अर्थ गोलमालसे कियाहो सो भी नहीं होसक्ता क्योंकि '(जातेर्जायमानस्य शरीरस्यां परिवर्तने जाति परिवृत्तिस्तस्यां जातिपरिवृत्तौ) जाति नाम उत्पन्न हुए शरीरका परिवर्तन होने बदल जानेपर अर्थात मरकर द्वितीय शरीर धारण करनेपर नीचवर्ण धर्माचरणद्वारा अपने २ से पूर्व २ वर्णको प्राप्तहो जाताहै अर्थात क्षत्रियादि जन्मान्तरमें हो जाताहै जाति और जन्म दोनों शब्द एकही जन धातुसे बनते हैं इसलिये एकार्थ हैं जैसे गति, गमनका एक अर्थ है वैसेही परिवृत्ति और परिवर्तनका एक अर्थ हैं, अब ठीक अर्थ होनेसे गुण कर्मसे वर्ण व्यवस्था वाला बाबाजीका अर्थ कट गया था सूत्रोंका अर्थ संक्षेपसे यह हुआ कि जाति शरीरका परिवर्तन होनेपर धर्माचरणद्वारा नीच वर्ण पूर्व २ऊंचे वर्णस्थ माता पिताके घरमें जन्म लेता है ऐसेही उच्च वर्ण नीच कर्मसे दूसरे जन्ममें नीच हो जाते हैं ॥

यथाहि रमणीयाचरणा अभ्याशोह यत्ते रमणीयां योनिमाप द्येरन् ब्राह्मणयोनिम्वा क्षत्रिययोनिम्वा वैश्ययोनिम्वाथ य इह कपूयाचरणा अभ्याशोह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिम्वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा छान्दो० उप० प्र०६ खण्ड १० ॥

अर्थात् अच्छे आचरणवाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यकी योनि (शरीर) पाते हैं निकृष्ट आचरणवाले कुत्ते सूकर और चाण्डालयोनिको प्राप्त होते हैं कहिये अब भी शंका मिटी या नहीं और सुनो ॥

धर्मोपदेशदर्पेणविप्राणामस्यकुर्वतः ।

तप्तमासेचयेत्तैलंवक्त्रे श्रोत्रेच पार्थिवः ॥ मनु० अ०८ श्लो०२७२

जो शूद्र अहंकारसे ब्राह्मणको धर्मोपदेश करै तौ राजा उसके कान- में और मुँहमें तप्त तेल डलवादे (शूद्रको वेदविद्या छोडकर और ग्रंथोंमें अधिकार है) जब कि शूद्र ब्राह्मणको घमंड करके उपदेश देनेमें दंड- नीय है तौ इससे शूद्र वेद पढनेका अधिकारी नहीं इस्से चारों वर्ण जन्मसेही होते हैं कर्मसे नहीं और यदि कर्मसे जाति होती तो चार वर्णही होते पारशवादि संकर जाति न होती जिनका वर्णन मनु- जीने १० अध्यायमें किया है समझनेको यही बात बहुत है ॥

"आचारास्तूत्कर्षापकर्षविधायकाएवचित्रस्थानीयाभित्तावि तिसिद्धान्तः"अतएवशतपथे सर्वे न सर्वेणसंवदेत देवान्वाएषउ पावर्त्तते योदीक्षतेसदेवानामेकोभवति नवैदेवाः सर्वेणैवसंवद न्ते ब्राह्मणेनवै राजन्येनवा वैश्येनवा तेहियज्ञियास्तस्माद्य ज्ञेनशूद्रेणसंवादो विन्देदेतेषामेवैकंब्रूयादिमम् ॥

इसका यह आशय है वोह यज्ञ कर्ता सबसे सम्वाद न करे जो दी- क्षित होकर यज्ञ करताहै वोह देवतोंके काममें होताहै देवता सबसे सम्वाद नहीं करते ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यसेही करतेहैं कारण कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यही यज्ञके अधिकारी हैं शूद्र संस्काररहित होनेसे अधिकारी नहीं है शूद्रसे सम्वाद न करे इन्ही तीनोंमें एकसे बोले यदि कहो कि, गर्भाधानसे लेकर शूद्रके माता पिता इसका संस्कार करलें तौ यह उत्तर है

कि, जब अपनाही संस्कार नहींहै तौ वोह दूसरेका संस्कार कैसे कर सक्ते हैं जब सृष्टिके समयसेही शूद्र संस्काररहित है तौ इस मन्वन्तरके २८ वें कलियुगमें उनका संस्कार संभव नहीं है और यह आचार तौ निज जातिमें उत्कर्षता (उच्चपन) अपकर्षता (नीचपनके) विधायक है यह नहीं कि जाति बदलदें जैसे दिवाल तस्बीरों सहित दिवालही रहती है परन्तु वोह अच्छी कही जाती है ॥

त्रयाणांस्यादग्न्याधेयेह्यसम्बन्धः क्रतुषुब्राह्मणश्रुतिरित्यात्रेयः

यज्ञकर्ममें तीनहीं वर्णोंका अधिकार श्रुतिमें देखनेमें आता है यह आत्रेयका मतहै ब्राह्मणादि तीनही वर्णोंका अधिकार यज्ञादि प्रकरणमें वर्णन किया है यथा ॥

बार्हद्गिरंब्राह्मणस्यब्रह्मसामकुर्यात् पार्थुरस्यंराजन्यस्य रायो वाजीयं वैश्यस्य "शूद्रस्यतुसामनआमनन्ति"

यह सामवेदके स्थलहैं जो द्विजोंके अर्थ हैं शूद्रोंके लिये सामका कोई अधिकार नहीं है इस प्रकार शूद्रका अधिकार नहीं है (संस्कारेचतत्प्रधानत्वात्) मीमांसायाम्, व्रताख्यसंस्कार शूद्रके सुननेमें नहीं आता इस कारण शूद्र किसी अवस्थामें वेद पढनेका अधिकारी नहीं होता संस्कार पुरुषोंमें प्रधानहै (वेदेनिर्देशात्) वेदमें तीनही वर्णोंका निर्देश है (वसन्ते ब्राह्मणादि) सो पूर्व कह आये हैं और ॥

पद्युह वा एतत् श्मशानंयच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रंनाध्येतव्यम् तैत्तिरीय०

शूद्र एक जंगम श्मशान सदृश है इस कारण शूद्रके निकट वेदको उच्चारण नहीं करना जब कि, शूद्रके सामने उच्चारणभी मना है तौ पढाना कैसा, पाणिनिजीके मतमेंभी जन्मसेही जाति मानी है और शूद्रको अनधिकारता प्रगट है यथा ॥

शूद्राणामनिरवसितानाम् २ । ४ । १०

प्रत्यभिवादेऽशूद्रे ८ । २ । ८३

शूद्राचामहत्पूर्वाजातिः (वार्त्तिकम्) ३

इसपर पतञ्जलि महाराज भाष्यमें वर्णन करते हैं कि (भाष्यम्) ॥ यैर्भुक्ते पात्रे संस्कारेण शुध्यतितेऽनिरवसिताः । यैर्भुक्तेपात्रं संस्कारेणापि न शुध्यतिते निरवसिताः (बहिष्कृताः) इति व्याचख्यौ ॥

जिनके भोजन किये पश्चात् पात्र अग्नि आदिमें डालनेसे शुद्ध हो जाताहै उन शूद्रोंको अनिरवसित कहते हैं और जिनका भोजन किया पात्र संस्कारसे शुद्ध नहीं होता वोह निरवसित शूद्र कहाते हैं त्याज्य शूद्र उनसे अपना पात्रभी न छुवावै कंजरादि १ शूद्रको छोडकै प्रत्यभिवाद (प्रणामका उत्तर) जो है उसके टिको प्लुत होजाय और वोह उदात्तहो २ इससे मूर्खका नाम शूद्र नहीं है किन्तु जातिसे शूद्रपनाहै, क्योंकि वार्तिककार लिखते हैं कि (अमहत्पूर्वाजातिः) इसमें जाति ग्रहणसे जाना जाता है कि, मूर्ख नाम शूद्रका नहीं है किन्तु जन्मसे पूर्वजोंसे जाति है पुनः पाणिनिके इस सूत्रपर भाष्यकार लिखते हैं ॥

तेनतुल्यंक्रियाचेद्वतिः ५ । १ । ११५

सर्वे एते शब्दा गुणसमुदायेषु वर्तन्ते ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्र इति अतश्चगुणसमुदाये एवंह्याह ॥

तपःश्रुतंचयोनिश्चएतद्ब्राह्मणकारकम् ॥ तपःश्रुताभ्यांयोहीनोजातिब्राह्मणएवसः॥१॥तथागौरः शुच्याचारःपिङ्गलःकपिलकेशइति।

सब यह शब्द गुण समुदायोंमें वर्तते हैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इति तप करना वेद पढना श्रेष्ठ कुल यह ब्राह्मणका (कारकम्) लक्षण है जो ब्राह्मण इन करके हीन है केवल (योनिः): ब्राह्मण कुलमें जन्म मात्र है वोह जातिसे ब्राह्मण है लक्षण उसमें नहीं है, क्योंकि गौर वर्ण पवित्राचरण पिङ्गल कपिलकेश यहभी ब्राह्मणके लक्षण हैं, यदि यह नहीं और वोह ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न है तो वोह जातिसे ब्राह्मण हैं यह भाष्यकार मानते हैं "जातिहीने सन्देहाद्दुरूपदेशाच्च ब्राह्मणशब्दोवर्तते" और जातिहीन गुणहीनमेंभी संदेहसे ब्राह्मण शब्द वर्तताहै गुणहीने यथा-"अब्राह्मणोयं यस्तिष्ठन्मूत्रयति" यह अब्राह्मण है जो खडा होकर मूत रहाहै सन्देहमें ऐसे कि गौरवर्ण पवित्राचार पिंगलकपिलकेश पुरुष देखकर बोध होता है कि, यह क्या ब्राह्मणहै पीछे जाननेसे यदि वोह जाति ब्राह्मण हो तौ अब्राह्मणोयमिति ऐसा कहाजाता है यदि भाष्यकारको जाति शूद्रका मानना इष्ट न होता तो शुचि आचारादि युक्त पुरुषको यह ब्राह्मण है या नहीं ऐसा क्यों लिखते और सन्देह करते और फिर क्षत्रिय वैश्यादिकभी कोई न होते सब विद्यायुक्त तौ ब्राह्मण होते और मूर्ख शूद्र कहलाते अपनी उन्नति सबही

चाहते हैं बस सबही ब्राह्मण बन बैठते यदि स्वामीजीकी बात मानी जाय तौ संपूर्ण वर्णसंकरता फैलजाय ॥

निषेकादिश्मशानान्तोमन्त्रैर्यस्योदितोविधिः
तस्य शास्त्रेधिकारोस्मिञ्ज्ञेयोनान्यस्यकस्यचित् अ० २ श्लो० १६

निषेकादि जन्म संस्कारसे मरणपर्यन्त जिसका मंत्रोंसे संस्कार करना कहा गया है उसी कुलके पुरुष संस्कृतका इस यज्ञमें अधिकारहै अन्यका नहीं शूद्रका किस प्रकार संस्कार होसक्ता है जब उसको अधिकारही नहीं है ॥

पुनः गोपथब्राह्मणे पूर्वभागे ३३ ब्राह्मणम् ॥

सान्तपनाइदंहविरित्येष हवै सान्तपनोऽग्निर्यद्ब्राह्मणो यस्य गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्न प्राशनगोदानचूडाकरणोपनयनाप्लवनाग्निहोत्रव्रतचर्यादीनिकृतानिभवन्तिससान्तपनोऽथ योयमनग्निकः सकुम्भेलोष्टः (तद्यथा) कुम्भे लोष्टः प्रक्षिप्तो नैवशौचार्थायकल्पते नैवशस्यंनिर्वर्तयति एवमेवायंब्राह्मणोऽनग्निकस्तस्यब्राह्मणस्यानग्निकस्य नैवदेवं दद्यान्न पित्र्यं नचास्य स्वाध्यायाऽशिषो नयज्ञआशिषःस्वर्गङ्गमाभवन्ति०

अर्थ–जिस ब्राह्मणके जन्मसे गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण (बाहर निकलना) अन्नप्राशन, गोदान, चूडाकरण, उपवीत, अग्निहोत्र, ब्रह्मचर्यादि संस्कार हुए हैं वो ब्राह्मण जाति और गुण कर्मसे यथार्थ है उसीको सान्तपन कहते हैं जिस ब्राह्मणके यह संस्कार नहीं हुए वोह ऐसा है जैसे घडेमें मट्टीका ड़ेला, क्योंकि वोह फेंका हुआ डेला पवित्रता नहीं करता न कुछ शस्य (खेती) का कार्य बनाताहै इसी प्रकारसे अग्निरहित और संस्काररहित ब्राह्मण है ऐसे ब्राह्मणको देवता और पितृसंबंधमें कुछ भी न देना, न वेद आशिष न यज्ञ आशिष इसकी स्वर्ग लेजानेवाली होती हैं ॥

यदि मूर्खही नाम शूद्रका होता तो यहां संस्काररहित ब्राह्मणको कुछ न देना यह क्यों कहा क्योंकि वोह तौ शूद्र होजाता, इस्से यह प्रत्यक्ष है कि संस्काररहितभी ब्राह्मण जातिमात्र रहता है शूद्र

नहीं होजाता और यहभी इससे विदित है कि, शूद्र किसी प्रकारसे ब्राह्मण नहीं होसक्ता क्योंकि जब इसके जन्मसे संकारही नही तौ यह ब्राह्मण कैसे हो सक्ता है और यदि शूद्र अच्छे कर्मसे ब्राह्मण होजाता और कर्मानुसार वर्णव्यवस्था होती तौ रामचंद्र महाराज तपस्या करते हुए शम्बूक शूद्रको क्यों मारते तथा शूद्रके तप करनेके कारण उस ब्राह्मणका पुत्र क्यों मरता, जिसको श्रीमहाराज रामचंद्रने उस शूद्रको मारकर जिवाया ॥

> शूद्रयोन्यां प्रजातोस्मि तप उग्रं समास्थितः ।
> देवत्वं प्रार्थये राम सशरीरो महायशाः ॥ २ ॥
> निष्कृष्य कोशाद्विमलं शिरश्चिच्छेद राघवः ॥ ४ ॥
> वाल्मी॰ उत्तर॰ सर्ग ७६

हे महाराज मैं शूद्रयोनिमें उत्पन्न हुआ उग्रतप करनेमें लगाहूं मैं शरीरसहितही देवत्वकी प्रार्थना करताहूं यह सुन रामचंद्रने उसका शिर काट डाला ॥

शूद्रको तप करनेका अधिकारही नहीं है यह वाल्मीकिके उत्तर काण्डमें लेख है इससे शूद्र ब्राह्मण नहीं होसक्ता तथा विदुरजीने शूद्र होनेके कारण धृतराष्ट्रसे ब्रह्मज्ञान न कहा देखो प्रजागर ॥

और यह तौ एक बडी बुद्धिमानीकी बात लिखी कि (जिनके बालक उच्च वा नीच वर्णमें चले जांय उनको विद्यासभा और राजनियमसे उनके वर्णानुसार और लड़के लड़की मिलेंगे) धन्य है खूब सबका वर्णसंकर किया और (अङ्गादङ्गात्संभवसि) इस मंत्रको भूल गये जब कि पुत्र पिताके अंग अंगसे उत्पन्न होता है और इसीकारण पिताके जल देनेका अधिकारी होता है उसको तौ आप दूसरेका पुत्र बनादो और जो कुम्हारका लडका पढाहो तौ ब्राह्मणके यहां उसे राजनियमसे दिलवाते हो (इस विद्या सभा और राजनियमकी कोई श्रुतिभी लिखदी होती) यह कौनसे शास्त्रकी व्यवस्था है दायभागमें इसको किस प्रकार हिस्सा होना चाहिये, ऋषि बनने चले और अपने लिखेकी भी खबर न हुई कोई गरीब चाण्डालका पुत्र विद्या पढाहो और सेठ धनीका पुत्र विद्यावान् न हो तौ धनवान् तो चाण्डालके यहां भेजे गये, और चाण्डाल धनीके आपडे, जिसके अनुसार न मिला वोह तडफतेही रहे, वोह अंग अंगसे उत्पत्ति वोह स्वाभाविक कर्म सब सत्यार्थप्रकाशमें

प्रवेश कर गये (इस समय पूर्व पश्चिम देशीय अधिक विद्यावान् हैं आपके अनुयायी अपने कम पढे मूर्ख पुत्रोंको निकालकर अपना मालमत्ता उन्हें सौंपदे बडी कीर्ति यश बढैगा) धनीके पुत्र भेडें चरावैं, चरवाहे ब्राह्मणादि कहलावैं, कैसा अनर्थ है कोई नया धर्मशास्त्र दयानंदजी बनाते तौ कभी जंगलियोंमें यह रीति चलजाती तौ चलजाती यदि कहो कि, हम जलदान मानतेही नहीं तौ आगे नियोगविषयमें और पुत्रोंकी पुत्र संज्ञा नहीं है इस प्रकरणको वहीं लिखैंगे और निरुक्तसे सिद्ध करैंगे पर यह दायभागकी व्यवथा आप कैसे बदल सक्ते हैं इसका तौ वृत्तान्त सुनिये ॥

ज्येष्ठएवतुगृह्णीयात्पित्र्यंधनमशेषतः।
शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैवपितरंतथा॥ १०५ अ० ९
ज्येष्ठेनजातमात्रेणपुत्रीभवतिमानवः।
पितॄणामनृणश्चैवसतस्मात्सर्वमर्हति॥ १०६ ॥

पिताके सम्पूर्ण धनको ज्येष्ठही ग्रहण करै और शेष छोटे भाई जैसे पिताके सामने खाते पहरते खर्च करते थे उसी प्रकार रहैं १०५ ज्येष्ठके उत्पन्न मात्रसे पिता पुत्रवाला कहलाता है और पितृऋणसे छूट जाता है इसकारण ज्येष्ठपुत्र सब धन लेनेके योग्य होताहै और भाइयोंका भाग इससे न्यूनहै जब इस प्रकारकी शास्त्रकी मर्यादाहै दयानंदजी उसका नाशही किये डालते हैं, बड़े बड़े घर जो धनवान् हैं उन्हें कंगाल बनाना चाहते हैं कमाई करैं वैश्य, भोगें चमार, इत्यादिक कहांतक कहैं यह सत्यार्थप्रकाश असंभव बातोंसे पूर्ण है आगे लिखा है कि (उत्तम वर्णोंको नीचे गिरनेका भय होगा) यहभी लिखना निर्मूल है नीचे गिरना क्या वैसे ही बहुतेरा भयहै जब कि विद्वान्ही ब्राह्मणोंका आदर भेंट दान पूजा यज्ञादिमें वरण दक्षिणादिका विधान किया है और मूर्ख ब्राह्मणको दानादिदेनेका निषेध किया है तौ उनके लिये स्वयंही भय है, तिरस्कार तो मरणसेभी अधिक है अब तिरस्कारभी कौन करै दूसरेको तौ वोह बुरा कहसक्ता है जब आप अच्छा हो, जब यजमान विद्यावान् होगा तौ पुरोहित उपाध्यायभी भय मान शीघ्रतासे विद्या सीखैंगे और जब दोनोंही एकसे हैं तौ तिरस्कार कैसा, हां सब वर्णोंको उचित है कि उनके यहांके जितने पुरोहित हैं सबसे कहदिया जाय कि यदि तुम नहीं पढोगे तौ तुम्हैं हम विभाग नहीं देंगे और जो कुछ उनके

निमित्तका वोह उनके नामसे किसी मान्य पुरुषके यहां स्थापनकर दिया जाय अथवा पुरोहितोंके बालकोंको विद्याध्ययन करानेमें वोह व्यय कियाजाय तौ देखिये लाखों क्या करोडोंही विद्यायुक्त दीखने लगें सब कार्य इसीमें बन जायंगे उन्है यही भय बहुत है कि, हम मूर्ख रहैंगे तौ हमें कोई छदाम न देगा और सर्वत्र निरादर होगा यह नहीं कि, वोह शूद्र होजाय. और स्वाध्यायेन० इस श्लोकका जो अर्थ स्वामीजीने किया है कि, वेद पढने जप करने व्रत करने होम करने पुत्रोत्पादन पंच महायज्ञ करनेसे यह ब्राह्मणका शरीर बनता है, यहभी मिथ्याही है यद्यपि हम इसका अर्थ पूर्व कर चुके हैं और इस अर्थका खंडनभी कर चुके हैं, परन्तु इतना यहां और भी कहना है कि, जिन कर्मोंसे आप ब्राह्मणोंका शरीर बनना मानते हैं उतने कर्मोके करनेकी मनुजीने तीनों वर्णोंको आज्ञा दी है, फिर तौ इन कर्मोंके करनेवाले सभी ब्राह्मण हो जाने चाहिये, शेष शूद्र, बस दोही वर्णरहैं ब्राह्मण और शूद्र, इस कारण इसका यही अर्थ ठीक है कि, इन कर्मोंके करनेसे यह शरीर मुक्ति प्राप्तिके योग्य वा ब्रह्मविद्या प्राप्तिके योग्य होताहै फिर स्वामीजीने लिखा है कि(जिसका पिता निर्धन हो क्या उसका पुत्र धन फेंकदे) यह बात आपकी इस स्थानमें प्रसंगसे विरुद्ध है भला वर्णव्यवस्थासे और इस बातसे क्या संबंध इसी प्रकार नेत्रहीन होनाभी कर्मानुसार है जो आप लिखते हैं कि (पिता अंधाहो तौ क्या आपभी आंख फोड डाले) यह बातें आपने इस श्लोककी भूमिकामें लिखी हैं कि ॥

येनास्यपितरोयाता येनयाताः पितामहाः।
तेनयायात्सतांमार्गं तेनगच्छन्नरिष्यते ॥ मनु० ४। १७८

अर्थात् तात्पर्य स्वामीजीका यहहै कि, यदि वृद्ध अपने कुलवालोंका दुष्टाचरण हो तौ उनके आचरण ग्रहण न करैं किन्तु जो सत्पुरुषोंका मार्ग है उसमें चलैं, जो काम वे करैं सो आप करैं तौ औरोंका तौ आपने दुष्टाचरण बताया, अपने बडोंको निर्धन और नेत्रविकारी ठहरानेसे पूर्व धर्म और धर्मवालोंपर आक्षेपकियाहै, अर्थात् इस समय आपके आचरणोंपर आपके अनुयायियोंको चलना चाहिये कि, सब घर छोड़ चलदें संन्यासी हो जांय संस्कृतही पढैं सो कोईभी नहीं हुए इसप्रकारसे इसका अर्थ होना नहीं बनता इस श्लोकका यह आशय है कि, जिस मार्गमें अर्थात् जिस मतमें पिता और दादा सदासे चले आते हैं

वोही श्रेष्ठमत अर्थात् सत्पुरुषोंका अनुष्ठान किया हुआहै क्योंकि वे वेदके जाननेवालेथे इसी कारण संध्या अग्निहोत्र श्राद्ध मूर्तिपूजनादि सिद्धान्तोंको निर्भ्रान्त करतेथे, यह नहीं कि पिता तौ सनातन धर्म प्रतिपालन करैं, बेटे मूर्तिपूजन श्राद्धखंडन करते फिरैं, पिता पतिव्रताधर्म प्रचार करैं बेटे स्त्रीको एकादश पति करावें, पिता विधवाको व्रतकरावैं, बेटे नियोग करके चारपुत्र ग्यारह पुत्र करावैं, इत्यादि इन आधुनिकमतोंकाही निषेध करते हुए मनुजी कहते हैं कि, बापदादा जिस मार्गमें चलेहों उसीमार्गमें आप चले कर्म और वस्तु है, मत और वस्तु है, इससे यहां मतका ग्रहणहै फिर आप लिखते हैं कि (यदि कोई मुसलमान या ईसाई हो जाय तौ उसेभी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते) महात्माजी अब क्या आजकलकी नवीन सभ्यमंडली ईसाइयोंके आचरणोंसे कमहै, क्या वेदमें कोट पतलून बूंट होटल चुरट जेबमें घड़ी हाथमें छड़ी सोडावाटर रम मिटिंगकाभी वर्णनहै, यह सबही कुछ देखनेमें आताहै, फिर चुंटियातक नदारत, संस्कृतका एक अक्षर नहीं जानते, वेदका आशय कंठगतहै, अब अपने प्रश्नका उत्तर सुनिये कि, जो कोई ईसाई या मुसलमान होगये और उनके संग भोजनकरलिया तौ वोह भ्रष्टहोने और ईसाको माननेसे ईसाई, महम्मदको माननेसे मुसल्मान कहलाने लगे, परन्तु यह बात सदैव जीमें बनी रहेगी कि, मैं जातिका ब्रह्मण क्षत्री वा वैश्य हूं, जैसे कि संन्यासी होनेपरभी शिष्यगण आपको ब्राह्मण कहकर पुकारते हैं, परन्तु बुद्धिमानोंको तौ आप ब्राह्मण प्रतीत नहीं होते क्योंकि जहां देखो वहां ब्राह्मणसे शूद्र और शूद्रसे ब्राह्मण यही दो बातें देखनेमें आती हैं और शूद्रकी अधिकारिआयत जहाँ तहाँ की है, इससे सन्देह होताहै, ईसाई मुसल्मान होनेकी व्यवस्था सुनिये कि जो कोई ईसाई या मुसल्मान हो जाताहै वोह उन पुरुषोंके संग भोजन पानादि करनेसे सज्जनगोष्ठीसे बहिष्कृत हो जाताहै उसको हम ब्राह्मणादि वर्ण इसकारण नहीं कहते कि, यह शब्द कोई जातिवाचक नहीं है किन्तु जैसे कबीरके माननेहारे कबीरपंथी दादूके दादूपंथी नानकके नानकपंथी तुम्हारे मतके दयानंदी कहलाते हैं तौ उनको कोई ब्राह्मणादि नहीं उच्चारण करते चाहें किसी वर्णके हों परन्तु जब अपनी बिरादरीमें आते हैं इनके साथ भोजन खानपानादि करतेहैं और आनन्द करते हैं और जब मुसल्मानादि कृश्चीनोंके साथ भोजन करलेते हैं तब बिरादरीवाले उनके

साथमें भोजन पान व्यवहार विवाहादि छोड़ देते हैं, परन्तु उसकी ब्राह्मण जाति तौ भी नहीं जाती जब कोई उसकी सूरत देखते हैं तुरत कहते हैं कि, यह वोही ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य है अब ईसाई हो गयाहै, यह मतसे नामसंज्ञा सब जातिमें आरूढ हो जाती है, परन्तु वोह जाति तौ जबतक पंचत्वको प्राप्त नहो तबतक उसके साथसे नहीं छुटती, उसको भी यह सदा ध्यान रहताहै कि, मैं असुक जातिका हूं अब ईसाई या मुसल्मान हो रहाहूं परन्तु बेटोंतकके भी यह पीछे रहती है कि, यह उनके बेटे हैं जो क्षत्रियसे या वैश्यसे ईसाई होगयाथा इनका पिता अमुक वर्ण था इसकारण यही सिद्ध होता है कि, शूद्र ब्राह्मण नहीं, ब्राह्मण शूद्र नहीं होसक्ता इस सारी वर्णव्यवस्थाका प्रयोजन यह है कि (ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्) जब ब्राह्मण क्षत्रियादि उसके मुख भुजा जंघा चरण हैं तौ जिस प्रकारसे मुख चरण कभी नहीं हो सक्के चरण मुख नहीं होसक्ता इसी प्रकार शूद्र ब्राह्मण और ब्राह्मण शूद्र नहीं होसक्ता वैश्य इस शरीरसे क्षत्री नहीं हो सक्ता यही नहीं होसक्ता इस श्रुतिका अभिप्राय है इससे औरभी जो कोई जाति कर्मसेही मान्ते हैं उनका भी खंडन इसीमें होगया ॥

निन्दास्तुतिप्रकरणम् ।

स० पृ० ९७ पं० २३ कभी किसीकी निन्दा न करै (' गुणेषु दोषारोपणमसूया) अर्थात् (दोषेषु गुणारोपणमप्यसूया) (गुणेषु गुणारोपणं दोषेषु दोषारोपणं च स्तुतिः) जो गुणोंमें दोष दोषोंमें गुण लगाना वोह निन्दा और गुणोंमें गुण दाषोंमें दोषोंका कथन करना स्तुति कहाती है अर्थात् मिथ्या भाषणका नाम निन्दा और सत्यभाषणका नाम स्तुतिहै ॥ १०० । १३

समीक्षा-यह कैसी विचित्र लीला है कि पहले तौ लिखते हैं कि, गुणोंमें दोष लगाना निन्दा कहाती है और फिर अर्थात् लिखकर उसका मतलब लिखते हैं कि दोषोंमें गुणका लगानाभी निन्दा है गुणोंमें गुण दोषोंमें दोष लगानेका नाम स्तुति है यह निन्दा स्तुतिका लक्षण अर्थात लगाकर जो किया है सो निरर्थक है यदि सत्य वा मिथ्याका विषय होता तौ किंचित् संघटितभी होता आप सत्यदोषोंका कथन स्तुति कहते हो सो स्तुति सत्यदोषयुक्त कथन करनी कहीं नहीं लिखी जबकि मनुजी यों लिखते हैं कि-

सत्यंब्रूयात्प्रियंब्रूयान्नब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियंचनानृतंब्रूयादेषधर्मः सनातनः ॥ मनुः० अ० ४ । १३८

मनुष्यको चाहिये कि सदा सत्य बोले और वोह ऐसा सत्य होकि, दूसरेको प्रिय लगै और ऐसा सत्य न बोले जो दूसरेको बुरा लगे और वोह प्रिय बात झूंठ भी नहो यही सनातन धर्म है जब कि अप्रिय सत्य बोलना भी बुरा है और दोष सबको ही अपना बुरा लगता है आप उसीको स्तुति कहते हैं सो अशुद्ध है "अर्थवादो हि स्तुतिः" केवल सत्ययशका वर्णन करनाही स्तुति कहाती है यह नहीं कि, सत्य दोषभी स्तुति कहावै यह भी नहीं कि, मूर्ख हो और उस्से कहा जाय कि तू बड़ा मूर्ख है निरक्षरभट्टाचार्य है कानेसे काना कहना क्या इस्से वोह प्रसन्न होगा कभी नहीं वोहःतौ बडा बुरा मानैगा इस्से स्तुति नाम उसीका है जिसमें केवल गुणोंका वर्णन हो और वोह सुननेवाला प्रसन्न हो जाय जैसा कि, स्तोत्रोंमें देखा जाताहै और किसीके दोषोंका कहना बुराई या निन्दा है क्योंकि उससे बुरा फल मिलता है मनुजी यह कहते हैं ॥

गुरोर्यत्रपरीवादोनिन्दावापिप्रवर्तते ।
कर्णौतत्रपिधातव्यौगन्तव्यंवाततोन्यतः ॥ मनु० २ अ० श्लो० २००

जहां गुरुका परीवाद (विद्यमानदोषस्याभिधानं परीवादः) जो दोषहो उसका कथन करना परीवाद कहता है (अविद्यमानदोषाभिधानं निन्दा) जो दोष नहीं हैं उनका कथन करना निन्दा कहाती है यदि इन दोनों वार्ताओंको कोई करता हो तौ शिष्य कानोंपर हाथ धरकै चलाजाय इसमें सत्यदोष कथन करनेका नाम परीवाद लिखा है आप उसे स्तुति बताते हैं इस परीवादरूपी स्तुतिका दयानंदजी फल तौ सुनैं ॥

परीवादात्खरोभवति श्वावैभवतिनिन्दकः ।
परिभोक्ताकृमिर्भवतिकीटोभवतिमत्सरी ॥ २०१ ॥

झूंठा दोष कहनेसे (सुननेसे) गदहा होता है निन्दासे कुत्ता होता है दूसरे जन्ममें गुरुके अनुचित द्रव्यका भोक्ता शिष्य कृमि होता है, गुरुसे मत्सर करनेहारा कीट होता है जिसको आप सत्य दोष कथन करनेसे स्तुति नामसे पुकारते हैं उस स्तुति लक्षण स्तुति करनेवाले मनुजीके वचनानुसार दूसरे जन्ममें गर्दभराज होंगे इसी कारणसे मनुष्य-

को उचित है कि, अप्रिय सत्य कभी न बोलै, यह दयानंदजीने अपने अनुयायियोंकी गति खराब करनेको ऐसा लिख दिया है न जाने इससे क्या लाभ है तुम्हारी जो दशा हुई होगी सो हुई होगी परन्तु अब चेलोंके हेतु वहाँसे कोई चिट्ठी भेज देनी चाहिये थी कि यह निन्दा स्तुति लक्षण छापनेवालोंकी भूलसे लिखा गया है तुम इसे सत्य न मानना और खबरदार कभी किसीका सत्य दोषभी न कहना गुणोंका कथन स्तुति अवगुणोंका कथन निन्दा जानना ॥

अब इसके आगे देवता और श्राद्धप्रकरण लिखा जायगा.

अथदेवतापितृश्राद्धप्रकरणम् ।

स० पृ० ९८ पं० ९

ऋषियज्ञंदेवयज्ञंभूतयज्ञंचसर्वदा ।
नृयज्ञंपितृयज्ञंचयथाशक्तिनहापयेत् ॥ १ ॥ अ०४श्लो० २१
अध्यापनंब्रह्मयज्ञःपितृयज्ञस्तुतर्पणम् ।
होमोदैवोबलिर्भौतोनृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥२॥ अ०३श्लो०७०
स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि ।
पितॄन्श्राद्धैश्चनॄनन्नैर्भूतानिबलिकर्मणा३मनु०अ०३श्लो०८९

पंक्ति १९ में इस प्रकार लिखते हैं. अर्थ दो यज्ञ ब्रह्मचर्यमें लिख आये हैं अर्थात् एक वेदादि शास्त्रका पढना पढाना संध्योपासन योगाभ्यास दूसरा देवयज्ञ विद्वानोंका संग सेवा पवित्रता दिव्य गुणोंका धारण दातृत्व विद्याकी उन्नति यह दोनों यज्ञ सायंप्रातः करने होते हैं ॥१०१।१

पृ० ९९ पं० १६ तीसरा पितृयज्ञ अर्थात् जिसमें देवयज्ञ जो विद्वान् ऋषि जो पढने पढानेहारे पितर माता पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परम योगियोंकी सेवा करनी ॥ १०३ । ९

समीक्षा-अब यहांसे स्वामीजी लोप लीला चलाते हैं यहां पितर देवता ऋषि सब एकही प्रकार और एकही अर्थमें घटाते हैं इन श्लोकोंमें यह सब पृथक् पृथक् हैं इसलिये देवऋषि पितरोंको एकही कहना युक्त नहीं है क्योंकि ऋषियज्ञ देवयज्ञ भूतयज्ञ नृयज्ञ पितृयज्ञ इनको यथाशक्ति न जाने दे पढना पढाना ब्रह्मयज्ञ तर्पण श्राद्ध पितृयज्ञ होमादिक देवयज्ञ और भूतबलि भूतयज्ञ और मनुष्ययज्ञ अतिथिभोजनादिक

यह पांच हैं, वेदाध्ययनसे ऋषियोंका पूजन करैं, होमसे देवताओंका श्राद्धसे पितरोंका अन्नसे मनुष्योंका और भूतोंको बलि कर्म कर पूजन करै ॥

कुर्यादहरहःश्राद्धमन्नाद्येनोदकेनवा।
पयोमूलफलैर्वापिपितृभ्यःप्रीतिमावहन् ॥ अ० ३श्लो० ८२मनु०
एकमप्याशयेद्विप्रंपित्रर्थेपांचयज्ञिके।

पितरोंसे प्रीति चाहनेवाला तिल यव इन करके और पय मूल फल जल इनसे श्राद्ध करै पितरके अर्थ एक ब्राह्मण भोजन करावै जब कि वेदाध्ययनसे ऋषि,होमसे देवता,श्राद्धसे पितर,अन्नसे मनुष्योंका पूजन करै, यदि यह सब एकही होते तो पृथक् पृथक् वस्तुओंसे पृथक् प्रसन्न होनेवाले कैसे होते, यदि देवता विद्वानोंहीको कहते हैं तौ क्या वोह हवनसे प्रसन्न होते हैं,तौ उनकी प्रसन्नताके वास्ते हवन करदेना चाहिये यदि विद्वान् भूंखे आवैं तौ थोडासा होम कर देना वे झट प्रसन्न होजांयगे, इससे विद्वान् तृप्त होते देखे नहीं जाते, इसकारण विद्वानोंकाही देवता नाम और कोई पृथक् जाती नहीं है यह कहना स्वामीजीका झूंठ है, वेदोंमें देवजाति पृथक् लिखीहै यथाहि ॥

अग्निर्देवता वातोदेवतासूर्योदेवता चन्द्रमादेवता
वसवोदेवता रुद्रादेवताऽऽदित्यादेवतामरुतोदेवता
विश्वेदेवादेवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रोदेवतावरुणोदेवता १
य० अ०-१४ मं-२०

यह अर्थ प्रत्यक्षही है इसमें देवताओंके अग्नि सूर्य चन्द्रमा आदि पृथक् पृथक् नाम लिखे हैं इससे देवता मनुष्योंसे पृथक्ही हैं औरभी ॥

त्र्या देवा एकादशत्रयस्त्रिꣳशाः सुराधसःबृहस्पति
पुरोहिता देवस्यसवितुः सर्वे देवा देवैरवन्तुमा ११मं०अ०२०

श्रेष्ठ धनवाले ब्रह्मकोही आगे किये तीनों देवता ग्यारह रुद्र तैंतीस देवता नारायणकी आज्ञामें वर्तमान होते सत्य आदिके साथ मेरी रक्षा करो अथवा तीन देवता एकादश देवता वा ग्यारह तैंतीस देवता सुन्दर

धनवाले पुरोहित बृहस्पतिको आगे किये सविता देवताकी आभ्यन्तर प्रेरणासे इस महदनुष्ठानमें प्रवृत्त हुए हमको अपने देवत्व प्रभावसे रक्षा करो १

समिद्ध इन्द्र उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः
त्रिभिर्देवैस्त्रिꣳशतावज्रबाहुर्जघानवृत्रंविदुरोव

वार य० अ० २० मंत्र ३६

सम्यक् प्रकारसे दीप्त प्रातःकालपर आगे चलनेवाले प्रकाश सूर्यरूप द्वारा पूर्व दिशाको प्रकाश करने वाले(त्रि ꣳ शता)तेंतीस देवताओंके साथ वृद्धिपानेवाले वज्रधारी इन्द्रने मेघरूपी दैत्यको ताडन किया मेघके सोतों वा दैत्यपुरके द्वारोंको शून्य किया वा खोला १२ आदित्य ८ वसु ११ रुद्र १ इन्द्र १ प्रजापति यह तेंतीस देवता हैं॥

त्रीणिशतानित्रीणिसहस्राण्यग्निंत्रिꣳशच्चदेवानवचासपर्यन्
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्माआदिद्धोतारन्यसादयन्त७मं.अ. ३३

अथ (त्रीणिशतानि त्रीणिसहस्राणि त्रिंशत् च नवदेवाः) तीन हजार तीनसौ उन्तालीस देवता अग्निकी परिचर्या करते हैं उन्होंने घृतसे अग्निको सींचा और इस अग्निके लिये कुशाको आच्छादन करते हुए होताको होतृकर्ममें नियुक्त किया ॥

अथवा (त्रीणिशतानि) ३०० तीनसौ (त्रीणि सहस्राणि) ३००० तीन सहस्र गुणित अर्थात् ९००००० (त्रिंशत् नव च) और उन्तालीस९०००३९ देवता अग्निकी परिचर्या करते हैं अथवा "नवैवाङ्कास्त्रिवृद्धाःस्युर्देवानां दशकैर्गणैः। ते ब्रह्मविष्णुरुद्राणांशक्तीनांवर्णभेदतः" इस आगम प्रमाणसे ब्रह्मा विष्णु रुद्रकी शक्तिरूपसे ३३३ ३३३ ३३३ इतने देवता होते हैं चाहें तेंतीस कोटियोंके देवतामानो तौ भी देवताओंकी संख्या अधिकही आवैगी कारण कि एक २ कोटिमें बहुतहोंगे इसप्रकार दयानन्दजी और भास्करप्रकाशके कर्ता दोनों परास्त होते हैं ॥

तिस्रएवदेवता इति नैरुक्ता अग्निः पृथिवीस्थानोवायुर्वेन्द्रोवा
न्तरिक्षस्थानः सूर्योद्युस्थानस्तासांमहाभाग्यादेकैकस्याअपि
बहूनिनामधेयानिभवन्ति ॥ नि० दैवतकां० अ० ७ःखं० ५

यह तीन देवता हैं अग्नि पृथ्वीस्थानमें वायु वा इन्द्र अन्तरिक्ष स्थानमें और सूर्य द्युस्थानमें इन महाभाग्योंके बहुत नाम होते है तीन

स्थानमें देवताओंकी स्थिति कहने और इनको महाभाग्य और एक २ के बहुत नाम कहनेसे यहां विद्वान् देव शब्दार्थ नहीं और जब एक २ के बहुत नाम हैं,तौ तैंतीस करोडभी कह सक्ते हैं और यह जो स्वामीजीने लिखाहै (विद्वांसोहिदेवाः) यह शतपथ३।७।३।१० की श्रुतिहै इसमें स्वामीजीने बड़ा प्रपंच रचाहै इसका यह अर्थ नहीं कि विद्वानोंका नाम देवता है किन्तु यजु० अध्या० ६ मन्त्र ७ में 'देवान् दैवीर्विशःप्रागुरुशिजो वह्नितमान्' इसके अर्थ में (दैवीर्विशः) दिव्य गुणयुक्त यह पशु (देवान्) अग्निषोमादि देवताओंके (उपप्रागुः) समीप गमनकरे जो देवता (उशिजः) विद्वान् (वह्नितमान्) अग्निद्वारा हविकी इच्छावाले हैं इसपर ही शतपथकी श्रुति है "विद्वा ँ सो हि देवास्तस्मादाहोशिजो वह्नितमानिति" ३।७।३।१० देवता विद्वान्हैं इसकारण उनको उशिज और वह्नितमान् कहा है, विद्वानोंका नाम देवता है इसका यहां कोई प्रसंग नहीं है ॥

और दयानन्दजीके अभिप्रायसे देवताओंका निषेध करैं तो वाग्वै ब्रह्म बृह० अ० ६ ब्रा० १

यह श्रुतिभी शतपथमें पठित है तौ ब्रह्मका निषेध कर देना चाहिये क्योंकि वाणीही ब्रह्म है ब्रह्म तौ इस श्रुतिसे वाक् सिद्ध होगई इससे यहां भी ब्रह्मको वाक्यान्तरमें प्रसिद्ध होनेसे निषेधका असंभव है इससेइस श्रुतिका यह अर्थ होना चाहिये कि ब्रह्म बुद्धि करके वाग्उपासनीय है जब देवता वाक्यान्तरसे प्रसिद्ध हैं तौ उनका निषेध नहीं होसक्ता और यही देवता ॥

इतीमादेवताअनुक्रांताःसूक्तभाजो हविर्भाजऋग्भा
जश्च भूयिष्ठाः-निरु०

यह जो देवता कहे हैं इनमें कोई सूक्तोंको भजते हैं कोई हविकी कोई ऋग्को कोई दोनोंको ॥

देवताओंको सर्वशक्तिसंपन्नत्वभी निरुक्तिमें बोधन कियाहै ॥

आत्मैवैषांरथोभवत्यात्माश्व आत्मायुध आत्मेषव
आत्मासर्वं देवस्यदेवस्य ॥ नि०अ०७खं०४दैव० कां०

देवताओंका प्रभाव यह है आत्माही देवताओंका अश्व, रथ आयुध इषुरूप होताहै और सबही उपकरण देव देवका आत्मारूपहै क्योंकि देवता सत्यसंकल्परूप हैं औरभी मंत्र देवताओंका महत्वबोधक है ॥

रूपंरूपंमघवाबोभवीतिमायाः कृण्वानस्तन्वंपरिस्वाम्
त्रिर्यद्दिवः परिमुहूर्तमागात् स्वैर्मंत्रैरनृतुपाऋतावा
ऋ० मं० ३ अ० ४ सूक्त ५३ मं० ८

इस मंत्रके व्याख्यानमें निरुक्ति-

यद्यद्रूपंकामयतेतत्तद्देवताभवति रूपंरूपंमघवाबोभवीती त्यपिनिगमोभवति ॥ नि० अ० १० खं० १७

(मघवा) इन्द्र (रूपं रूपम्) जिस जिस रूपकी इच्छा करता है उस उस रूपका (बोभवीति) होता है (मायाः) अनेक रूप ग्रहणकी सामर्थ्यको (कुर्वाणः) करते हुए (स्वांतन्वम्) अपने शरीरको (परि) अपने शरीरसे नानाविधि शरीर निर्माणकरता अथवा अपने शरीरको नानाविधि करता " यथा इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते ऋ० " (स्वैः मंत्रैः) अपने स्तुतिलक्षणवाले वाक्योंसे आह्वान किया हुआ (अनृतुपा) सोमका निरन्तर पानकर्ता (ऋतावा) सत्यवान् (यत्) जिस कारण (दिवः) स्वर्गलोकसे (परि मुहूर्तम्) एकही मुहूर्तमें अनेकदेशी यज्ञोंमें (त्रिः) तीनों सवनोंमें (आगात्) आता है ।

इस मंत्रमें अनुक्रमणिका आदिके अनुसार इन्द्रकाही वर्णन है इससे भी स्पष्ट विदित है कि देवता मनुष्योंसे पृथक्हैं मुहूर्तमात्रमें स्वर्गसे आना मनुष्यों वा विद्वानोंमें संभव नहीं होता इसीसे विदित है कि देवता मनुष्य विद्वानोंसे पृथक् हैं ॥

पुनः केन उपनिषदमें देवताओंका परस्पर संवाद है ॥

ब्रह्महदेवेभ्योविजिग्येतस्यह ब्रह्मणोविजयेदेवाअमहीयन्ततऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायंमहिमेति ॥ केनउ०

ईश्वरने देवताओंको जयदी उसकी कटाक्षकृपासे सब देवता महिमाको प्राप्त होते हुए और फिर यह जाना कि यह सब जगत् हमाराही जय किया है और हमारीही महिमा है तब ईश्वर यज्ञरूप अवतार ले प्रगट हुए और वे देवता परस्पर उनका वृत्तान्त पूछने लगे (तेऽग्निमब्रुवन्) इत्यादि वाक्य हैं कि उन्होंने अग्नि वायु आदिसे पूछा तुम इनको जानते हो उन्होंने कहा नहीं इसी प्रकार देवता अनेकविधि सूचित होते हैं और देवताओंका लोक पृथक् प्रतीत होताहै जैसे इन्द्रका स्वर्गसे आना लिखाहै ॥

यत्रब्रह्मचक्षत्रञ्च सम्यञ्चौचरतः सह
तँल्लोकम्पुण्यम्प्रज्ञेषं यत्रदेवाः सहाग्निना ॥ यजु० अ० २० मं० २५

जहां ब्राह्मण जाति और क्षत्रिय जाति संग मिले रहते हैं और जहां देवता अग्निके साथ वास करते हैं उस पवित्र लोकको मैं देखूं यह यजमानका वाक्य है ॥

यत्रेन्द्रश्चवायुश्च सम्यञ्चौचरतः सह तँल्लोकम्पुण्यम्प्रज्ञेषं यत्र
सेदिर्नविद्यते ॥ य० अ० २० मं० २६

जिस लोकमें इन्द्र वायु देवता मिले हुए विचरते हैं, जिस लोकमें दुःख नहीं है उस लोकको मैं प्राप्त करूं ॥

इन दोनों मंत्रोंसे यह बात प्रगट है कि, देवतालोक दुःखरहित हैं वहां यजमान जाना चाहता है, यदि देवता विद्वानोंका नाम होता तौ ब्राह्मण क्षत्रिय जाति क्यों कही, यह जो देवलोकमें विचरते हैं क्या विद्वान न होंगे और फिर देवता अग्निके साथ रहते हैं. ऐसा पृथक् क्यों लिखा और (यत्र) नाम जिस लोकमें यह शब्द लिखनेसे जाना जाता है कि वोह कोई दूसरा लोक है यह लोक होता तौ अत्र लिखते, इस कारण देवता विद्वानोंहीका नाम है यह असत्य है देवता पृथक् हैं और सुनिये ॥

नित्यंस्नात्वाशुचिः कुर्यादेवर्षिपितृतर्प्पणम् ।
देवताभ्यर्चनंचैवसमिदाधानमेवच ॥ मनु०

नित्य स्नानकर पवित्र हो देवता ऋषि पितरोंका तर्पण करै, देवताओंका पूजन और हवन करै तथा ॥

पूर्वाह्णएवकुर्वीत देवतानांच पूजनम् ॥ १५२ ॥

देवताओंका पूजन दुपहरसे पहले करै ॥

दैवतान्यभिगच्छेत्तुधार्मिकांश्चद्विजोत्तमान् ।
ईश्वरंचैवरक्षार्थंगुरूनेवचपर्वसु॥मनु०अ०४श्लो० १५३

अपनी रक्षाके वास्ते देवताओंके दर्शन धर्मात्मा ब्राह्मणोंके दर्शन करनेको जाय और गुरुजनोंके भी दर्शन करै ईश्वरका ध्यान करै ॥

*(देवाः दीव्यतिर्दानार्थोदीप्त्यर्थोवा पचाद्यच् दातारोऽभिमताभक्तेभ्यः तैजसत्वाद्दीप्तावा दिवः सम्बधिनोवादेवाः) जो भक्तोंकी कामना इच्छित सुफल करैं, जो स्वर्गमें रहैं वे देवता कहाते हैं, और-ऋषिर्दर्शनात् पश्यत्यसौसूक्ष्मानर्थान्-जिनको तपके प्रभावसेही विना अध्ययन वेदादिकोंके अर्थ प्राप्त हुए हैं वे ऋषि कहाते हैं ॥

इस स्थानमें देवता ऋषि गुरु आदि सब पृथक् कहे, और देवता स्वर्गके रहनेवाले वर्णन किये गये हैं ॥

स्वामीजीने जो सत्यार्थप्रकाश पृ० ९९ पंक्ति २९ में विद्वांसोहि देवाः यह लिखा है कि, जो साङ्गोपाङ्ग चारों वेदोंको जान्नेवाले हों उनका नाम ब्रह्मा और जो उनसे न्यून हों उनकाभी नाम देव विद्वान् है ऐसा लिखा है, यह लेख बुद्धिमान् विचारेंगे कितना निर्मूल है देवता शब्द और वे किस प्रकारके होके रहते हैं, यह सब कुछ हम पूर्व कथन कर चुके हैं पर यह लक्षण देवताका कहीं नहीं देखा कि चारों वेदोंको उपाङ्गसहित जाननेसे ब्रह्मा होताहै, यह तो कहिये कि आप वेदोंके उपांगऋषिकृत और वेदके पश्चात् बने बताते हो जिस समयतक कि वेदाङ्ग नहीं बनेथे संहिता मात्र वेद था तौ उस समय ब्रह्मा संज्ञाही न होनी चाहिये थी फिर अथर्ववेदमें लिखा है है (भूतानांप्रथमोब्रह्माहजज्ञे) सृष्टिमें सबसे पहले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए विना उपांग इन्हें ब्रह्मा किसने बना दिया जो आपकाही नियम होता तौ वेदाङ्ग बनानेवालोंका नाम महाब्रह्मा होता, क्योंकि पढनेवालोंसे ग्रंथ कर्ता बड़े होते हैं और जो सांग वेद जान्नेहीसे ब्रह्मा कहावै तौ रावणको ब्रह्मा वा देवता क्यों नहीं कहते, मालूम तौ ऐसा होताहै कि आपने यह ढंग अपनेको ब्रह्मा और देवता कहलानेका निकाला था, परन्तु सिद्ध न हुआ कोई भी ऐसा भक्त चेला न हुआ जो आपको ब्रह्मा नामसे पुकारता यदि वेदाङ्ग जान्नेसे ब्रह्मा होते तौ वासिष्ठ गौतम नारदादि सबही ब्रह्मा हो जाते, परन्तु आजतक एकही ब्रह्मा सुने हैं ऋषि अध्ययनसे, देवता हवनसे, पितर श्राद्ध और हवनसे, प्रसन्न होते हैं यह तीनों पृथक् हैं देवता आहुतिसे तृप्त होते हैं, विद्वान् भोजनसे, देवताओंके आकार और मूर्ति तथा निवासस्थानका वर्णन ग्यारहवे समुल्लासमें सिद्ध करैंगे यहां तौ केवल उनका होनाही सिद्ध किया है. अब श्राद्धविषय लिखते हैं ॥

* भा० प्र० के कर्ताने मनुष्योंसे देवता पृथक् मानलियेहैं भी क्या करते ।

स० प्र० पृ० ९९ पं० १८ पितृयज्ञके दो भेद हैं एक श्राद्ध दूसरा तर्पण-श्राद्ध अर्थात् श्रत् सत्यका नामहै-श्रत्सत्यंदधातिययाक्रियया साश्रद्धा श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम्-जिस क्रियासे सत्यका ग्रहण किया जाय उसको श्रद्धा और जो श्रद्धासे कर्म किया जाय उसका नाम श्राद्धहै और-तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन् तत्तर्पणम्-जिस २ कर्मसे तृप्त अर्थात् विद्यमान मातापितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जांय उसका नाम तर्पण परन्तु वोह जीवितोंके लिये हैं मृतकोंके लिये नहीं ॥१०२।११

ॐब्रह्मादयोदेवास्तृप्यन्ताम् ब्रह्मादिदेवपत्न्यस्तृप्यन्ताम् ब्रह्मा..देवसुतास्तृप्यन्ताम् ब्रह्मादिदेवगणास्तृप्यन्ताम्

इति तर्पणम्।

जो सांगोपांग चारों वेदोंको जाननेवाले हों उनका नाम ब्रह्मा और जो उनसेभी न्यून हों उनका नाम देव अर्थात् विद्वानहै उनके सदृश विदुषी स्त्री उनकी ब्राह्मणी और देवी उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके सदृश उनके गण अर्थात सेवक हों उनकी सेवा करना उसका नाम श्राद्ध और तर्पण है ॥

स० पृ० १०० पं० ३ अथर्षितर्पणम्-

ॐमरीच्यादयऋषयस्तृप्यन्ताम् मरीच्याद्यृषिपत्न्यस्तृप्यन्ताम् मरीच्याद्यृषिसुतास्तृप्यन्ताम् मरीच्याद्यृषिगणास्तृप्यन्ताम्

इति ऋषितर्पणम् ॥

जो ब्रह्माके प्रपौत्र मरीचिवत् विद्वान् होके पढावें और जो उनके सदृश विद्यायुक्त उनकी स्त्रियां कन्याओंको विद्या दान देवैं उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके समान उनके सेवक हों उनका सेवन करना सत्कार करना ऋषितर्पण है ॥

अथ पितृतर्पणम्।

ॐसोमसदःपितरस्तृप्यन्ताम् अग्निष्वात्ताःपितरस्तृप्यन्ताम् बर्हिषदःपितरस्तृप्यन्ताम् सोमपाःपितरस्तृप्यन्ताम् हविर्भुजःपितरस्तृप्यन्ताम् आज्यपाःपितरस्तृप्यन्ताम् यमादिभ्योनमः यमादींस्तर्पयामि पित्रेस्वधानमः पितरंतर्पयामि

पितामहायस्वधानमः पितामहंतर्पयामि मात्रेस्वधानमः मातरंतर्पयामि पितामह्यैस्वधानमः पितामहींतर्पयामि स्वपत्न्यै स्वधानमः स्वपत्नींतर्पयापि सम्बन्धिभ्यःस्वधानमःसम्बन्धिनस्तर्पयामि सगोत्रेभ्यः स्वधानमः सगोत्रांस्तर्पयामि

इति पितृतर्पणम् ॥

"येसोमेजगदीश्वरे पदार्थविद्यायांचसीदन्ति ते सोमसदः" जो परमात्मा और पदार्थविद्यामें निपुण होंवे वे सोमसद "यैरग्नेर्विद्युतोविद्या गृहीताते अग्निष्वात्ताः" जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि पदार्थोंके जान्नेवाले होंवे अग्निष्वात्त "येर्बर्हिषिउत्तमेव्यवहारे सीदन्ति ते बर्हिषदः" जो उत्तम विद्या वृद्धियुक्त उत्तम व्यवहारमें स्थित होंवे बर्हिषद् "येसोमैश्वर्यमौषधीरसं वा पान्ति पिबन्ति वा ते सोमपाः" जो ऐश्वर्यके रक्षक और महौषधिका पान करनेसे रोगरहित और अन्यके ऐश्वर्यरक्षक औषधोंको देकै रोगनाशक होंवें वे सोमपाः "येहंविर्होतुमत्तुमर्हं भुञ्जते भोजयन्ति वा ते हविर्भुजः" जो मादक और हिंसाकारक द्रव्योंको छोड़कै भोजन करते हैं वे हविर्भुज "य आज्यं ज्ञातुं प्राप्तुं वा योग्यं रक्षन्ति वा पिबन्ति त आज्यपाः" जो जाननेके योग्य वस्तुके रक्षक और घृत दुग्धादि खाने और पीनेहारे होंवें वे आज्यपा "शोभनः कालो विद्यते येषां ते सुकालिनः" जिनका अच्छा धर्म करनेका सुखरूप समय होवै वे सुकालिन् "ये दुष्टान् यच्छन्ति निगृह्णन्ति ते यमा न्यायाधीशाः" जो दुष्टोंको दण्ड और श्रेष्ठोंका पालन करनेहारे न्यायकारी होंवे यम "यः पाति स पिता" जो सन्तानोंका अन्न और सत्कारसे रक्षक वा जनक हो वोह पिता "पितुः पिता पितामहः पितामहस्यपिताप्रपितामहः यामानयति सामाता" जो अन्न और सत्कारोंसे सन्तानोंका मान्य करै वोह माता "यापितुर्मातासापितामही पितामहस्यमाताप्रपितामही" अपनी स्त्री तथा भगिनी सम्बन्धी और एक गोत्रके तथा अन्य कोई भद्र पुरुष वा वृद्ध हो उन सबको अत्यन्त श्रद्धासे उत्तम अन्न वस्त्र सुन्दर पान आदि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्त करना अर्थात् जिस२कर्मसे उनका आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहै उस २ कर्मसे प्रीति पूर्वक उनकी सेवा करनी वह श्राद्ध और तर्पण कहाता है ॥ १०२। २९ सेर

समीक्षा-पहले सत्यार्थप्रकाशमें मरौंका श्राद्ध तर्पण लिखाथा इसमें आप किसी पादरीसे हारकर जीतोंका श्राद्ध तर्पण लिखते हैं इस्से पहले हम यह निर्णय किया चाहतेहैं कि श्राद्ध मृतक पुरुषोंका होताहै वा जीवतोंका देखो यजुर्वेद॥

ये स॒मा॒नाः सम॑नसः पि॒तरो॑ य॒म॒राज्ये॑ तेषाँ॑ल्लो॒कः स्व॒धा नमो॑ य॒ज्ञोदे॒वेषु॑कल्पताम् अ० १९ मं० ४५

अर्थ-अपसव्य और दक्षिणमुख होकर यजमान एकवार लिये हुए घृतको जुहूसे दक्षिणाग्निमें होमताहै उसका मंत्र। प्रजापतिऋषिः। अनुष्टुपछन्दः। पितरोदेवता॥

भा० (ये) जो (समानाः) जातिरूपादिसे समान मर्यादावाले (समनसः) एकान्तःकरण वा तुल्य मनवाले हमारे (पितरः) पितर (यमराज्ये) यमलोकमें वर्तमान हैं (तेषाम्) उन पितरोंके (लोकः) लोकमें (स्वधा) स्वधा नाम (नमः) अन्न दृष्टिगोचरहो (यज्ञः) यज्ञतौ (देवेषु) देवताओंके तृप्तकरनेमें (कल्पताम्) समर्थहों। पितॄनेव यमे परिददात्यथो पितृलोकमेव जयति श० १२।८।१।१९।४५

ये स॒मा॒नाः सम॑नसो जी॒वाजी॒वेषु॑मामकाः

तेषा॒ᳪ श्रीर्मयि॑कल्पताम॒स्मिँल्लो॒केश॒तᳪसमाः॑ ४६

(ये) जो (जीवेषु) प्राणियोंमें (समानाः) समदर्शी (समनसः) मनस्वी (मामकाः) मेरे सपिण्ड (जीवाः) पितरहैं इसलोकमें रहते हैं (तेषाम्) उनकी (श्रीः) लक्ष्मी (अस्मिन्) इस (लोके) भूलोकमें (शतम्) सौ (समाः) वर्षोंतक (मयि) मुझमें (कल्पताम्) आश्रय करै ४६

द्वे सृ॒ती अ॑शृणवम्पि॒तॄ॒णाम॒हन्दे॒वाना॑मु॒तमर्त्या॑नाम्

ताभ्या॑मि॒दं विश्व॒मेज॒त्समे॑ति॒यद॑न्त॒रापि॒तर॑म्मा॒तर॑ञ्च ४७

प्रजापतिर्ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः देवयानपितृयानमार्गौ देवते

(अहम्) मैंने श्रुतिसे (मर्त्यानाम्) मरणधर्मा प्राणियोंके (देवानाम्) देवताओंके गमनयोग्य (उत) और (पितृणाम्) पितरोंके गमनयोग्य (द्वे) दो (सृती) मार्ग (अशृणवम्) सुनेहैं (यत्) जो (पितरम्) द्युलोकके (च) और (मातरम्) भूलोकके (अन्तरा) मध्यमें वर्त-

मानहैं (इदम्) यहा (एजत्) क्रियावान् (विश्वम्) जगत् (ताभ्याम्) उन देवयान पितृयान मार्गोंसे (समेति) प्राप्त होता है ४७

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः
असुं यईयुरवृकाऋतज्ञास्तेनोऽवन्तुपितरोहवेषु

ऋ० मं० १० अ० १ सू० १५ मं० १ । यजुअ० १९ मं० ४९

उदीरतामवरउदीरतां परउदीरतां मध्यमः पितरः सोम्याः सोमसम्पादिनस्तेऽसुंये प्राणमन्वीयुरवृकाअनमित्राः सत्यज्ञावा यज्ञज्ञावा तेन-आगच्छन्त पितरोह्वानेषु माध्यमिको यम इत्याहुस्तस्मान्माध्यमिकान् पितॄन्मन्यन्ते-नि० अ० ११ खं०१८ कां० दैवतम् ॥

शंखऋषिः पितृमेधेविनियोगः ।

भाष्यम्-येतावत् अवरे पितरः पृथिवीमाश्रिताः तेतावत् उदीरताम् ऊर्ध्वं गच्छन्तु अथ पुनर्ये (परासः) परेद्युलोकमाश्रिताः तेप्युदीरताम् तेषां मप्यप्रच्युतिरस्तु मुच्यन्तां वा तदधिकारप्रक्षये (उन्मध्यमाः) पितरोयेऽपि मध्यमाः मध्यस्थानाश्रयाः तेप्युदीरताम् उत्तमंलोकमाश्रयताम् (सोम्यासः) सोमसम्पादिनः कर्मण्यङ्गभावमुपगच्छन्तोयेसोमंसम्पादयन्ति किं प्रकाराः "असुंयईयुः" प्राणमात्रमूर्तयः अस्थूलविग्रहाः "अवृकाः" अनमित्राः परंसाम्यमुपगताः "ऋतज्ञाः" यथावत् सत्यवेदितारः यज्ञस्यवा यएवमादिगुणयुक्ताः पितरः " ते नः " अस्माकम् नित्यम् " अवन्तु " आगच्छन्तु " हवेषु " आह्वानेषु इत्येतदाशास्महे माध्यमिकोयम इत्याहुः नैरुक्ताः तस्मात् पितॄन् माध्यमिकान्मन्यन्ते स हि तेषां राजेति ॥

वैवस्वतंसंगमनंजनानांयमंराजानंहविषादुवस्य

ऋ० मं० १० अ० १ सू० १४ मं० १

इति मंत्रप्रमाणात् यमस्यपितृराजत्वं भवति दुवस्य परिचरेत्यर्थः ॥

भाषार्थ-जो पितर अवर अर्थात् पृथ्वीमें स्थित हैं वे ऊपर गमन करो और जो स्वर्लोकमें स्थितहैं वे प्रच्युतिरहित होवैं, अथवा अधिकारकी क्षीणतासे मुक्त होवैं, और जो मध्यस्थानमें स्थितहैं वे उत्तम लोकका आश्रय करो, वे पितर सौम्य हैं, अर्थात् कर्ममें अंगभावको प्राप्त होकर सोमको सम्पादन करते हैं,और स्थूलशरीरको त्याग करप्राण मात्र मूर्तिवाले हैं (अवृकाः) अर्थात् शत्रुभावरहित यथावत् सत्य वा यज्ञके ज्ञाता हैं

वे पितर आवाहन स्थानोंमें आगमन करो, माध्यमिक यम है इस कारण पितरोंको माध्यमिकही मान्ते हैं, क्योंकि यमराज मध्यस्थानमें स्थितहैं और तदनुवर्ती पितरभी मध्यस्थानमें स्थितहैं, यमको पितृराज होनेमें (वैवस्वतं०) यह मंत्र प्रमाण है इसका अर्थ यह है कि प्राणि मात्रका यमके प्रति गमन होताहै, तिस यमराजको हविसे परिचरणकर "दयानंदी इन मंत्रोंको विचारैं" ॥

येनः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः
तेभिर्य्यमः सꣳरराणोहवीꣳष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु

यजु० अ० १९ मं० ५१

(शंखऋषिः पितरोदेवता) (ये) जो (सोम्यासः) सोमसम्पादक (वसिष्ठाः) वसिष्ठ वंशी (नः) हमारे (पूर्वे) पूर्व (पितर) पितरोंने (सोमपीथम्) सोमपानको (अनूहिरे) देवगणोंको बुलाया (उशन्) सोमकी इच्छावाले (यमः) पितृपति (तेभिः) उन (उशद्भिः) सोमकी इच्छावाले पितरों सहित (संरराण) प्रसन्न होते (प्रतिकामम्) इच्छानुसार हमारी दी हुई (हवींषि) हवियोंको (अत्तु) भोगो ५१ ॥

त्वयाहिनः पितरः सोमपूर्वेकर्माणिचक्रुः पवमानधीराः
वन्वन्नवातः परिधीꣳ२॥रपोर्णुवीरेभिरश्वैर्म्मघवाभवानः॥५३॥

(शंखऋषिः सोमोदेवता) हे (पवमान) हे शोधक (सोम) सोम (नः) हमारे (धीराः) धीर (पितरः) (पितरोंने (त्वया) तुम्हारे द्वारा (कर्माणि) यज्ञादि कर्मोंको (चक्रुः) किया इसकारण (वन्वन्) इस कर्ममें युक्त (अवातः) वातादिके उपद्रवरहित तुम (परिधीन्) उपद्रवकारियोंको (अपोर्णुहि) दूर करो (वीरेभिः) वीर (अश्वैः) अश्वों द्वारा (मघवा) इन्द्र (नः) हमको धन देनेवाला (आभव, सब ओरसेहो ५३

बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमावोहव्याचकृमाजुषध्वम्
तऽआगताऽवसाशन्तमेनाथानः शंयोररपोदधात ५५

(शंखऋषिः पितरो देवताः (बर्हिषदः) कुशासन पर बैठनेवाले (पितरः) हे पितरो (ते) वे तुम (ऊत्या) रक्षाके निमित्त (अर्वाक्)

समीप (आगत) आओ (वः) तुम्हारी (इमाः) यह (हव्या) हवि (चकृम) हमने संस्कार किये हैं, इसको (आजुषध्वम्) तुम सेवन करो (अथ) फिर (शन्तमेन) बड़े सुखदाता (अवसा) अन्नसेतृप्त होकर (नः) हममें (शम) सुख (योः) भयका पृथक् करना (अरपः) पापका अभाव (दधात) स्थापन करो ॥ ५५ ॥

आयन्तुनः पितरस्सोम्यासोग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः

आस्मिन्यज्ञेस्वधयामदन्तोधिब्रुवन्तुतेवन्त्वस्मान् ५८

(शंखऋषिः पितरोदेवता) (सोम्यासः) सोमके योग्य (अग्निष्वात्ता) आग्निद्वारा स्वदिता वा स्मार्त (न) हमारे (पितरः) पितर (देवयानैः) देवताओंके गमन योग्य (पथिभिः) मार्गोंसे (आयन्तु) आवें (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञमें (स्वधया) अन्नसे (मदन्तः) प्रसन्न होते (अधिब्रुवन्तु) मानसिक उपदेश दें (ते) वे (अस्मान्) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥ ५८ ॥

ये अग्निष्वात्तायेअनग्निष्वात्तामध्येदिवः स्वधयामादयन्ते

तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतांयथावशन्तन्वंकल्पयाति ६०

(ये) जो पितर (अग्निष्वात्ताः) विधिपूर्वक अग्निदाहसे और्ध्व देहिक कर्मको प्राप्त हैं (ये) जो पितर अनग्निष्वात्ताः श्मशानकर्मको प्राप्त न हुए और (दिवः) द्युलोकके (मध्ये) मध्यमें (स्वधया) अपने उपार्जित कर्मके भोगरूप अन्नसे (मादयन्ते) प्रसन्न रहतेहैं (स्वराट्) राजायम (तेभ्यः) उन पितरोंके निमित्त (यथावशम्) इच्छानुसार (एतान्) इन मनुष्य सम्बन्धवाले (असुनीतिम्) प्राणयुक्त (तन्वम्) शरीरको (कल्पयाति) देता है। यानग्निरेव दहनःस्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः, २।५।५।७ श० जिनको अग्नि जलाती है वे पितर अग्निष्वात्त हैं ६०

आच्याजानुदक्षिणतोनिषद्येमंयज्ञमभिगृणीतविश्वे

माहिंसिष्टपितरः केनचिन्नोयद्वआगः पुरुषताकराम ६२

(पितरः) हे पितरो ! (विश्वे) तुम सब (जानु) वाम जांघको (आ) सब प्रकार (आच्य) झुकाकर (दक्षिणतः) दक्षिणको मुखकर (निषद्य) बैठकर (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञको (अभिगृणीत) अभिनन्दन करो (केनचित्) किसी अपराध होनेसे (नः) हमपर (मा) मत (हिंसिष्ट) क्रोध करो (यत) कारण कि (पुरुषता) प्रचालित होनेसे

(वः) तुम्हारा (आगः) अपराध (वयम्) हम (करामः) भूलसे कर-जाते हैं ॥ ६२ ॥

आसीनासोअरुणीनामुपस्थेरयिन्धत्तदाशुषेमर्त्याय
पुत्रेभ्यःपितरस्तस्यवस्वःप्रयच्छततइहोर्जन्दधात ६३

हे पितरो (अरुणीनाम्) अरुणवर्ण ऊनके आसनो अथवा सूर्यकी किरणोंके (उपस्थे) ऊपर वा गोदमें (आसीनासः) बैठे हुए तुम (दाशुषे) हविके दाता (मर्त्याय) यजमानमें (रयिम्) धनको (धत्त) धारण करो (पुत्रेभ्यः) (तस्य) उसके पुत्रोंके लिये (वस्वः) धनको (प्रयच्छत) दो) (ते) वे तुम इह इस यज्ञमें (ऊर्जे) रसको (दधात) स्थापन करो६३॥

पुनन्तुमापितरः सोम्यासः पुनन्तुमापितामहाः पुनन्तुप्र-पितामहाः पवित्रेणशतायुषा पुनन्तुमापितामहाः पुनन्तुप्र-पितामहाः पवित्रेणशतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै अ० १९ मं०३७

सोमके योग्य पितर पूर्णायुके दाता पवित्रासे मुझको शुद्ध करो पिता मह मुझको पवित्र करो प्रपितामह पवित्र करो पितामह पूर्ण आयुके दाता पवित्रासे मुझको शुद्ध करो प्रपितामह शुद्ध करो पूर्ण आयुको प्राप्त करो ॥

आधत्तपितरोगर्भङ्कुमारम्पुष्करस्रजम् ॥ यथेहपुरुषोसत्
यजु० अ० २ मं० ३३

पुत्रकी कामनावाली स्त्री बीचके पिण्डको भोजन करै का० ४ । १ । २ (पितरः) हे पितरो ! (यथा) जैसे (इह) इस ऋतुमें (पुरुषः) देव पितर मनुष्योंके अर्थका पूर्ण करनेवाला (असत्) होवे वैसे (पुष्करस्रजम्) पुष्पमालाधारी गुणवान (कुमारम्) पुत्ररूप (गर्भम्) गर्भको (आधत्त) सम्पादनकरो ३३ पुत्रकी कामनाकरनेवाली स्त्री मध्य पिंडको भोजन करै उस समय इस मंत्रको पढै यह आश्वलायनमें लेखहै ॥

येचजीवायेचमृतायेजातायेचयज्ञियाः ॥
तेभ्योघृतस्यकुल्यैतुमधुधाराव्युंदती अथर्व० १८।४।५७

(च) और (ये) जो (जीवाः) जीवितहैं (च) और (ये) जो (मृताः) मृतक होगये (ये) जो (जाताः) जन्मेहैं (येच) और जो (यज्ञियाः) यज्ञके करानेवालेहैं (तेभ्यः) उन सबके निमित्त (घृतस्य) घृतकी (व्युन्दती) टपकती (मधुधारा) मधुरधार (कुल्या) सरित (एतु) प्राप्तहो इसमें मृतकके निमित्तभी घृत मधु कहाहै।

प्रेहिप्रेहिपाथिभिः पूर्याणैर्येनातेपूर्वेपितरःपरेताः॥
उभाराजानौस्वधयामदन्तौयमंपश्यसिवरुणंचदेवम्।
अथर्व० १८।१।५४

(येन) जिसमार्गसे (ते) तेरे (पूर्वे पितरः) पूर्वपितर (परेताः) मरकर गये उन २ (पूर्याणैः) यमनिर्मित शरीर यानरूप (पथिभिः) मार्गोंसे (प्रेहि २) जाओ वहां (स्वधया मदन्तौ) स्वधानाम अन्नसे प्रसन्न होते उभा राजानौ दोनो प्रकाशमान राजा (देवम्) देव (यमम्) यमको (च) और (वरुणम्) वरुणको (पश्यसि) देखैगा॥

येनिखातायेपरोप्तायेदग्धायेचोद्धिताः॥
सर्वांस्तानग्नआवहपितॄन्हविषेअत्तवे अथर्व का० १८।२ मं. ३४

(ये) जो (निखाता) गाडे गये (ये) जो परोप्ताः वनमें छोड दियेगये (ये) जो (दग्धाः) जलादिये गये (येच) और जो (उद्धृताः) शरीर सहित स्वर्गको गये (अग्ने) हे अग्नि! (तान् सर्वान्) उन सबको (हविषे) हवि (अत्तवे) भोजन करनेको (आवह) पितृकर्ममें बुलाओ॥

इसके अर्थमें भा० प्र० कर्ता खूब परास्त हुआ है॥

येअग्निदग्धायेअनग्निदग्धामध्येदिवः स्वधयामादयन्ते त्वंता-
न्वेत्थयतितेजातवेदः स्वधयायज्ञंस्वधितिंजुषन्ताम् अथर्व० ३५

(ये) जो (अग्निदग्धाः) अग्निमें दग्ध हुए हैं (ये) जो (अनग्निदग्धाः) अग्निमें दग्ध नहीं हुए (दिवः) द्युलोकके (मध्ये) मध्यमें (स्वधया) अमृतरूप अन्नसे (मादयन्ते) प्रसन्न हैं (जातवेदः) हे अग्ने! (त्वम्) तू (यदि) जो (तान्) तिनको (वेत्थ) जान्ता है तेरेद्वारा (स्वधया) स्वधासे (स्वधितिम्) पितृसम्बन्धि (यज्ञम्) यज्ञको (जुषन्ताम्) सेवन करैं॥

येनःपितुः पितरो येपितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम्॥
य आक्षियन्तिपृथिवीमुतद्यांतेभ्यःपितृभ्योनमसाविधेम अथर्व० ४९

(ये) जो (नः) हमारे (पितुः) पिताके (पितरः) पितरहैं (ये) जो हमारे (पितामहाः) बाबा हैं (ये) जो (उरु) बड़े (अन्तरिक्षम्) पितृलोकमें (आविविशुः) प्रवेश कर गये हैं (ये) जो (पृथिवीम्) पृथिवीको (उत) और (द्याम्) द्युलोकको (आक्षियन्ति) व्याप्तकर रहे हैं (तेभ्यः) उन (पितृभ्यः) पितरोंके निमित्त (नमसा) अन्न वा नमस्कार (विधेम) विधान करते हैं ॥

योममारप्रथमोमर्त्यानांयः प्रेयायप्रथमोलोकमेतम्
वैवस्वतंसंगमनंजनानांयमंराजानंहविषासपर्यत अ० १८।३।१३

(यः) जो (मर्त्यानाम्) प्राणियोंमें (प्रथमः) पहले(ममार)मरता है यः जो (एतम्) इस (लोकम्) लोकको (प्रथमः) पहले (प्रेयाय) लेजाता है (तम्) उस (जनानाम्) जनोंके (संगमनम्) संयमन करने वाले (वैवस्वतम्) सूर्यपुत्र (यमम्) यम (राजानम्) राजाको (हविषा) हविसे (सपर्यत) सत्कार किया जाता है ॥

यास्तेधानाअनुकिरामितिलमिश्राःस्वधावतीः
तास्तेसन्तुविभ्वीःप्रभ्वीस्तास्तेयमोराजानुमन्यताम्
अ० १८।३।६९

(तिलमिश्राः) तिलमिश्रित (स्वधावतीः) स्वधायुक्त (याः) जो (धानाः) धान (ते) तेरे निमित्त (अनुकिरामि) छोडताहूं (ताः) वे (विभ्वीः) अधिकाईसे युक्त (प्रभ्वीः) प्रभावयुक्त (ते) तेरे निमित्त(सन्तु) हों (ताः ते) उन्हें तेरे निमित्त (यमः) यम (राजा) राजा(अनुमन्यताम्) स्वीकार करें ॥

भास्कर प्रकाशकी इन अर्थोंमें मिट्टी खराब होगई है अग्नि आदिके सम्बोधनकर बैठे हैं मात्रा पड़ा है ॥

आरभस्वजातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तुते।
शरीरमस्यसंदहाथैनंधेहिसुकृतामुलोके अथर्व० ७१

(जातवेदः) हे अग्ने! (आरभस्व) आरंभकर (तेहरः) तेरीज्वाला (तेजस्वत्) तेजस्वी (अस्तु) हो (अस्य) इस जीवके (शरीरम्) शरीरको (संदह) भस्मकर (अथ) और (एनम्)इसको (सुकृताम् उ) पुण्यात्माओंकेही (लोके) लोकमें (धेहि) धारण करो ॥

ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हित्वाद्वेषांस्यनपत्यवन्त्यःतेद्यामुदि
त्याविदन्तलोकं नाकस्यपृष्ठे अधिदीध्यानाः १८।२।४७।अथर्व०

अर्थ—जो दोषके त्यागनेवाले निस्सन्तान श्मशान कर्मको प्राप्तहों स्वर्गादि लोकमें प्राप्त हैं उनको हवि देते हैं यहां पूर्णरूपसे विदित है कि मृतक श्राद्ध होता है ॥

हे अग्ने! प्रचण्ड तेज युक्त अपनी ज्वालासे इस मृतकके शरीरको जला और पुनः पुण्यवानोंके लोकमें लेजा ॥

येतेपूर्वेपरागताअपरेपितरश्चये
तेभ्योघृतस्यकुल्यैतुशतधाराव्युंदती अथर्व० १८।२।७२

हे जीव ! (ये) जो (ते) तेरे (पूर्वे) पूर्वले (पितरः) पितर (च) और (अपरे) अन्य बांधवादि (ये) जो (परागताः) मृतक होगये (तेभ्यः) इनके निमित्त (घृतस्य) घृतकी (कुल्या) सरिता (व्युन्दती) क्षरण होती हुई (शतधारा) सौ धारा (एतु) प्राप्तहों ॥

भा० प्र० वालेको इतनाभी ज्ञान नहीं जो मृतकके पूर्वजोंको जो उस से पहलेही मरचुके उनके दाहके लिये घृत दिवाते हैं और उपस्थितकी उपेक्षा करते हैं ॥

स्वधापितृभ्योदिविषद्भ्यः स्वधापितृभ्योअन्तरिक्षसद्भ्यः
अथर्व० १८।४।८०।७९

स्वर्गमें रहनेवाले पितरोंको स्वधा नाम अन्न प्राप्तहो अन्तरिक्षमें रहने वाले पितरोंको स्वधा नाम अन्न प्राप्तहो ॥

अङ्गिरसोनः पितरोनवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः तेषां
वयꣳसुमतौयज्ञियानामपिभद्रे सौमनसे स्याम य० अ० १९मं५०

जो नवीन गतिवाले सोम योग्य अंगिरावंशी अथर्ववंशी भृगुवंशी हमारे पितर हैं उन यज्ञ योग्य पितरोंकी श्रेष्ठ बुद्धि और कल्याण करने वाली सुन्दर मनोवृत्तिमें भी हम स्थित होवें ५० " दूतौ यमस्य मानुगा अधि जीव पुरा इह अथर्व ५ । प्र० । ३० । ६ " इसमें यमराजके दूत वर्णन किये हैं ॥

यौतेश्वानौयमरक्षितारौचतुरक्षौपथिरक्षीनृचक्षसौ
ताभ्यामेनंपरिधेहिराजन्त्स्वस्तिचास्माअनमीवंचधेहि
ऋ० मं० १० अ० १ सू० १५ मं० ११

(यम) हे यम (यौ) जो दो (ते) तेरे (श्वानौ) सारमेय (रक्षितारौ) तुम्हारे घरकी रक्षाकरनेवाले (चतुरक्षौ) चार नेत्र वाले (पथिरक्षी) तुम्हारे मार्गके रक्षक (नृचक्षसौ) मनुष्योंसे ख्याति पाये हुएहैं (राजन्) हे राजन् ! (ताभ्याम्) उन दोनों कुत्तोंसे (एनम्) इस प्रेत को (परिधेहि) रक्षामें नियुक्त कीजिये (च) और (अस्मै) इसके निमित्त (अनमीवम्) आरोग्यता (च) और (स्वस्ति) कल्याण (धेहि) धारण करो ॥

इत्यादि मंत्रोंसे विदित होता है कि, श्राद्ध मृतक पितरोंकाही करना चाहिये यदि कोई यह शंका करै कि, क्या वहां डाक जाती है कि जो उन पितरोंके पास अन्न पहुंचताहै तो इसमें भी वेदकाही प्रमाण है (उदीरितां) इस मंत्रमें प्राण मूर्ति पितरोंकी कथन करी है तथा (पितरो यमराज्ये) जो पितर यम लोकमें हैं ॥ इस कथनसे यह विदित होता है कि, प्राण मात्र तथा सूक्ष्म शरीरधारी पितर लोकान्तरमें वास करते हैं उन सबको मंत्र संस्कृत अग्नि हवि पहुंचाता है यथाहि ॥

यमंग्नेकव्यवाहनत्वञ्चिन्मन्यसेरयिम्
तन्नोगीर्भिः श्रवाय्यंन्देवत्रापनयायुजम् ६४ मं० अ० १९ यजु०

(शंखऋषिः अग्निर्देवता) (कव्यवाहन) पितरोंके अन्न प्राप्त करानेवाले ! (अग्ने) हे अग्नि (त्वम्) तुम (चित्) भी (यम्) जिस (रयिम्) हविरूप धनको (मन्यसे) उत्तम जानते हो (नः) हमारे (तम्) उस (गीर्भिः) वचनोंसे (श्रवाय्यं) श्रवण योग्य (युजं) हविरूप धनको (देवत्रा) देवताओंके मध्य (आपनय) सब ओरसे दो ॥ ६४ ॥

योऽअग्निः कव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः
प्रेदुहव्यानिवोचतिदेवेभ्यश्चपितृभ्यआ ॥ ६५ ॥

(यः) जिस (कव्यवाहनः) कव्यवाहन नाम (अग्निः) अग्निने (ऋतावृधः) सत्य वा यज्ञके वृद्धि देनेवाले (पितॄन्) पित्रोंको (यक्षत

यजन किया (उ इत्) वही अग्नि (देवेभ्यः) देवताओं (च) और (पितृभ्यः) पितरोंके लिये (हव्यानि) हवियोंको (आ) सब ओरसे (प्रवोचति) जतलाताहै ॥ ६५ ॥

त्वमग्नईडितः कव्यवाहनावाड्ढव्यानिसुरभीणिकृत्वी
प्रादाः पितृभ्यः स्वधयाते अक्षन्नद्धि त्वन्देव प्रयताहवीꣳषि ६६

(कव्यवाहन) हे कव्य, हव्य वहन करनेवाले (अग्ने) अग्निदेवता (ईडितः) ऋत्विजोंसे स्तुतिकिये (त्वम्) तुम (हव्यानि) हवियोंको (सुरभीणि) सुगंधियुक्त (कृत्वी) करके (अवाट्) वहन करते हो (स्वधया) पितृमंत्रद्वारा (पितृभ्यः) पितरोंके निमित्त (प्रादाः) दो) (ते) उन पितरोंने (अक्षन्) भक्षणकरी (देव) अग्निदेव (त्वम्) तुम भी (प्रयता) शुद्ध (हवींषि) हवियोंको (अद्धि) भक्षणकरो ॥ ६६ ॥ पितरोंने भक्षण किया हे अग्नि देवता तुम भी शुद्ध हवियोंको भक्षण करो ६६ ॥

येचेहपितरोयेचनेहयांश्चविद्मया ꣳ॥ उचनप्रविद्म
त्वंवेत्थयतितेजातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳसुकृतञ्जुषस्व ॥ ६७ ॥

(च) और (ये) जो (पितरः) पितर (इह) इस लोकमें देहको धारण करके वर्तमान हैं (च ये) और जो (इह) इस लोकमें (न) नहीं हैं अर्थात स्वर्गमें हैं (च) और (यान्) जिन पितरोंको (विद्म)हम जान्ते हैं (च) और (यान्) जिन पितरोंको (न) नहीं (प्रविद्म) जानते हैं स्मरण न होनेसे (जातवेदः) हे सर्वज्ञ अग्ने ! (ते) वे पितर (यति) जितने हैं (त्वम्) तुम (उ) ही (वेत्थ) उनको जान्ते हो (स्वधाभिः) पितरोंके अन्नोंसे (सुकृतं) शुभ यज्ञको (जुषस्व) सेवन करो ॥ ६७ ॥

यहां इह शब्दसे जीते पितरोंका ग्रहण नहीं होता किन्तु जिन्होंने मरकर कर्मवश इस लोकमें देह धारण किया है अन्यथा न प्रविद्म इसका शब्दार्थ नहीं घट सक्ता विद्मका अर्थ यह है कि, जिनको मैं अपना पितर जानताहूं परन्तु कहां है यह नहीं जान्ताहूं अथवा जिनको जानताहूं (बाप दादे परदादेकूं) जिनको नहीं जानता इक्कीस पीढीतक ॥ यह तात्पर्य्य है ॥

इदम्पितृभ्योनमो अस्त्वद्ययेपूर्वासोयउपरासईयुः ।
येपार्थिवेरजस्यानिषत्ताये वानूनथंसु वृजनासुविक्षु ॥६८॥

(अद्य) अब (इदम्) यह (नमः) अन्न (पितृभ्यः) पितरोंके लिये (अस्तु) हो (ये) जो (पूर्वासः) पूर्व ऋषि हैं (ये) जो (उपरासः) कृतकृत्य (ईयुः) ईश्वरको प्राप्तहुए (ये) जो (पार्थिवेरजसि) स्वर्गादिलोकमें (निषत्ताः) विराजमानहैं (वा) अथवा (ये) जो (नूनम्) निश्चय (सुवृजनासु) धर्म बल रूप बलसे युक्त (विक्षु) प्रजाओं अर्थात् मनुष्य लोकमें देहधारण करके वर्त्तमान हैं ॥ ६८ ॥

अधायथानः पितरःपरासःप्रत्नासोऽअग्नऋतमाशुषाणाः ॥
शुचीदयन्दीधितिमुक्थ शासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरपव्रन्६९

(अग्ने) हेअग्ने ! (नः) हमारे (परासः) उत्कृष्ट (प्रत्नासः) सनातन (ऋतं) यज्ञको (आशुषाणाः) प्राप्तकरनेवाले (पितरः) पितरोंने (यथा) जैसे (अधा) अधोलोकसे (शुचि) पवित्र (दीधितिं) सूर्यमंडलको (इत्) ही (अयन्) प्राप्तकिया उसी प्रकार (उक्थशासः) उक्थ शास नामस्तोत्रोंको पढते (क्षामाः) वेदीआदि खोदनेसे भूमिको (भिन्दन्तः) भेदते हम (अरुणीः) सूर्यज्योतिको (अपव्रन्) प्राप्तहोवें ॥ ६९॥

उशन्तस्त्वानिधीमह्युशन्तः समिधीमहि
उशन्नुशतआ वह पितॄन्हविषेअत्तवे ७०

हेअग्ने ! (उशन्तः) कामार्थी हम (त्वा) तुझे (निधीमहि) स्थापनकरतेहैं (उशन्तः) कामार्थी हम तुझे (समिधीमहि) प्रज्वलित करतेहैं (उशन्) हविचाहनेवाले (उशंतः) हविचाहनेवाले (पितृन्) पितरोंको (हविशे अत्तवे) हविभक्षणके लिये (आवह) लाओ ॥

यमायसोमः पवते यमायक्रियतेहविः
यमंह यज्ञोगच्छत्यग्निदूतोअरंकृतः अथर्व० १८-२-१

यमके अर्थ सोम किया जाता यमके वास्ते हवि किया जाता और मंत्रद्वारा अग्नि दूतही यज्ञसे यमके प्रति हवि ले जाता है ॥

इत्यादि मंत्रोंसे अग्निका श्राद्धमें हविलेजाना सिद्धहै अब मनुजी का वाक्य देखिये ॥

अपसव्यमग्नौकृत्वासर्वमावृत्यविक्रमम्
अपसव्येनहस्तेननिर्वपेदुदकंभुवि अ० ३ श्लो० २१४

अपसव्यहोकर अग्निकरणादिहोम और अनुष्ठान क्रमको करकै पश्चात दक्षिणहाथसे भूमिपर पानी डाले २१४

प्राचीनावीतिनासम्यगपसव्यमतन्द्रिणा
पित्र्यमानिधनात्कार्यंविधिवद्दर्भपाणिना २७९

दहिने कंधेपर यज्ञोपवीत रखकै आलस्यरहित होकर दर्भ हाथमें ले अपसव्य यथा शास्त्र सब कर्म पितृसम्बन्धी समाप्ति पर्यन्त करै २७९

इन बातोंके विचारनेसे विदित होताहै कि, जीवित विद्वान् पुरुषोंका नाम पितर नहीं है किन्तु जो मृतक होगये हैं श्राद्धतर्पण उन्हींका होताहै यदि देवता और पितर यह दोनों नाम विद्वानोंके होते तौ पितृकर्म अपसव्य और देवकर्म सव्यहो करने क्यों लिखे जाते तथा जो सपिंड पितर यमलोकमेंहैं उनको यह अन्नप्राप्तहो इस वेदवाक्यसे यमलोकमें स्थित पितरोंको अन्न मिलनाकहाहै यदि विद्वानोंका अर्थकरैं तौ विद्वानतौ इसीलोकमेंहैं(उनको यह अन्न दृष्टिगोचरहो) ऐसा कहना नहीं बनसक्ता क्योंकि वे तौ इसी लोकमेंहैं और सामने बुलाकर अन्नदे सक्तेहैं फिर(समानासमनसः) सपिंड और मनस्वीपितर सपिंड पितर कहनेसे तौ पितामहादिकोंकाही बोध होता है यदि विद्वान् अपने सम्बन्धके नहों तौ उनकेलिये सपिंड शब्दका प्रयोग नही होसक्ता ॥

फिर सपिंड मनस्वी पितरोंकी धन सम्पति हमारे पास १०० वर्षतक वासकरो यह बात तौ पितामहादिकोंमेंही बनसकैगी क्योंकि पुत्र पिता पितामहादिकोंकेही धनका अधिकारी होताहै और जो विद्वानोंहीका नाम पितर कहतेहो तौ इसमंत्रके अनुसार जैसे उनको सत्कार पूर्वक बुलावे सो झट उनका मालमता छीनले और कहदेकि स्वामीजी कहगयेहैं तुह्मारा धन हमारे यहां सौवर्षतक रहै बस ऐसे अर्थोंसे बहुतसे विद्वान् स्वामीजीकी जानको रोवैंगे क्योंकि मंत्रके अर्थ कर आज्ञादेदीहै पुनः मनुष्यदेवता पितरोंके दोमार्ग कैसे बनैंगे वे मार्ग स्वर्ग और पृथ्वीके मध्यमें वर्तमानहैं यह क्रियावान् विश्व इन्हीं दो

मार्गोंसे जाताहै यह जो पूर्व मंत्रका अर्थ कर आयेहैं यदि विद्वानों का नाम पितर मानलें तौ यह दो मार्ग कैसे बनेंगे और क्या विद्वान पृथ्वी और स्वर्गके बीचमें लटकतेहैं यह हो नहीं सक्ता केवल पितरही जो प्राणमात्र मूर्तिहैं वायुके आधार मध्यमें स्थित रहसक्तेहैं क्योंकि (असुंयईयुः) इसका यही अर्थ है पितर प्राणमात्रमूर्तिवाले और सूक्ष्मशरीरहैं और इसलोक मध्यलोक परलोकमें स्थित जो पितरहैं वे ऊर्ध्वलोकको जाओ तौ क्या इसमंत्रसे आपके विद्वान्‌नामके पितर मध्य लोकमें और परलोकमें कैसे स्थितहोसक्तेहैं कभी स्वामीजी ऐसी करामात दिखातेकि दोचार घंटेको आकाशमें प्रवेश करजाते तौ लाखोंही चेले होजाते और महायोगीराजमें गिन्ती होती यदि विद्वानोंहीका नाम पितरहै जो जीवित हैं तौ जिस समयमें वे घरमें आवैं तौ उन्हें ऊर्द्धलोक कैसे भेजैं स्थूलशरीर होनेसे देहसे तौ जानहीं सक्ते यदि उन जीवतोंका प्राण बहिर्गत कियाजाय तौ ऊर्द्धलोकजासक्तेहैं तौ वही दशा होय कि जैसें एकनाई किसीबावाजीको मार आफतमें पडाथा यह दृष्टान्त इसप्रकार है कि एक मनुष्यने तपकर यह वरदान पाया कि हजामत बनवाते समयजो मंगता आवै तू उसे मारडालियो सोनाहो जायगा, एक समय हजामत बनवाते समय कोई मंगताआया और उस पुरुषने झटमार गिराया कि वोह सोनाहोगया नाई देखते ही कहने लगाकि यह तौ खूब नुकशा हाथलगा सोना सहजमें होताहै बस वोभी घरजाकर इसी फिक्रमें बैठा और मांगनेको आयेहुए किसीसाधुको मार गिराया और उसमें कुछन पाया अन्तमें राजदर्बारमें पकडजाकर दंडभागीहुआ इस्से जीवित विद्वानोंका ऊर्ध्वगमन सर्वथा असंभव होनेसे मृतकोंकाही श्राद्धकरना और (पूर्वेपितरः) इसवाक्यमें जो पूर्वशब्दहै वोह पहले पितामहादिकाही सूचकहै और वही हविग्रहण करसक्तेहैं, यदि विद्वानोंका अर्थ लगावैं तौ बस उन्हें बैठालदें उनके सामने हवनकरदें उनका बस पेट भरजायगा सो यह बात देखनेमें नहीं आती इसकारण पितर वेहीहैं जो शरीर त्यागन करगयेहैं (वर्हिषदः) " कुशासनपर बैठनेवाले पितर आवैं हमारे शोक और भयको हटावैं और हमें सुखदें जो हमारे पूर्व पितरहैं वोह पापका अभाव स्थापनकरें देवयान मार्ग होकर आवैं जो अग्निमें जलाये हुए हैं जो अग्निसंस्कारसे रहितहैं प्राणमात्रमूर्ति स्वर्गमें रहनेवाले पितर मेरा कल्याणकरें " यदि स्वामीजी विद्वानोंहीका अर्थ कहैं

तौ ऊपरके वाक्यानुसार जलायेहुए विद्वानोंको कहांसे लाया जायगा जलना तौ मृतकहीकाहै हां एक बातसे दयानंदजीका इष्ट सिद्धहोसक्ताहै परन्तु वे इसको मान्ते नहींहै आचारी मतवाले श्रीरामानुजकी सम्प्रदायवाले दग्ध और अदग्धहोतेहैं तप्त और ठंडीमुद्राके भेदसे यदि इनको दयानंदजी अपना पितर मान्तेहों तौ कुछ थोडीसी ठीक लगजाय परन्तु आगे चलकर फिर वही दुर्दशा क्योंकि " स्वर्गमें वर्तमान पितर और प्राणमात्र मूर्तिवाले यह बात जीवित विद्वानोंमें नहीं घट सकती इस्सेभी जीवित पुरुषोंका श्राद्ध और विद्वानोंहीका नाम पितरहै यह नहीं सिद्ध होता फिर दक्षिणकी ओर दक्षिणजांघ झुकाकर पितरबैठे " यह बात भी मृतकपुरुषोंको बतातीहै श्राद्धादिकार्य दक्षिणदिशामें मुखकरके करने लिखेहै ❀

+ थोडा उपयोगी विचार औरभी करते हैं ।

प्रजापतिर्वै भूतान्युपासीदन् देवा यज्ञोपवीतिनो भूत्वा दक्षिणजान्वाच्योपासीदंस्तातानब्रवीद्यज्ञो वोन्नममृतत्वं व ऊर्ग्वः सूर्यो वो ज्योतिः श० २।४।२।१

अथैनं पितरः प्राचीनावीतिनः सव्यं जान्वाचोपासीदंस्तानब्रवीन्मासि मासि वोशनं स्वधा वो मनोजवश्चन्द्रमा वो ज्योतिरिति श० २।४।२।२

अथैनं मनुष्या प्रावृत्ता उपस्थं कृत्वोपासीदँस्तानब्रवीत्सायं प्रातर्वोशनं प्रजा वो मृत्युर्वोग्निर्ज्योतिः श०२।४।२।३

पूर्वाह्नो वै देवानांमध्यन्दिनो मनुष्याणामंपराह्नःपितॄणां तस्मादपराह्ने ददाति२।४।२८

तिर इव हि पितरो मनुष्येभ्यः श० २।३।४।२।१

अर्थ–प्रजापतिके पास प्राणी गये देवता यज्ञोपवीति होकर दक्षिण जांघ झुकाकर बैठे प्रजापतिने कहा यज्ञ तुम्हारा अन्न अमृत तेज और सूर्यज्योति होगी १ पितर अपसव्यहो बांई जांघ झुकार बैठे प्रजापतिने कहा महीने २ यज्ञ तुह्मारा अन्न मनकी समानवेग और चन्द्रमा ज्योति होगी ॥ २ ॥

मनुष्य उपस्थकरके बैठे प्रजापति बोले सायं प्रातः तुह्मारा अन्न प्रजा प्रगटता मृत्युग्राही और अग्निज्योति होगी पूर्वाह्न देवताओंका दुपहर मनुष्योंका और तीसरा पहर पितरोंको भोजनका है ॥

मनुष्योंसे पितर अन्तर्हित रहतेहैं इन प्रमाणोंसे प्रगटहै कि देवता मनुष्य पितर अलग २ रहैं जब पितर मनुष्योंसे अन्तर्हित रहते तथा महीनेमें एकवार भोजन करतेहैं इससे पितर देवता मनुष्योंसे पृथक् हैं और पितरोंका स्थान ॥

तृतीया ह प्रद्योरिति यस्यां पितर आसते
अथर्व १८।२।४८

ये शतंमनुष्याणामानन्दाः स एकः पितॄणां जितलोकानामानन्दः
बृ० उप० ६।३।३३

अर्थ–सबसे ऊपर अन्तरिक्षका तीसरा भाग सूर्यादिके प्रखर प्रकाशवाला होनेसे प्रद्यौ कहाता है यहां पितरोका लोक है जिसमें पितर रहते हैं १ जो सौ मनुष्योंका आनन्द है वह एक पितृलोकजितका आनन्द है इन मंत्र ब्राह्मणोंके प्रमाणोंसे पितरोंके रहनेके लोकभी प्रगट होगये इतनाही बुद्धिमानोंको बहुत है विशेषदेखना होतो हमारा टीका यजुर्वेदभाष्यका १९ अध्याय देखो ॥

और " देवकार्य पूर्वकी तरफको मुखकरकै इसकारण इन दोनों कार्योंमें महान् अंतरहै, यदि विद्वान्‌ही देवतापितरहों तौ फिर अंतर क्या, दक्षिणपूर्व मुख करना क्या फिर उनके आसनपर बैठना यजमानको धनदो यह बातभी जीवित विद्वान् नहीं करते यजमानको अपना धन नहीं देते पुनः पिता पितामह प्रपितामह मुझे पूर्ण आयुदो पवित्रकरो " यह बातभी जीवितोंमें नहीं, कोई आयुनहीं देसक्ता वे स्वर्गकेपितरही भला करनेमें समर्थहैं और पितरोंसे पुत्रकी कामना करना स्त्रीका पिंड भक्षणकरना यदि स्वामीजी जीवित विद्वानोंको पितर मान्तेहैं तौ भला यह विद्वान् विना संगकिये कैसे पुत्र देसकैंगे और स्त्री क्या पिंडके स्थानमें भक्षणकरै कदाचित् यह नियोग आपने इसीकारण चलाया होगा फिर अथर्ववेदके यह वाक्य कि जो मरगयेहैं जो अन्तरिक्षमेंहैं उनपूर्वपितरोंको यह घृतमधु धारा प्राप्तहो तथा जो गाड दिये गये जो फेंकेगये जिनको हम जान्ते जिनको नहीं जानतेहैं हेअग्ने उन्हैं बुलाला उनके अर्थ हवि लेजा तथा (पूर्वे पितरः) और (परेताः) जिसके अर्थ पहले पितामहादि मृतक हुए यह शब्द बहुधा वेदोंमें आताहै जलेहुओंको स्वर्गमें अग्निहवि पहुंचावै यह बात जीवितोंमें कदापि नहीं होसक्ती और वेदमें लिखाहै जो सन्तानरहित पितर स्वर्गमें गयेहैं (हित्वाद्वेषांस्यनपत्यवन्तः अथर्व) और जो पितामहादिक अन्तरिक्षमें प्रवेशकर गयेहैं उनका हम अन्नद्वारा सत्कारकरते हैं स्वामीजीसे बूझनाथा कि क्या पितामहादिक जीवितही अन्तरिक्षमें प्रवेशकर जातेहैं या वे जीवित विद्वान्‌ही पितामहादिकहैं क्या वेभी जीवित अन्तरिक्षमें प्रवेशकरगये हैं सो तो नहीं हुआ परन्तु स्वामीजी मृतकहो अन्तरिक्षमें प्रवेश करगये, यदि स्वामीजी अथर्ववेदका पाठमात्रभी करते तौ ऐसी भूल नहोती तथा जो मृत्युद्वारा प्राणियोंका वध करता है जो पितरोंका राजाहै जिसे यम कहतेहैं उनके अर्थ हम यह तिलमिश्रित धान देतेहैं वे हमसे प्रसन्नहों (यमराजाके आधीन पितरहैं इसकारण उन्हैंभी भागदेते हैं) और फिर अग्निकी प्रार्थना कि हे अग्नि ! इसके शरीरको जलाकर इसकी आत्माको पुण्यलोकको लेजा जो पूर्वपितरहैं जिन्हैं हम नहीं जानते हे अग्नि ! तू जानताहै जो स्वर्ग अन्तरिक्ष लोकमें हैं उनको हवि अग्निद्वारा पहुंचै स्वामीजीको यह न सूझी जीवितअन्तरिक्षमें कैसे ठहरसक्तेहैं अथवा यह युक्ति करते कि दो कडी गाड एकऊपर हिंडोलेकी तरह गाड देते

उसमें किसी विद्वान्के मातापिताको टांगदेते तौ (दिविषद्भ्यः) आकाशमें रहनेवाले पितरहैं यह शब्द सिद्धहोजाता अर्थ बदलनेकी आवश्यकता नरहती पर स्वामीजीने तौ यह वाक्यही हजमकरलिये लिखेंही नहीं पर यह न शोचा कि पुस्तकें तो कहीं लोप नहीं हो गई और (यौतिश्वानौ) देखिये आजतक श्राद्धमें कुत्तेको भाग दियाजाताहै यह यमके दूतहैं प्रथम इनको भाग देतेहैं जो कि यह पितरोंके भागमेंसे न लें और अंगिरावंशी पितर नवीन गतिवाले (अथर्वाणः) अथर्वशीर्षमंद चलनेवाले और भृगुवंशी पितर (यह पितृगण हैं) हमारा कल्याण करें इत्यादि बहुतसे वचन चारों संहिताओंमें पूर्ण हैं जो विस्तार भयसे नहीं लिखे न्याया महात्मा जो पक्षपातरहित हैं उन्हें तौ यही बहुत हैं श्राद्ध मृतकोंकाही प्राचीन समयसे होता आताहै जो वेदमें सिद्धहै और यह जो कहीं दयानंदजीने आक्षेप किया है कि, क्या वहां डाक जाती है डाकखाना है जो उनके पास अन्न पहुँचताहै सो सुनिये यह मंत्रसंस्कृत अग्निही वहां ले जाता है इसमें यजु और अथर्वका प्रमाण है, पूर्वमंत्र लिख दियेहैं (यमग्ने) इस मंत्रमें अग्निसे प्रार्थना कीहै कि हविको लेजा और पितरोंको दे तथा (योयमग्निः) इस मंत्रमें भी पितरोंको अग्निका हवि लेजाना कहकर अगले मंत्रमें यह कहा है कि हे अग्ने ! तेरे दिये हुए हविको पितरोंने भक्षण किया, और जो पितर परलोकमें हैं जिनको हम नहीं जानते उन सबको हविसे तृप्तकर, तूही सब पितरोंको जानताहै, हे अग्ने ! हम तुझे प्रज्वलित करते हैं, पितरोंको हवि भक्षणको ला, अग्नि दूत होकर यम लोकमें पितरोंके पास जाता है हवि देनेको इत्यादि मंत्रोंसे अग्निका पितरोंके पास हवि लेजाना सिद्ध है और यही अग्नि मृतकके आत्माको संस्कृत होनेसे पितृलोकको लेजाताहै जैसा कि (प्रेहि) इस मंत्रसे सिद्धहै, जब कि पिता दादा परदादा इन तीनोंका श्राद्ध करना यह वेदकी प्रबल आज्ञाहै जब किसीके पितामह मृतक हो जायं तो वोह आपके मतमें श्राद्धही न करै क्योंकि जीवितमें ही श्राद्धकरना कहते हो बस सारा झगडाही समाप्त कर दिया, दादा परदादा तौ वहुतोंके देखने में नहीं आते, पोतेके जन्मतक वृद्ध होनेके कारण मृत हो जातेहैं बस आपने उनका चुल्लू भर जलभी उडादिया (इस अपराध करनेवालेका जन्म मारवार देशके कठिन जंगलमें हुआहोगा जहां पानीका नाम नहो) जलदानका वर्णन नियोग प्रकरणमें करेंगे कि किस प्रकार पहुँचताहै,

इन मंत्रोंसे यह सिद्ध होगया कि श्राद्ध मृतक दादा परदादा आदिकोंका होना चाहिये, अब स्वामीजीके कल्पित वाक्योंका उत्तर लिखतेहैं "जो सांगोपांग, चारों वेदोंको पढाहो वोह ब्रह्मा उससे न्यून देवता उनकी सदृश स्त्री आदिकोंकी सेवा करनी, श्राद्ध और तर्पण कहाताहै" यह दयानंदजीकी महाभ्रांति है ब्रह्मा नाम उसी स्वयंभूका है जिसे चतुर्मुख कहते हैं, जैसे पूर्व लिख आये हैं कि प्राणियोंमें प्रथम ब्रह्मा हुए तथा (योवै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं) यह उपनिषद वाक्यहै कि जो ब्रह्माको सबसे प्रथम उत्पन्न करताहै तथाच मनुः (तस्मिञ्जज्ञेस्वयंब्रह्मासर्वलोकपितामहः) उसमें सर्व लोकके पितामह ब्रह्माजी उत्पन्नहुए (हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे) ब्रह्मा सबसे पहले थे यह यजुर्वेदमें लिखाहै तर्पणमें इन्ही ब्रह्माजीका नामहै इन्हींके अर्थ जलदान होताहै न कि जो चार वेद पढा हो वोह ब्रह्मा कहावै क्योंकि (उदीरतां), इस मंत्रमें जो (ऋतज्ञा) शब्द पडा है उसका यह अर्थ है कि जो यथावत् सत्यको जानता (विरूपास इदृषयस्त इद्गम्भी रवेपसः ॥ तेअङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परिजज्ञिरे ऋग्वे० ८।२।१।) इसमें (विरूपासः) नाना रूपा अनेक प्रकारके रूप रचनेवाले (ऋषयः अतिनथस्य ब्रह्मणो द्रष्टारः न केवलं पश्यन्ति अपिच गम्भीरवेपसः अप्रमेयकर्माणः अप्रमेयबुद्धयो वा ते अङ्गिरसः सूनवः ते अग्नेः परिजज्ञिरेइत्यादि *) ऋषिलोग जो अंगिराके पुत्र अग्निसे उत्पन्न हुए, वे सम्यक्प्रकार ब्रह्मके देखनेवाले थे, और अप्रमेय बुद्धिमान् थे, जिनकी बुद्धि यथावत् वेद शास्त्रमें प्रवृत्त होतीथी जब कि ऋषि योगी आदि यथावत् वेदको साङ्ग जान्तेथे, उनका नाम कहीं ब्रह्मा किसीने नहीं कहा, तौ यह बात कैसे प्रमाण होसक्ती है, कि जो साङ्ग चारों वेदोंको जाने वही ब्रह्मा, दयानंदजी तुमभी तौ सृष्टिक्रम और साङ्ग वेदोंके जाननेका अभिमान रखतेहो अपना नाम ब्रह्मा रख लिया होता और व्यास वसिष्ठादि जो यथावत् वेदको जाननेवालेथे कहीं ब्रह्मा न कहलाये इससे वेद पढनेवालेको यहां ब्रह्मा कहना सर्वथा झूंठहै और " जो ब्रह्माके पोते मरीचिवत् विद्वान् होकर पढावै उनके सदृश विदुषी स्त्री उनकी सेवा करनी ऋषितर्पणहै (ॐमरीच्यादयऋषयस्तृप्यन्ताम्) " स्वामीजी इसमेंसे वत आपने कहांसे निकाला ब्रह्माके पोते मरीचिवत् विद्वान् होकर पढावै, उसकी सेवा ऋषि तर्पणहै ऊपर तौ आप वेद जाननेवालेका नाम ब्रह्मा लिख आये हैं, अब किसी निश्चित पुरुषका नाम कहकर उनके पोतेका

* बहुरूपा ऋषयस्ते गम्भीरकर्माणो वा गम्भीरप्रज्ञा वातेङ्गिरसः पुत्रास्तेऽग्नेरधिजज्ञिर इत्यग्निजन्मपितरो व्याख्याताः निरु० ११।१७ ।

नाम मरीचि बताते हो, धन्यहै इस बुद्धिको कि बालकोंकोभी हँसी आती है यह नलिखा मरीचिमें कितनी विद्या थी, यह कहना आपका सर्वथा असत्य है अथर्व वेदमें ऋषियोंके नाम लिखे हैं, सो आगे लिखैंगे उनको जल देना ऋषितर्पण है अब सोमसदादि शब्दोंकी जो दयानंदजीने व्युत्पत्ति लिखीहै उस्से जिन २ का बोध होता है सो सुनिये जो परमात्मा और पदार्थविद्यामें निपुण हों वे सोमसद कहाते हैं, इससे यह जाना-जाताहै कि, जितने मनुष्य पदार्थविद्या जानतेहों चाहैं वे शूद्र यवन कृश्चीन अंगरेजादि क्यों न हों सब पदार्थविद्या जाननेवाले सोमसद हो गये, साफही लिखदिया होता कि जिस शालाम Physics फिजिक्स पढाई जातीहै वहांके अंगरेज अध्यापक और विद्यार्थियोंको बुलाकर सत्कारकरना वेही सोमसद पितरहैं धन्यहै, अच्छे २ पितर सत्यार्थप्रकाशमें लिखेहैं, लाखों सोमसद मिलजायँगे, पर अंग्रेज अधिक होंगे और आपको उन्हें पितर कहना युक्तहीहै (जो अग्नि और विद्युदादि पदार्थोंको जाननेवालाहों वे अग्निष्वात्त) यह विद्या तौ तारबाबू और रेलके गार्ड इंजीनियर आदि महाशयोंकोही आतीहै सो हजारों क्या लाखों अग्निष्वात्त स्टेशन २ पर मिल जाँयगे, दयानंदजीने खूब सोचा कि एक दिन ड्राइवर इंजीनियर और तारबाबूओंका भी सत्कार करना शायद कभी विना टिकटके प्लेटफार्म पर तौ घूम सकैंगे, सिपाही लोगोंके धक्के तौ न सहने पडेंगे धन्यहै रेलवालेभी पितर हैं और सिपाही लोगोंको कौनसे पितरोंमें रक्खा इन्हेंभी तौ कुछ देना चाहियेथा कोई पितरोंमें मिलादिया होता (जो उत्तमविद्यावृद्धिव्यवहारमें स्थितहों वे बर्हिषद) उत्तमविद्यावृद्धिव्यवहारोंमें आजदिन गौराङ्गोंमें उत्तम कौन है जहाँसौमें ८८ पढे हुएहैं भारतवर्षमें सौमेंसे १३ हीहैं कैसी २ उत्तम विद्या निकाली हैं, वस बर्हिषद पितर गौरांगही हुए आपने सोचा होगा कि इन महाशयोंके भोज्यमें भी अधिकलाभ होगा कृपादृष्टि होतेही दरिद्रपार हो जायगा, वाह गौरांगभी पितर बनाये सब कुछ आपकी चाल इन्हींसे मिलतीहै (जो ऐश्वर्यके रक्षक महौषधिपानसे रोगरहित अन्यके ऐश्वर्यके रक्षक तथा रोगको औषधी देकर नाश करनेवाले हैं वे सोमपाः) धन्य है डाक्तरभी आगये अब हकीमजी भी पितर होगये और वोह महौषधी कौनसी उसका नाम न लिखा हकीमोंको जरूर श्राद्धमें जिमाना कदाचित् यजमान बीमार होजाय तौ औषधी तौ अच्छी प्रकार करैगा परन्तु डाक्तर और हकीमजी ऐश्वर्य रक्षक तौ नहीं किन्तु भक्षक हैं

यह शब्द कैसे घटैगा क्योंकि १६ (रुपये ४) प्रति दिन भेंट चाहिये इन्हें निर्धन कैसे पितर बना सक्ते हैं और मनुजी ऐसे पितरोंका निषेध करते हैं ॥

चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा
विपणेन च जीवतो वर्ज्याःस्युर्हव्यकव्ययोः अ० ३ श्लो० १५२

वैद्य पुजारी मांस बेचनेवाला वाणिज्य करनेवाला यह सब श्राद्धकर्म और देवकर्मसे वर्जित हैं इसकारण सोमपाका अर्थ ठीक नहीं सोमएक औषधि है देवता पितरोंको प्रियहै उसके पानसे वे सोमपा कहातेहैं जो मादक और हिंसाकारक द्रव्योंको छोडके भोजन करते हैं वे हविर्भुज अबके आर्य्यावर्तवासी पितर बनाये सरावगी आचारी वैष्णव शैव सब ही पितर होगये परन्तु मादकद्रव्य भंग तमाखू सुलफा अफीम मादक द्रव्यका सेवन तौ बहुतही करते होंगे अन्य देशवासी हिंसा और पान दोनोंसे नहीं बचे इसकारण दयानंदजीको हविर्भुज पितर मिलने कठिनहैं (जो जानने योग्य वस्तुके रक्षक और घृतदुग्धादिके खाने और पीने हारे हों वे आज्यपा.) इसमें तौ सब ही पितर होगये दूध पीनेवाले भी पितरहैं तौ बालक जन्महीसे दूध पीते हैं हलवाई घोसी और इनके यहांके सब दूधके ग्राहक पहलवान मुसल्मान आदि चारों वर्ण सब जात एवं संसारही दूध पीताहै तौ यह सबके सब आपके पितरहैं अपना नाम न लिखा कि स्वयं कौनसे पितरोंमें हो (जिनका अच्छा धर्म करनेका सुखरूप समय हो वे सुकालिन) यह तौ अमीर और भक्त पितर बनाये क्योंकि अमीरोंका रूपयेसे भक्तोंकाज्ञानसे अच्छा समय कटताहै (जो दुष्टोंको दंड और श्रेष्ठोंके पालन करनेहारे न्यायकारीहों वे यम) बस इतनीही कसर थी हाकिमोंको जरूर भोज्य देना चाहिये क्यों दंड यही देते श्रेष्ठोंको यही पालते इसकारण इनको बुलाकर जरूर जिमाना चाहिये किसी मुकदमेमें सहायता करदेंगे परन्तु इनका भोजन अन्य प्रकारकाहै और अथर्ववेदमें (यास्तेधाना) यमराजको तिलधान देना लिखाहै और आपके यम इसे स्वीकार करेंगे नहीं तौ कैसे ठीक लगेगी और शतपथ ब्राह्मणमें यह लेखहै कि ॥

अथ परस्तादुल्मुकं निदधाति सयदनिधायोल्मु-
कमथैतत् पितृभ्यो दद्यात् असुर रक्षसानिह्येषा-

मेतद्धिमथीरस्तंथोहैतात्पितॄणामसुररक्षसानिनावि-
मन्थेन तस्मात्परस्तादुल्मुकं विदधाति २।४।२।१४ श०

अर्थ—पितरोंके पिंडदान करनेकी वेदीके आगे उल्मुक धरै यदि जलतीलकडी न धरकर पितरोंको दे तौ असुर राक्षस इनके भागको गडबड कर देते हैं इस लिये जलती लकडी धरदे यह वैदिक विधिहै तौ जब पंडित हाकिम विद्वान् इनको महाभोज करावै तौ मेजपर एक जलता बबूरका लक्कडभी लारक्खाकरै क्यों कि पितृ यज्ञकी विधिही ऐसीहै और मनुजीने लिखाहै कि ॥

पित्र्येरात्र्यहनीमासः प्रविभागस्तुपक्षयोः॥अ० १ श्लो० ६६

(पित्रोंका रातदिन एक मासकाहै जिसका विभाग दोपक्षोंमें है कृष्ण पक्षका दिन शुक्लपक्षकी रात्रिहै तौ क्या दयानंदियोंके पंडित और यम पंद्रह दिन सोतेहैं,) इसमें तौ सारा संसारही पितृरूप बना दिया अच्छा जीवित श्राद्ध निकाला जब आप वृद्धोंकी सेवाका नाम श्राद्ध बताते हो तौ वे वृद्ध जिनके पितामहादि नहीं हैं वे किनकी सेवा करैं बस बैठ रहे आपके लेखसे यह सूचित है कि दादा जीवित हो तौ पोता श्राद्ध करै पिता दादा कुछ नकरैं और यदि जीवित पितरोंका श्राद्ध मान्तेहो तौ (श्राद्धेशरदः४–३–१२) यह अष्टाध्यायीका सूत्र है कि, शरद ऋतुमें श्राद्ध करै (तथा अमावासको करे यह मनुजी कहतेहैं) तौ ग्यारह महीने तक पिता मातादिकोंको उपवास करावे, और माता पिता बालकोंको जन्मसे पालतेहैं, तौ क्या यह भी श्राद्धही हुआ और जिसके पिता दादापै लाखोंकी सम्पत्ति हो उसका पुत्र क्या सेवा करैगा, तौ बस श्राद्धही उडगया इससे आपका कथन ठीक नहीं श्राद्धका समय नियतहै. अब तुम्हारे कल्पित अर्थोंकी पोल खोल सोमसदादि अर्थोंकी व्याख्या लिखते हैं ॥

मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः ॥
तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः १९४अ० ३
विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः ॥
अग्निष्वात्ताश्चदेवानां मारीचा लोकविश्रुताः १९५
दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥
सुपर्णाकिन्नराणांच स्मृताबर्हिषदोऽत्रिजाः १९६

सोमपनाामविप्राणां क्षत्रियाणांहविर्भुजः ॥
वैश्यानामाज्यपानाम शूद्राणां तु सुकालिनः १९७
सोमपास्तुकवेः पुत्रा हविष्मंतोंगिरःसुताः ॥
पुलस्त्यस्याज्यपाःपुत्रावसिष्ठस्यसुकालिनः १९८
अग्निदग्धानग्निदग्धान्काव्यान्बर्हिषदस्तथा ॥
अग्निष्वात्तांश्च सौम्यांश्च विप्राणामेवनिर्दिशेत् १९९
यएतेतुगणामुख्याः पितृणांपरिकीर्तिताः ॥
तेषामपीह विज्ञेयंपुत्रपौत्रमनंतकम् २००
राजतैर्भाजनैरेषामथोवाराजतान्वितैः ॥
वार्यपिश्रद्धयादत्तमक्षयायोपकल्पते २०१
कण्वः कक्षीवान्पुरुमीढोअगस्त्यः श्यावाश्वः सौभर्य
र्चनानाः ।: विश्वामित्रोयंजमदग्निरत्रिरवन्तुनः क
श्यपोवामदेवः १५ विश्वामित्रजमदग्नेवसिष्ठभरद्वाज
गौतमवामदेवशर्दिर्नोअत्रिरग्रभीन्नमोभिःसुसंशासःपि
तरोमृडतानः १६ काण्ड१८ अनुवाक २

इन्हींकेवंशके पितरहैं अर्थ प्रगटहै ॥ यह वैदिक ऋषिहैं।
स्वायंभू मनुके जो मरीचि आदि, उन ऋषियोंके पुत्र पितृगणोंको मनुजीने कहाहै, १९४ विराटके पुत्र सोमसदनामवाले वे साध्योंके पितर ऐसे कहेहैं अग्निष्वात्तादि मरीचिके पुत्रहैं वे लोगोंमें विख्यातहैं और देवताओंके पितर कहातेहैं १९५दैत्योंके पितर बर्हिषद नामवाले अत्रिके पुत्र हैं, वे दैत्य, दानव, यक्ष, गंधर्व, उरग, राक्षस, सुपर्ण, किन्नर इन भेदोंके हैं १९६ सोमपा ब्राह्मणोंके हविर्भुज क्षत्रियोंके आज्यपा वैश्योंके सुकालिन् शूद्रोंके पितरहैं १९७ भृगुके पुत्र सोमपादि अंगिराके पुत्र हविष्मंत, पुलस्त्यके पुत्र आज्यपादि और वसिष्ठके पुत्र सुकालिन हैं, यह पितर इन ऋषियोंसे हुए १९८ अग्निदग्ध अनग्निदग्ध और काव्यों के तथा बर्हिषदोंको भी और अग्निष्वात्त तथा सौम्य यह सब ब्राह्मणोंके पितर जानने १९९ यह इतने पितरोंके गण मुख्य कहेहैं उनके इस जगतमें पुत्र पौत्र अनन्तहैं सो जानना २०० चांदीके पात्र करकै या चांदी-

के लगेपात्रसे पितरोंके श्राद्ध करके दिया पानी अक्षय सुखका हेतु होताहै २०२ इस प्रकारसे यह पितरोंके गण हैं जो जिसके पितर हैं पितामहादिक जो मृतक होतेहैं इन्ही मुख्य पितरोंके द्वारा जो कुछ दिया जाता है सो पहुंचताहै दयानंदजीने व्याकरण खर्च कर सारे जगतको ही पितर बना दिया, यह नाम इन्हीं पितरोंमें रूढिहै और इनके पास जिनका गमन होता है वोह भी इसी नामके होजातेहैं और स्वामीजीने वोह बात करी है कि, जैसे गंगा शब्द केवल भागीरथी नदीमें ही रूढिहै यदि कोई कहे कि, गच्छतीति गंगा यह नदी नहीं, तौ बस हवा आदमी कीट पतंगादि सब गंगा होगये, ठीक गंगाखोदी, सोई दयानंदजीने पितरोंका हटाय इंजीनियर सरावगी हाकिमादि पधरा दिये, इसी प्रकार वेदोंमें जिस पदको अपने विरुद्ध पाया झट अर्थ बदल दिये, यही श्राद्धमें गडबडी मचाई, मनुजी, विराटके पुत्र सोमसद लिखतेहैं, दयानंदजी उत्तम व्यवहार में बैठनेवालों को सोमसद कहतेहैं, ऐसा महान अंतर स्वामीजीके अर्थ और प्राचीन वाक्यों में है इसकारण स्वामीजीका अर्थ मिथ्याहै और सुनिये ॥

ज्ञाननिष्ठाद्विजाः केचित्तपोनिष्ठास्तथापरे ॥
तपःस्वाध्यायनिष्ठाश्चकर्मनिष्ठास्तथापरे १३४
ज्ञाननिष्ठेषुकव्यानि प्रतिष्ठाप्यानियत्नतः ॥
हव्यानितुयथान्यायंसर्वेष्वेवचतुर्ष्वपि १३५ मनु अ० ३

कोई ब्राह्मण आत्मज्ञानपरायण होतेहैं और दूसरे प्राजापत्यादि तप तत्पर होतेहैं और कोई तप अध्ययनरत होतेहैं और कोई यज्ञादि कर्ममें तत्पर रहतेहैं ॥ १३४ ॥ इनमें ज्ञाननिष्ठोंको श्राद्धमें यत्न पूर्वक भोजन देना और यज्ञोंमें क्रमसे सबको भोजन देना ॥ १३५ ॥

निमंत्रितान्हिपितर उपतिष्ठन्तितान्द्विजान् ॥
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ॥ अ० ३ श्लो० १८९

पितर श्रेष्ठ गुणवाले निमंत्रित ब्राह्मणोंके पास आजातेहैं, वायुकी समान उनके पीछे चलतेहैं, बैठने पर बैठतेहैं इस कारण निमंत्रित ब्राह्मण नियम पूर्वक रहै १८९ जब कि पितर वायुवत् पीछे चलतेहैं तौ निश्चय है कि, पितरोंकी प्राण मात्र मूर्त्ति है, इसी कारण मृतक पुरुषोंहीका श्राद्ध होताहै, नहीं तौ निमंत्रित ब्राह्मणोंके संग कौन चलतेहैं, उन्हींके अर्थ जल देतेहैं, तथा वाल्मीकि रा० अयोध्याकाण्ड सर्ग १४ श्लोक १६ से ॥

रामाभिषेकसंभारैस्तदर्थमुपकल्पितैः ॥
रामः कारयितव्यो मे मृतस्य सलिलक्रियाम् १६

पुनः ७७ सर्गे

ततोदशाहेतिगते कृतशौचोनृपात्मजः ॥
द्वादशेहनिसंप्राप्ते श्राद्धकर्माण्यकारयत् १
उत्तिष्ठपुरुषव्याघ्र क्रियतामुदकंपितुः ॥
अहंचायंचशत्रुघ्नः पूर्वमेवकृतोदकौ ७
प्रियेणाकिलदत्तंहि पितृलोकेषुराघव ॥
अक्षयंभवतीत्याहुर्भवांश्चैव पितुः प्रियः ॥८सर्ग१०२ अयो०
शीघ्रंस्रोतः समासाद्यतीर्थंशिवमकर्दमम् ॥
सिषिचुस्तूदकं राज्ञे ततएतद्भवत्विति २५
प्रगृह्यतुमहीपालो जलपूरितमंजलिम् ॥
दिशंयाम्यामभिमुखोरुदन्वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥
एतत्तेराजशार्दूल विमलं तोयमक्षयम् ॥
पितृलोकगतस्याद्य मद्दत्तमुपतिष्ठतु ॥ २७ ॥
ततोमंदाकिनीतीरंप्रत्युत्तीरेसराघवः॥
पितुश्चकारतेजस्वी निर्वापं भ्रातृभिः सह २८
ऐङ्गुदंबदरैर्मिश्रंपिण्याकं दर्भसंस्तरे ॥
न्यस्य रामः सुदुःखार्तो रुदन्वचनमब्रवीत् ॥ २९ ॥
इदंभुंक्ष्वमहाराज प्रीतो यदशना वयम् ॥
यदन्नः पुरुषोभवति तदन्नास्तस्यदेवताः ३० सर्ग १०३ अ०

अर्थ–महाराज दशरथने कहा यह जो रामचन्द्रके अभिषेकके कारण सामग्री आईहै सो रामको अभिषेक न होगा किन्तु जब मैं मरजाऊंगा तौ रामचंद्रसे इसी जलादिकसे मेरी जलक्रिया करानी १६जब राजाका शरीर छूट गया तो दशाह होनेके पश्चात् बारहवें दिन भरतजीने श्राद्ध किया १ जब भरतजी चित्रकूटमें गये तो रामचंद्रसे कहा हे पुरुषोत्तम ! उठो और पिताकी जलक्रिया करो मैं और शत्रुघ्न पूर्व कर चुके हैं ७

जो प्यारे जन कुछ देते हैं वोह पितृलोकमें अक्षय होताहै तुम तो पिताके प्यारेहो ८ फिर रामचंद्र मंदाकिनीके किनारे सुन्दर निर्मल स्थानमें बैठ जलदान कर कहने लगे कि, यह पिताको पहुंचै २५ हाथमें जल ले दक्षिण दिशाको मुखकर रोते हुए यह वचन बोले २६ हे राजशार्दूल यह निर्मल जल आपके हेतुं अक्षय होय यह मेरा दिया जल पितृलोकमें प्राप्त हुआ तुमको मिलै २७ फिर मंदाकिनीके किनारे आकर तेजस्वी भाईयों सहित राजाकी पिंड क्रिया करते हुए २८ इंगुदी और बेरमिश्रित पिण्याकके पिंड कुशाओंपर रख रामचंद्र दुःखसे रोते यह वचन बोले २९ महाराज जो वस्तु हम भोजन करते हैं उसका ही आप प्रसन्न हो भोग लगाइये क्योंकि जो अन्न पुरुष खातेहैं वोही अन्न उनके देवता खातेहैं ३० इन वाल्मीकिरामायणके वाक्योंसे भी मृतकके अर्थ पिंडजलदानादि सिद्ध होताहै इस प्रकार महाभारतमें युद्ध हो चुकने पश्चात् जलदानपर्वाध्याय स्त्रीपर्वमें है जो मृतकोंको जल दिया गया है सो विस्तार भयसे नहीं लिखते बुद्धिमानोंको यही बहुतहै ॥

कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ॥
श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः अ० ३ श्लो० २७६॥
युक्षुकुर्वन्दिनर्क्षेषु सर्वान्कामान्समश्नुते ॥
अयुक्षुतुपितॄन्सर्वान्प्रजां प्राप्नोतिपुष्कलाम् ॥ २७७

कृष्णपक्षमें दशमीसे लेकर केवल चतुर्दशी छोड यह तिथि श्राद्धमें जैसी प्रशस्त हैं वैसी और नहीं २७६ युग्मतिथि और युग्म नक्षत्रोंमें श्राद्ध करनेवाला पुत्रादि संतति और यथेष्ट द्रव्यको पाता है २७७॥

यद्यद्ददातिविधिवत्सम्यक्छ्रद्धासमान्वितः ॥
तत्तत्पितॄणांभवति परत्रानंतमक्षयम् २७५ मनु०

विधि पूर्वक श्राद्धमें जो पितरोंको दिया जाता है वोह पितरोंकी अक्षय तृप्तिके अर्थ होता है ॥

वसून्वदन्तितुपितॄन्रुद्रांश्चैव पितामहान् ॥
प्रपितामहांस्तथादित्याञ्छ्रुतिरेषासनातनी अ० ३ श्लो०२८४

पितरोंको वसु पितामहाओंको रुद्र प्रपितामहाओंको आदित्यरूपसे ध्यान करके श्राद्ध कर्म कर्तव्य है, यह सनातन श्रुति कहतीहै इन

सब वाक्योंका तात्पर्य यही है कि, मृतक पुरुषोंका श्राद्ध होता है श्राद्धकर्ताकोभी महा फलकी प्राप्ति होतीहै ॥

आविरभून्महिमाघोनमेषां विश्वंजीवंतमसोनिरमोचि ॥
महिज्योतिः पितृभिर्दत्तमागादुरुः पंथा दक्षिणाया अदर्शि ॥
ऋ० मं० १० अ० ९ सू० १०७ मं० १

एषां श्राद्धादिकर्मकारिणां मघवत इदं माघोनं महिमहिमा आविरभूत् प्रादुर्भूतः। किञ्च विश्वंजीवं विश्वसंज्ञकं जीवं तमसो जन्ममरणप्रबंधरूपतमसोनिरमोचि कृतवंतः पितृभिः पितृभ्योदत्तमेव महिज्योति अगात् प्राप्तं परिणतमित्यर्थः। किञ्च दक्षिणायादिशोमार्ग उरुर्विस्ततः अदर्शि दर्शितः पितृदत्तश्राद्धादिभिः ॥

अर्थ–श्राद्धादि कर्म करनेवालोंको इन्द्रतुल्य विभूतिकी प्राप्ति होती है वे श्राद्धादि कर्म करनेवाले अपने जीवात्माका उद्धार करते हैं. और वोह पितृदत्त श्राद्धादि दक्षिणायन मार्गको दिखायकर स्वर्गमें कर्ताकाभी कल्याण करते हैं, ब्राह्मणोंको तपादि होनेसे अग्निमुख कहते हैं. इसकारण इनका भोजन किया भी पितरोंको पहुंचताहै, जैसे कि कर्मोंका फल सूक्ष्म रीतिसे कर्ताको प्राप्त होताहै, जो ब्राह्मणादिको भोजन कराया जाता है उसके दानका फल पितरोंको पहुंचता है जिस प्रकार दूसरी वस्तु दानका फल कर्ताको पहुंचता है वही संकटसे उद्धार करताहै अब इसके आगे हवन विषयमें लिखा जायगा ॥

सत्या० पृ० १०१ पं० २९

धन्वन्तरयेस्वाहा अनुमत्यैस्वाहा सहद्यावापृथिवीभ्यांस्वाहा पृ०१०२ ओंसानुगायेन्द्रायनमः ओंसानुगाययमायनमः सानुगायवरुणायनमः सानुगायसोमायनमः मरुद्भ्योनमः अद्भ्योनमः वनस्पतिभ्योनमः श्रियैनमः भद्रकाल्यैनमः ब्रह्मपतयेनमः विश्वेभ्योदेवेभ्योनमः दिवाचरेभ्योभूतेभ्योनमः नक्तंचारिभ्योभूतेभ्योनमः इनमंत्रोंसे भागोंको रखकर जो कोई अतिथि हो उसको जिमा देवै वा अग्निमें छोडदेवै फिर लवणान्न दालभात शाक रोटी आदि लेकर छःभाग पृथ्वीमें धरे ॥ १०४। २३ से ॥

समीक्षा–इन हवन करनेके मंत्रोंमें जो धन्वन्तारि वैद्य तथा पूर्णिमा द्यावापृथिवी इनके वास्ते होमहो इससे स्वामीजीने क्या प्रयोजन निकाला तुम तौ विद्वानोंका नाम देवता बताते हो फिर यह भाग किसके और क्या वनस्पति और लक्ष्मीभी रोटी खातीं हैं या पृथ्वीभी जीमने आतीहै भगवन्मूर्तिके आगे भोग निवेदन करनेमें आप यह गडबडी करतेहैं और आप जडपदार्थोंको भाग दिये जातेहैं और अनुचरोंसहित इन्द्र वरुण यम मरुत् जल वनस्पति भद्रकाली लक्ष्मी ब्रह्मपति विश्वेदेव दिनके फिरनेवाले प्राणी रात्रीके फिरनेवाले प्राणी इनके नामसे अन्न रखना यह क्या बातहै यह तौ आप फिर पुरानीही कथा ले बैठे या यमका नाम यहांभी न्यायकारी हाकिम ही मानोगे तौ जब वे अपने अनुचर अर्थात् अमलेवालोंसहित आवैंगे तौ बस यह काम ठहरा नित्यका गरीब आदमीका तौ एकही दिनमें दिवाला निकल जायगा और भद्रकाली वनस्पति जल मरुत् यहभी कोई आपके चेले विद्वान् घरघर फिरते होंगे जो इन्हें आपने पृथक् २ भाग देना लिखाहै पन्द्रह सोलहको कहांतक भोजन करावै और फिर इनके गणोंकी क्या ठीक–"तीन बुलाये तेरह आये देखो गांवकी रीत, बाहरवाले खागये घरके गावैं गीत,–"बस इनका रोज न्योता करनेसे जिमानेवालेका पट राही होजायगा और जो यह कहो कि एक एक ग्रास निकालैं तौ यह कब एक २ ग्राससे मानेंगे उलटा दंड देंगे कि हमारी इज्जत हतक हुई यदि कहो कि, यह ईश्वरके नामहैं तौ एक भाग निकालना चाहिये फिर (सानुगाय) गणों सहित ऐसे क्यों लिखा यदि कहो ईश्वरके अनन्त नाम हैं तौ अनन्त भाग निकालने चाहिये, इतनेहीं क्यों और आगे सत्यार्थप्रकाशमें आपने यम नाम वायुका लिखा है (यमेन वायुना सत्य राजन् कहीं कुछ आपके लेखकी क्या ठीक है) इस्से यह सिद्ध है कि यह नाम न तौ ईश्वरके हैं न विद्वानोंके हैं इन्द्रादिक देवताहैं भद्रकाली आदि देवी हैं इसी कारण स्वामीजीने इनके नाम मात्र लिखे और कुछ अर्थ न लिखा लिखते तौ गडबडी मचती मनुजी तौ यों लिखते हैं ॥

मरुद्भ्य इतितुद्वारिक्षिपेदप्स्वद्भ्यइत्यपि अ० ३-श्लो०८८-८९
वनस्पतिभ्यइत्येवं मुशलोलूखले हरेत् १
उच्छीर्षकेश्रियै कुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतः
ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत् ॥ २ ॥

मरुद्भ्योनमः ऐसा कहकर द्वारमें बलि देवै और जलमें अद्भ्यः ऐसा कहकर बलिदे वनस्पतिभ्योनमः ऐसा कहकर ऊखलमें मूशलमें डालै इसप्रकार बलि हरण करै १ वास्तु पुरुषके शिर प्रदेशमें अर्थात् पूर्व उत्तरदिशामें श्रीके अर्थ बलि देवै उसीके पैरकी ओर पश्चिम दक्षिण दिशामें भद्रकालीके अर्थ बलि देवै और ब्रह्मा वास्तोष्पतिके अर्थ घरके बीचमें बलि हरणकरै २ स्वामीजीने मनुस्मृतिमेंसे यह नमः तौ निकाला, परन्तु यह क्रिया न लिखी कि जलमें डालै, पूर्व दक्षिण पश्चिमादिमें इसप्रकार बलिदे, पर बात छिपती नहीं देखिये कलई खुलगई ॥

स० पृ० १०२ पं० २१ हवन करनेसे अज्ञात अदृष्टजीवोंकी जो हत्या होती है उसका प्रत्युपकार करना ॥ १०५ ॥ २७ ॥

समीक्षा–जब कि एक चीजका बदला देदिया जाताहै, तौ उस ऋणसे वोह मुक्त होताहै, जब कि कोई पाप करै तौ उसका धर्मसे प्रत्युपकार करसक्ताहै, और फिर वोह उसका अनिष्ट फल नहीं भोगसक्ता, जैसे कोई १० रुपयेका कर्जदार हो और उसकी ऐवजमें कपडा वर्तन गहना आदि दे दे तौ वोह कर्जसे च्युत होजाताहै (प्रत्युपकार) के अर्थ बदलेके हैं जब कि जिसका बदला देदिया फिर उसका क्या अहसान जब कि प्रत्युपकार करदिया तब पापका फल भोगना नहीं पडेगा, तौ पापक्षय हो गया फिर तुम पापक्षय नहीं मान्ते, जैसे आपने १८२ पृ० में लिखा है और यहां पापक्षय अच्छीतरहसे मान लिया, जब प्रत्युपकार करदिया तौ फिर फल भोगना नहीं पडैगा * ॥

स० पृ० १०३ पं० २९ विना अतिथियोंके संदेहकी निवृत्ति नहीं होती ॥ १०६ ॥ २७ ॥

समीक्षा–यह भी कहना मिथ्याही है अतिथिसे संदेह क्यों कर निवृत्त हो सक्ताहै और जिन्है अतिथि जिमानेकी समाई न होवै, वे सन्देहहीमें पडेरहैं और अतिथिके अर्थ पाहुनेके हैं, जिसके आनेकी कोई तिथि नियत नहो, यदि कोई अतिथि आजाय तौ उसे यदि होसकै तौ भोजन दे देना, इसमें पुण्य होताहै पर यह नहीं कि, वोह तो हारा थका भूंखा आया आप उसे पावभर अन्न देकर छः घंटेतक मगज मारनें बैठ गये, और अतिथि तौ भोजन मात्र लेकर चला जायगा वोह ठहरता नहीं यदि संदेह हौतो विद्वान् बहुत मौजूद हैं उनसे ही

---

* यहां और श्राद्ध प्रकरणमें भास्कर प्रकाशवाले घबराकर रहगये ।

बूझलेना अतिथियोंके शिरपर संदेह निवृत्त करनेका भार नहींहै, अथवा यदि उससे संदेह निवृत्त न हो तो क्या उसे जो कुछ दिया है वो छीन लै और यह नियम नहीं कि सबही अतिथि पढेहों, जो किसी योग्य होगा वोह घरसे कुछ लेकर ही चलैगा, तौ बस निरक्षर ही अतिथि ठहरे, वे संदेह निवृत्त, क्या करैंगे, यह बात भी लिख दी होती कि बेपढा अतिथि नहीं होसक्ता, वोह चाहैं भूंखों मरता हो पर उसे कुछ नदेना, कारण कि वोह संदेह तौ दूर करही नहीं सक्ता और विद्वानोंको तथा जिन्हे संदेह न हो उन्हैं भी अतिथियोंको कुछ देना न चाहिये, क्योंकि उन्हैं कुछ संदेह तो है ही नहीं, जिसे संदेह होवो उन्हैं जिमावै धन्यहै अच्छा अतिथि बताया मनुजी अतिथिके लक्षण लिखतेहैं ॥

एकरात्रं तुनिवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः ॥
अनित्यंहि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ।

एक रात्रिमें रहनेवाला ब्राह्मण अतिथि होताहै, क्यों कि नित्य रहना नहीं इसकारण अतिथि कहताहै १ बस जब संध्या समय अतिथि आया उसकी इच्छा टिकनेकी हुई टिकादिया भोजन देदिया सोरहा सबेरेही उठकर चल दिया, इसीप्रकार सब वर्णोंमें अतिथि होतेहैं उन्हैं भोजन निश्चय देना ॥

मू०पृ० १०६ पं० १७

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ॥
न पुत्रदारं नज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ।मनु ४ । २३९

परलोकमें न माता न पिता पुत्र न स्त्री न ज्ञाति सहाय करसक्तेहैं किन्तु एक धर्मही सहाय रहताहै ॥ १०९।२०

समीक्षा-दयानंदजी तौ इससे यह बात सिद्ध करतेहैं, कि परलोकमें जब कोई सहायकारी नहीं होता, तौ दूसरेका दिया हुआभी कुछ प्राप्त नहीं हो सक्ता, परन्तु इससे यही विदित होताहै कि, सब सहाय कर सक्ते हैं, और कैसे कर सक्ते हैं, सो लिखाहै कि (धर्मस्तिष्ठति केवलः) केवल धर्मही स्थित रहताहै, धर्म सहाय करताहै तौ धर्मसे जिस की जो सहाय करैगा वोह धर्ममें स्थित होगा वैसे माता पिता शरीरसे सहाय नहीं करसक्ते, धर्मानुष्ठानसे करसक्तेहैं, धर्मसे पिता पुत्रका पुत्र पिताका उद्धार करताहै विश्वामित्रने अपना तप दे त्रिशंकुको स्वर्ग भेज दिया और भी मनुजीने लिखाहै ॥

दशपूर्वान्परान्वंश्यानात्मानं चैकविंशकम्॥
ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृन्मोचयेदेनसः पितृन्॥ मनु० १

ब्राह्म विवाहसे जो पुत्र उत्पन्न होताहै वोह सत्कर्मोंको कर्ता है, सो दश पुरुष पूर्वके और दश आगे इक्कीसवां अपनेको पापसे छुटाताहै, यहांतक एक पुरुषका धर्मानुष्ठान सहायक होताहै॥

स० पृ० १०९ पं० १८

श्रुतंप्रज्ञानुगं यस्यप्रज्ञाचैव सुतानुगा॥
असंभिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यांलभेतसः १ भा०

जिसकी प्रज्ञा सुनेहुए सत्य धर्मके अनुकूल और जिसका श्रवण बुद्धिके अनुसार हो जो कभी आर्य अर्थात् श्रेष्ठ धार्मिक पुरुषोंकी मर्यादाका छेदन न करे वोही पंडित संज्ञाको प्राप्त होवै॥ ११३।७

समीक्षा–इस श्लोकके अनुसार तो दयानंदजीमें पंडित शब्दभी नहीं घटसक्ता सुने हुए सत्यधर्मके अनुकूल महात्माजीकी बुद्धि ठीक नहीं स्मृति भी ठीक नहीं, कहीं कुछ कहीं कुछ लिख दियाहै, पहले सत्यार्थ प्रकाशमें मृतकश्राद्ध मांसविधान किया फिर कहा मुझे स्मृति नहीं रही भूलसे लिख गया, जो भूले वोह कैसा पंडित और श्रेष्ठ पुरुषोंके आचरणभी आपमें नहीं पाये जाते, क्योंकि आपने प्राचीन मूर्तिपूजन श्राद्धादि, खंडन करके महा भ्रष्ट नियोग पंथ चलायाहै, इससे आप पंडित नहीं अब नियोगके विषयमें लिखा जायगा॥

नियोगप्रकरणम्।

स० पृ० ११२ पं १६

यास्त्री त्वक्षतयोनिःस्याद्गतप्रत्यागतापि वा॥
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति॥ मनु०९।१७६ *

जिस स्त्री वा पुरुषका पाणिग्रहणमात्र संस्कार हुआ हो और संयोग अर्थात् अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष हो उनका अन्य स्त्री वा पुरुषके साथ पुनर्विवाह न होना चाहिये, किन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णोंमें क्षतयोनि स्त्री और क्षतवीर्य पुरुषका पुनर्विवाह न होना चाहिये॥

---

* १८९८ में साचेत पाठ लिखा है पृ० ११६ । ८ और इबारतभी बदली है कि पुनर्विवाह होना चाहिये॥

समीक्षा-जब स्वामीजी इस श्लोकका अर्थ करने बैठे थे तो बडी भंगकी तरंगमें होंगे इसके अर्थमें दोनों जगह यही लिखाहै कि, विवाह न होना चाहिये, परन्तु इतना तौ मानाही कि ब्राह्मणादि तीन वर्णोंका पुनर्विवाह न होना चाहिये, परन्तु इस श्लोकमें यह बात नहीं आती और इसश्लोकको स्वामीजीने उलट दियाहै सो लिखतेहैं यह वहांका श्लोकहै कि, जहां मनुजीने बारह प्रकारके पुत्र गिनायेहैं ॥

यापत्यावापरित्यक्ता विधवावास्वयेच्छया ॥
उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते १७५
साचेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापिवा ॥
पौनर्भवेन भर्त्रासा पुनः संस्कारमर्हति १७६ अ० ९

जो स्त्री पतिने त्यागन कर दीहो या विधवा हो वा अपनी इच्छासे दूसरेकी स्त्री होकर पुत्र उत्पन्न करै, तौ उस पुत्रको पौनर्भव कहतेहैं १ वोह उत्पन्न करनेवालेका पौनर्भव पुत्र कहलाताहै १७५वोही स्त्रीयदि अक्षतयोनि होय जो पतिके जीते हुए घरसे निकल गई और वा पतिने त्यागन करदीहै फिर अपने पतिके पास चली आवै तौ कुमार भर्ताको उसको पुनः संस्कार करकै ग्रहण करना यदि शुद्धहोय तौ, यह परिपाटी प्रशंसित नहीं है अथवा वोह जिसकेपास जाय वोह पौनर्भव पतिफिर स्त्रीका संस्कार कर ग्रहण करै, परन्तु इसके जो सन्तान होगी वोह पौनभर्व कहलावैगी, जो प्रशंसित नहीं है स्वामीजीने (साचेत्) के स्थानमें(या)लिखाहै जो प्रसंग विरुद्धहै और यह कैसी बात लिखी कि अक्षतवीर्य पुरुष विवाह न करै क्या विवाह उस समय करै जिस समय सर्व वीर्य क्षत होजाय, धन्यहै स्वामीजी * ११६ । ७ पृ० ११२ पं० २१ (प्रश्न) पुनर्विवाहमें क्या दोषहै (उत्तर) स्त्री पुरुषोंमें प्रेम न्यून होना क्योंकि जब चाहैं तब पुरुषको स्त्री और स्त्रीको पुरुष छोडकर दूसरेके साथ सम्बन्ध करलें, दूसरे जब स्त्री वा पुरुषप्रति स्त्री मरनेके पश्चात् दूसरा विवाह करन ¬ चाहैं तो प्रथम स्त्रीके पूर्व पतिके पदार्थोंको उडा लेजाना और उनके कुटुम्बवालोंका उनसे झगडा करना, तीसरे बहुतसे भद्रकुलका नाम वा चिह्नभी न रहना और उनके पदार्थोंका छिन्नभिन्न होजाना, चौथा पतिव्रत और स्त्रीव्रत धर्म नष्ट होना इत्यादि दोषोंके अर्थ द्विजोंमें पुनर्विवाह कभी न होना चाहिये ११६ । १२ (देखिये इसके विरुद्ध लेख) स०

* भा० प्र० दयानन्दकी अशुद्धि छिपा गये हैं क्यों नहीं दोनों स्वामी ठहरे ।

पृ० ११३ पं० ५ जो ब्रह्मचर्य न रख सकैं तो नियोग करकै सन्तानोत्पत्ति करले. ११६।२४ समीक्षा–यदि सन्तानहीके अर्थ नियोग है तो जो स्त्री विधवा हो और वंध्याभी हो तो वोह कैसे सन्तान उत्पन्न कर सक्ती है, जो कहो कि, वोह गोद लडका लेकर कार्य कर सक्ती है तो(जो कि आपने पृ० ११३ पं० ४ में गोद लेना लिखाहै) फिर इस महा अनर्थ व्यभिचार नियोगकी आवश्यकता क्याहै, जिसे इच्छा होगी गोद लेलेगी, नियुक्त पुरुषका उत्पन्न किया पुत्र जैसे दूसरेकाहै, उसी प्रकार गोद लियाहै, परन्तु गोदका उससे शुद्धहै क्योंकि संस्कारयुक्त है, नियुक्त पुत्र वैसा शुद्ध नहीं क्योंकि उसमें परपतिसे भोग करना पडताहै, इस कारण गोदही क्यों न लिया जाय, यदि पुत्रके निमित्त नियोग करते हो तौ कुछ लाभ नहीं, यदि कामाग्नि मिटानेके लिये यह वेश्याधर्म प्रवृत्त किया है तौ दूसरी बातहै ॥

स० पृ० ११३ पं० ५ पुनर्विवाह और नियोगमें क्या भेदहै (उत्तर)

१ जैसे विवाह करनेमें कन्या अपने पिताका घर छोड पतिके घरको प्राप्त होतीहै और पितासे विशेष संबंध नहीं रहता, विधवा स्त्री उसी विवाहित पतिके घरमें रहतीहै ॥

२ उसी विवाहिता स्त्रीके लडके उसी विवाहित स्त्रीके पतिके दायभागी होते हैं और विधवा स्त्रीके लडके वीर्यदाताके न पुत्र कहलाते न उसका गोत्र होता न उसका सत्व उन लडकों पर रहता किन्तु वे मृतपतिके पुत्र बजते उसीका गोत्र रहता और उसीके पदार्थोंके दायभागी होकर उसी घरमें रहतेहैं ॥

३ विवाहित स्त्रीपुरुषको परस्पर सेवा और पालन करना अवश्य है, और नियुक्त स्त्रीपुरुषका सम्बन्ध कुछभी नहीं रहता ॥

४ विवाहित स्त्रीपुरुषोंका सम्बन्ध मरणपर्य्यन्त रहता और नियुक्त स्त्री पुरुषका कार्य पश्चात् छूट जाताहै ॥

५ विवाहित स्त्रीपुरुष आपसमें गृहकार्य्योंकी सिद्धि करनेमें यत्न किया करते हैं और नियुक्त स्त्रीपुरुष अपने २ गृहका काम किया करते हैं ॥ ११६ । २५

समीक्षा–दयानंदजीने यह नियोगके पांच नियम कौनसी संहितासे निकालेहैं, क्या यह स्वामीजीकी मिथ्या कल्पना नहीं है, पीछे जो पुनर्विवाहमें चार दोष दिखलाये हैं क्या वे इन पांच नियमोंसे नहीं टूटतेहैं

१ जब कि स्त्री पतिके घरही रहती है तौ सास ससुरकी लाज अधिक होती है और पर पुरुषसे भाषणमेंभी संकोच लगताहै, दयानंदजी यह आज्ञा करते हैं कि पतिके घरहीमें परपुरुषको बुलाकर नियोग करै, जबकि स्त्रियोंको पुत्रकी अधिकइच्छा होतीहै, तौ उनका पतिसेभी प्रेम न्यून हो जायगा क्योंकि यह तौ उनको विदितही है कि यदि पति मरजायगा तौ नियोग दूसरेसे कर पुत्र उत्पन्न करलैंगी फिर पुत्रेष्टि व्रत कर्म पुंसवन आदिभी कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं, एवं लज्जा आदि सब खो बैठेंगी परन्तु–

एतावानेव पुरुषो यज्जायात्माप्रजेति ह ॥
विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्त्ता सा स्मृतांगना ॥ मनु०

पुरुष और स्त्रीका आत्मा मिलके प्रजा होतीहै, इसकारण वेदके जानने-वाले विप्र कहतेहैं जो पति वोही भार्या उससे जो भार्यामें उत्पन्न होताहै वोह पतिका पुत्र कहाताहै, यह मनुजी कहते हैं, तौ नियुक्त पुरुषसे संतान उत्पन्न करीहुई चाहैं किसीके घर क्यों न रहै, परंतु उस सन्तानमें नियुक्त पुरुषकेही गुण आवैंगे जैसा वेदमें लिखाहै (अङ्गादङ्गादिति) पुत्र पिताके अंग २ से उत्पन्न होता है तौ उस पुत्रमें नियुक्त पुरुषके लक्षण निश्चयही आवैंगे, और वोह पुत्र है भी उसीका क्योंकि आम वोनेसे आमही होगा, नियुक्त पुरुषसे उत्पन्न हुए बालकका मृत पुरु-षसे कुछभी सम्बन्ध नहीं और दायभाग तौ गोदलिये पुत्रका होता है, जिसे सर्व सम्मतिसे स्त्री पुरुष गोद लेते हैं " प्रत्यक्षमें देखा जाता है कि कैसाही गोत्र क्यों न हो परन्तु जाननेवाले तौ जो जिससे उत्पन्न होताहै उसी नामसे पुकारते हैं यथा वायुतनय भीम, इन्द्रतनय अर्जुन धर्मपुत्र युधिष्ठिरादि" और जब कि वोह नियुक्त पुरुषसे उत्पन्न पुत्र मृतके धनका अधिकारी हुआ तौभी स्वामीजीका वोह कहना कि (यदि पुनर्वि-वाह होगा तौ धन दूसरोंके हाथ लग जायगा) मिथ्याही हुआ क्योंकि अब-भी उस मृतका धन दूसरोंहीके हाथ लगा, अपना पुत्र तौ जभी होगा जब अपनेसे उत्पन्न होगा, वोह नियुक्त मृतकके गोत्रसे सम्बन्धी नहीं होता, देखिये ऋग्वेदमें लिखा है जिसकी व्याख्या कलकत्तेके छपे हुए निरुक्तके २९४ पृष्ठमें कीहै ॥

परिषद्यंह्यरणस्यरेक्णो नित्यस्यरायः पतयःस्याम ॥
नशेषोअग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्यमापथोविदुक्षः ॥
ऋ० ५।२।६।७

(निरुक्तभाष्यम्) परिहर्तव्यं हि नोपसर्तव्यमरणस्य रेक्णोऽरणोऽपार्णो भवति रेक्ण इति धननाम रिच्यते प्रयतो नित्यस्य रायः पतयः स्याम पित्र्यस्येव धनस्य न शेषो अग्ने अन्यजातमस्ति शेष इत्यपत्यनाम शिष्यते प्रयतोऽचेतयमानस्य तत्प्रमत्तस्य भवति मानः पथोविदूदुष इति तस्योत्तरा भूयसे निवचनाय-३।२ निरु०

भाषार्थ-एक समय हतपुत्र वसिष्ठने अग्निकी स्तुति याचना करी कि मुझै पुत्र दे तब अग्नि देव बोले कि क्रीतक दत्तक कृत्रिम आदि पुत्रोंमें कोई एक पुत्र बनालो यह बात सुन वसिष्ठजी औरसे उत्पन्न हुए पुत्रोंकी निन्दा करते हुए और निज वीर्यसे पुत्र चाहते हुए यह वेद मंत्र बोले ॥

(परिषद्यं) त्याग देने योग्य है वोह पुत्ररूपी धन जो कि (अरणस्यरेक्णः) पर कुलमें उत्पन्न है, जिसमें उदकसम्बन्ध नहीं है, क्योंकि वाह परकीय होनेसे पुत्रकार्यमें समर्थ नहीं होता; चाहै उसकी पुत्रकार्यमें कल्पना करलो, इसकारण (नित्यस्य रायः पतयः स्याम) (पित्र्यस्येवधनस्य) जैसे पिताका धन पुत्रत्वमें होता है इसीसे वोह उसके धनका स्वामी होताहै, क्योंकि वोह स्वयं अपनेसे उत्पन्न होता है (अपत्यकहाताहै) इसीसे मुख्य होताहै क्षेत्रज क्रीतक ऐसे नहीं, इसीसे कहते हैं कि जो नित्य आत्मीय अगौण अपनेसे उत्पन्न जो पुत्ररूपी (रायः) धन तिसीके हम (पतयः मालिक पालनेवाले हों, परकीयके नहीं, जिस्से कि (नशेषोअग्नेअन्यजातमस्ति) औरसे उत्पन्न हुआ अपत्य नहीं होताहै जो उत्पन्न करताहै वोह उसीका होताहै दूसरेका नहीं जो (अचेतयमानस्य) अचेतयमान अर्थात् अविद्वान् प्रमादी जो शास्त्रसे रहित हो वोह भी धर्मसे परितोष मात्र होता ही है, कि यह मेरा पुत्रहै इस्से कहतेहैं कि (मापथोविदुक्षः) कि हमको पितृ पितामह प्रपितामहकी अनुसन्ततिके (पथः) मार्गसे (विदूदुषः) तू औरस पुत्र दे, यह आशयहै जो अपने वीर्यसे अपनी सवर्णा स्त्रीमें उत्पन्न हो वोह औरस पुत्र कहाताहै ॥

" अपत्यंकस्माादुच्यते अपतनेभवति पितुःसकाशादित्यपृथगिवततंभवति अथवाअनेनजातेनसतापितरोनरकेनपतन्ति " (भाषा) अपत्य

नाम पुत्रका क्यों है पितासे उत्पन्न होकर पृथक्की नाईं विस्तृत होताहै वा जिसके उत्पन्न होनेसे पितर नरकमें नहीं पडतेहैं इससे अपत्य कहतेहैं

"पुत्रःपुरुत्रायतेबह्वपियत् पित्रा पापं कृतं भवति ततोयंत्रायतीतिपुत्र (भाषा) जो कि पिताने पाप कियाहै उस्से पिताकी रक्षा करनेसे इस का नाम पुत्रहै "निपरणाद्वा निपृणाति निददाति ह्यसौ पिण्डान् पितृभ्य इतिपुत्रः" जोकि पितरोंके वास्ते पिंडोंको देताहै वोह पुत्र कहाताहै ॥

(अरणोऽपार्णः) जिस्से जलका सम्बन्ध नहीं है अर्थात् मृतक हुए पिताको जिसका दिया हुआ जल न पहुंचै उसे अरणः कहते हैं " इ तोलोकादमुं लोकंप्रयतः म्रियमाणस्येत्यर्थः शेष इत्यपत्यनामतद्धि शिष्यते" पिताके परलोकमें जानेसे यह यहीं रहताहै इस कारण इसे शेष कहते हैं ॥ अर्ण इत्युदक नाम सुपठितं निघ० १।१२

नहिग्रभायारणःसुशेवोऽन्योदर्योमनसामन्तवाउ ॥
अधाचिदोकःपुनरित्सएत्यानोवाज्यभीषालेतुनव्यः ॥
ऋ० मं० ७।४।८

भाष्यम्–नहिग्रहीतव्योरणः सुसुखतमोप्यन्योदर्योमनसापिनमन्तव्यो ममायंपुत्रमित्यथ सओकः पुनरेवतदेति यत आगतोभवत्योकइति निवासनामोच्यत एतु नोवाजीवेजनवानभिषहमाणः सपत्नान्नवजातः सएवपुत्र इत्यथैतां दुहितृदायाद्यउदाहरन्ति पुत्रदायाद्यइत्येके । नि० ३। ३*

(नहिग्रभायेति) नहीं अंगीकार करने योग्य है क्योंकि वोह पुत्र नहीं है (अरणः) अपार्णः उदक सम्बन्ध अपगत होनेसे अन्य कुलमें उत्पन्न होनेसे यद्यपि (सुशेवः) सुखतमः अर्थात् सुख देनेवालाहो (अपिअन्योदर्यः) औरके वीर्यसे उत्पन्न हुआ वो अन्यके उदरसे (जो अपनी विवाहित सवर्णा स्त्री नहीं है) उत्पन्न है(अङ्गाद्धवा एषआत्मनोयज्जायते विज्ञायते) जो अपने वीर्यसे अपनी जायामें उत्पन्न हो वोह उदरसम्भूत है इस कारण मुझे अन्य जायासे उत्पन्न पुरुष मनसे भी अंगीकार नहीं है क्योंकि (अधि) जिससे (ओकः) अपने वंशको वह बहुत कालमें प्राप्त होता है (अपने वीर्यसे अन्यमें उत्पन्न) (तद्वंश्य एवभवति) इस कारण यह अपुत्र है (ऐतु) आवै वा प्राप्तहो (नः वाजी)

* भा० प्र० इन मंत्रोंके निरुक्त विरुद्ध अर्थ होनेसे त्याज्य हैं।

वेगवाला शत्रुओंको भयदाता (अभीषाट्) वैरियोंका तिरस्कार करने वाला (नव्यः) नव जात पुत्र शिशु वोह सवर्णासे उत्पन्न पुत्र प्राप्त हो अन्यजात नहीं. अब दयानंदजीको और उनके शिष्योंको निरुक्तकृत व्याख्यासहित इस मंत्रपर ध्यान देना चाहिये यह वसिष्ठजी क्या स्वामीजीसे कमती विद्वान्थे जो चाहते हैं कि अन्यजात पुत्र मैं नहीं चाहता और उससे उदक आदि संबंध कुछ नहीं हो सक्ता और आगे आपने नियोगसे दश सन्तान उत्पन्न करनेकी आज्ञा दे दीहै तौ जब स्त्री नियोगसे १० सन्तान उत्पन्न करै तौ फिर उस पुरुषका सम्बन्ध छुट जाय इसका उत्तर यह है यदि दो दो वर्ष बादभी एक२सन्तान होतो वीसवर्षतक जिसका सम्बन्ध रहै फिर वोह क्यों कर छुट सक्ता है जो कि स्त्री एकवार परपुरुषगामिनी हो चुकी फिर क्या सन्तानके लालचसे वोह प्रीति छूट सक्ती है २० वर्षका अभ्यास सहजमें छुट सक्ता है क्या जो बालक उससे उत्पन्न होंगे उसमें भी नियुक्त पुरुषका असर निश्चयही आवैगा वीर्यका गुण अवश्य आवैगा जबकि पिताकू उपदंशादिकी बिमारी हो तौ पुत्रमें आजातीहै फिर गुण स्वभाव तौ अधिकही सूक्ष्म है वोह भी अवश्य आवेंगे और दयानंदजी वोह नियम (कि विवाह पुनःकरनेमें भद्र कुलका नामभी नहीं रहता पदार्थ छिन्न भिन्न हो जांयगे) बिगड़ जायगा क्योंकि जब सन्तान दूसरेकी है तौ अपने पिताहीकी ओर झुकैगी उस मृतकका मालमता तौ औरोंहीके हाथ लगा इसकारण मृतक पुरुषके धनके उसके भ्राता आदि ही अधिकारीहो सक्ते हैं फिर स्वामीजीने लिखा है कि पुनर्विवाहमें स्त्री धर्म पतिव्रतधर्म नष्ट हो जाता है (और नियुक्त पुरुष भोगनेके पश्चात् अपने २ घरका काम करैं) वाहजी बुद्धिमान् पुनर्विवाहमें तौ पतिव्रत धर्म नष्ट हो जाता है जो एकही पतिके आश्रित रहै और नियोगमें ११ पुरुषोंतक स्त्री संभोग करै तौ भी पतिव्रतधर्म नष्ट नहो देखिये इन परमहंसजीकी बुद्धिमानी वाह ग्यारह पुरुषोंके भोगवाली स्त्री पतिव्रता यह तो गृहस्थ स्त्रियोंको वेश्याही बनाया सब थोडेही इसे मानैंगे यह कर्म वोही आपके अनसमझ अनुयायी करैंगे जो तुम्हारे वाक्योंको पत्थरकी लकीर मान्ते हैं जाने उन लोगोंकी मतिपर क्या पत्थर पडे हैं जो इस व्यभिचार भरी कथाको प्रीतिसे सुनते और उसकी रीति प्रचार करनेका यत्न करते हैं, और यह एक बात तौ विषयी पुरुषोंको लाभकी लिख दीहै, कि रातको नियुक्त स्त्री पुरुष अपने एक बिस्तरपर, सबेरे अपने २ कामकाज करैं (शायद विवाहित स्त्री पुरुष दिनको घरका

कामकाज नहीं करते होंगे दिनरात एक बिस्तरपर रहते होंगे) सो विषयी पुरुषोंका बहुत द्रव्य बचैगा क्योंकि वेश्याके वहां जानेसे तौ द्रव्य खर्च होताहै तुम्हारे नियमानुसार ऐसे मत माननेवालोंकी विधवाओंके यहां रातको बे खटके प्रवेश कर गये, सबेरेही चले आये, जबतक गर्भ नरहै यही कृत्य करते रहैं, परन्तु स्वामीजी तौ अमोघवीर्य थे, कुछ सन्तान तौ उत्पन्न कर जाते जो वैदिक यंत्रालय और आपके दुशाले घडी चैनके मालिक होते, जब स्त्रीको सन्तानार्थ ग्यारह पुरुषोंकी आज्ञा है तो अच्छे वीर्यवाले पुरुष तो बहुतही कम सौमें कोई पांचही होंगे, विना-संभोग परीक्षा नहीं होती तौ लीजिये अब सैकड़ों पति बनाने पड़ें और जो कोई मनोहर मिलगया तौ सस्रुर और पतिकी कमाई और अपना सब गहना पाताले उसके संग हुई जन्म पर्यन्त आपको दुआऐं देती रही और पुरुषभी आपका गुण गाते रहै शोकहै इस महा अनर्थपर ॥

स० पृ० ११३ पं० २१ जिसकी स्त्री वा पुरुष मर जाताहै उन्हीका नियोग होताहै पं० २६ वही नियुक्त स्त्री दो तीन वर्ष पर्यन्त उन लडकोंका पालन करके नियुक्त पुरुषको दे दे; ऐसे एक २ विधवा स्त्री दो अपने लिये और दो दो अन्य चार नियुक्त पुरुषोंको दो दो सन्तानकर सक्ती और एक मृत स्त्री पुरुषभी दो अपने लिये दो दो अन्य चार विधवाओंके लिये पुत्र उत्पन्न कर सक्ता है, ऐसे सब मिलकर दशसन्तानोत्पत्तिकी आज्ञा वेदमें है ॥

इमांत्वमिन्द्रमीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ॥ दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि ऋ० मं० १० सू० ८५ मं० ४५

(हेमीढ्वइन्द्र) वीर्यसींचनेमें समर्थ ऐश्वर्ययुक्त पुरुष तू इस विवाहिता स्त्री वा विधवा स्त्रियोंको श्रेष्ठ पुत्र और सौभाग्य युक्त कर, इस विवाहिता स्त्रीमें दशपुत्र उत्पन्न कर और ग्यारहवीं स्त्रीको मान, हे स्त्री! तूभी विवाहित पुरुष वा नियुक्त पुरुषोंसे दश सन्तान उत्पन्न कर और ग्यारहवां पतिको मान इस वेदकी आज्ञासे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री और पुरुष दश दश सन्तानसे अधिक उत्पन्न न करैं, क्योंकि अधिक करनेसे सन्तान निर्बल निर्बुद्धि और अल्पायु होतेहैं और स्त्री तथा पुरुषभी निर्बल अल्पायु और रोगी होकर वृद्धावस्थामें दुःख पाते हैं ॥ ११७ । १८

समीक्षा–धन्य है ! स्वामीजी कलियुग धीरे २ आताथा, आपने उसे शीघ्र प्रवृत्त करनेका ढंग निकाला, एक स्त्री चार नियुक्त पुरुषोंके अर्थ और दो अपने लिये उत्पन्नकरले यह तो घरकी खेती समझली जब गये और पुत्र हो गया,कन्याका नामही नहीं, सब पुत्रही पुत्रहोंगे, यदि यह ईश्वरकी आज्ञा है तौ ईश्वर सत्यसंकल्पहै, सबके पुत्रही होने चाहियेथे कन्या एकभी नहीं, बस सारा नियोग यहीं समाप्त हो जाता, परन्तु यह देखानहीं जाता इससे यह वेदमंत्रका अर्थ नहीं है बहुतेरे निस्सन्तान रहतेहैं, यह व्यभिचारका प्रचार भारतवासियोंको महा-अंधकारमें डालनेहाराहै, इसमें वेदमंत्रको क्यों सानलिया अपनी कोई मिथ्या संस्कृत बनाली होती, वेदमें ऐसी बातें कभी नहीं होतीं यह विवाहप्रकरणका मंत्रहै आशीर्वादअर्थमें है इसके अर्थ इस प्रकार हैं ॥

विवाहमें प्रार्थना करते हैं (मीढ्वः) सब सुखकारी पदार्थोंकी वर्षाकरनेवाले (इन्द्र) हे परमैश्वर्य युक्त देवइन्द्र (त्वम्) आप (इमाम्) इसविवाहिताको (सुपुत्राम्) अच्छे पुत्रवाली (सुभगाम्) सौभाग्यवती (कृणु) करो (दश) दश (अस्याम्) इसमें (पुत्रान्) पुत्रोंको (आधेहि) धारण कराओ (पतिम् एकादशम्) दश पुत्रोंके साथ ग्यारहवां पति चिरञ्जीव (कृधि) कीजिये मंत्रमें एकादशपद पूरण प्रत्ययान्त है उसका अर्थ ग्यारहवां पति ऐसा होगा दशपुत्र मंत्रमें स्पष्ट पढे हैं उसमें ग्यारहवी संख्याको पूर्ण करनेवाला पति है तब यह अर्थ हुआ हेदेव! आपकी कृपासे दशपुत्र और पति यह ग्यारह विद्यमान रहैं सीधा अर्थ छोड स्वामीजीने व्यर्थ क्लिष्ट कल्पना की है यदि नियोगपरक यह प्रार्थना है तौ प्रत्येक नियोगमें पढनेसे ग्यारह वारमें १२१ एकसौ इक्कीस पतिकी प्रार्थना होजायगी इसके लिये ईश्वरसे नियोगियोंकी अवस्था बढानेका कानून पास करालो ॥

यह स्वामीजीने न सोचा कि, यदि एकादशपति पर्यन्त नियोग करनेकी ईश्वरकी आज्ञा है तौ ईश्वर तौ सत्यसंकल्प है तब तौ सब स्त्रियोंके दश दश पुत्रसे कमती होनेही नहीं चाहिये, यदि दश दशसे कमती होगे तो परमेश्वरका संकल्प निष्फल होगा, इस्से स्वामीजीका किया अर्थ अशुद्ध है ॥ पुराने अर्थमें सौभाग्यवती होनेकी प्रार्थना, दयानन्दी मतमें ग्यारह खसम करानेकी प्रार्थना.

अब विचारनेकी बात है कि इसमें नियोगप्रचारका कौनसा शब्द है, दयानंदजीने तौ यह समझ लिया कि हमारे अनुयायी हमारे वाक्यको पत्थरकी लकीर मान्ते हैं वेदपर टीकाभी हमारीही किया मान्ते हैं, जो चाँहें सो बकवाद किये जांय, आपके मतमें तौ किसीके दशसे कमती पुत्रही न होने चाहिये जिनके कमती हों वोह आपके वाक्यानुसार कुछ फिक्रकरैं और दश सन्तानोंमें समय कितना लगेगा यह आपने न लिखा ॥

(पृ० ११४ से पृ० ११५ तक) यह वेश्याके सदृश कर्म दीखता है (उत्तर) नहीं क्योंकि वेश्याके समागममें किसी निश्चित पुरुष वा कोई नियम नही है और नियोगमें विवाहके समान नियमहैं, जैसे दूसरेको विहाहमें लड़की देनेसे लज्जा नहीं आती वैसेही नियोगमें भी लज्जा नहीं करनी चाहिये जो नियोगकी बातमें पाप मान्ते हो तौ विवाहमें भी पाप मानो, नियोग रोकनेमें ईश्वरके सृष्टिक्रमानुकूल स्त्री पुरुषका स्वाभाविक व्यवहार नहीं रुकसक्ता, सिवाय वैराग्यवान् पूर्ण विद्वान योगियोंके क्योंकि जवान स्त्रीपुरुषोंको सन्तानोत्पत्ति विषयकी चाहना रुकनेसे महासन्ताप होता है और गुप्त २ वे करतेही हैं, जो जितेन्द्रिय रहैं नियोग न करैं तौ ठीकहै, जो न रुकसकैं तौ उनका विवाह और आपत् कालमें नियोग अवश्य होना चाहिये, ऊंचसे नीचका नीचसे ऊंचका व्यभिचाररूप कुकर्म होनेसे कुलमें कलंक वंशका उच्छेद स्त्रीपुरुषोंके सन्ताप नियोगसे निवृत्त होते हैं, जैसे प्रसिद्धीसे विवाह करै तैसेही प्रसिद्धीसे नियोग, जब नियोग करै तबअपने कुटुम्बमें पुरुषस्त्रियोंके सामने कहैं हम दोनों नियोग सन्तानोत्पत्तिके लिये करते हैं, जब नियोगका नियम पूरा हो जायगा तब संयोग न करैंगे, इसमेंभी कन्या और वरकी प्रसन्नता लेनी अपने वर्णमें वा अपनेसे उत्तम वर्णसे नियोग करना, वीर्य सम वा उत्तम वर्णका चाहिये अपनेसे नीचका नहीं. स्त्री और पुरुषकी सृष्टिका यही प्रयोजन है कि वेदोक्त रीतिसे विवाह वा नियोगसे सन्तानोत्पत्ति करना, द्विजोंमें स्त्री वा पुरुषका एकबारही विवाह होना वेदादिशास्त्रोंमें लिखाहै दूसरा नहीं जिसकी स्त्री मरजाय उसके साथ कुमारीका विवाह नहीं करना और विधवाका कुमारके साथ विवाह न करै तो पुरुष और स्त्रीको नियोगकी आवश्यकता होगी, यही धर्म है जैसेके साथ वैसेहीका संबंध होना चाहिये, यह दोनों पृष्ठोंमेंसे संक्षेप कर सारांश ले लियाहै ॥ पृ० ११८ । पृ० ११९ तक.

समीक्षा– आपही प्रश्न करतेहैं कि यह कर्म वेश्याके सदृश दीखता है आपही उत्तर देते हैं कि नहीं, यदि यह कर्म वेश्याके सदृश न होता तौ महात्माजीके मुखसे ऐसी बात क्यों निकलती जैसी बात होती है वैसी मुँहसे निकल ही जाती है, यह जो लिखा है कि वेश्याके समागममें किसी निश्चित पुरुषका नियम नहीं, नियोगमें विवाहके समान नियमहै, सो नियोगमें कोई नियम नहीं, ग्यारहपति बनानेतककी आज्ञा है, बस नियम कैसा "और जैसे विवाहमें लज्जा नहीं वैसेही नियोगमें लज्जा नहीं करनी चाहिये" यहां तौ आपने लाजकोभी तिलांजलि देदी, इस ग्रंथका नाम निर्लज्ज प्रकाश क्यों न रख दिया, विवाह, तौ आपने अक्षतयोनिका ठहराया, और विधवाका विवाहके समान नियोग तौ पतिव्रता वेश्या एकही बताई, करर कपूर एकही भाव कर दिये, क्यों न हो आप तौ समदर्शी हैं, जब कि ईश्वरकी सृष्टिक्रमानुकूल मनुष्यका स्वभाव कामचेष्टासे रुकही नहीं सकता तौ भला योगी कैसे रोक सक्ते हैं, यदि योगी रोकलें तौ ईश्वरके सृष्टिका क्रम मिथ्या हो जाय, दोनोंमें एक बात लिखी होती या तो ईश्वरकी सृष्टिका क्रम वृथा या वह और जो योगियोंने सृष्टिक्रम उल्लंघन करदिया तौ वे ईश्वरकी इच्छाके प्रतिकूल हुए, जब योगियोंको सृष्टिक्रम नहीं व्यापता फिर तौ वे सबही कुछ सृष्टिक्रम विरुद्ध करसक्ते हैं, यह स्वामीजीकी बात परस्पर विरुद्ध है इससे अप्रमाणहै पीछे तौ नियोगसे सन्तानोत्पत्तिका प्रयोजन बताया और अब लिखा कि जवान स्त्रीपुरुष विषयकी चाहना होनेसे सन्तापित होते हैं, नियोगसे उसे शान्त करलेंगे यह बात स्वयं महात्माजीपर बीती है नहीं तौ "जाके पैर न फटै बिवाई, सो क्या जानै पीर पराई" यह सूझती कैसे फिर लिखा है कि, जितेन्द्रिय रहैं नियोग न करैं तौ ठीक है, यह आपने क्या कहीं नियोग विषयको महाकष्ट उठाकर वेदसे सिद्धकर सृष्टिके क्रम और प्रयोजनमें बताया ईश्वरेच्छा ठहराई तौ फिर यह सृष्टिक्रम विरुद्ध ईश्वरेच्छाके प्रतिकूल वेदका क्यों निरादर करते हो "नास्तिको वेदनिंदकः" वेदाज्ञा न मानने वाला नास्तिक होता है "जो न रुकसकैं उनका नियोग विवाह करदो" यह क्या ? अभीतक तो विधवाविवाहका निषेध और अब व्याह करनेकी आज्ञा सुनादी यदि कहो विवाह कुमार कुमारीका कहा है सो यहां यह प्रसंग नहीं और उनका तौ होता ही है, लिखने की क्या आवश्यकता या वेभी जितेन्द्रिय रहैं तौ ईश्वरकी सृष्टि क्यों कर बढैगी,

यदि यह पशुधर्म भारतमें चलता तौ यह देश रसातलको चला जाता, स्वामीजी चलानेको थे सो चलादिये "आपही नीच ऊंच वर्णमें व्यभिचार होनेसे कुलमें कलंक और वंशोच्छेद होना लिखते हैं यहां स्पष्ट जन्मसे जाति मान ली कारण कि वीर्य शरीरसे होता है और आपही अपनेसे उच्च वर्णका वीर्य नियोगमें ग्रहण करना लिखते हो" यह साक्षात् वर्णसंकरताका हेतु है ऊंचनीच तौ हो ही गया देखिये मनुस्मृति-

ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते ॥
निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते ॥
क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान् ॥
क्षत्रशूद्रवपुर्जंतुरुग्रो नाम प्रजायते ॥
सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु ॥
आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते ॥
अ० १० श्लो० ८, ९, ५.

ब्राह्मणसे वैश्यकन्यामें अम्बष्ठ नाम जाति उत्पन्न होती है और ब्राह्मणसे शूद्रकन्यामें निषाद जाति जिसे (पारशव) कहते हैं उत्पन्न होती है १ क्षत्रियसे शूद्रकन्यामें क्रूराचार विहारवाला और क्षत्रिय शूद्र स्वभाववाला उग्र जातवाला उत्पन्न होता है २ इससे ब्राह्मणादि चारों वर्णोंको अपनी समान जाति और पुरुषसम्बन्धरहित ऐसी कन्यासे यथाशास्त्र विवाहादि व्यवहार करना चाहिये उस स्त्रीमें जो सन्तान उत्पन्न होवे उसे उसी जातिका जानना चाहिये शेष वर्णसंकर जानने ॥

स्वामीजीने तौ यहां मनुस्मृतिभी न देखी इच्छा तौ भारतवर्षको वर्णसंकर बनानेकी थी परन्तु यमराजने पूर्ण नहीं होनेदी "पुनः लेख है पृ० ११५।९ नियोगभी विवाहकी नाईं प्रसिद्ध रीतिसे करै उस स्त्रीकीभी प्रसन्नता लेले" प्रसिद्ध करनेको कोई विज्ञापन देदे या ढंढोरा पिटवादे या मिठाइ बँटवादे कि, मैं नियोग करूंगा, अब मुझसे रहा नहीं जाता इसी प्रकार वोह स्त्रीभी अपनी सम्मति प्रकाश करै कितनी निर्लज्जता भरी है क्या कहाजाय "नियोग और विवाहसे ईश्वरकी सृष्टिका प्रयोजनहै" यदि ईश्वरकी यही इच्छा थी कि सृष्टि बढै तौ उसने अग्नि वायु आदिकी नाईं करोड़ों जीव एक संगही क्यों न उत्पन्न करदियें, अथवा स्त्रियोंको विधवा. क्यों किया, जो उनके स्वामी विद्य-

मान रहते तौ बिचारियोंको ऐसी कठिनाज्ञा क्यों दी जाती यदि कहो कि यह सुख दुःख कर्मानुसारही होता है, कर्मानुसारही विधवा होती हैं, तौभी आप सृष्टिक्रम प्रतिकूलही करते हैं, क्योंकि ईश्वर जब कर्मानुसार सुख दुःख देता है, तौ जो कर्मानुसार दुःख पानेको विधवा हुई तुम उसका कर्मानुकुल दुःख मेटनेका उपाय करकै ईश्वरका नियम तोडना चाहते हो और यहभी ठीक नहीं कि सन्तान जानै कैसी हो ईश्वरकी कर्मानुकूल व्यवस्थामें हस्ताक्षेप करना वृथा है, नियोगसे सृष्टि नहीं बढ सक्ती उसकी सृष्टि अनन्त हैं, कौन पार पा सकताहै, इस ब्रह्माण्डमें करोडों लोक उसने रचदिये हैं किसीके बढाये घटायेसे उसकी सृष्टि बढ घट नहीं सक्ती आप पुरुषका दूसरा विवाह नहीं बताते हों ॥ सुनिये—

वंध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा॥
एकादशे स्त्रीजननीसद्यस्त्वप्रियवादिनी ८१
या रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव शीलतः ॥
सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्याचकर्हिचित्८२मनु०अ०९

रजस्वला होनेसे आठ वर्षतक कोई सन्तान नहीं हो तौ दूसरा विवाह करैं और पुत्र होकै मर २ जाते हों तौ दशवें वर्ष उपरान्त दूसरा विवाह करले और कन्याही उत्पन्न हों तौ ग्यारहवे वर्षमें विवाह करै और अप्रिय बोलनेवाली स्त्री हो तौ उसी समय दूसरा विवाह करै ८१ जो बीमार रहे और पतिके अनुकूल हो शीलवालीभी हो तौ उसकी आज्ञा लेकै दूसरा विवाह करै, उस का अवमान करना उचित नहीं है ॥ ८२ ॥

स० पृ० ११९ पं० ३१ जैसे विवाहमें वेदादि शास्त्रका प्रमाण है वैसा नियोगमें प्रमाण है वा नहीं (उत्तर) इस विषयमें बहुतसे प्रमाण हैं सुनो ॥

कुहस्विद्दोषा कुहवस्तोरश्विनाकुहाभिपित्वंकरतःकुहोषतुः ॥
कोवांशयुत्राविधवेवदेवरंमर्य्यं न योषाकृणुतेसधस्थआ ॥
ऋ०—मं०१०सू०४०मं० २

हे (अश्विना) स्त्री पुरुषो जैसे (देवरं विधवेव) देवरको विधवा (योषामर्य्यंन्न) विवाहित स्त्री अपने पतिको (सधस्थे) समान स्थान

शय्यामें एकत्र होकर सन्तानोत्पत्तिको (आकृणुते) सर्व प्रकारसे उत्पन्न करती है वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष (कुहस्विद्दोषा) कहां रात्री और (कुहवस्तः) कहां दिनमें वसेथे (कुहाभिपित्वम्) कहां पदार्थोंकी प्राप्ति (करतः) की और (कुहोषतुः) किस समय कहां, वास करतेथे (कोवांशयुत्रा) तुम्हारा शयन स्थान कहां है, तथा, कौन वा किस देशके रहनेवालेहो इससे यह सिद्ध हुआ कि, देश विदेशमें स्त्री पुरुष संगही रहैं और विवाहित पतिके समान नियुक्त पतिको ग्रहण करके विधवा स्त्रीभी सन्तानोत्पत्ति करले (प्रश्न) यदि किसीका छोटाभाई भी न हो तौ विधवा स्त्री नियोग किसके साथ करै (उत्तर) देवरके साथ परन्तु देवर शब्दका अर्थ जैसा तुम समझेहो वैसा नहीं है देखो निरुक्तमें ॥

देवरः कस्माद्द्वितीयो वर उच्यते नि. अ. ३ खण्ड १५॥

देवर उसको कहते हैं जो विधवाका पति दूसरा होता है, छोटाभाई वा बडाभाई अथवा अपने वर्ण वा अपनेसे उत्तम वर्णवालाहो जिससे नियोग करै उसीका नाम देवर है ॥ पृ०१२०।पं० १

समीक्षा-धन्यहै स्वामीजी बडा भारी जालडाला है, इस मंत्रमें तौ नियोगका कुछ भी आशय नहीं निकलता यह कौन किस्से पूछता है, क्या परदेशी लोग स्त्रियोंसे पूछैं कि तुम रातमें कहांथी कहां सन्तानोत्पत्ति कर रहेथे, या ईश्वर स्त्री पुरुषोंसे पूछताहै कि तुम दोनों कहांथे क्या ईश्वर अज्ञान है, जो विधवासे रतिकरै वोह देवर चाहें बडा हो या छोटा, शोक है ऐसी बुद्धिपर नियोग करनेमें बडाभी जो ज्येष्ठ हो तो स्त्रीका देवर होजाय, इस मंत्रमें अश्विना इस पदसे स्त्रीपुरुषका ग्रहण करके केवल जाल रचाहै मिथ्या अर्थ किये हैं, इस मंत्रमें अश्विनौ यह शब्द देवताका वाचक है स्वामीजीने इसमें कुछ प्रमाण नहीं लिखा है निरुक्तमें यह लिखा है ॥

अथातोद्यूस्थाना देवतास्तासामश्विनौ प्रथमागामिनौ ॥
निरुक्तदैवतकाण्ड अ० १२ खं० १

अब द्युस्थान देवताओंका व्याख्यान करते हैं सर्व द्युस्थान देवताओंके मध्य अश्विनौ दो देवता प्रथम यज्ञमें आगमन करते हैं, यह निरुक्तकारका मत है अब इससे यह सिद्ध हुआ कि अश्विनौ देवता हैं अब इस मंत्रका अर्थ लिखते हैं, जो निरुक्तके भाष्यकार

दुर्गाचार्यनें लिखाहै इसका अश्विनीकुमार देवता जगती छन्द है हे अश्विनौ "कुह स्वित् दोषा" "क नुयुवां "(रात्रौ) "भवथः "(कुहवस्तोः) क्वा (दिवा) (भवथःयुवाम्) येननापि रात्रौ अस्माकं दर्शनमुपगच्छथः (नापि दिवा) स्विदिति परिदेवनायाम् ईर्ष्यायां वा (कुह) क्व (अभिपित्वम्) अभिप्राप्तिं स्नानभोजनाद्यर्थं (कुरुथः) (कुह) क्वा (ऊषतुः) (वसथः) सर्वथा न विज्ञायते वामागमनप्रवृत्तिः किञ्च (कोवांशयुत्रा) कतमो युवां यजमानः शयुत्राशयने किं विधवा इव देवरम् यथा विधवा मृतभर्तृका काचित् स्त्री शयने रहस्यतितरां यत्नवती देवरमुपचराति सहिपरकीयत्वात् नार्या दुराराध्यतरोभवति यत्नेनोपचर्यते नतथा निजोभर्ता तस्मात् तेनोपमिमीते अश्विनौ तथा मर्यं मनुष्यं देवरं सैव मृतभर्तृका (योषा) आकृणुते आभिमुख्येन कुरुते कोवामेवमाभिमुख्येन (सधस्थे) सहस्थाने समानेसहयोगिनाचात्मनाकृत्वा परिचचार येनेह नोपगतवन्तौ स्थोऽस्मद्दर्शनमिति एवमस्यामृचि देवरेण कनीयसाज्यायांसावश्विनावुपमीयेते विधवया च यजमानः ॥

भाषार्थः–हे अश्विनौ तुम दोनों रात्रिमें कहांथे और (वस्तोः) नाम दिनमें कहांथे जिससे न रात्रिमें न दिनमें तुह्मारा दर्शन हमें मिला स्नान भोजनादिकी प्राप्ति कहांकी कहां निवास करा सर्वथा तुह्मारी आगमन प्रवृत्ति नहीं जानी जाती (कोवांशयुत्रा विधवा इवदेवरम्) शयनमें देवरको विधवावत् कौन यजमान तुमको परिचरण करता हुआ क्योंकि परकीय पति होनेसे दुराराध्य देवरको मृतभर्तृका यत्नसे आराधन करती है (इस कर्मको निन्दित जान छिपकर बडे यत्नसे उससे मिलती है) तद्वत् तुमको किस यजमानने आराधन करा, यथा एकान्तस्थानमें मृतभर्तृका नारी मनुष्यको अपने शरीरके साथ संबंध कर परिचरण करती है तद्वत् तुम्हारी किसने सेवाकी जो हमें दर्शन नहीं प्राप्त हुए इस मंत्रमें अल्प देवर कर महान्त अश्विनीकुमार उपमेय होते हैं और विधवा शब्दसे यजमान उपमेय होता है इस स्थलमें (सहि परिकीयत्वात् नार्य्या दुराराध्यतरोभवति) जब कि देवरको परकीयत्व कहा तौ दूसरीका पतित्व हो गया, स्वामी जी स्त्रीरहितका नियोग मान्ते हैं तौ इस मंत्रमें नियोगका कुछ भी आशय नहीं प्रतीत होता, प्रत्युत मृतभर्तृकाका देवरके पास जाना भी शङ्कायुक्त इस दृष्टान्तसे विदित होता है, आपके नियोगमें निःशंक

आज्ञा है जो विधवा कभी देवरसे व्यभिचारमें प्रवृत्त हों तौ बडा छिपकर प्रवृत्त होती है क्योंकि अधर्म है इसमें यह दृष्टान्त है आज्ञा नहीं है उस पुरुषको जिसके स्त्री नहो वोह बात इसमंत्रसे तनक भी नहीं प्रतीत होती यह मंत्र प्रातःकाल अश्विनीकुमारोंकी स्तुतिका है, अग्निष्टोमादि यज्ञोंके प्रातरनुवाक और आश्विन शस्त्रमें इसका विनियोगहै पदार्थः-(हि अश्विना) अश्विनीकुमार देवो (कुहस्वित्) तुम दोनो कहां (दोषा) रात्रिमें होते तथा (कुहवस्तोः) कहां दिनमें होते हो (कुहाभिपित्वं करतः) कहां इष्टकी प्राप्ति करते हो (कुह ऊषतुः) कहां वसते हो (कः) कौन यजमान (वाम्) तुम दोनोंको (सधस्थे) यज्ञवेदीरूप स्थानमें (आकृणुते) सेवा करनेको सन्मुख करताहै जैसे (शयुत्रा) शय्यापर (विधवेव देवरम्) वाग्दानके पश्चात् जिसका पति मरगया हो वह देवरके संग विवाही जाकर जैसे उसे प्रसन्न करती सेवामें तत्पर होतीहै अथवा (मर्यं न योषा) सब स्त्री एकान्तमें जैसे अपने पतियोंको प्रसन्न करतीहैं ऐसे यह यजमान यज्ञमें आपको प्रसन्न करनेको (आ) सब ओरसे तत्पर होताहै यहां विधवासे वह स्त्री लेनी जो (यस्या म्रियेत्कन्यायाः) इसके अर्थमें मनु०अ० ९ श्लो०६९ में आगे चलकर विधान किया गया है इसमें नियोगका नामभी नहींहै ॥

और (देवरः कस्मा०) इसके अर्थ भी गडबड लिखे हैं और यह निरुक्तकारका वाक्य भी नहीं है निरुक्त ग्रंथके छापनेवालोंने लिखा है कि यह वाक्य प्राचीन तीन पुस्तकोंमें नहीं है इसी कारण इसको उन्होंने कोष्टमें बंदकर दिया है और दुर्गाचार्यने इसपर भाष्य भी नहीं किया इस्से यह क्षेपक है यास्कजीने इसका अर्थ यों लिखा है कि देवरोदीव्यतिकर्माभाष्ये सहि भर्तुर्भ्रातानित्यमेव तया भ्रातृभार्यया देवनार्थ व्रियत इति देवर इत्युच्यते यह इसका अर्थ है कि भाईकी स्त्रीकी शुश्रूषा करनेसे इसका नाम देवरहै यदि वोह पाठ यास्कमुनिकृत होता तौ पुनः देवर शब्दका क्यों अर्थ करते इससे वोह प्रक्षिप्तही है सारे ग्रंथोंमें स्वामीजीको प्रक्षिप्तता सूझी और यहां लिखी हुईभी न सूझी और प्रक्षिप्तभी नहीं सही इसे मानभी लें तौ भी स्वामीजीका अर्थ नहीं बनसक्ता, मनुजीने इसका अर्थ लिखा है (यस्याम्रिये०) श्लोक यह आगे लिखेंगे, अर्थ यह है कि वाग्दानके उपरान्त जिस कन्याका पति

मरजाय उसे देवर अर्थात् उसके छोटे भाईसे व्याह दे, इसी कारण देवरको दूसरा वर कहते हैं परन्तु नियोग यहांभी सिद्ध नहीं होता और (विधावनात्) भर्ताके मरनेसे स्त्री रोकी जाती है, कहीं आने जाने नही पाती इस कारण इसे विधवा कहते हैं, स्वामीजी उसे ऐसा स्वतंत्र करते हैं कि कुछ बूझिये मत, आपको बताही चुके हैं आपने सबही जातवालोंको देवर बनादिया, जो नियोग करै वोह देवर, और सुनो—

स० प्र० पृ० ११६ पं० ६

उदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकं गतासुमेतमुपशेषएहि॥हस्तग्राभस्यादिधिषोस्तवेदंपत्युर्जनित्वमभिसंबभूथ ऋ० मं० १०सू०१८मं०८

(नारि) विधवे तु (एतंगतासुं) इस मरे हुए पतिकी आशा छोडके (शेषे) बाकी पुरुषोंमेंसे (अभिजीवलोकम्) जीते हुए दूसरे पतिको (उपैहि) प्राप्त हो और (उदीर्ष्व) इस बातका विचार और निश्चय रख कि जो (हस्तग्राभस्यदिधिषोः) तुझ विधवाको पुनः पाणिग्रहण करनेवाले नियुक्त पतिके सम्बन्धके लिये नियोग होगा तौ (इदम्) यह (जनित्त्वम्) जना हुआ बालक उसी नियुक्त (पत्युः) पतिका होगा और जो तू अपने लिये नियोग करैगी तौ यह सन्तान (तव) तेरा होगा ऐसे निश्चय युक्त (अभिसंबभूथ) हो और नियुक्त पुरुषभी इसी नियमका पालन करै॥ १२०।२१

समीक्षा—स्वामीजीकी बुद्धि कहां लोट गई, इधर तौ पति मरा पडा है, नारी जिसका वोह पालक पोषक नाथ था, उसके शोकमें विलाप करती है, उसी समय उसको कहने लगेकी इसे छोड औरोंको पति बनाले, क्या उसका पातिसे कुछभी प्रेम न था सोचनेका स्थान है बुद्धिमानोंको, और जब कि उसके पास बालक मौजूद है तौ अब उसे नियोगकी आवश्यकताही क्या है और पूर्व पतिसे उत्पन्न हुआ बालक नियुक्त पुरुषका क्यों कर हो सक्ता है, यह स्वामीजीका महा प्रलापहै जो सायणाचार्यने इस मंत्रका यथार्थ व्याख्यान किया है, सो लिखते हैं॥

हेनारिमृतस्यपत्निजीवलोकं जीवानांपुत्रपौत्रादीनांलोकंस्थानंगृहमभिलक्ष्योदीर्ष्व अस्मात्स्थानादुत्तिष्ठ ईरगतौ आदादिकः गतासुमपक्रान्तप्राणमेतं पतिमुपशेषे तस्यसमीपेस्वपिषि

तस्मात्त्वमेहि आगच्छ यस्मात्त्वं हस्ताग्राभस्य पाणिग्राहं कुर्वतोदिधिषोर्गर्भस्यानिधातुस्तवास्यपत्युः सम्बंधादागतमिदंजनित्वं जायात्वभभिलक्ष्यसंबभूथ संभूतास्यसुमरणानिश्चयमकार्षीस्तिस्मादागच्छ अत्रार्थेकल्पसूत्रमप्यनुसंधेयम् । तामुत्थापयेद्देवरःपतिस्थानीयोऽन्तेवासीजरद्दासोवोदीर्ष्वनार्य्यभिजीवलोकमिति ॥

इस मंत्रका अन्त्येष्टि कर्ममें विनियोग है जब पति मरगया तो श्मशानमें पतिके समीप कुशाओंपर लेटी हुई उसकी स्त्रीको देवर शिष्य वा बहुतकालसे सेवा करते हुए वृद्ध हुआ दास उठावे यदि वह गर्भवती हो तो पुंसवनादि संस्कार करनेसे देवर पतिस्थानीय कहा है उसके अभावमें शिष्य उसके अभावमें दास है (कर्ता वृषले जपेत् आश्वलायन) यदि पत्नीको उठानेवाला दास है तो दाह करनेवाला ब्राह्मण वा क्षत्रिय मंत्र जपै कारण कि शूद्रको वेदपाठका अधिकार नहीं है ॥

(नारि) हे नारि मृतकी पत्नी (जीवलोकम्) जीवित विद्यमानत्रपुपौत्रादिके निवासस्थान घरको (अभि) देखकर (उदीर्ष्व) इस चिता स्थानसे उठ तेरे विना पुत्रादिका पालन कौन करैगा (एतम्) इस (गतासुम्) मृतकके (उपशेषे) समीप लेटी है यहांसे (एहि) आओ कारण कि (हस्तग्राभस्य) विवाह समय हाथ ग्रहण करनेवाले (दिधिषोः) गर्भाधान करनेवाले (पत्युः) इस पतिके सम्बन्धसे प्राप्तहुए (तव) तुम्हारे (इदम्) इस (जनित्वम्) पत्नीपनको (अभि) देखकर (सम्बभूथ) पतिके साथ मरनेका निश्चय तैंने किया है सो निश्चय छोडकर उठ ॥

इसमें नियोग वा विधवा विवाहकी गंधभी नहींहै यहां यौगिकार्थसे धारक वा पोषक अर्थमें दिधिषु पाणिग्रहीतापतिकाही विशेषण है दिधिषो यह ह्रस्वान्त पुल्लिङ्ग षष्ठीका एकवचनहै दीर्घऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग नहींहै, पर दयानंदजीको तौ क्रियाकाभी ज्ञान नहीं हुआ 'उपशेषे' धोरे सोतीहै के स्थानमें 'शेषे' बाकी पुरुषोंसे ऐसा अर्थ करतेहैं इस अशुद्धिकाभी कहीं ठिकानाहै धन्य विद्वत्ता.

भा० प्र० में और ही अर्थ लिखा यहां चेला शक्कर होगयेहैं छोटे स्वामीठीकहैं या बड़े ॥

इयंनारीपतिलोकं वृणानानिपद्यत उपत्वामर्त्यप्रेतम्। धर्मपुरा णमनुपालयन्तीतस्यैप्रजांद्रविणंचेहधेहि १ अथर्व १८।२३।१
अयंतेगोपतिस्तंजुषस्वस्वर्गलोकमधिरोहयैनम् ४

दाहके समय देवरादिका मृतकको लक्ष्यकर कथन है कि (मर्त्य) हे मनुष्य (पतिलोकम्) जहां पति गया उसलोकको (वृणाना) इच्छा करती हुई (पुराणम्) दूसरे जन्ममें भी यही पति मिले इस सनातन (धर्मम्) धर्मको (अनुपालयन्ती) पालन करती हुई (इयम्) यह (नारि) स्त्री (प्रेतम्) मृतक हुए (त्वा) तुम्हारे (उपनिपद्यते) समीप निरन्तर प्राप्त होती है अर्थात् सोतीहै (तस्यै) उसके लिये तुम्हारे समयके विद्यमान (प्रजाम्) पुत्रादि और (द्रविणम्) धन (धेहि) धारण करो अर्थात् यह तुम्हारे धन पुत्रादि नष्ट नहीं सदा विद्यमान रहैं जिससे यह जन्मान्तरमें फिर तुम्हारा दर्शन करसकै. ॥

१ हे मृतनारि यह तेरा पति है इसको अब अच्छे संस्कारके सेवन करकै इसको स्वर्गलोक पहुंचा ४ इस मन्त्रसे अब बुद्धिमान् विचारेंगे कि स्वामीजीने कितने मंत्रार्थ बदल दियेहैं ॥

स० पृ० ११७ पं ४

आदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवापशुभ्यः सुयमासुवर्चाः
प्रजावतीवीरसूर्देवृकामास्योनेममग्निंगार्हपत्यंसपर्य *
अथर्व का० १४ अ० २ मं० १८

हे (अपतिघ्न्यदेवृघ्नि) पति और देवरको दुःख देनेवाली स्त्री तू इह इस गृहाश्रममें (पशुभ्यः)पशुओंके लिये (शिवा)कल्याण करनेहारी (सुयमाः) अच्छे प्रकार धर्म नियमसे चलने (सुवर्चाः) रूप और सर्वशास्त्र विद्यायुक्त (प्रजावती) उत्तम पुत्रपौत्रादि सहित (वीरसूः) शूरवीर पुत्रोंके जनने (देवृकामा) देवरकी कामना करनेवाली (स्योना) और सुख देनेहारी पति वा देवरको (एधि) प्राप्तहोके (इमम्) इस (गार्हपत्यम्) गृहस्थसंबंधी (अग्निम्) अग्निहोत्रका (सपर्य) सेवन किया करें ॥ १२१।४

* सन् १८९८ वालीमें पाठ सुधारकर दुःख न देनेवाली अर्थ चेलोंने किया है अदेवृघ्न्य इत्यादि पाठ है।

समीक्षा-प्रथम तौ दयानंदजीने इसका पाठही अशुद्ध लिखा है (अदेवृके स्थानमें मंत्रमें आदेवृ) यह दीर्घ आकार लिखा है और पति और देवरको दुःख न देनेवालीके स्थानमें (अपतिघ्न्यदेवृघ्नि) इसका अर्थ पति देवरको दुःख देनेवाली लिखा है यह तौ मंत्रोंमें उलट फेर है, भला जो दुःख देनेवाली होगी वोह देवरकी कामना कैसे करसकैगी और देवृकामासे यह अर्थ नहीं सिद्ध होता कि वोह देवरसे भोग किया चाहती हो पति मौजूद है तौ कभी देवरके पास नहीं जायगी, और कामना विद्यमानतामें नहीं होती अविद्यमानतामें होतीहै यदि वोह देवरको पति किया चाहती तौ देवरि पतिकामा ऐसा प्रयोग होसक्ता है सो मंत्रमें किया नहीं इससे नियोग सिद्ध नहीं होता, किन्तु यह ऐसे स्थानका प्रयोग है, जिस स्त्रीके देवर नहीं वोह चाहती है कि मेरे श्वशुरके बालक हो तौ मैं देवरवालीहूं ऐसी स्त्रीको देवृकामा कहते हैं, जैसे भ्रातृरहित कन्यामें भ्रातृकामा यह प्रयोग बनताहै कि मेरे भाइ हो तौ मैं बहन कहाऊं, ऐसेही यह देवृकामाशब्द है नियोग नहीं सिद्ध होता, अब इसके यथार्थ अर्थ सुनिये (अदेवृघ्न्यपतिघ्नि) हे बोले तू पति और देवरकी सुख देनेवाली (एधि) वृद्धिको प्राप्त हो अर्थात् देवर आदि कुटुम्बियोंसे विरुद्ध मतकरना (इह) इस गृहाश्रममें (पशुभ्यः) पशुओंके लिये (शिवा) कल्याणकारी (सुयमा), अच्छे प्रकार धर्म नियममें चलनेवाली (सुवर्चा) रूपगुणयुक्त (प्रजावती) उत्तम पुत्र पौत्रादि सहित (वीरसूः) वीर पुत्रोंकी उत्पन्न करनेवाली (देवृकामा) देवरके होनेकी प्रार्थना करनेवाली वा आनंद चाहने हारी (स्योना) सुखिनी (इमम्) इस (गार्हपत्यम्) गृहस्थ सम्बन्धी (अग्निम्) अग्निहोत्रको (सपर्य) सेवन कियाकर ॥

स्वामीजीने यह न जाना कि यह पुस्तकें औरभी कोई देखैगा तौ कैसी होगी यह विवाहके मंत्र नियोगमें लगाये हैं, धन्य है आपकी बुद्धि और सुनिये-

तदारोहतुसुप्रजायाकन्याविन्दतेपतिम् अथ० १४।२मं० २२

स्योनाभवश्वशुरेभ्यः स्योनापत्येगृहेभ्यः

स्योनास्यैसर्वस्यै विशे स्योनापुष्टायैषांभव। १४। २।२७

हे नारि श्वशुरोंके वास्ते पतिके वास्ते और घरके कुटुम्बियोंके वास्ते सबके अर्थ सुख देनेवालीहो ॥

यदि आपका नियोगही सत्यहै तौ यहां पति और श्वशुर दोनोंके लिये (स्योना) पद आया है अर्थात् सुख देनेवालीहो एवं सब कुटुम्बियोंको सुख देनेहारी कहा है तौ क्या जो पतिके संग व्यवहार करै वोही सबके साथ करै यह कभी नहीं होसक्ता पतिको और प्रकारका सुख, श्वशुरादिकोंको सेवा आदिसे सुखदाता होती है. यह नहीं कि, सुख देनेसे सबके संग भोगहीके अर्थ हो जाय, इससे आपके सब अर्थ भ्रष्ट हैं मिथ्याहैं नियोग एकसेभी नहीं बनता, अब दयानंदजी मनुस्मृतिपर आते हैं ॥

पृ० ११७ पं० १४ तामनेनविधानेननिजोविन्देतदेवरः

जो अक्षतयोनि स्त्री विधवा हो जाय तौ पतिका निज छोटा भाईभी उससे विवाह कर सक्ता है ॥ १२१ । १४

समीक्षा–स्वामीजी यहांभी अर्थ बनानेसे न चूके, यदि इस श्लोकको पूरा लिखते तौ आपकी कलई खुल जाती. यह आधा श्लोक आपने मतलब सिद्धकरनेको लिखा सो इससे मतलब कुछभी सिद्ध नहीं होता सुनिये–

यस्याम्रियेतकन्यायावाचासत्येकृतेपतिः
तामनेनविधानेननिजोविन्देतदेवरः अ० ९श्लो० ६९

जिस कन्याका वाग्दान करनेके अनन्तर पति मरजाय उसका उसके छोटे भाईसे विवाह करदे यह इसका अर्थ है सो आजतक ऐसा सब कोई करते हैं वाग्दान विवाहसे पहले होताहै ऐसा होनेपर वोह पति मरजाताहै, तौ उसका विवाह औरके संगकर देते हैं स्वामीजीने अक्षत योनि और विवाह होगई हुई लिखाहै यही महाकपट है ॥

पृ० ११७ पं० १६ (प्रश्न) एक स्त्री वा पुरुष कितने नियोग करसक्ते हैं और विवाहित नियुक्त पतियोंका नाम क्या होताहै (उत्तर) ॥

सोमः प्रथमोविविदेगन्धर्वोविविद उत्तरः
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाःऋ.मं.१०सू.८५मं.४०

हे स्त्री! जो (ते) तेरा (प्रथमः) पहिला विवाहित (पतिः) पति तुझको (विविदे) प्राप्त होताहै उसका नाम (सोमः) सुकुमारतादि गुणयुक्त होनेसे सोम. जो दूसरा नियोग होनेसे (विविदे) प्राप्त होता है वोह (गंधर्वः) एक स्त्रीसे भोग करनेसे गंधर्व, जो तृतीय (उत्तरः) दोके प-

श्चात् तीसरा पति होताहै वोह (अग्निः) अत्युष्णता होनेसे अग्नि संज्ञक और जो तेरे (तुरीयः) चौथेसे लेकै ग्यारहतक नियोगसे पति होतेहैं वे (मनुष्यजाः) मनुष्यनामसे कहाते हैं (इमांत्वमिन्द्र) इस मंत्रसे ग्यारहवें पुरुषतक स्त्री नियोग करसक्ती है और पुरुषभी ग्यारहवीं स्त्रीतक नियोग करसक्ता है ॥ १२१।१५

समीक्षा-स्वामीजीने ऐसी हठ ठानी है कि अर्थोंका अनर्थ कर दिया है कि वेदार्थको क्षुद्रता प्रतीत होती है, हम मंत्रार्थ दिखाते हैं, इस मंत्रका विवाहमें विनियोग है ॥

हे कन्ये त्वमुच्यसे सोमः त्वां प्रथमो विविदे विन्नवान् प्राप्तवान् सौम्ये प्रथमकौमारके (गन्धर्वो विविद उत्तरः) उपजायमानचारुताङ्गप्रविभागस्वरसौष्ठवामीषदनङ्गाङ्गसमाहृतहृदयां गंधर्वो विश्वावसुस्त्वां विविदे विन्नवान् अथ पुनरिदानीं वैवाहिके उपगताया कर्माणि (तृतीयो अग्निष्टे पतिः) तृतीयस्तवाऽयमग्निः । अत उद्वहनात् परं तुरीयः चतुर्थः (ते) तवायं (मनुष्यजाः) पतिः । इत्येवमनेनाऽपिमंत्रेण समवैति जारत्वं पतित्वं चाग्नेः ॥

सोमः शौचं ददौ स्त्रीणां गन्धर्वश्च शुभां गिरम् ॥ पावकः सर्वभक्षित्वं तेन शुद्धा हि योषितः ॥ भाषार्थः-हेकन्ये (प्रथमः) कौमार सौम्य अवस्थामें तेरेको प्रथम सोम देवताका अधिकार प्राप्त हुआ और जब सुन्दर अंग प्रत्यंग हुए तब (उत्तरः गन्धर्वः) गंधर्वका अधिकार प्राप्त हुआ तुझे लेता हैं, और विवाह कर्ममें (तृतीयः पतिः ते अग्निः) तृतीय पति तेरा अग्नि है, विवाहसे उत्तर (तुरीयः) चौथा (मनुष्यजाः) मनुष्य पतिहै. यहां विचार कर्तव्यहै कि मनुष्यजाः यह शब्द तुरीयः इसके साथ समान विभक्तिक समान अर्थवाला विश्वपावत् एक वचनान्तहै, इस वास्ते इससे बहुत पति बोधन करना असंगत है, और जब तुरीयको मनुष्यजात्व कहा तौ, पूर्वतीनके अर्थ देवत्व प्राप्तहैं, अग्नि ही कन्याभावको जीर्णकर्ता होनेसे जारहै, चंद्रमाने स्त्रियोंको पवित्रता, गन्धर्वने सुन्दर वाणी, अग्निने सर्व भक्षित्व दिया इस कारणसे स्त्री शुद्ध हुई और सुनिये ॥

सोमोददद्गन्धर्वाय गन्धर्वोददद्ग्नये रयिञ्चपुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथोइमाम् ॥ ऋ० मं० १० अ० ७ सू० ८५ मं० ४१

विवाहमें इस मंत्रका विनियोग है सोमः एतां प्रथमं कौमारादभ्युह्य गंधर्वाय ददत् अदात् अथ गन्धर्वः अप्येनामभ्युह्य यौवनाधिकारात्

अग्नये ददत् अथ अग्निः अपि एनाम् अस्मिन् विवाहे संस्कृत्य रयिंच धनंच पुत्रान् च मह्यमदात् ददाति अथो, अपिच धनैश्च पुत्रैश्च सह इमाम् मह्यमदात् मह्यं ददाविति ॥

भाषार्थ-(सोमः) सोमदेव इसको कौमारसे सर्वथा अवयवसंपत्ति करकै (गंधर्वाय) गंधर्वके अर्थ देता हुआ और वोह गंधर्वभी इसको यौवनाधिकारसे सर्वथा सम्पन्नकर (अग्नये) अग्निके अर्थ (अददत्) देता हुआ और अब अग्नि देवभी (इमाम्) इस विवाहकर्ममें इसको संस्कारयुक्त करकै (मह्यम्) मेरे अर्थ (रयिंच) धनको (पुत्रांश्च) पुत्रोंकोभी देताहै, तथा इस स्त्रीको देता हुआ ॥ ❀

अब विचारनेकी बातहै यदि स्वामीजीका अर्थ मानै तौ सोमनाम विवाहिताका पति जीते जी मन्धर्व संज्ञक नियोगके पतिको कैसे देगा गन्धर्व अग्निको कैसे देगा और तृतीय चतुर्थको कैसे दे सक्ताहै, इस कारण यह अर्थ किसी प्रकार नहीं होसक्ता, केवल देवता विवाह होनेतक व्यय क्रमसे रक्षा करते हैं, अपना अधिकार समाप्त होनेपर दूसरेके देतेहैं क्योंकि जन्म लेकरही स्त्रीसे नियोगमें कोई समर्थ नहीं हो सक्ता इससे यह तीनों देवता विवाहतक रक्षा करते हैं यही अर्थ ठीक है. और देखिये-

सम्राज्ञीश्वशुरेभवसम्राज्ञीश्वश्र्वांभव ॥ ननांदरिसम्राज्ञी भवसम्राज्ञीअधिदेवृषु ऋ०मं०१०अ०७ सू०८५मं०४६

❀ आजकल एक और मंत्रकी चर्चा चलतीहै कि स्त्रीके दशपति वेदसे प्रतिपादितहैं वह मंत्र यहहै हमही अर्थ लिखतेहैं इसीसे उत्तर होजायगा ।

उत यत्पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत्स एव पतिरेकधा अथर्व ५।४।१७।८

(उत) और (स्त्रियाः) स्त्रीके (यत्) जो (पूर्वे) पहले (अब्राह्मणाः) ब्राह्मणसे भिन्न (दशपतयः) दशपति होतेहैं वास्तवमें वे उसके पति नहीं किन्तु रक्षकहैं वे सोमादिदेवता शास्त्रमें पति कह दियेहैं (चेत्) जब (ब्रह्मा) ब्राह्मण (हस्तमग्रहीत्) मंत्रपूर्वक पाणिग्रहण करै तो (स एव) वही (एकधा) एक (पतिः) पति होताहै यहां पतिशब्दसे सोमादि देवता रक्षक लियेहैं यथा ।

नेवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषे कूपारः सलिलो मातरिश्वा । वीडुहरास्तपउग्रंमयोभूरापोदेवीप्रथमजाऋतस्य १ सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनःप्रायच्छदहृणीयमानः अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्यानिनाय २ अथर्व५।४।अनु०४

अर्थात् सोम अकूपार सलिल मातारिश्वा मयोभूआपःवरुण मित्र अग्नि और बृहस्पति यह दशदेवता रक्षक पतिहैं इसीसे विवाहसम्बन्धी मंत्रोंमें (मह्यं त्वादाद्बृहस्पतिः) ऐसा लिखाहै ऋग्वेदके चार देवताओंके अन्तमें यह दशों आतेहैं ।

श्वशुर श्वश्रू ननन्द और देवरोंमें (सम्राज्ञी) अधीश्वरीहो. भाव यह है कि ससुर सास नन्द और देवर इन सबकी नियंत्री गृहमें हो, इन मंत्रोंमें केवल प्रार्थना है नियोगका प्रसंगही कौनहै, यदि नियोगका विषय हो ॥

इसमें ससुरमें भी सम्राज्ञी कहनेसे नियोग सिद्ध हो जायगा, और महा अनर्थ होगा, इससे जितने यह दयानंदजीने मंत्रोंके अर्थ लिखे हैं वे सब ही अशुद्ध हैं ॥

स० पृ० ११८ पं०२ एकादश शब्दसे दशपुत्र और ग्यारहवें पतिको क्यों न गिने (उत्तर) जो ऐसा अर्थ करोगे तौ 'विधवेव देवरम्' और (देवरः कस्मा०) (अदेवृ०) और (गन्धर्वो०) इत्यादि वेद प्रमाणोंसे विरुद्धार्थ होगा, क्योंकि तुम्हारे अर्थसे दूसरा भी पति प्राप्त नहीं होसक्ता ॥ १२२ । ३ ॥

समीक्षा–निश्चय हमारे मतमें क्या किसी प्राचीन आचार्यके मतमें दूसरा पति नहीं माना गयाहै, वेदके मंत्रोंके अर्थ करही चुके हैं और (पतिमेकादशम्) यहां एकादशम् के अर्थ ग्यारहवां और पतिम् पति को यह द्वितीयाविभक्तिका एकवचन पढा हुआ है, ग्यारहपतितक करनेका अर्थ तौ स्वामीजीके कपोलके भंडारसे निकला है ॥

पृ० ११८ पं० ७

देवराद्वासपिंडाद्वास्त्रियासम्यङ्गनियुक्तया ॥
प्रजेप्सिताधिगन्तव्यासन्तानस्यपरिक्षये ॥ ५९ ॥
ज्येष्ठोयवीयसोभार्यांयवीयान्वाग्रजस्त्रियम् ॥
पतितौभवतोगत्वानियुक्तावप्यनापदि ॥ ५८ ॥
औरसः क्षेत्रजश्चैव–मनु० अ० ९ । १५९

इत्यादि मनुजीने लिखा है कि (सपिंड) अर्थात् पतिकी छः पीढियोंमें पतिका छोटा वा बडाभाई अथवा स्वजातीय तथा अपनेसे उत्तम जातिस्थ पुरुषसे विधवा स्त्रीका नियोग होना चाहिये परन्तु, जो वोह मृतस्त्री और पुरुष और विधवा स्त्री सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा करती होय तो नियोग होना उचितहै, और जब सन्तानका सर्वथा क्षय हो तब नियोग होवै, जो आपत्काल अर्थात सन्तानके होनेकी इच्छा होनेमें बडे भाईकी स्त्रीसे छोटेका, छोटे भाईकी स्त्रीसे बडे भाईका नियोग होकर

सन्तानोत्पत्ति होजानेपर भी पुनः वे नियुक्त आपसमें समागम करैं तौ पतित होजांय, अर्थात् एक नियोगमें दूसरे पुत्रके गर्भ रहनेतक नियोगकी अवधिहै, इसके पश्चात् समागम न करैं और जो दोनोंके लिये नियोग हुआ होय तौ चौथे गर्भतक अर्थात् पूर्वोक्त रीतिसे दश सन्तानतक होसक्तेहैं, अर्थात् विवाह वा नियोग सन्तानोंहीके लिये किये जातेहैं पश्चात् विषयासक्ति गिनीजाती है, इससे वे पतित गिने जातेहैं, और जो विवाही स्त्रीपुरुषभी दशवें गर्भसे अधिक समागम करैं तौ कामी और निन्दित होते हैं, यह विवाह नियोग सन्तानोंहीके लिये हो जातेहैं पशुवत् कामक्रीडा करनेको नहीं॥ भा०प्र०अतोनान्यस्मिन्० के अर्थमें अन्यजातिसे नियोग नहीं मानता॥

समीक्षा–इन श्लोकोंके अर्थभी मिथ्याही लिखेहैं. अर्थ यहहै किसन्तानके सर्वथा न.होनेपर गुरुजन वा पतिद्वारा नियुक्त की हुई स्त्री देवर वा सपिण्ड पुरुषके पास सन्तानकी इच्छासे आगे लिखी हुई रीतिके अनुसार गमन करै ५९ आगे अट्ठावन श्लोकपर आगये बडा भाई छोटे भाईकी भार्यामें गमन करे तो वा बैडेभाईकी स्त्रीमें छोटाभाई गमन करे तो सन्तानके अभावके विना नियुक्त होकरभी पतित होजाते हैं५८ आगे औरस क्षेत्रजपर दौड गये हैं॥

और–यह श्लोकभी दश सन्तान नियोगसे उत्पन्न होना नहीं कहते, क्योंकि इसके आगेके श्लोकमें लिखाहै॥

विधवायांनियुक्तस्तुघृताक्तोवाग्यतोनिशि॥
एकमुत्पादयेत्पुत्रंनद्वितीयंकथंचन॥ ६०॥ अ० ९

विधवाके साथ नियुक्त पुरुष शरीरमें घृत लगाकर मौन धारणकर रात्रिमें भोगकरै, इस प्रकार एक पुत्र उत्पन्न करै, दूसरा कभी न करै, अब यह मनुस्मृतिसेभी तुम्हारे ग्यारह पुत्रतक कराने तथा अन्य जातिसे नियोग करनेके वाक्य मिथ्या होगये, क्योंकि (देवराद्वा) इस श्लोकसे अन्य जातिसे नियोग करना वर्जितहै, एक वार्ता यहभी ध्यान रखने योग्यहै, कि मनुजी नियोग करना बुरा जानतेहैं, उन्होंने राजा वेनके समयका वृत्तान्त लिखाहै, कि ऐसा होताथा उसने यों विधि चलाइ, अब वोह अपनी सम्मति इसपर प्रकाश करतेहैं॥

नान्यस्मिन्विधवानारीनियोक्तव्याद्विजातिभिः
अन्यस्मिन्हिनियुंजानाधर्मं हन्युः सनातनम् ६४ *
नोद्वाहिकेषुमंत्रेषुनियोगः कीर्त्यतेक्वचित्
नविवाहविधावुक्तंविधवावेदनंपुनः ६५
अयंद्विजैर्हिविद्वद्भिः पशुधर्मोविगर्हितः
मनुष्याणामपिप्रोक्तोवेनेराज्यंप्रशासति ६६
स महीमखिलांभुंजन्राजर्षिप्रवरः पुरा
वर्णानांसंकरंचक्रेकामोपहतचेतनः ६७
ततः प्रभृतियोमोहात्प्रमीतपतिकांस्त्रियम्
नियोजयत्यपत्यार्थंतंविगर्हंतिसाधवः ६८

अर्थ–ब्राह्मणादि तीनों वर्णोंको विधवा स्त्री देवर आदिके संग नियोग करनेको नहीं प्रेरणा करनी, वे स्त्री दूसरे पतिके प्राप्त होनेसे सनातन एक पतिव्रतधर्मका नाश करतीहैं ६४ विवाहके मंत्रोंमें कहींभी नियोग नहीं दृष्टि पड़ता और न विवाहविधायक शास्त्रमें विधवाविवाह दीखताहै ६५ और यह विद्वान् ब्राह्मणोंने पशुधर्म (नियोग) निन्दित कियाहै, यह पशुधर्म राजा वेनने अपने राज्यमें मनुष्योंके वास्ते भी कहा ६६ वोह राजर्षि सब पृथ्वीको भोगता हुआ (चक्रवर्ती राजा होनेसे राजर्षि कहलाया धर्मसे नहीं) कामी होकर भाईकी स्त्रीके साथ इस नियोगरूप वर्णसंकरताको प्रवृत्त करता हुआ ॥ ६७ ॥ उस वेनके समयसे यह रीति चली और जो उसकी मति माननेवाले लोग शास्त्रके न जाननेवाले विधवास्त्रीको देवरके साथ योजना करतेहैं उस विधिको साधु पुरुष निन्दा करतेहैं ६८ तीनवर्णोंके सिवाय शूद्रमें अबतक कशव होताहै तीनवर्णोंको निषेधहैं ॥

स्वामीजी तुम तौ राजा वेनका अवतार मालूम पडतेहो, या वेनकेभी दादा गुरू कहूं तौ ठीक होय, क्योंकि उसने तौ अपनी जातिहीमें नियोग चलाया और एकही सन्तान उत्पन्न करने कहा, परन्तु तुम तौ

* भा० प्र० ६४ श्लोकके अर्थमें जाति मानली है अंड बंड लिख उठे हैं इनकों तो स्वामीजीका सिद्धान्तभी स्मरण नहीं रहता ॥

सब जातिमें नियोग करने और ग्यारहतक सन्तान उत्पन्न होने कहतेहो, यह पशुधर्म आपने चलाया जो कि, वेनसे प्रारम्भ हुआहै, आपने मनुस्मृतिके पूर्वापर परभी ध्यान न दिया जिससे पशुधर्ममें प्रवृत्त न होना पड़ता मंत्रार्थ न बदलना पड़ता इससे सिद्ध है कि नियोग नकरो॥

स० पृ० ११८ पं० २५ (प्रश्न) नियोग मरे पीछे होताहै वा जीते पतिकेभी (उत्तर) जीतेभी होताहै (अन्यमिच्छस्व सुगमे पतिमत्) ऋ० मं० १० सू० १० जब पति सन्तानोत्पत्तिमें असमर्थ होवै तब अपनी स्त्रीको आज्ञादे कि हे सुभगे हे सौभाग्यकी इच्छा करनेहारी स्त्री तू (मत्) मुझसे (अन्य) दूसरे पतिको (इच्छस्व) इच्छाकर क्योंकि अब मुझसे सन्तानोत्पत्तिकी आशा मतकरै परन्तु उस विवाहित महाशय पतिकी सेवामें रहे इसीप्रकार जब स्त्री रोगादि दोषोंसे ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्तिमें असमर्थहो तब अपने पतिको आज्ञा देवै कि हे स्वामिन् आप सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा मुझसे छोडके किसी दूसरी विधवा स्त्रीसे सन्तानोत्पत्ति कीजिये जैसा पाण्डु राजाकी स्त्री कुन्ती और माद्री आदिने किया॥ १२३। १

समीक्षा-यदि स्वामीजी इस मंत्रको पूरा लिखते तौ कलई खुल जाती बस सारा नियोग उड जाता अब वोह मंत्र लिखा जाताहै॥

आघातागच्छानुत्तरायुगानियत्रजामयः कृणवन्नजामि
उपबर्बृहिवृषभायबाहुमन्यमिच्छस्वसुभगेपतिंमत्
ऋ० मं० १० अ० १ सू० १० मं० १०

आगमिष्यन्तितान्युत्तराणि युगानि यत्र जामयः करिष्यन्त्यजामि कर्माणि जाम्यतिरेकनाम बालिशस्य वा समानजातीयस्यवोपजन उपधेहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मदिति व्याख्यातम्। निरु० अ० ४ खं० २० जामि, इति एतदनेकार्थम् भगिनी बालिशः पुनरुक्तं चास्याभिधेयानि प्रकरणादेवैतेषामन्यतमस्मिन्नवतिष्ठते यथानेन तावद्भगिन्युच्यते तथेदमुदाहरणम् आघाता-मत् इति॥

इयं यमी किल यमं प्रार्थयाञ्चकार, एहि मैथुनाय सङ्गच्छावहा इति तामकामयमानोऽसावनयर्चा प्रत्युवाच आघाता गच्छान् घा इत्यनर्थक एव आगच्छान् आगमिष्यन्तीत्यर्थः आह कानि उच्यते ताः तानि उत्तराणि युगानि आगमिष्यन्ति तेऽपि कालानतावत् साम्प्रतं वर्तन्ते इत्य-

भिप्रायः येषु किम् यत्र येषु जामयः भगिन्यः भ्रातॄणाम् अजामि योग्यानि मैथुनसम्बन्धानि कर्माणि करिष्यन्ति कलियुगान्ते हि तादृशः संकरो भवति न चेदं कलियुगं वर्तते इत्यभिप्रायः यतो न तावदद्यापि संकीर्णो वर्णसंकरधर्मः स्वाचारा एव तावत् प्रजाः अतो ब्रवीमि उपबर्बृहि उपधेहि कस्मै (वृषभाय) तवोपरि रेतः सेक्तुमन्यकुलजो योग्यः तस्मै किमुपबर्बृहि इति बाहुम् शयनीये सर्वथा प्रार्थ्यमानोऽप्यहं तव पतिः न भविष्यामीति यतो ब्रवीमि अन्यमिच्छस्व अन्यमन्वेषयस्व हे सुभगे (पतिं) मत् मत्त इत्यर्थः ।

यमयमीसंवादकी यह ऋचाहै यमी कहती है यमसे जो कि हम दोनों समागम करैं तौ यम इस मंत्रसे उत्तर देता है हे यमि वे उत्तर युग आवैंगे जिन युगोंमें (जामयः) भगिनियां (अजामि कृणवन्) भगिनीसे भिन्न सम्बन्धित कर्मको करैंगी भाव यहहै कि, कलियुगान्तमेंही यह संकरता होगी जिस कालमें भगिनीसे भिन्न स्त्रीयोग्य कर्मोंको भगिनी करैंगी किन्तु अभी तौ संकर धर्म नहीं अपने २ धर्ममें सब वर्ण वर्त्तमानहैं इस वास्ते हे सुभगे ! मेरेसे अन्य योग्य पतिकी इच्छाकर और उस (वृषभाय) योग्य पतिके वास्ते (बाहुम् उपबर्बृहि) अपने पाणिको ग्रहण कराले ॥ *

अब बुद्धिमान् यह विचारे कि, इसमें कौनसी बात नियोगकी है इसमें स्वामीजीने बडी बनावट की है मंत्रका आशय सम्पूर्णतः बदल दिया ॥

कुन्ती माद्रीकाभी दृष्टान्त इसमें घट नहीं सक्ता पाण्डुको शापथा उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा तौ वोह कठिनतासे सन्तान उत्पन्न करनेमें सम्मत हुई मंत्रबलसे देवताओंको आवाहन किया, इन्द्र मरुत् धर्मसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए,जो तत्काल ऋतुदान करतेही उत्पन्न होगये, अश्विनी कुमारसे नकुलसहदेव यह तत्कालही उत्पन्न होगयेथे मैथुनादिकी बात नहीं है देवताओंकी दैवी शक्तिका प्रभावहै यदि इस प्रकार मंत्राकर्षणसे पतिकी आज्ञानुसार स्त्रीमें देवताओंके बुलानेकी सामर्थ्य होतौ वोह कर सक्ती है, इस देव सम्बन्धी कार्यका यहां दृष्टान्त नहीं घट सक्ता. यदि कहो कि यह मंत्रकी बात किसीने महाभारतमें मिलादी है तो हम कह सकते हैं कि इसप्रकार माद्री कुन्तीके पुत्र उत्पन्न होनेकी किसीने

* भा०प्र०ने यहां दिनरातका रूपक चलाया पर दयानंदने तो रूपक नहीं माना,यहां गुरु और चेले दोनोंही सिद्धान्तसे दूर होगये इस सूक्तभरमें यम यमीसम्वाद है दिनरातका पता नहीं और न बनातो दिनरातही लगा बैठे पर प्रमाणभी कुछ है? ।

मिलादीहै, इसकारण यह कहना नहीं बन सक्ता इसीसे यह नियोग तुम्हारा सिद्ध नहीं मानुषीधर्मका दृष्टान्त देवतोंसे नहीं लगता और पृथ्वीका भार दूर करनेको देव दैत्योंने विचित्ररूपसे जन्म लिया जिससे जगत् क्षय हुआ यह शास्त्रका विधान नहीं है ॥

स० प्र० पृ० ११९ पं० ९

प्रोषितोधर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योष्टौनरःसमाः
विद्यार्थं षड्यशोर्थंवाकामार्थंत्रींस्तुवत्सरान् १
वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्देदशमेतुमृतप्रजा ।
एकादशेस्त्रीजननीसद्यस्त्वप्रियवादिनी २

विवाहित स्त्री जो विवाहित पति परदेश गया हो तौ आठ वर्ष, विद्या और कीर्तिके लिये गया होय तौ छः, और धनादि कामनाके लिये गया होय तौ तीन वर्षतक बाट देखकै पश्चात् नियोग करकै सन्तानोत्पत्ति करले, जब विवाहित पति आवै तब नियुक्त पति छूट जावै, वैसेही पुरुषके लिये भी नियम है॥१॥वंध्या(जिसको विवाहसे आठ वर्षतक गर्भ न रहै) उसे आठवें, सन्तान होकर मरजावें तौ दशमें और कन्याही हो पुत्र न हों तौ ग्यारहवें वर्षतक और जो अप्रिय बोलनेवाली हो तौ सद्यः उस उस स्त्रीको छोडके सन्तानोत्पत्ति करले॥२॥वैसेही पुरुष अत्यन्त दुःखदायक होय तौ स्त्रीको उचित है कि, उसको छोड दूसरे पतिसे नियोगकर उससे सन्तानोत्पत्तिकर उसी विवाहित पतिका दायभागी सन्तानोत्पत्ति कर लेवै ॥ १२३ । १३

समीक्षा–यहां स्वामीजीने यह लीलाही रची है पहिला श्लोक ९ अध्यायका ७६ वाँ है और दूसरा श्लोक ८१ वाँ है, इन दोनोंका महात्माजीने एकही प्रसंग लगादिया, मनुष्योंके परदेश जानेतकमें बाधा डालदी परन्तु आरामभी खूब है प्राणी उधरके इधर इधरके उधर आते जाते हैं मनुष्योंको स्त्री और स्त्रियोंको परदेशी पुरुष बहुत मिल जाँयगे परन्तु इतना और लिख देतेकि जानेकी तारीख और कार्यकी तख्ती लिखी हुई बाहर टंगी रहती तख्ती देखकर शयनालयमें प्रवेश कर मनोरथ पूर्ण होते अब इस श्लोकका आशय सुनिये कि, यह क्या आशयका है इससे पहला श्लोक यह है ॥

विधायवृत्तिम्भार्यायाः प्रवसेत्कार्य्यवान्नरः
अवृत्तिकर्शिताहि स्त्री प्रदुष्येत् स्थितिमत्यपि ७४

विधायप्रोषितेवृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता
प्रोषितेत्वविधायैवजीवेच्छिल्पैरगर्हितैः७५प्रोषितोधर्म०७६

जब कोई पुरुष परदेशको जाय तो प्रथम स्त्रीके खानपानका प्रबंध करता जाय क्योंकि विना प्रबंध क्षुधाके कारण कुलीन स्त्रीभी दूसरे पुरुषकी इच्छा करैंगी ७४ खान पान करके विदेश जानेके अनन्तर उस पुरुषकी स्त्री नियम अर्थात् पतिव्रतसे रहकर अपना समय व्यतीत करै और जब भोजनको न रहै वा पुरुष कुछ बंदोबस्त न करगया होय तौ पतिके परदेश होनेमें शिल्पकर्म जो निन्दित न हों अर्थात् सूतकातना हस्तसे काढना आदि कर्मोंसे गुजारा करै७५ यदि वोह धर्मकार्यको परदेश गया हो तौ आठवर्ष विद्या पढने गयाहो तौ छःवर्ष धन यशको वा काम भोगको गया हो तौ तीन वर्षतक बाट देखे पश्चात् पतिके पास जहाँ हो वहां चली जावै, जहां कोई क्रिया वा वाक्यपूर्ति रह जाती है उसको दूसरी स्मृति आदिसे पूरी करते हैं मनमाना अर्थ नहीं होसकता, दयानंदजीके अर्थमें एक बडी विचित्रताहै उनसे पूछा जाय कि, आपके सिद्धान्तमें तो विद्या पढनेके पीछे व्याह होताथा यह विद्या पढनेसे पहले व्याह कैसे होगया यही वसिष्ठजी कहते हैं ॥

प्रोषितपत्नीअष्टवर्षाण्युपासीत् ऊर्ध्वंपतिसकाशंगच्छेदिति

आठ वर्षतक स्त्री पतिकी बाट देखे पीछे उसके पास चली जाय (वंध्याष्टमे) इसका अर्थ पूर्व ही करचुकेहैं, कि ऐसी दशामें पुरुष विवाह दूसरा करले एक स्वामीजीके लेखमें बड़ी हँसीकी बातहै कि (पति दुःखदायक होतौ स्त्री उसे छोड किसी दूसरेसे नियोग कर सन्तानोत्पत्ति करले जो उससे दायभाग लेलैं) धन्यहै पहले तौ लिखा कि पति आज्ञा दे तो नियोग करै, अब स्त्रीही उसे छोड नियोग करै, जब वे दूसरे पुरुषसे नियोग करैंगी पतिसे लडैंगी तो वोह उन्हैं घरमें क्यों रहने देगा सास ससुर क्यों रहने देंगे एक नहीं वोह चार नियोग करै, परन्तु वोह काहेको उसे घरमें घुसने देगा यह बालकभी निर्बुद्धिकी बात मुखसे नहीं निकाल सक्ते जो स्त्री दूसरेसे सन्तान उत्पन्न करै पतिसे छोड़ी हुई फिर उसके ओरसे उत्पन्न हुये बालक कौनसे शास्त्रसे दायभागी होंगे सिवाय आपके व्यभिचारप्रकाशके और तौ किसी ग्रंथमें स्वैरिणी स्त्रियोंके पुत्रोंका दायभाग नहीं मिलसक्ता ॥

स० प्र० पृ० ११९ । पं० २९ जो कोई वीर्य रूप अमूल्य पदार्थ स्त्री वेश्या वा दुष्ट पुरुषोंके संगमें खोते हैं, वे महामूर्ख हैं क्योंकि किसान वा माली मूर्ख होकर भी अपने खेत वा वाटिकाके विना बीज अन्यत्र नहीं बोते (आत्मा वै जायते पुत्रः) यह ब्राह्मण ग्रंथोंका वचन है और (अंगादङ्गा० ❀) यह सामवेदका है ॥ १२४ । १०

समीक्षा–स्वामीजीकी यह बात स्वामीपर ही पडतीहै जब कि माली किसानभी बीज अपनी भूमीमें बोते हैं तौ वे पुरुषभी मूर्खहैं जो अन्य स्त्रीसे नियोग करते और वृथा बीज खोते हैं, एकही बार जानेसे गर्भ रह नहीं सक्ता और जब आत्माही पुत्र है तौ मृत पुरुषके वे बालक कहा नहीं सक्ते और अङ्गा० यह सामवेदका वचन नहीं अब एक और बात सुनिये जो कि कैसे ही बुद्धि भ्रष्ट क्यों नहो कैसे ही नशेमें चूर क्यों न हो पर ऐसी बेशिर पैरकी बात नहीं कह सक्ता ॥

स० पृ० १२० पं२९ गर्भवती स्त्रीसे एक वर्ष समागम न करनेके विषयमें पुरुष वा स्त्रीसे न रहाजाय तौ किसीसे नियोग करकै उसके लिये पुत्रोत्पत्ति करदे ॥ ❀

समीक्षा–देखिये इस अन्धेरको गर्भवती स्त्रीसे न रहा जाय तौ नियोग करके किसीके लिये सन्तानोत्पत्ति कर दे, कहिये अब महात्माजीका सृष्टिक्रम कहां चला गया एक बालक तौ उत्पन्न हुआ ही नहीं दूसरा कैसे उत्पन्न हो सक्ता है, पहला बालक तौ उदरमें मौजूदही रहै और इधर उधर नियुक्त पुरुषको पैदा करकै देदे बेटोंका स्वामीजीने ढेर लगादिया है, बेटीका नाम नहीं, कोई परमेश्वरने घबडा कर परचा लिखादियाथा कि, नियुक्तपुरुषके जाते ही सन्तान होगे, कन्याका नामभी नहीं, यहां तौ सभीको व्यभिचारिणी बनाया, तुम तौ हकीम वैद्यक जाननेवालेथे, यह क्या लिख बैठे, यहां तौ निर्बुद्धिप्रकाश लिखते २ बुद्धिको सम्पूर्ण ही तिलांजली देदी, यह न सूझी कि जब गर्भवती है तौ नियोगकी आवश्यकता क्या है, अब रहा न जाय इस शब्दसे नियोगविषया शक्तिके अर्थ विदित होता है अब हम आपको क्या कहैं ॥

स० पृ० १२१ पं० ८ और ऐसे श्लोकोंको नमानै ॥

---

* १८९७ वाले सत्यार्थ प्रकाशमें यह वचन निरुक्त ३ ।४ का लिखाहै और आत्मा वै पुत्रनामासि १ इतना पाठभी बदला है स्वामीजीकी भूलैं पांचवीं वार चेलोंको सूझी है ।

* १८९७ स० प्र० पृ०१२५पं० २ इतना बदलाहै कि पुरुषसे वा दीर्घ रोगी पुरुषकी स्त्रीसे न रहाजाय इनसे पूछै कि क्या यह पाठ स्वामीजी–पांचवी वार चेलोंके कानमें कह गयेथे ।

पतितोपिद्विजश्रेष्ठोनचशूद्रोजितेन्द्रियः
निर्दुग्धाचापिगौः पूज्यानचदुग्धवतीखरी १
अश्वालंभंगवालंभं संन्यासं पलपैतृकम्
देवराच्चसुतोत्पत्तिंकलौपंचविवर्जयेत् २
नष्टेमृतेप्रव्राजितेक्लीबेचपतितेपतौ
पंचस्वापत्सुनारीणांपतिरन्योविधीयते ३

यह कपोलकल्पित पाराशरीके श्लोक हैं जो दुष्टकर्मकारी द्विजको श्रेष्ठ और श्रेष्ठकर्मकारी शूद्रको नीच मानैं तौ इससे परे पक्षपात अन्याय अधर्म दूसरा क्या होगा, क्या दूध देनेवाली व न देनेवाली गाय गोपालकोंको पालनीय होती है, वैसे कुम्हार आदिकोंको गधी पालनीय नहीं होती और यह दृष्टान्तभी विषम है, क्योंकि द्विज और शूद्र मनुष्यजाति गाय और गधी भिन्नजाति हैं, कथंचित् पशुजातिसे दृष्टान्तका एक देश दार्ष्टान्तमें मिलभी जावै, तौ भी इसका आशय अयुक्त होनेसे यह श्लोक विद्वानोंको माननीय भी नहीं हो सक्ते, अब अश्वालंभ अर्थात् घोडेको मारकै होम करना वेदविहित नहींहै, तौ उसका कलियुगमें निषेध करना वेदविरुद्ध क्यों नहीं, जो कलियुगमें इस नीच कर्मका निषेध माना जाय तौ त्रेता आदिमें विधि आजाय तौ इसमें ऐसे दुष्ट कामका श्रेष्ठमें होना सर्वथा असंभव है और संन्यास की वेदादि शास्त्रोंमें विधि है उसका निषेध करना सर्वथा निर्मूलहै, जब मांसका निषेध हो तौ सर्वथा निषेधही है, जब देवरसे पुत्रोत्पत्ति करना वेदोंमें लिखा है तो श्लोक करता क्यों भूंकता है (नष्टे) अर्थात् पति किसी देशान्तरको चला गया हो घरमें स्त्री नियोग करलेवे तौ उसी समय विवाहित पति आजाय तौ वोह किसकी स्त्री हो कोई कहै कि, विवाहित पतिकी, हमने माना परन्तु ऐसी व्यवस्था पाराशरीमें तौ नहीं लिखी, क्या स्त्रीके पांचही आपत्काल हैं, जो रोगी पडा हो वा लडाई होगई इत्यादि आपत्काल पांचसे भी अधिक हैं, इसलिये ऐसे २ श्लोकोंको कभी न मानना चाहिये ॥ पृ० १२५ । १३

समीक्षा—स्वामीजीने इन श्लोकोंका भाव नहीं समझा यदि इसके पूर्वश्लोकोंको देखते तौ कभी ऐसा न लिखते ब्राह्मण शूद्रकी तौ व्यवस्था पूर्वे लिखही चुके हैं यदि शूद्र अच्छे अचारण करै तौ वोह अच्छा है परन्तु

वोह ब्राह्मणकी तुल्य नहीं होसक्ता "अनेकमुक्ताजटितंच चंचुं तथापि काकोनचराजहंसः" विदुरजी सब कुछ जानतेथे परन्तु ब्रह्मज्ञान शूद्र होनेके कारण स्वयं नहीं कहा, सनत्सुजातजीको बुलाया, कहिये विदुरजी सर्वगुणालंकारयुक्तथे वा नहीं और दृष्टान्त भी विषम नहीं है, वोह मनुष्योंमें है वोह पशुओंमें यदि स्वामीजी काव्य जानते तौ ऐसा कभी नहीं कहते और संन्यासके लिये यह आज्ञा है कि, ब्राह्मणके अतिरिक्त कलियुगमें और किसी जातिको अधिकार नहीं है और देवरसे पुत्रकी उत्पत्ति राजा वेनने चलाई है और युगकी कौन कहै इसका कलियुगमें भी निषेध है और यह अश्वालंभकी रीति पाराशरजीने तो निषेधही करी है, परन्तु आपने तौ पुराने सत्यार्थप्रकाशमें ३०२ पृष्ठमें लिखा है कि, कोई मांस न खाय तौ पक्षी जलजन्तु जितने हैं इससे सहस्र गुने हो जाय, फिर मनुष्योंको मारने लगें, फिर पृ० ३९ में लिखा है कि, पशु ओंके मारनेसे थोडासा दुःख है, परन्तु चराचरका उपकार होताहै फिर अपनेही पुराने सत्यार्थप्रकाशमें पशुओंका यज्ञमें मारना विधिपूर्वक हनन लिखाहै, यजु० अ० १९ मंत्र २० लिखाहै बहुत पशुवाला होम करके हुतशेषका भोक्ता प्रशंसाको प्राप्त होता है उससमय क्या आपमें कुछ विद्या कमतीथी, या अब किसी गुरुसे पढआये, जो अब खंडन करने लगे, पाराशरजीने तौ मनेही लिखा है आज्ञा तौ आपहीने देदीथी अब तीसरे श्लोकका आशय सुनिये कि, वोही अर्थका प्रसंग यहां है कि, वाग्दानके अनन्तर यदि पति इन पांच आपदाओंमें पतित होजाय तौ उसका विवाह अन्यपुरुषेस करदेना, पूर्व पुरुषसे करना नहीं, मनुजीने पतिव्रताधर्मकी और स्त्रीके कालक्षेपकी विधि इस प्रकार लिखी है । कलिमें मनुष्योंकी पापप्रवृत्ति तथा लुब्धता और विषयवासनाकी प्रबलता देखकर स्मृतिकारोंने बहुतसी बातें निषेध करदीहैं और यहां पाराशरीके श्लोकमें 'पतौ' ऐसा पद नहींहै कारण कि 'पतिः समासएव, अष्टा० १।४।८ पतिकी समासमेंही 'घि' संज्ञाहै तौ यहां अपतौ' शब्द है पूर्वरूप हो रहाहै तब यह अर्थ निकला कि विवाहसे पहले २ यह कन्या हम इसको देचुके इस कहनेके पीछे यदि पति नष्ट मृत क्लीब पतित प्रव्रजित हो जाय तो उसकन्याका विवाह अन्यसे होसकताहै । दयानंदजी तो गौ और गधी एकही बतातेहैं यही तो उनका धर्महै ॥

पाणिग्राहस्यसाध्वीस्त्रीजीवतोवामृतस्यवा
पतिलोकमभीप्संतीनाचरेत्किंचिदप्रियम् १५६ अ० ५
कामंतुक्षपयेद्देहंपुष्पमूलफलैः शुभैः
नतुनामापिगृह्णीयात्पत्यौ प्रेतेपरस्यतु १५७
आसीतामरणाच्छान्तानियताब्रह्मचारिणी
योधर्मएकपत्नीनांकांक्षन्तीतमनुत्तमम् १५८
अनेकानिसहस्राणिकुमारब्रह्मचारिणाम्
दिवंगतानिविप्राणामकृत्वाकुलसंततितम् १५९
मृतेभर्तरिसाध्वीस्त्रीब्रह्मचर्य्येव्यवस्थिता
स्वर्गंगच्छत्यपुत्रापियथातेब्रह्मचारिणः १६०
अपत्यलोभाद्यातुस्त्रीभर्तारमतिवर्तते
सेहनिंदामवाप्नोतिपतिलोकाच्चहीयते १६१
नान्योत्पन्नाप्रजास्तीहनचाप्यन्यपरिग्रहे
नद्वितीयश्चसाध्वीनांक्वचिद्भर्तोपदिश्यते १६२

पतिलोककी इच्छा करनेवाली साध्वीस्त्री जीवित वा मृतपतिके अप्रिय कोई कर्म नकरै १५६ पवित्र जो पुष्प मूल फलहैं इनके भोजनसे देहको कृश करै परन्तु पतिके मरनेपर पर पुरुषका नामभी न ले १५७ क्षमा करके युक्त और नियमवाली पवित्र धर्मकी इच्छा करनेवाली मधुमांसादिककी नहीं इच्छा करती हुई ब्रह्मचारिणी होकर मरणपर्यन्त नियममें रहै १५८ ब्राह्मणोंके कई सहस्र ब्रह्मचारी कुमार स्वर्गमें विना पुत्रोत्पादन किये गये हैं, इसकारण पुत्र उत्पन्न करनेकी विधवाओंको कोई आवश्यकता नहीं १५९ साध्वी स्त्री पतिके मरनेपर ब्रह्मचर्यसे रहै तौ अपुत्रिणीभी स्वर्गको जाती है जैसे वे ब्रह्मचारी चले गये १६० पुत्रके लोभसे जो स्त्री परपुरुषसे संबंध करती है वोह यहां निन्दाको प्राप्त होती है और स्वर्गलोक तथा पतिलोकसे भ्रष्ट हो जाती है १६१ दूसरे पुरुषसे उत्पन्न हुई प्रजा शास्त्रसे उसकी है नहीं और न दूसरी स्त्रीमें उत्पन्न करनेवालेकी है और न साध्वी स्त्रियोंको दूसरा पति कहाहै १६२ यह सनातन वैदिक सिद्धान्त है और महाभारतमें सावित्रीकी कथा देखो पुनः अ० ९ श्लो० ४७

सकृदंशोनिपततिसकृत्कन्याप्रदीयते
सकृदाहददानीतित्रीण्येतानिसतांसकृत् ४७ अ० ९

हिस्सा एकही बार किया जाताहै, कन्यादान एकही बार किया जाताहै और देंगे यह भी एकही बार कहा जाता है, सत्पुरुषकी यह तीन बातें एकही बार होती हैं ४७

इयंनारीपतिलोकंवृणानानिपद्यतउपत्वमर्त्यप्रेतम्
धर्मपुराणमनुपालयन्तीतस्यैप्रजांद्रविणंचेहधेहि। अथर्व० १८।३।१

वोह स्त्री जो पतिलोकजानेकी इच्छा करै धर्मको अच्छेप्रकार पालन करै और कन्दमूल फलको भोजन करती हुई उत्तम गतिको प्राप्त होती है और धन पुत्रादिक प्राप्त करती है इसकी प्रजा और धन तेरा है पदार्थ पीछे लिखचुकेहैं, इन सब बातोंका सिद्धान्त यह है कि नियोग कभी नहीं करना और परपुरुषको भूलसेभी अंगीकार नहीं करना, तथा पतिव्रतधर्म पालन करना ॥

१ इति श्रीमद्दयानंदसरस्वतीस्वामिकृतसत्यार्थप्रकाशे समावर्तनविवाहगृहाश्रमनियोगविषये चतुर्थसमुल्लासस्य खंडनं समाप्तम् ॥ ९, जून ९० शुभम् ॥

श्रीः।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतपंचमसमुल्लासस्य खण्डनंप्रारभ्यते।

संन्यासप्रकरणम्।

स० पृ० १२६ पं० २

वनेषुचविहृत्यैवं तृतीयंभागमायुषः
चतुर्थमायुषोभागंत्यक्त्वासंगान्परिव्रजेत्। मनु० अ० ६ श्लो० ३३

इस प्रकार वनमें आयुका तीसरा भाग अर्थात २५ वें * वर्षसे पचहत्तर वर्षपर्यन्त वानप्रस्थ होके आयुके चौथे भागमें संगोंको छोड़ परिव्राट् अर्थात् संन्यासी होजावै (प्रश्न) गृहाश्रम और वानप्रस्थ न करके संन्यासाश्रम करै उसको पाप होता है या नहीं (उत्तर) होताहै और नहींभी होता जो बाल्यावस्थामें विरक्त होकर विषयोंमें फंसे वोह महापापी और जो न फंसे वोह पुण्यात्मा पुरुष है ॥ १३० । ६

---

* १८९७ सत्या७ पृ० १३० पं० ८ पच्चीसवें वर्षसेके स्थानमें पचासवें वर्षसे ऐसा पाठ लिखा है।

समीक्षा—दयानंदजीकेही लेखसे हम इनके संन्यासकी परीक्षा करते हैं आपने ७५ वर्षसे पूर्वही संन्यास लेलिया और विषयसंगभी नहीं छोड़ा, आपको विषयोंमें फंसे रहनेसे पापही हुआ आपने लक्षोंकी प्राप्तिका प्रबन्ध किया, निवाड़के पलंगपर शयन होता था, बड़े बड़े तकिये लगे रहते, रसोईमें षट्रस भोजन होता, पांवधुलानेको कहार नौकर, चटनी मुरब्बे पूरी हलुवेके विना भोजन नहीं लगताथा, दुशाले ओढ़े जातेथे हुक्का पिया जाता, चार पांच जोडे बूंटोंके विलायती बने सन्दूकमें रहते इत्यादि जहां ठहरते कोठी बंगलोंहीमें ठहरते फिर आपको इन संगोंके करनेसे पापही हुआ ॥ और न कर्मानुसार आप संन्यासी ठहर सकते हैं ॥

स० पृ० १२६ पं० १९

नाविरतोदुश्चरितान्नाशान्तोनासमाहितः
नाशान्तमानसोवापिप्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् । कठवल्ली मं० २२३

जो दुराचारसे पृथक् नहीं जिसकी शान्ति नहीं जिसका आत्मा योगी नहीं जिसका मन शान्त नहीं वोह संन्यास लेकै भी प्रज्ञानसे परमात्माको प्राप्त नहीं होता ॥ १३० । २२

समीक्षा—स्वामीजी आपमें तौ शान्ति भी नहीं प्रत्यक्ष देखिये कि, जहां कहीं किसीने आपके विरुद्ध कहा झट उसका उत्तर देनेमें कटिबद्ध हो दुर्वाक्योंकी वर्षा करने लगे, राजा शिवप्रसाद हीपर आपने कैसे कटु, वाक्य लिखे हैं और सत्यार्थप्रकाशमें ११ समुल्लासमें गालियोंकी वर्षा की है व्रत लिखनेवालेको कसाई कहाहै आत्माभी तुम्हारा योगी नहीं था क्योंकि "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" जब कि चित्तकी वृत्तिही शान्त नहीं हुई तौ आत्मामें योग कहां मनभी तुम्हारा शान्त नहीं कभी कुछ लिखा कभी कुछ लिखा इससे आपका संन्यास लेना वृथा हुआ ॥

स० प्र० पृ० १२७ पं० १९

अविद्यायामन्तरेवर्तमानाःस्वयंधीराःपण्डितम्मन्यमानाः॥जंघन्यमानाःपरियन्तिमूढा अन्धेनैवनीयमानायथान्धाः मुं०खं०२मं०८

जो अविद्याके भीतर खेल रहे अपनेको धीर और पंडित मानते हैं वे नीचगतिको जानेहारे मूढ जैसे अंधेके पीछे अंधे दुर्दशाको प्राप्त होते हैं वैसे दुःखोंको पाते हैं ॥ १३१ । १७

समीक्षा–पंडिताभिमानभी स्वामीजीमें थोडा नहीं है, विद्याके घमंडमें आकर ब्रह्मासे लेकर जैमिनितकके ग्रंथोंमें अशुद्धता बताते तथा कहते हो ब्राह्मणभागमेंभी जो कुछ विरुद्ध है वोह मुझे स्वीकार नहीं, महात्मालोग जो वेदार्थको सम्यक प्रकारसे जानतेथे आपने उनका अर्थ भी विरुद्ध बताया, बस यह श्रुति आपही पर घटती है, ऐसेही दशा पंडिताभिमानियोंकी होनी चाहिये ॥

स० प्र० पृ० १२७ पं २३

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः तेब्रह्मलोकेषुपरान्तकालेपरामृताःपरिमुच्यन्तिसर्वे मुं० ३खं० २मं० ६

जो वेदान्त अर्थात् परमेश्वरप्रतिपादक वेदमंत्रोंके अर्थ ज्ञान और आचारमें अच्छे प्रकार निश्चित संन्यास योगसे शुद्धान्तःकरण संन्यासी होते हैं वे परमेश्वरमें मुक्तिसुखको प्राप्तहो भोगके पश्चात् जब मुक्तिसुखकी अवधि पूरी हो जाती है तब वहांसे छूटकर संसारमें आते हैं, मुक्तिके विना दुःखका नाश नहीं होता ॥ १३२ । ३

समीक्षा–अच्छा प्रबन्ध यहाँसे बांधा कि, मुक्तिसे जीव लौट आता है इस मुक्तिसे लौटनेका खंडन तौ मुक्तिविषयमें करैंगे परन्तु अब तौ इसका अर्थ लिखते हैं ॥

विचारजन्य विज्ञानसे जिन्होंने वेदान्तके अर्थोंको यथार्थ जाना है और वे यत्नशील सर्वस्वत्यागरूप संन्यासयोगसे शुद्धचित्त हैं वे ब्रह्मलोकमें महाप्रलयमें परामृत ब्रह्मज्ञानजन्य मुक्तिको प्राप्त होकै (परिमुच्यन्ति) विदेह कैवल्य अर्थात ब्रह्मभावको प्राप्त होते हैं इसकी विशेष व्याख्या मुक्तिविषयमें लिखी जायगी ॥

स०प्र०१२८पं०११लोकेषणायाश्चवित्तेषणायाश्चोत्थायाथ भैक्षचर्य्यं चरन्ति॥शत०१४।५।२।१

लोकमें प्रतिष्ठा वा लाभ धनसे भोग वा मान्य पुत्रादिके मोहसे अलग होकै सन्यासीलोग भिक्षुकहोकर रात दिन मोक्षके साधनोंमें तत्पर रहते हैं ॥ १३२।१६

समीक्षा–दयानंदजी नामके संन्यासी हैं, * क्योंकि इनमें यह इच्छा भरपूर पाई जाती है, लोकेषणाके अर्थ लोकमें जन निन्दा करैं. वा स्तु-

* भा० प्र० कर्ताजी दूसरोंको क्यों देखतेहो दूसरे तो आपकी दृष्टिमें पहलेसेही अच्छे नहीं पर एकबारतो हृदयपर हाथ धरके सत्य बोलो कि जैसे सन्यासीके लक्षण चाहिये स्वामीजी वैसेही सन्यासी हैं या नामके ।

ति और अप्रतिष्ठा करैं तौ भी जिसके चित्तमें कुछ हर्ष शोक न होय, तौ वोह संन्यासी जानना, स्वामीजीकी यदि कोई निन्दा करता है तौ कितना शोक होताहै. उसी समय उसके उत्तर देनेको पुस्तक बनाई जाती है, वित्तैषणाका भी त्याग आपमें नहीं पाया जाता, धनकी इच्छा यहांतक है कि, जिसकी पूर्तिही नहीं होती, धनकी प्राप्तिमें कैसे २ प्रयत्न किये कि, निजयंत्रालय जारी किया गया, पुस्तकोंका मूल्य द्विगुण त्रिगुण नियत हुआ, हमारे पुस्तकोंको और कोई न छापसके इसकारण उनपर रजिष्टरी कराई गई, लोगोंसे धनके आने और पुस्तक विक्रयके व्यवहारसे धन मिलनेपर भी व्याकरणका पुस्तक छपवानेको धनकी सहायता ली और बहुत पंडित नौकर रखकर वेदभाष्यकी पूर्ति शीघ्र होगी इस बहानेसे पृथक् याचना की, उपदेशक मंडलीके नामसे एक लक्ष रुपया एकत्रित करनेमें यथाशक्ति प्रयत्न कियागया, परन्तु वोह काम आपके विपरीत व्यवहारसे पूर्ण नहीं हुआ, लोभने आपके हृदयमें यहांतक निवास कियाथा कि, धनवानोंसे प्रीतिसमेत घंटों वार्ता होतीथी, निर्धनोंकी तौ बूझही नहींथी, प्रतिष्ठा इतनी चाहते कि, कोठियों पर ठहरते चरटपरही निकलते रहे, पुत्र तौ थाही नहीं परन्तु जो मुख्य सेवकलोग हैं उनमें आप प्रीतिकरते हो और उनके सुख दुःखमें हर्ष शोक प्रगट करते हो, क्योंकि आपने पृ० १२८ पं० ८ में लिखा है जो देहधारी है वोह दुःख सुखकी प्राप्तिसे पृथक् नहीं रहसक्ता, निदान आप तीनों एषणाओंसे मुक्त नहीं और संन्यासी भी नहीं, तीनों एषणाओंको वही जीतसकैगा जो संसारके व्यवहारोंसे कुछ संबंध न रक्खेगा ॥

स० पृ० १२८ पं० १९

प्राजापत्यांनिरूप्येष्टिंसर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्यब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् ॥

प्रजापति अर्थात् परमेश्वरकी प्राप्तिके अर्थ इष्टि अर्थात् यज्ञ करके उसमें यज्ञोपवीतादि चिह्नोंको छोड आहवनीयादि पांच अग्नियोंको प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इनपांच प्राणोंमें आरोपण करकै ब्राह्मण ब्रह्मवित् घरसे निकलकर संन्यासी हो जावै ॥ १३२ । २०

समीक्षा–यहां भी स्वामीजीकी बनावटही है, सर्ववेदस् शब्दका अर्थ यज्ञोपवीतादिकका नहीं किन्तु सर्वस्व है, मनुके टीकाकार मेधातिथि

गोविंदराजकुल्लूकभट्टने इसी श्लोकके टीकेमें सर्ववेदस् शब्दका अर्थ सर्वस्व किया है यहां प्राजापत्य इष्टिकी सर्ववेदस् दक्षिणा लिखी है, अब ध्यान करो कि, उक्त इष्टिकी दक्षिणा सर्वस्व हो सक्ती है वा यज्ञोपवीत जिसको बुद्धिका कुछ भी स्पर्श होगा वोह यही कहैगा कि, यज्ञोपवीत यज्ञकी दक्षिणाके लिये सर्वथा असमंजस है, और सर्वस्व संमजसे है क्योंकि वैराग्यके विना संन्यासका ग्रहण करना वृथा है और जिसने धनादि सर्वस्व पदार्थोंका त्याग न किया, उसको वैराग्य कहां।

स० पृ० १३१ पं० १ इन्द्रियोंको अधर्माचरणसे रोक राग द्वेषको छोड सबसे निर्वैर रहै ॥ १४३। १३

समीक्षा—स्वामीजीमें विद्या ज्ञान वैराग्य पूर्ण जितेंद्रियता भी नहींथी, विषयभोगकी इच्छा पूर्ण है, विद्या और ज्ञान यथार्थ होता तौ परस्पर विरुद्ध शास्त्रप्रतिकूल युक्ति रहित लेख क्यों करते, वैराग्यके विरुद्ध धनादि पदार्थोंमें राग क्यों होता विषयभोगकी इच्छा न होती तौ उत्तमोत्तम वस्त्रों और भोजनोंसे क्या प्रयोजन था ॥

स० पृ० १३१ पं० २१ सबभूतोंसे निर्वैर रहै ॥ १३६।४

समीक्षा—आर्यसमाजोंको छोडकर आपका तौ सबहीसे विरोधथा, फिर कैसे कटु वचन प्राचीनाचार्योंको लिखे हैं अत एव आप संन्यासी नहींथे ॥

स० पृ० १३० पं० १७ जब कहीं उपदेश वा संवादादिमें कोई संन्यासीपर क्रोध करै तौ संन्यासीको उचित है कि, उसपर क्रोध न करै ॥ १३६।९ ॥

..स्वामीजीने यह वचन लिख तो दिया परन्तु कभी इसका वर्तावभी किया ? कोई आपपर क्रोध करै और आप उसपर न करैं, यह असंभव है जो लोग आपकी सेवामें रहतेथे, उनका हृदय भी आपकी क्रोधाग्निसे भस्म हो जाताथा जो कोई आपके दोषको दोष कहै उसका भी तिरस्कार होताथा, वीसियों दृष्टान्त आपकी बनाई शास्त्रार्थोंकी पुस्तकोंमें विद्यमान हैं ॥

पृ० १३४ पं० २० सम्यङ्नित्यमास्तेयस्मिन्यद्वासम्यङ् न्यस्यन्ति दुःखानि कर्माणि येन स संन्यासः स प्रशस्तो विद्यतेस्य स संन्यासी' जो ब्रह्म और जिससे दुष्ट कर्मोंका त्याग किया जाय वह उत्तम स्वभाव जिसमें, वोह संन्यासी कहाता है ॥ १३९। १०

समीक्षा—वाहजी अच्छा अर्थ किया (जो ब्रह्म और जिससे दुष्ट कर्मोंका त्याग किया जाय) आपने इससे अर्थ क्या निकाला जो ब्रह्मको और दुष्ट कर्मोंको छोड देवे क्या वोह संन्यासी (बौद्धमतावलम्बी) जो दुष्ट कर्मोंको छोडनेका नाम संन्यास है तौ सबही श्रेष्ठाचारवाले गृहस्थ पुरुष संन्यासी हो सक्ते हैं, फिर तौ सबही संन्यासी हो जाँयगे, इसकारण (सम्यकन्यासः आत्यन्तिकस्त्यागः संन्यासः) सम्पूर्ण ही वस्तुओंका त्याग शिखा सूत्र सहित इसको संन्यासी कहते हैं ॥

स० पृ० १३९ पं० १८

विविधानिचरत्नानिविविक्तेषूपपादयेत् । मनु०

नाना प्रकारके रत्न सुवर्णादि धन विविक्त अर्थात् संन्यासियोंको देवै ॥ १४० । ११

समीक्षा—यह और भी द्रव्य लेनेको कपटजाल प्रकट कर मनुके नामसे श्लोककलपना किया है सारी मनुस्मृति देखिये कहीं भी यह श्लोक नहीं लिखा है, यतियोंको धन देनेसे महापाप होता है, कोई दयानंदी इसके उत्तरमें यह श्लोक देते हैं कि, स्वामीजीने इस श्लोकके आशयसे यह श्लोक बनाया है

धनानितुयथाशक्तिविप्रेषुप्रतिपादयेत् । वेदवि-
त्सुविविक्तेषुप्रेत्यस्वर्गंसमश्नुते ॥ अ० ११ श्लो० ६

सो विद्वान् लोग इसके अर्थ विचारें इसमें संन्यासियोंको द्रव्य देनेका कोई भी पद नहीं है, किन्तु इस श्लोकका यह अर्थ है कि, अनेक प्रकारसे धन यथाशक्ति ब्राह्मणोंको देना चाहिये, जो कि वेद पढे हैं और (विविक्तेषु पुत्रकलत्राद्यवसक्तेषु) कुटुम्बी हैं ऐसे ब्राह्मणोंको देनेसे शरीर त्यागने उपरान्त स्वर्ग होताहै, संन्यासीका यहां प्रकरण नहीं संन्यासीको तो चाहिये कि—

ऋणानित्रीण्यपाकृत्यमनोमोक्षेनिवेशयेत् ।
अनपाकृत्यमोक्षन्तुसेव्यमानोव्रजत्यधः॥अ०६ श्लो०३५

देवऋण, पितृऋण, ऋषिऋण इन तीनों ऋणोंसे उद्धार होके मनको मोक्षमें लगावै, विना तीनों ऋण मुक्तकिये जो मोक्षसेवन करताहै, अर्थात् संन्यासी होताहै सो नरकमें जाताहै, स्वामीजीने इस श्लोकको न विचारा तभी तौ तीनों इच्छा बनी रहीं ॥

एककालंचरेद्भैक्ष्यंनप्रसज्जेतविस्तरे।
भैक्ष्येप्रसक्तोहियतिर्विषयेष्वपिसज्जति अ० ६। श्लो० ५५

एक कालमें भोजन करै और भिक्षाके विस्तारकी इच्छा न करै, बहुत स्वादुके अन्नके भोजन करनेसे यतिको विषय गिराय देवेंगे ॥

स्वामीजी आपके तो प्रतिदिन विविध प्रकारके भोजन बनते हैं, संन्यासीको पेडके नीचे रहना एकसमय भोजन करना लिखाहै, आपमें यह लक्षण एक भी नहीं मिलता है, इसकारण आपका संन्यास ठीक नहीं और तुम संन्यासी भी नहीं ॥

इति श्रीमद्दयानंदतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतपंचमसमुल्लासस्य खंडनं समाप्तम् १० । ६ । ९० ।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतषष्ठसमुल्लासस्य खंडनं प्रारभ्यंते।

राजधर्मप्रकरणम्।

इस समुल्लासमें स्वामीजीने राजधर्मकी व्याख्या की है, इसमें सम्पूर्ण मनुस्मृतिके श्लोक लिखे हैं, जो कि प्राचीन समयसे आजतक सब मानते चले आते हैं इसमें कोई मतविषयक चर्चा नहीं है परन्तु जो वार्ता स्वामीजीने इसमें मानीहै अन्यत्र नहीं मानी वोही दिखलातेहैं ॥

स० पृ० १४४ पं० २ इस सभामें चारों वेद न्याय शास्त्र निरुक्त धर्मशास्त्र आदिके वेत्ता विद्वान् सभासदहों ॥ १४९।१६

स० प्र० पृ० १६६ पं० ११ जो विशेष देखना चाहैं वोह चारों वेद मनुस्मृति शुक्रनीति महाभारतादिमें देखकर निश्चय करै प्रजाका व्यवहार मनुके अष्टमनवमाध्यायसे करै १७४।६ समीक्षा–यहां स्वामीजीका वोह प्रण कहां गया कि, हम वेदानुसारही मानेंगे जब वेदानुसारही मानते तो मनुके लिखनेकी क्या आवश्यकता थी, वेदसेही लिखदिया होता, इससे मालूम होताहै कि मनुष्योंका व्यवहार राजधर्मादि यह धर्मशास्त्रहीसे होताहै, उसका यथावत् माननाही बनैगा, वेदानुसारका मानना कहना बन नहीं सकता, यदि वेदानुसारहीहै तो बताइये यह राजधर्म कौनसी श्रुतियोंसे निकाला है, अब महाभारतभी मानगये यह साक्षी पूछना, दंड विधान आदि वेदमें कहांके हैं, इससे अपने विषयमें धर्मशास्त्रही स्वतः प्रमाण है ॥

स०पृ०१४७ पं० १४ और कुलीन अच्छे प्रकार सुपरीक्षित सात वा आठ मंत्री करै १५३।१९ स०पृ० १४८ पं० ६ जो प्रशंसित कुलमें उत्पन्न पवित्र चतुरहो उसे दूतपनेमें नियुक्त करै १५४।७ समीक्षा–यहां स्वामीजी जन्मसे जाती मानना स्वीकार करते हैं क्योंकि यदि शूद्र संपूर्ण गुणोंसे युक्त हो तो वोह दूत करनेके योग्य नहीं, किन्तु जिसका कुलभी श्रेष्ठ हो ऐसेही मंत्री और दूत बनावै, कुलीनता तो जन्मसेही होती है अन्यथा नहीं स० प्र० पृ० १४९ पं० २४ बडे उत्तम कुलमें युक्त सुंदर लक्षण अपने क्षत्रिय कुलकी कन्या जो अपने सदृश गुण कर्ममें हो उससे विवाह करना ॥ १९९।२६

समीक्षा–यहां भी स्वामीजी जातिही उत्तम मानते हैं, जो क्षत्रियकन्या बडे कुलमें उत्पन्न हो, उससे विवाह करै, यदि पढी लिखी नीच कुलकी गुणवान्भी हो तो उसके साथ विवाह करना नहीं लिखा, किन्तु यहां श्रेष्ठ कुलकी कन्याके साथ विवाह करना लिखा, यहां भी जाति ही प्रधान मानी है, तभी तौ शूर वीर उत्पन्न होतेथे जो कि, भारतका उद्धार करतेथे ॥

स० पृ० १५२ पं० ४ जो उसकी प्रतिष्ठा है जिससे इस लोक और परलोकमें सुख होनेवाला था उसे उसका स्वामी ले लेता है ॥ १९८।१६

पृ० १७० पं० २१ जो साक्षी सत्य बोलताहै वोह जन्मान्तरमें उत्तम जन्म और लोकान्तरोंमें जन्मको प्राप्त होकै सुख भोगता है ॥ १७९।१

समीक्षा- इन वाक्योंसे प्रतीत होताहै कि, स्वामीजी जीवका पृथ्वीके सिवाय अन्य लोकोंमें जाना स्वीकार करतेहैं, अब आपने लोकान्तरमें जीवकी गति मानी फिर जाने आप स्वर्गलोक माननेमें क्यों हिचकिचातेहो परन्तु स्वर्गलोकमें तौ पुण्यात्मा प्रवेश करतेहैं पक्षपाती वा धर्मत्यागियोंका वहां प्रवेश नहीं हो सक्ता इसकारण आपने सोचा कि, हम तो वहां जायँगे ही नहीं, इसकारण लिखदियाकी स्वर्गही नहीं लोकोंकी व्याख्या आगे लिखेंगे ॥

स० पृ० १६७ पं० २७ और जो २ नियम शास्त्रोक्त न पावैं और उनके होनेकी आवश्यकता पावै तो उत्तमोत्तम नियम बाँधे. १७५।१६पृ० १७६ पं० १७ उत्तम नियम बांधे परन्तु जहाँतक बने बालविवाह न करनेदे तथा युवावस्थामें प्रसन्नताके विना विवाह न करना न करने देना ॥ १८९। २४

समीक्षा-यह क्या स्वामीजीको सूझी आप तौ शास्त्रमें सब कुछ मानते हैं, और जो है नहीं नया बनाओगे तौ उसका प्रमाण कैसे होगा और वेदानुसारही वोह क्योंकर होसक्ता है, बस जाना जाता है कि, आपने बहुतसे मेल मिलाये होंगे, तौ तो आवश्यकता पडनेसे आप जानें क्या क्या लिखेंगे, अब इस नियोगकी क्या आवश्यकता थी जो आपने लिखा, परन्तु अब आपकी वेदानुसारकी प्रतिज्ञा जाती रही पुरातनसिद्ध योग्य समयपर विवाहकी रोक और प्रसन्नताके विना व्याह न करो यह हठ न छोड़ो ॥

इति श्रीदयानन्दतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतषष्ठसमुल्लासस्य खंडनं समाप्तम् ॥ १० । ६ । ९०

अथ सप्तमसमुल्लासस्यखंडनम् । पुनः देवताप्रकरणम् ।

स० पृ० १७९ पं० ४

त्रयस्त्रिंशस्त्रिंशता० इत्यादि वेदोंमें प्रमाण है, इसकी व्याख्या शतपथमें कीहै कि, तैंतीस देव, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चंद्रमा, सूर्य, नक्षत्र, सब सृष्टिके निवासस्थान होनेसे आठवसु प्राणापान, व्यान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा यह ग्यारह रुद्र इसलिये कहाते हैं कि, शरीरको छोडते हैं तब रोदन करनेवाले होते हैं, संवत्सरके बारह महिने बारह आदित्य इसलिये कहाते हैं कि, वोह सबकी आयु लेते जाते हैं, बिजलीका नाम इन्द्र इस हेतुसे है कि, परम ऐश्वर्यका हेतु है, यज्ञको प्रजापति कहनेका कारण यह है कि जिससे वायु वृष्टि जल औषधीकी शुद्धि विद्वानोंका सत्कार और नानाप्रकारकी शिल्पविद्यासे प्रजाका पालन होता है, यह तैंतीस पूर्वोक्त गुणोंके योगसे देव कहाते हैं, इनका स्वामी चौंतीसवां उपास्य देव शतपथके १४ काण्डमें स्पष्ट लिखाहै ॥ १८८ । ७ *

समीक्षा-यद्यपि देवता पूर्व प्रतिपादन कर आये हैं, परन्तु स्वामीजीने जो यह पुनः लेख किया उससे अब फिर कुछ थोडासा लिखते हैं, कहीं तौ स्वामीजीके विद्वान् देवता हो जाते हैं, कहीं इन्द्र ईश्वर हो जाते हैं, परन्तु कहीं मिटी, पानी, लकडी देवता होजाते हैं, इन्द्रजी बिजली

---

* पांचवी वारमें भी यही पाठहै छोटे स्वामी इसे अशुद्ध बतातेहैं देवताओंकी बहुतायतका मंत्र यजु० ३७ । ७ देखो ।

बन जातेहैं (त्रयस्त्रिंशस्त्रिंशता) जिसके अर्थ ३० ३३ देवताओंकेहैं, स्वामीजीने तैंतीस ३३ हीके किये हैं, वह अर्थ तो बदलेही पर हिसाबमेंभी गडबडी क्या आपको तैंतीससे अधिक गिनती नहीं आती जो ३० ३३ के ३३ ही रहगये देखिये देवता तौ अनेकहैं जिनके नाम जपनेसे पाप दूर होताहै ॥

यजुर्वेद अ० ३९ मं० ६ प्रायश्चित्ताहुतिं० धर्मके भेद होनेमें
सविता प्रथमेहन्नग्निर्द्वितीयेवायुस्तृतीय आदित्यश्चतुर्थे
चन्द्रमाः पञ्चमऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे मित्रो
नवमे वरुणो दशमऽइन्द्र एकादशे विश्वेदेवा द्वादशे ६

प्रथम दिनका सविता देवता है, दूसरे दिनका अग्नि, तीसरे दिनका वायु, चौथे दिनका आदित्य देव, पांचवेंका चंद्रमा, छठेका ऋतु, सातवेंका मरुत, आठवेंका बृहस्पति, नवमेंका मित्र, दशमेंका वरुण, ग्यारहवें दिनका इन्द्र, बारहवेंका विश्वेदेवा देवताहै, इन देवताओंके निमित्त १२ दिनतक प्रायश्चित्तके अर्थ आहुती दी जातीहै, अब स्वामीजी बतावें इसमें यह देवता कहांसे आगये

नृचक्षसोअनिमिषंतो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवोवर्ष्माणंवसतेस्वस्तये १

ऋ० मं० १० सू० ६३ अ० ५

(नृचक्षसः) कर्मनेता मनुष्योंके देखनेवाले (अनिमिषंतः) सदा जागरणशील जिनके पलक नहीं लगते (देवासः) देवता (अर्हणा) लोकके परिचरणार्थ (बृहत् अमृतत्वं) अमरत्वधर्मको (आनशुः) प्राप्त हुए हैं (ज्योतीरथाः) वे दीप्यमान रथवाले (अहिमायाः) अव्यय बुद्धि (अनागसः) पापरहित देवता । (दिवः) स्वर्ग लोकके (वर्ष्माणं) उच्छ्रित देशमें (स्वस्तये) लोकके कल्याणार्थ (वसते) रहते हैं ॥ १

सम्राजो येसुवृधोयज्ञमाययुरपरिह्वृतादधिरेदिविक्षयम् ॥ ताँ
आविवास नमसासुवृक्तिभिर्महोआदित्याँअदितिंस्वस्तये २

(सम्राजः) अपने तेजोंसे अच्छी तरह प्रकाशमान (सुवृधः) अति वृद्धियुक्त (ये) जो देवता (यज्ञं) यज्ञको (आयुः) आते हैं (अपरिहृताः) वे सबसे अजेय (दिवि) स्वर्गलोकमें (क्षयं) निवास (दधिरे) करते हैं (तान् आदित्यान्) उन अदितिके पुत्रोंको (अदितिं) देवताओंकी माताको (महो) बडे गुणयुक्त (नमसा) अन्नकी हवि करके (सुवृक्तिभिः) सुन्दर स्तुतियों करके (स्वस्तये) कल्याणके अर्थ (आविवास) पूजो इत्यादि वाक्योंसे विदित होताहै कि, देवता यज्ञमें आते हैं इससे बिजली आदिका अर्थ जो स्वामीजीने लिखाहै सो मिथ्या होगया आगे ग्यारहवें समुल्लासमें इसका अधिक वर्णन करेंगे " स्वर्गेलोके नभयं किञ्चनास्ति शोकातिगोमोदते स्वर्गलोके " कठोपनिषत् स्वर्ग लोकमें कुछ भय नहीं स्वर्ग लोकमें शोकरहित हो आनंद होताहै ॥

ईश्वरविषयप्रकरणम्।

स० प्र० पृ० १८१ पं० ५ (प्रश्न) परमेश्वर दयालु और न्यायकारी है वा नहीं (उत्तर) है पृ० १८१ पं० ९ न्याय और दयाका नाममात्रही भेद है, क्योंकि जो न्यायसे प्रयोजन सिद्ध होताहै, वोही दयासे दण्ड देनेका प्रयोजन है पुनः पं० १३ जिसने जितना बुराकर्म किया हो उसको उतना वैसाही दण्ड देना चाहिये, इसीका नाम न्याय है पं० १७ दया वोहीहै कि, डाकूको कारागारमें रखकर पापसे बचाना ॥ १९० ॥ १४ ॥

समीक्षा-यहां तौ स्वामीजीने दयाकी, खूबही ढेर लगाई ईश्वर क्याहै मानो इनका चेलाहै, जो सारा सिद्धान्त स्वामीजीसे कथन कर दिया है, देखिये (णीञ् प्रापणेसे इन् वा घञ्) इसे न्याय शब्द सिद्ध होता है, जिसके अर्थ यह हैं कि यथावत् न्याय करना, जो दण्डके योग्य हो उसको दण्ड देना और जो दयाके योग्य हो उसपर दया करना और (दय धातुसे) अङ् करनेसे दया शब्द सिद्ध होता है, जिसका अर्थ यह है कि किसी भक्त श्रेष्ठाचरणी पुरुषसे अज्ञातमें कोई अपराध हो जाय तो उसको स्तुति करनेपर क्षमा करना. क्योंकि दयाका प्रयोग अपराधीपर ही होता है; जब कि, किसीका दुःख देखकर उसपर करुणा आती है कि इसका दुःख दूर करें. तौ इसीका नाम दया है, ईश्वर अन्तर्यामी है वोह सबके मनको जानता है, कि यह अपराध बेसुधीमें बना है, या जानकर यदि वोह प्रार्थना करै कि, आगे ऐसी भूल न करूंगा और पर-

मेश्वर अपनी सर्वज्ञतासे जानता है कि, यह आगेको ऐसा नहीं करैगा, बस उसके ऊपर दया करता है. जैसा यजुर्वेदमें लिखा है ॥

सनोबन्धुर्जनितासविधाता धामानिवेद भुवनानिविश्वा ।
यत्रदेवा अमृतमानशानास्तृतीयेधामन्नध्यैरयन्त १

यजु०अ०३२मं०१०

(सः) वोह परमेश्वर (नः) हमारा (बन्धुः) विविध प्रकारकी सहायता रक्षा करनेसे बन्धु है(जनिता उत्पन्न करता है (सः) वोह (विधाता) विधाता मालिक पिता है (सः) वोह (विश्वा) सब (भुवनानि) प्राणी (धामानि) स्थानोंको (वेद) जानता है (देवाः) देवता (यत्र) जिस ईश्वरमें (अमृतम्) मोक्षप्रापक ज्ञानको (आनशानाः) प्राप्त करते (तृतीये धामन्) स्वर्गमें (अध्यैरयन्त) स्वेच्छानुसार वर्तते हैं आनन्द करते हैं ॥ इस मंत्रमें बन्धु जनिता आदि शब्दोंसे ईश्वरमें अपार दया जानीजाती है, बन्धुत्वपन यही है कि, आपदामें सहायता करनी, (पातीति पिता) जो रक्षा करै, वोह पिता, जनिता पिता, पुत्र के अपराधोंको क्षमा कर देता है और दया करता है ॥

शंवातः शꣳ हिते घृणिः शन्ते भवन्तिष्टका:
शन्तेभवन्त्वग्नयः पार्थिवा सोमात्वाभिशूꣳशुचन् यजु० ३५मं०८

भावार्थ–यह कि ईश्वर दया दृष्टिसे कहता है हे यजमान ! भक्त वायु तेरा सुखरूप हों, सूर्य किरण तुझे सुखरूप हों, मध्यमें और दिशाओंमें स्थापित इष्टिका तेरे लिये सुख स्वरूप हों तुझे तापित नहीं करें ॥ १ ॥ अब विचारना चाहिये कि, यह वाक्य दयारूप है वा नहीं, इस कारण न्याय दया पृथक् हैं, ईश्वरमें सर्व शक्तिमानता होनेसे दोनों बातें बनती हैं विशेष अघनाशन प्रकरणमें लिखते हैं ॥

निराकारसाकारप्रकरणम् ।

स० पृ० १८२ पं०२ (प्रश्न) ईश्वर साकार है वा निराकार ? (उत्तर) निराकार, क्योंकि साकार हो तो व्यापक नहीं हो सक्ता, जब व्यापक नहीं हो सक्ता तो सर्वज्ञादि गुण उसमें घट नहीं सक्ते, क्योंकि परिमित वस्तुमें गुण कर्म स्वभाव भी परिमित होते हैं, तथा शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा, राग, दोष, छेदन, भेदन आदिसे रहित नहीं हो सक्ता इससे यही

निश्चय है कि, ईश्वर निराकार है, जो साकार हो तौ उसके शरीर नाक कान आदि अवयवोंका बनानेहारा दूसरा होना चाहिये, क्यों कि जो संयोगसे उत्पन्न होताहै उसको संयुक्त करनेहारा चेतन अवश्य होना चाहिये जो कोई कहै कि, ईश्वरने अपनी इच्छासे शरीर धारण किया तो भी यही सिद्ध हुआ कि, शरीर बननेके पूर्व निराकारथा, इससे यही सिद्ध हुआ कि ईश्वर निराकार है ॥ १९१ । १२

समीक्षा-ऐसा विदित होताहै कि दयानंदजीने ईश्वरको मनुष्यवत समझ लियाहै यदि वोह साकार होजाय तौ व्यापक न रहै, उसका कोई बनानेवाला होजाय जब कि ईश्वर सर्वशक्तिमान्है, तो वोह आकारवाला होकर शक्ति वा ज्ञानसे रहित नहीं हो सक्ता जिससमय प्रलय होता है उस समय वोह निराकार, जब उसमें सृष्टिरचनाकी इच्छा होतीहै तभी उसको सगुण वा साकार कहते हैं, यह न्याय दयालु आदि नाम साकारमेंही घटते हैं, यजुर्वेदके शतपथ ब्राह्मणमें स्पष्ट लिखाहै ॥

उभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्चपरिमितश्चापरिमितश्च तद्यद्यजुषाकरोति यदेवास्यनिरुक्तं परिमित७ँरूपं तदस्यतेन संस्करोत्यथ यत्तूष्णीं यदेवास्यानिरुक्तमपरिमित७ँरूपंतदस्यतेनसंस्करोतीतिब्राह्मणम्श०का०१४अ०१ब्रा०२मं१८

परमेश्वर दो प्रकारकाहै परिमित अपरिमित निरुक्त और अनिरुक्त इसकारण जो यज्ञउपासनादि कर्म यजुर्वेदके मंत्रोंसे करताहै उसके द्वारा परमेश्वरके उस रूपका संस्कार करताहै जो निरुक्त और परिमित नामहै और जो तूष्णींभावसम्पन्न है अर्थात् अध्यात्ममंत्रकाही मनन करताहै उससे परमेश्वरके उस रूपका संस्कार करताहै जो अनिरुक्त और अपरिमित नामहै इससे प्रत्यक्ष परमेश्वरमें निराकारता साकारता पाई जाती है ॥

स० पृ०२०१ पं०७ जो गुणोंसे सहित वोह सगुण और जो गुणोंसे रहित वोह निर्गुण कहाताहै अपने २ स्वाभाविकगुणोंसे सहित और दूसरे विरोधीगुणोंसे रहित होनेसे सब पदार्थोंमें सगुणता और निर्गुणता वा केवल सगुणता हो किन्तु एकहीमें सगुणता और निर्गुणता सदा

रहतीहै वैसेंही परमेश्वर अपने अनन्तज्ञानबलादि गुणोंसे सहित होनेसे सगुण और रूपादि जडके तथा द्वेषादि जीवके गुणोंसे पृथक् होनेसे निर्गुण कहाताहै ॥ २१३।३

समीक्षा-इस लेखसे तो स्वामीजीकाही पक्ष बिगडताहै जब इसप्रकार निराकार शब्दका अर्थ माना तब तुम्हारे तात्पर्यवाला निराकार शब्दका अर्थ नहीं जो मूर्तिमान्‌को न बोधन करे किन्तु दिव्यअलौकिकमूर्तिमान्‌का बोधकभी निराकार शब्द होसक्ता है जैसा कि, सत्यार्थ प्रकाशमें लिखाहै कि, दिव्यअलौकिकगुणवालेकाभी निर्गुण शब्द बोधकहै वैसेही निराकार शब्द जब साकारकाभी बोधक हो गया तौ निर्गुणशब्दके दृष्टान्तमें कोई विरोध नहीं निराकारकाभी आकारहै, सर्वथा आकारशून्यका नाम निराकार कहोगे तौ सर्व गुण शून्यका नाम निर्गुण हुएसे दयानंदजीका मतभंग हो जायगा क्योंकि, सत्यार्थप्रकाशमें सर्वगुण शून्यका नाम निर्गुण नहीं माना इससे निराकार शब्दभी साकारका बोधक है ॥

जब इसप्रकार निराकारकी अविरोधी साकारता सिद्ध होगई तौ (सपर्य्यगात्) इस मंत्रमें (अकायम्) इसपदाका अच्छीतरह समन्वय होगया भौतिक मलिन कायाकरके वर्जित है और बृहदारण्यकउपनिषद्में लिखाहै ॥

द्वावेवब्रह्मणोरूपेमूर्त्तंश्चामूर्तश्चेति०

ईश्वरके दो रूप हैं एक मूर्तिमान् एक अमूर्तिमान् और (एकं रूपं बहुधा यः करोति) और एक रूपको जो बहुत प्रकारका करताहै इस मंत्रसे तथा औरोंसेही सर्वकारण बीजस्थापन परमात्मामें साकारता इस प्रकारसे प्रगटहै ॥ ब्राह्मणोस्यमुखमासीत् यजु० आत्मैवेदमग्रआसीत्पुरुषविधम०१४।४।२।१ आत्मा पुरुषरूप था इससे अधिक और क्या प्रमाणहोगा पुरुषसूक्तभी देखो ॥

अवतारप्रकरणम् ।

स० प्र० पृ० १९० पं० २७ ईश्वर अवतार लेताहै वा नहीं (उत्तर) नहीं. क्योंकि "अज एकपाद" "सपर्य्यगाच्छुक्रमकायम्" ये ये यजुर्वेदके वचनहैं इत्यादि वचनोंसे परमेश्वर जन्म नहीं लेता. १९१ पं०२४ और युक्तीसे भी ईश्वरका जन्म सिद्ध नहीं होता जैसे कोई अनन्त आकाशको कहै कि, गर्भमें आया वा मूठीमें धरलिया ऐसा कहना कभी

सच नहीं हो सक्ता क्योंकि आकाश अनन्त और सर्वमें व्यापक है इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता वैसेही अनन्त और सर्वव्यापक परमात्माके, होनेमें उसका आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सक्ता जाना वा आना वहां हो सक्ताहै जहां न हो क्या परमेश्वर गर्भमें व्यापक नहीं था जो कहींसे आया और बाहर नहीं था जो भीतरसे निकला ऐसा ईश्वरके विषयमें कहना और मानना विद्याहीनोंके सिवाय कौन कहै और मानसकैगा, परमेश्वरका जाना आना जन्ममरण कभी सिद्ध नहीं हो सक्ता ॥ २०१।९।२०२। १०

समीक्षा—स्वामीजी ईश्वरको अज अकाय बताकर ईश्वरके अवतार होनेमें संदेह करतेहैं तो, जीवात्माभी अज और व्यापक श्रवण कराजाताहै, उसकाभी जन्म न होना चाहिये यथा—

नजायतेम्रियते वा विपश्चिन्नायंकुतश्चिन्नबभूवकश्चित् ॥
अजोनित्यः शाश्वतोयंपुराणोनहन्यते हन्यमानेशरीरे ॥ १८ ॥
हन्ताचेन्मन्यतेहन्तुंहतश्चेन्मन्यतेहतम् ॥
उभौतौनविजानीतो नायंहन्तिनहन्यते ॥ १९ ॥
अणोरणीयान्महतोमहीयानात्मास्यजंतोर्निहितोगुहायाम् ॥
तमक्रतुः पश्यतिवीतशोको धातुःप्रसादान्महिमानमात्मनः २०

कठवल्ली ३ उपनिषद्वल्ली २

(विपश्चित्) सर्वका द्रष्टा जीवात्मा जो कि पूर्ववात्स्यायनभाष्यमें लिखाहै-(सर्वस्यद्रष्टा सर्वस्य भोक्ता सर्वानुभवः) इत्यादि वाक्योंसे और (यश्चेतामात्रः प्रतिपुरुषः क्षेत्रज्ञः) इत्यादि मैत्र्युपनिषदूसे निर्णीत है सो जन्म मरणसे रहित है और यह आप किसीसे नहीं उत्पन्न होता और न इससे (कश्चित्) कुछभी उत्पन्न होता है अज नित्य एकरस वृद्धि रहित है और शरीरके नाशसे इसका नाश नहीं होता १८ यदि कोई हननकर्ता पुरुषही हननकर्ता आत्मा चिन्तन कर्ता है तैसे यदि कोई हत हुआ आत्माको हत चिन्तन कर्ता है वे दोनों आत्माके यथावत् स्वरूपको नहीं जानते क्योंकि, यह आत्मा न हनन करता है न हनन होता है १९ इस जन्तुकी गुहा अर्थात् पंचकोशरूप गुफामें (निहित) स्थित यह आत्मा अणुसेभी अणुतरहै अर्थात् दुर्लक्ष्य है इससे अणुतर कहा परन्तु बडे आकाशादिसे (महीयान) महत्तर है (धातुः प्रसादात)

ईश्वरकी प्रसन्नतासे (अक्रतुः) विषयभोगसंकल्परहितपुरुष आत्माको देखता है तौ आत्माकी महिमाको देखकर शोकरहित होताहै और योगशास्त्रके भाष्यमें व्यासजी कहते हैं ॥

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः यो० पा० १ सू० २

चितिशक्तिरपरिणामिन्यप्रतिसंक्रमादर्शितविषया शुद्धा चानन्ता च व्यासभाष्ये अर्थ (चितिशक्तिः) जीवचेतन अपरिणामी है (अप्रतिसंक्रमा)क्रिया रहितहै (दर्शितविषया) सर्वविषयोंका द्रष्टा है शुद्ध और अनन्त व्यापक है इसप्रकार व्यास तथा कणाद ऋषिके मतमें जीव चेतन व्यापक है और जीवका जन्म वे मानते हैं इससे व्यापकका जन्म नहीं होता यह कथन कैसे होगा, क्योंकि व्यापकका जन्म व्यासादिक मानते हैं,यदि यह कहो कि "हम तौ युक्तिही मानते हैं जन्म मरण,आना जाना परिच्छिन्नपदार्थमें बनसक्ता है, इसकारण, जीवात्माका स्वरूप व्यापक नहीं मानते" इसका उत्तर । तब तौ यह विचार कर्तव्य है विभु पदार्थसे भिन्न अणुपरिमाणवान् वा मध्यमपरिमाणवान् होता है आत्मा अणुपरिमाण है अथवा मध्यमपरिमाण है यदि कहो अणुपरिमाणवान् है, तौ सारे शरीरमें शीतल जल संयोगसे शीत स्पर्शकी प्रतीत न होनी चाहिये क्योंकि आत्मा अणु है, सो एकदेशमें स्थित होकर शीतका ज्ञान करसक्ता है, आत्मारहित अंगोंमें शीत स्पर्शका भान कैसे होगा (प्रश्न) आत्मा यद्यपि एक देशमें है, तथापि जैसे कस्तूरीका गंध सर्वत्र विस्तृत होता है तैसेही आत्माका ज्ञान गुण सर्वत्र विस्तृत है,इसमें शीत स्पर्शकी सर्वत्र प्रतीति हो सक्ती है अथवा जैसे सूर्य प्रभावाला द्रव्यहै तैसेही आत्माभी प्रभावत् द्रव्य है (उत्तर) यह नियम है कि, गुण अपने आश्रयको त्यागकर अन्यत्र गमन नहीं कर सक्ता, क्योंकि गुणमें क्रिया होती नहीं और कस्तूरीके दृष्टान्तमें भी कस्तूरीके सूक्ष्म अवयव विस्तृत होते हैं, इसीकारण कस्तूरी कर्पूरादि द्रव्य रक्षक तिसको बंदकर किसी डिब्बे आदिमें रखते हैं और जो वोह खुले रक्खे जाय तौ वे उड जाते हैं और प्रभा गुण नहीं किन्तु विरल प्रकाश प्रभा है और घनप्रकाश सूर्य है, ऐसेही आत्माको माननेसे ज्ञानरूपही सिद्ध होगा, सो ज्ञान एकरसहै, कहीं सघन और कहीं विरल ऐसा कहना बनता नहीं, यदि अनेक रस मानोगे तौ अनित्यत्व प्रसक्ति होगी और सर्वथा अणुवादीके मतमें क्रिया तौ जरूर माननी होगी तौ (अचलोयं सनातनः) इत्यादि गीताके वचनसे विरोध होगा और आत्मा विनाशी क्रियावत्त्वात् घट-

वत् इस अनुमानप्रमाणसे विनाशित्व प्रसक्ति तौ अवश्य होगी और मध्यम परिमाण पक्षमें स्पष्टही जन्यत्व विनाशित्वादि दोष हैं "आत्मा जन्यः मध्यमपरिमाणवत्त्वात् आत्मा विनाशी मध्यपरिमाणवत्त्वात् घटवत्" इसकारण अनादि जीवात्माको मानकर मध्यम परिमाण कैसे मानोंगे क्योंकि मध्यम परिमाण माननेसे जन्यत्वकी प्रसक्ति होगी इससे विना इच्छासे भी व्यासादि महात्माओंके वचनानुसार आत्माको व्यापक और अज अवश्य मानना पडेगा तौ जन्मशंका ईश्वरवत् जीवमें भी बनसकती है तौ फिर जीवको जन्म कैसे हो सक्ता है जब जीवका जन्म हो तौ ईश्वरकाभी अवतार होगा जैसा वेदान्तमें लेख है ॥

चराचरव्यवाश्रयस्तुस्यात्तद्व्यपदेशोभाक्तस्तद्भाव-
भावित्वात् शा० अ० २ पा० ३ सू० १६.

उत्पद्यते जीवोम्रियते चेतितस्य जन्ममरणस्य व्यपदेशः प्रत्ययो भाक्तो गौणः कुत्र तर्हि मुख्य इत्याशंक्याह चराचरव्यपाश्रयस्तु मुख्यः चराचरशरीराश्रयस्तु जन्ममरणप्रत्ययो मुख्यस्थावरजंगमानिहि भूतानि जायन्ते म्रियन्तेचाऽतस्तद्विषयौ जन्ममरणशब्दौ मुख्यौ संतौ तत्स्थे जीवात्मन्युपचर्य्येते तद्भावभावित्वात् शरीरप्रादुर्भावतिरोभावयोर्हि सतोर्जन्ममरणशब्दौनासतोः नहिदेहसंबंधादन्यत्र जीवो जातो मृतो वा केनचिल्लक्ष्यत इति सूत्रतात्पर्य्यम् ॥

"एवञ्च जीवस्यैव जन्मप्रातीतिकत्वे परमेश्वरस्य जन्माऽवतारे श्रुतिस्मृतिप्रतिपादिते सति परमेश्वरजन्मप्रातीतिकत्वस्वीकारेऽजत्वश्रुतिर्वास्तवाजत्वमीश्वरे जीवे वा बोधयितुं का हानिरिति निर्विवादतया व्यासभगवदाशयं बुद्ध्वा निरीक्षणीयं सूत्रसंकेतं विना श्रुत्यर्थनिर्णयस्तु वर्षशतेन महता यत्नेनापि न भवतीति बोध्यम्" ॥

भाषार्थ–जीव उत्पन्न हुआ और जीव मरता है ऐसे जन्म मरणकी प्रतीति होती है परन्तु यह अनादिसिद्ध जीवमें जन्ममरणप्रतीति गौणहै तब मुख्य किसमें है इसवास्ते, कहते हैं कि, चर और अचर शरीरमें मुख्य है, क्योंकि स्थावर जंगम शरीर उत्पन्न होते हैं और मरते हैं, इससे तिन शरीरोंमें जन्म मरणका शरीरस्थ जीवात्मामें उपचार होता है, क्योंकि स्थावर जंगम शरीरके जन्म मरणके साथ आत्मामें जन्म मरण प्रतीतिका अन्वय व्यतिरेक है, जब स्थावर जंगम शरीर उत्पन्न होते हैं तब जीवात्मामें जन्म मरण प्रतीत होते हैं, स्थावर जंगम भूत

नहीं उत्पन्न होवै तब तौ जीवात्मामें जन्म मरण प्रतीत नहीं होते, क्यों कि देहसंबंधसे और स्थानमें जीवके जन्म मरण किसीको प्रतीत होते नहीं, यह सूत्रका तात्पर्य है तब प्रकरणसे यह निश्चय होता है कि, जीवात्माके जन्मको जब प्रातीतिक माना है तौ ईश्वरका अवतार रूप जन्म तिसके प्रातीतिक माननेमें क्या हानिहै और जो अजत्वबोधक श्रुतिहै सो वास्तव अजत्वको ईश्वरात्माने बोधन करो क्या हानिहै, समसत्तावाले विरोधी पदार्थ एकस्थानमें नहीं रहसकते, विषमसत्तावाले तौ एक अधिकरणमें भी रहसक्ते हैं, यह सूत्रका आशय है, इसी कारण दयानंदजी व्यासजीके आशयको न समझकर ईश्वरात्मामें जन्मादि असंभव मानकर जीवात्मामें वास्तव जन्म बनानेके वास्ते जीवको परिच्छिन्न मान बैठे हैं, परन्तु यह न विचारा कि, अनादिका जन्म वास्तवमेंही माननेसे अनादित्व भंग होगा क्योंकि पूर्वसिद्धपदार्थका वास्तव जन्म नहीं होसकता जिस पदार्थका किसी भी रूपसे अभाव हो तिसका जन्म वास्तव होताहै (प्रश्न) जीवका तौ लिंगोपाधि विशिष्टरूप है तिसके धर्माधर्मका फल जब स्थावर जंगम शरीर उत्पन्न हुआ तौ जन्मका भान जीवात्मामें होसक्ताहै और ईश्वरात्मामें धर्माधर्म तौ नहीं है, तब धर्माधर्मका फल शरीर भी नहीं होसक्ता, जब शरीरका प्रादुर्भाव न हुवा तौ जन्मका व्यवहार कैसे होगा. (उत्तर) यह तुम्हारा कहना सत्य है धर्माधर्मसे जीव शरीरकी उत्पत्ति होती है, परंतु इस स्थानमें यह निर्णेतव्य है जो धर्माधर्म स्वतंत्रही जीव शरीर जन्मके हेतु हैं वा ईश्वरकी इच्छाद्वारा शरीरके हेतु हैं यदि स्वतंत्रही होवै तौ ईश्वरका अंगीकार निष्फल होगा और स्वतंत्र फल देनेको समर्थभी नहीं है क्योंकि धर्माधर्म जड है इस कारण ईश्वरकी इच्छादिद्वाराही फल देतेहैं यह मंतव्य है जब ऐसा माना तौ धर्माधर्ममें कोई विचित्र शक्ति माननी चाहिये जो पूर्णकाम ईश्वरमें इच्छा करा देतीहै, इसीकारण परमात्मा जगत्की उत्पत्ति पालन संहार करताहै, जब धर्माधर्मकी शक्तिके प्रभावसे ईश्वरमें इच्छादि माने तौ ईश्वरकी इच्छा ऐसी हुई जो ऐसे २ शरीर सर्वको प्रतीत होवै, तब उस इच्छासे जो शरीर साक्षात् शुद्ध सत्व प्रधान प्रकृतिसे हुआ तिसके जन्मसे परमात्मामें जन्मव्यवहार हुआ इसीको परमात्माका अवतार कहते हैं तौ जब तुमनेपूर्ण काम परमात्मामें जीवके धर्माधर्मसे इच्छादि द्वारा जगत्की उत्पत्ति पालना संहारका कर्ता

ईश्वरात्मा माना तौ अवतारके माननेमें दुराग्रह क्यों करते हो अब अवतार युक्तिसे सिद्ध कर मंत्रभी लिखते हैं ॥

रूपंरूपंप्रतिरूपोबभूव तदस्यरूपंप्रतिचक्षणाय
इन्द्रोमायाभिः पुरुरूपईयते युक्ताह्यस्यहरयःशतादश ।
ऋ० मं० ६ अ० ४ सू० ४७ मं० १८

अर्थ-(इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् परमेश्वरो मायाभिः स्वाश्रितानंतशक्तिभिः (पुरुरूपः) नृसिंहरामकृष्णादिरूपः (ईयते) गम्यते कस्मै प्रयोजनाय स्वशक्तिभिस्तत्तत्द्रूपमाविष्क्रियते परमेश्वरेणेत्यत आह तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय अस्य स्वस्य भक्तवात्सल्यादिविशिष्टरूपस्य प्रतिचक्षणाय सर्वेषां पुरतः प्रख्यापनाय ईदृशगुणविशिष्टोऽहमिति सर्वेषां प्रत्यक्षबोधनाय ॥ ननुमाययारचितैरूपैः कथंस्वगुणप्रख्यापनमित्यत आह रूपं रूपंप्रतिरूपोबभूव यादृशं यादृशंरूपं प्रादुर्भावयति तत्सदृशएवभवतीति स्वशक्तिरचितस्य रूपस्य स्वानातिरिक्तत्वात् तन्निष्ठभक्तवात्सल्यादिगुणानां स्वनिष्ठत्वादितिभावः । ननु कतिविधानदृशानिरूपाणीत्यत आह युक्ताह्यस्यहरयः शता दशाहि निश्चयेन अस्य परमेश्वरस्य हरयः संसारस्य दुःखस्यासुरैः प्रापितस्यहरणात् नाशनात् युक्ताः जगद्रक्षणाय नियुक्ता (शता) शतानिनामानंतानिसंति तथा दशनृसिंहादयो दशसन्तीत्यर्थः ॥

पदार्थ (इन्द्रः) परमेश्वर (मायाभिः) अपनी अनन्तसामर्थ्योंसे (पुरुरूपः) अनेक देहोंके रूपवाला (ईयते) होता है (तत्) सो (अस्य) इसअपने (रूपम्) रूपको (प्रतिचक्षणाय) सबभक्तोंपर विख्यात करनेके लिये (रूपंरूपंप्रतिरूपः) जैसे जैसे रूपकी इच्छा हो तैसा २ (बभूव) हुआ (हि) निश्चय (अस्य) इसपरमेश्वरके (हरयः) रूप (शत) सैंकडोंहैं (दश) दशमुख्यहैं यही मंत्र परमात्माके अवतार बोधनकरताहै । यह इन्द्रपरत्वभी है और इन्द्रंमित्रं० मं० १ सू० १६४ मं ४६ के अनुसार ईश्वरपरकभी है ॥

प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगोनभीमः कुचरोगिरिष्ठाः
यस्योरुषुत्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियंति भुवनानिविश्वा ।
ऋ० मं० १ अ० २१ सू० १५४ मं० २

पद-प्रतत्, विष्णुः, स्तवते, वीर्य्येण, मृगः न, भीमः कुचरः, गिरिष्ठाः यस्य, उरुषु, त्रिषु, विक्रमणेषु, अधिक्षियंति, भुवनानि, विश्वा ॥

अर्थ-मृगोन मृगइव तद्विष्णुः वीर्य्येण पराक्रमेण प्रस्तवते स्तुतिं प्राप्नोति भीमः भयानकरूपधरः नृसिंहः अतएव मृगइवेत्युक्तिः संगच्छते कुंपृथ्वीं वराहादिरूपेण चरतीति कुचरः गिरौ कैलासे शिवत्रिनेत्ररूपेण तिष्ठतीति गिरिष्ठाः यस्यविष्णोः त्रिविक्रमावतारे त्रिषुपादेषुविक्रमणेषु सत्सु विश्वा सर्वाणि चतुर्दश भुवनानि अधिक्षियंति चलंतीत्यर्थः ॥

भाषार्थः (मृगोन) मृगकी समान (तत्) सो (विष्णुः) विष्णुभगवान् (वीर्य्येण) अपने पराक्रमसे (प्रस्तवते) स्तुतिको प्राप्त होते हैं (भीमः) नृसिंहरूपसे भीम, (कुचरः) वरहादिरूपसे पृथिवीमें विचरनेसे कुचर (गिरिष्ठाः) कैलासादिगिरिमें स्थित रहनेसे गिरिष्ठहैं (यस्य) जिस-विष्णुके (उरुषु) बडे (त्रिषु) तीन (विक्रमेषु) पादविक्षेपमें (विश्वा-भुवनानि) सम्पूर्णभुवन (अधिक्षियन्ति) कंपित होते वा वसते हैं ॥

वज्रनखायविद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि तैत्तरीयारण्यक १।१।३१
त्वंस्त्रीत्वंपुमानसि त्वंकुमारोउतवाकुमारी
त्वंजीर्णोदंडेनवंचसि त्वंजातोंभवसिविश्वतोमुखः ।
अथर्वकां० १० अनु०४ मं० २७

पदार्थः-हेभगवन् (त्वम्) आप (स्त्री) दुर्गाकाली शक्तिरूप हो (त्वम्) आपही (पुमान्) वामन राम कृष्णरूप (असि) हो (त्वम्) आपही (कुमारः) सनत्कुमारादिरूप (उतवा) और (कुमारी) कन्यारूपसे पूजितहो (त्वम्) आपही (जीर्णः) वृद्धरूपसे (दण्डेन) दण्ड धारणकर (वञ्चसि) अधर्मियोंको वंचित करते हो (त्वम्) आपही (जातः) प्रगट होकर (विश्वतो मुखः) सर्वरूपहो ।

यहां ईश्वरकाही वर्णन है कारण कि आगे २८ मंत्रमें एकोहदेवोमनसिप्रविष्टः प्रथमो जातः सउगर्भे अन्तः २८ इसमें ईश्वरकाही मनमें प्रविष्ट होकर प्रगट होना कहाहै ।

इस मंत्रमें सबही इतिहास पुराण प्रतिपाद्य अवतारोंकी सूचना की है इसकारण यह मंत्रही सबका मूल है अब वामनावतार सुनिये सामवेद छन्द आर्चिक ॥

२२३ ३२ ३ १२ २र ३२ ३२
इदंविष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधेपदम् समूढमस्यपा ᳲ सुरे
३प्र० १।१।९

(विष्णुः) त्रिविक्रमावतारधारी (इदम्) प्रतीयमानं सर्वं जगदु-द्दिश्य (विचक्रमे) विभज्य क्रमतेस्म (त्रेधा) त्रिभिः प्रकारैः (पदंनि-दधे) स्वकीयं पादं प्रक्षिप्तवान् (अस्य) (विष्णोः) पांसुले पांसुरे वा धूलियुक्ते पादस्थाने (समूढम्) इदंजगत् सम्यगन्तर्भूतम् (सेयमृग् यास्केनैवं व्याख्याता विष्णुर्विशतेर्वाप्नोतेर्वा) * शतपथमें भी वामनाव-तारका खुलासा वर्णन है ॥

यथा "वामनोह विष्णुरास" श० १।२।२।५

वामन साक्षात् विष्णु ही थे यहां वामन अवतारकी पूरी कथा लिखी है॥

भाषार्थः—अमरेश त्रिविक्रमावतारी वामनजी इस विश्वको उल्लंघन करते हैं, तीन पग धरते हैं एक भूमि दूसरा अन्तरिक्ष तीसरा स्वर्गमें इनके चरणमें चतुर्दश भुवन ब्रह्मांड सम्यक् अन्तर्भूत होताहै ॥

रामावतारमाह सामवेदे उत्तरार्चिके १५ अ० २ खं० १ सू० ३

भद्रोभद्रयासचमानआगात् स्वसारञ्जारोअभ्येतिपश्चात्
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभिराममस्थात्

पदार्थः (भद्रः) रामभद्रः (भद्रया) सीतयासह (सचमानः) सज्जमानः (आगात्) दण्डकारण्यमित्यर्थात् (स्वसारं) अंगुलयः स्वसारः तद्वन्तं सीतायाः पाणिं गृहीतुं (जारः) रावणः (पश्चात्) रामात्परोक्षे (अभ्येति) आगत इति पूर्वोक्तानुवादः तेन रावणे हते सति जायागार्हपत्यइति । इति श्रुतेः जायासहचरः(अग्निः द्युभिः) द्युलोकसाधनतयाद्युशब्द-वाच्यः रामदारैः सह (रामम्) रामस्याभिमुखम् (अ-स्थात्) स्थितवान् (सुप्रकेतैः) शोभननिचिह्नैरिति: दारा-निर्दोषत्वंसूचितं वितिष्ठन्नस्थादितिसम्बन्धः तिष्ठन्नासीदि-

* जब सायणाचार्य अवतार परत्व व्याख्या करते ही हैं तब सायण अवतार माननेवाले थे इसमें संदेह क्या ? चाहें एक जगह लिखें चाहें अनेक जगह भा० प्र० वालेका आक्षेपका अवसर कहां है ?

त्यर्थः (उशद्भिः) दीप्यमानैः वर्णैः लोहितादिवर्णज्वाला-भिरुपलक्षितः अयंचार्थः पुनः पत्नीमग्निरदादितिमंत्रान्तरे-दृष्टः पक्षे भद्रो बोधः भद्रया श्रद्धया जारः कामः अग्निर्वाक्। नीलकण्ठ भा० ॥

भाषार्थः (भद्रः) भजन करने योग्य रामभद्र (भद्रया) सीता सहित (सचमानः) सज्जित होकर (आगात्) दण्डकारण्यको आता है तब (स्वसारम्) अंगुलीको अर्थात् सीताके हाथको पकडनेको (जारः) रावण (पश्चात्) रामके परोक्षमें (अभ्येति) आता है तब रावणके मारनेके पीछे (सुप्रकेतैः) अच्छे चिह्नोंसे (उशद्भिः) दीप्तिमान् (वर्णैः) वर्णोंसे उपलक्षित (द्युभिः) द्युलोककी साधनभूतरामकी दारा सहित (अग्निः) अग्नि देवता (रामम्) रामके सन्मुख (अभ्यस्थात्) उपस्थित होता है अर्थात् जानकी शुद्ध है यह कह कर जानकीको समर्पण करता है इससे रामका प्रति युगमें अवतार सिद्ध होता है नीलकण्ठका यह भाष्य दयानन्दजीसे सैकडों वर्ष पहलेका है. और भी देखो ॥

ब्राह्मणोजज्ञे प्रथमोदशशीर्षोदशास्यः
ससोमं प्रथमः पपौसचकार संविषम् अथर्व ४। ६। २। १

(प्रथमः) पहले एक (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (जज्ञे) प्रगटा (दशशीर्षः) दशशिर (दशास्यः) दशमुखवाला (सः) उसने देवतादिसे लेकर (सोमः) सोम (पपौ) पिया (सः) उसनेही (रसं) रसको (विषम्) विष (चकार) किया, इसमें रावणका प्रत्यक्ष वर्णनहै ॥

कृष्णावतारमाह ऋग्वेदे

कृष्णंतएमरुशतः पुरोभाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषामिदेकम्
यदप्रवीतादधतेहगर्भं सद्यश्चिज्जातोभवसीदुदूतः।
ऋ० मं० ४ सू० ७ अ० १ मं० ९

पद–कृष्णम्, ते, एम, रुशतः, पुरः, भाः, चरिष्णु, अर्चिः, वपुषाम्, इत्, एकम्, यत, अप्र, वीता, दधते, ह, गर्भम्, सद्यः, चित्, जातः, भवासि, इत, उदूतः ॥

अर्थ—कृष्णं त एम इति, हे भूमन् ते तव रुद्ररूपेण पुरस्तिस्रो रुशतोना शयतः यद्वा पुरःस्थूलसूक्ष्मकारणदेहान् ग्रसतस्तुर्यस्वरूपस्य यत्कृष्णंभाः सत्यानंदचिन्मात्रं रूपं तत्तु एम प्राप्नुयाम, यस्य तव एकामिति एकमेव अर्चिर्ज्वालावदंशमात्रं समष्टिजीवं वपुषां देहानामनेकेषु देहेषु चरिष्णुभो क्तृरूपेण वर्तते यत्कृष्णंभाः अप्रवीता नास्ति प्रकर्षेण वीतं गमनं संचारो यस्याः सा अप्रवीता निरुद्धगतिर्निगडे ग्रस्ता देवकीत्यर्थः (कृष्णाय देव-कीपुत्रायेति छांदोग्ये) देवक्या एव कृष्णमातृत्वदर्शनात् सा स्वगर्भे दधते धारयति दध धारणे इत्यस्य रूपं ह प्रसिद्धं सः त्वंजातः गर्भतो बहिराविर्भूतः सन् सद्य इदुसद्य एव उनिश्चितं दूतः दुनोतीति दूतः मातुःखेदकरोऽतिवियोगदुःखप्रदो भवसीत्यर्थः एतेन देवकीपतेर्वसुदेवस्य गृहे जन्म धृतमिति सूचितम् ॥ नीलकण्ठ भाष्य० ॥

भाषार्थः—हे भूमन् आपका जो सत्यानंद चिन्मात्र रूपहै और रुद्ररू-पसे तीन पुरको नाश करनेवाला वा स्थूल सूक्ष्म कारण देहको ग्रसने-वाला रूप तुरीयात्मा तिस कृष्णभा रूपको हम प्राप्त होवें, जिस आप-के स्वरूपकी एकही अर्चि अर्थात् ज्वालावत् अंशमात्र समष्टि जीव अने-क देहोंमें चरिष्णु अर्थात् भोक्तृरूपसे वर्तमान है और जो कृष्णभाको अप्रवीता अर्थात् निगड़ग्रस्त देवकी गर्भरूपसे धारण करती भई, छान्दोग्यमेंभी कृष्णकी माता देवकी सुनी है, हे भूमन् ! आप प्रसिद्धही गर्भसे प्रादुर्भूत होकर माताके पाससे पृथक् हुये, इससे श्रीकृष्णचंद्रका देवकीके गर्भमें जन्म और महेश्वरावतार, तथा जीवको पूर्व निरूपित चिदंशत्व बोधन किया । इस मंत्रमें सब अवतारादि हैं ॥

एतद्घोर आङ्गिरसःकृष्णायदेवकीपुत्रायोक्त्वावाचेति
सामवेदीयछान्दोग्य उप० प्र० ३ खण्ड १७

यह उपदेश घोर आंगिरसने देवकीके पुत्र श्रीकृष्णजीसे करके मुझसे कहा यहां भी कृष्णका देवकीपुत्र होना प्रगटहै ॥

औरभी ऋक्परिशिष्ट देखो ॥

कालिकोनामसर्पोनवनागसहस्रबलः ।
यमुनह्रदेहसोजातोयोनारायणवाहनः ॥

(कालिकोनामसर्पः) कालीनामकनाग (नवनागसहस्रबलः) नौ-सहस्रहाथियोंके बलवाला (ह) निश्चय (यमुनह्रदे) यमुनाके कुण्डमें

(नारायणवाहनः) नारायण श्रीकृष्णकावाहन (जातः) हुआ अर्थात श्रीकृष्णने उसको नाथा औरभी ॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जागोजाऋतजा अद्रिजा ऋतंबृहत्
यजु. अ० १० मं० २४

वह भगवान् (हंसः) अहंकारहारी (शुचिषत्) आदित्य रूपसे दीप्तिमें रहनेवाले (वसु) मनुष्योंके प्रवर्तक (अन्तरिक्षसत्) वायुरूपसे आकाशमें रहनेवाले (होता) देवताओंके आह्वान करनेवाले (वेदिषत्) अग्निरूपसे वेदीमें बैठनेवाले (अतिथिः) अतिथिरूपसे सबके पूजनीय (दुरोणसत्) आहवनीयसे यज्ञमें बैठनेवाले (नृषत) रामकृष्ण वा प्राणरूपसे मनुष्योंमें होनेवाले (वरसत्) उत्कृष्ट स्थानक्षेत्र आदिमें बैठनेवाले (ऋतसत) यज्ञ वा सत्यमें स्थितहोनेवाले (व्योमसत्) मंडलरूपसे आकाशमें स्थित होनेवाले (अब्जाः) मत्स्यादिरूपसे जलमें होनेवाले (गोजाः) पृथ्वीमें चतुर्विधभूतग्रामरूपसे होनेवाले (ऋतजाः) सत्यमें होनेवाले (अद्रिजाः) पाषाणमें मूर्ति और अग्निरूपसे होनेवाले वा मेघजलरूपसे होनेवाले (बृहत्) महान् परब्रह्म रूपहो ॥ २४ ॥

इस एकही मंत्रमें अवतार और मूर्तिमें भगवदाराधन सब कुछ सिद्ध होताहै तथा और भी अनेक मंत्रहैं जिनमें रामचंद्रके चरित्र हैं ॥

चत्वारिंशद्दशरथस्यशोणाःसहस्रस्याग्रेश्रेणिंनयन्ति ऋ० ।२।१।११

दशरथस्यराज्ञोयज्ञेलब्धाश्चत्वारिंशत्संख्याःशोणाःअरुणाश्वाःसहस्रस्य सहस्राश्ववाह्यस्यापि रथस्याग्रेपुरस्ताच्छ्रेणिं रथनेमिपंक्तिं नयन्तिप्रापयन्ति ॥

राजा दशरथके यज्ञमें चारसौ लालवर्णके घोडे सहस्रों अश्वोंकरिके वहां जाय ऐसे रथके आगे चलते हैं १ ॥

अर्वाचीसुभगेभवसीतेवन्दामहेत्वायथानः सुभगाससियथानः सुफलाससि ऋ० ३ । ८ । ९ ॥

हे सुभगे हे सीते स्यतिसर्वेषांरक्षसामन्तंकरोतीतिसासीतात्वां

वन्दामहे यथानोऽस्माकंसुभगाऐश्वर्यदानेनसुफलाप्रतिपक्षना शनेन असासि दीप्यसेतथाअर्वाचीअनुकूलाभव ॥

हे राक्षसोंका अन्त करनेवाली जानकी ! मैं तुमको प्रणाम करता हूं हमको सुभग ऐश्वर्यको दान करो प्रतिपक्षका नाश करो हम पर अनुकूल हो ॥

इन्द्रःसीतांनिगृह्णातुतांपूषानुयच्छतु ऋ० ३ । ८ । ९

राम सीताको प्राप्त हों जनक उनको प्रदान करें इत्यादि और भी अनेक मंत्र हैं जिनमें पूर्ण रामावतारकी कथा विदित होती है विस्तारके कारण नहीं लिखते हैं ॥

महांऋषिर्देवजोदेवजूतोअस्तभ्रात्सिंधुमर्णवंनृचक्षाः ।
विश्वामित्रोयदवहत्सुदासमपिप्रियायतकुशिकेभिरिन्द्रः ऋ. । ३ । ३ । २२

इसमें विश्वामित्रका रामचंद्रको बुलाने आना प्रत्यक्ष है पूज्य महाऋषि नारायण राजाके आविर्भूत हुए (तं) सुदासम् उन सुदासके गोत्रमें उत्पन्न हुए रामको (विश्वामित्रः) विश्वामित्र अपने यज्ञकी रक्षा करनेको (यंद) जिस कारणसे (अवहत) यज्ञमें प्राप्त करते हुए इस कर्मसे (इन्द्रः) इंद्र (कुशिकैः) कुशिक वंशमें उत्पन्न हुए विश्वामित्र पर (अपिप्रियायत) निर्विघ्न यज्ञकी हवि भोगूंगा इसकारण प्रसन्न हुए वेदके अर्थ कथाभाग और अध्यात्म दोनों पक्ष पर चलते हैं वेदान्तमें अध्यात्म और दूसरे कथा सूचन करते हैं इसीकारण जीव ईश्वर विषयके अनेक गाथा आती हैं ॥

(प्रश्न) वेदोंमें तौ परमेश्वरको अकाय लिखा है जैसे (सपर्य्यगात) और तुम अवतार प्रतिपादन करते हो यह विरोध कैसे मिटै (उत्तर) इसके अर्थ तुमने नहीं विचारे इससे यह भ्रम पड़ गया सुनो यह मंत्र इस प्रकार है ॥

सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषीपरिभूःस्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छा
श्वतीभ्यः समाभ्यः । यजु० अ० ४० मं० ८

पद–सपरि, अगात, शुक्रम, अकायम, अव्रणम, अस्नाविरम, शुद्धम, अपापविद्धम, कविः, मनीषी, परिभूः, स्वयंभूः, याथातथ्यतः, अर्थान, व्यदधत, शाश्वतीभ्यः, समाभ्यः ॥

अर्थ–(सः) सो परमेश्वर (पर्य्यगात) अर्थात आकाशवत सर्वव्यापी है (शुद्धं शुक्रम) अर्थात शुद्ध प्रकाशरूप है, भौतिक प्रकाश विलक्षण ज्ञान स्वरूप अथवा अलौकिकदीप्तिमान परमात्माहै, (अकायम) सूक्ष्मभूतकार्य लिंगशरीर वर्जितहै (अव्रणम अस्नाविरम) स्थूलशरीरमें वर्तमान व्रण और स्नाविर अर्थात नाडीसमूहकर वर्जितहै इन दो विशेषणोंसे भौतिक स्थूल शरीरसे विलक्षण कहा (अपापविद्धम) अर्थात धर्माधर्मरहितहै इस विशेषणसे जीवाभिन्न होनेसे प्रसक्त जो जीवोपाधि लिंगशरीरधर्म धर्माधर्मादि तीनोंका निषेध कियाहै. कवि अर्थात सर्वज्ञहै मनीषी मनका प्रेरकहै परिभू सर्वोपरि वर्तमानहै पूर्व उक्तअकायादि विशेषणसे भौतिक प्राकृत शरीरका निषेध कियाहै, इस अभिप्रायको स्वयंही यह मंत्र प्रगट करताहै (स्वयंभूः) इस विशेषणसे (स्वयमेव ब्रह्मरुद्रविष्णवादिरूपेण भवति प्रादुर्भवतीति स्वयंभूः) आपही वोह परमात्मा अपनी विचित्र शक्तिसे ब्रह्मादिरूपसे होताहै इससे स्वयंभूहै यही अर्थ गीतामें स्पष्टहै ॥

अजोपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपिसन्
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया भ०गी०अ०४श्लोक ६

श्रीकृष्ण कहते हैं हे अर्जुन ! मैं अज और अव्ययात्मा और सबभूतोंका ईश्वर भी हूं तथापि अपनी प्रकृति स्वाभाविक सामर्थ्यको आश्रयकर (आत्ममायया) अर्थात अपने संकल्पसे होताहूं इससे अवतार सिद्धहै और जब परमात्मा ब्रह्मादिभावको प्राप्त हुआ तब (याथातथ्यतः) अर्थात यथावत (अर्थात) कर्तव्य पदार्थोंको (शाश्वतीभ्यः समाभ्यः) दीर्घवर्ष उपलक्षित प्रजापति मनु आदि हेतुओंसे (व्यदधात) विभाग कर्ताहुआ, अथवा जब अकाय कहा तो 'अस्नाविरम' और अव्रणम कहनेकी आवश्यकता क्यारही इससे विदितहोताहै भौतिक कायाका निषेधहै जो कि कायः चिञ् धातुकर्मोंके चयनसे बनता है दिव्यशरीरका निषेध नहीं इसीसे स्वयम्भू पद यहांदियाहै और यस्य पृथिवी शरीरम यह ब्राह्मण वचनहै दयानंदजीने इस मंत्रका अर्थभी मिथ्याही कियाहै वोह प्रसंगविरुद्ध होनेसे प्रमाण नहीं और "चक्रपाण-

येस्वाहा " इस मैत्रायणी शाखाके मंत्रसेभी आकार आवतार दोनों सिद्ध हैं और सुनो यजुर्वेद अ० ३१ मंत्र १९

प्रजापतिश्चरतिगर्भे अन्तरजायमानोबहुधाविजायते
तस्य योनिम्परिपश्यन्ति धीरातस्मिन् हतस्थुर्भुवनानिविश्वा १

(प्रजापतिः) परमेश्वर (गर्भे अन्तः) गर्भके मध्यमें (चरति) प्राप्त होताहै (अजायमानः) नहीं जन्मधारणकरताहुआ (बहुधा) देवता-मनुष्य रामकृष्णादिरूपोंसे (विजायते) प्रगट होताहै (धीराः) ज्ञानी महात्मा सत्वगुणप्रधान पुरुष (तस्य) उस परमात्माके (योनिम्) स्थान वा कारणको (परिपश्यन्ति) ज्ञानसे सब ओरसे देखते हैं (अज्ञानियोंको उसका भेद नहीं विदित होता) (यस्मिन्) जिस परमेश्वरमें ही (ह विश्वा भुवनानि) सबब्रह्माण्ड (तस्थुः) स्थितहैं ॥

शतपथब्राह्मणमें मत्स्यावतारका वर्णन है, यथा—मनवेह प्रातःअवनेग्यमुदकमाजहुर्यथेदं पाणिभ्यामवनेजनायाहरन्त्येव तस्यावने निजानस्यमत्स्यः पाणी आपेदे १ सहास्मै वाचमुवाह बिभृहिमा पारयिष्यामित्वेति २ शश्वद्धझष आस ४ तमेव भृत्वासमुद्रमभ्यवजहार ५ सहोवाच अपीपरं वैत्वावृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व इत्यादि श० कां० १ अ० ८ ब्रा० १ कण्डिका १-६ तक यह संक्षेप कर थोडा लिखाहै कि मनुने अवनेजनके लिये जलहाथमें लिया उनके हाथमें एक मच्छी आगई उसने कहा तुम मुझे पोषणकरो मैं तुम्हें प्रलयके जलसे पारकरूंगा फिर वह बडामत्स्य होगया मनुने समुद्रमें डालदिया तब उसने कहा कि मैं तेरी रक्षा करताहूं नौकाको वृक्षमेंबांध (तस्मृशृंगेनावः पाशं प्रतिमुमोचतेनेतमुत्तरं गिरिमति दुद्राव ५) और नावका रस्सा राजाने उसके शृंगमें बांधा तब वह नौकाखैंचते उत्तरपर्वतकी ओर चले इत्यादि यहां विस्तारके साथ प्रलयका वर्णन है मत्स्यावतारकी कथाहै.

वाराहअवतार अथर्ववेद काण्ड १० अनु० १
वराहेणपृथिवीसंविदाना सूकराय विजिहीतेमृगाय ४८ ॥

अर्थात् वाराह सूकररूपधारी प्रजापतिने यह पृथिवी उद्धारकीहै ॥

इयंतीहवाइयमग्रेपृथिव्यासप्रादेशमात्री तामेमूष इति वराह उज्जघानसोस्यापतिः प्रजापतिरिति श० १४।१।२।११

पहले भूमि प्रादेश मात्र प्रगट हुई उसको वराहने उद्धार किया सो इसकापति प्रजापतिहै ॥

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना तैत्ति-अ-प्र० १अनु १मं३०

हे भूमिः तुमको असंख्यभुजावाले कृष्ण वाराहने उद्धार किया है.

(प्रश्न) यदि परमेश्वरका अवताररूप जन्म मानोंगे तौ अनादिसे सादि अनन्तसे सान्त और व्यापकसे एकदेशवृत्ति होनेसे एकदेशी होना चाहिये (उत्तर) जब जन्म वा शरीर वृत्त होनेसे यह दोषहै तब जीवके जन्मको निर्विवाद होनेसे अनादिसे सादि और अनन्तसे सान्त होना चाहिये और (यआत्मनि तिष्ठन्) (यस्यात्मा शरीरम्) इन श्रुतियोंसे परमात्माको जीवरूप शरीरमें वृत्ति होनेसे और रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव इसमंत्रसे प्रत्येक शरीरमें प्रविष्ट होनेसे ईश्वरको एकदेशी होना चाहिये और व्यापकत्वका भंग होना चाहिये सोसबके शरीरमें प्रविष्ट होनेसे जिसप्रकार तुम परमात्माको व्यापक पूर्ण सर्वत्र मानतेहो, वैसाही अवतारसेभी रहता है, क्योंकि वोह सर्वशक्तिमान् है और यदिनिराकारके अर्थ सम्पूर्ण आकारसे रहित कहोंगे तौ ब्रह्मके सत् चित आनन्दरूप सूक्ष्म आकारका भी निषेध होनेसे शून्यत्वापत्ति दोष होगा और विनिगमनाविरहसे निर्गुण शब्द भी सम्पूर्ण गुणोंका प्रतिषेधक हो जायगा, तौ दयानन्दजीके लिखे सिद्धान्त सिद्ध सत्यकामत्वादिभी ब्रह्ममें नहीं सिद्ध होंगे ध्यान देनेकी बात है जो दिव्य पदार्थ दूसरेके विरोधी गुणोंसे रहित होनेसे निर्गुण कहे जाते हैं, तब तौ विरोधी मलिन आकारसे रहित होनेसे निराकार कहनेमें क्या प्रतिबंध है, परन्तु निर्गुण शब्दसे वा निराकार शब्दसे कहो या न कहो तुम्हारे मतमें वोह दिव्य पदार्थ सदा साकार बने रहते हैं, जब यह तुम्हारे सिद्ध हुआ तौ वोह कौन पदार्थ है यदि ईश्वर भिन्न साकार वस्तु सदा रहनेवाली है, तौ साकारको नित्यत्व प्राप्त होगा, तौ भी दयानंदजीके मतका भंग होगा, क्योंकि स्वामीजीने साकार वस्तु नित्य मानी नहीं यदि सो पदार्थ ईश्वरके अन्तर्भूतहै, तौ ईश्वरको साकारताका निषेध करना असंगत है, इत्यादि सहस्रों वाक्य हैं जो कुछ महाभारतादिमें अवतार विषय हैं सो सब वेदादिकोंसेही लिया है तथा प्रश्नोपनिषद्में परश्वरने यक्षका अवतार लिया यह प्रत्यक्ष है जिसे इच्छा हो देख ले जो कार्य मनुष्योंसे संपादन नहीं होता और ब्रह्माजीके वरदानसे कोई बलिष्ठ हो जाता

है और अधर्म करता है तौ उसके शांत करनेको परमात्माका अवतार होता है, आयोधर्माणि प्रथमः ससादततोवपूंषिकृणुषेपुरूणि अथर्व ५, १।१।२ हेपरमेश्वर सृष्टिकी आदिमें आपने सब धर्मोंको स्थापन किया और बहुतसे वपुनाम शरीर अवतार रूपधारण किये हैं जिसकी मृत्यु मनुष्यसे विधानकीगई है उसे मनुष्य न मार सक्ता हो तौ प्रभु स्वयं मनुष्य होते हैं, इसी प्रकार और भी सबमें जानलेना जैसे गीतामें लिखा है॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्॥
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥१॥

भगवान् कहते हैं महात्माओंकी रक्षा करनेको दुष्टोंके नाश करनेको धर्मके स्थापन करनेको मैं युगयुगमें अवतार लेताहूं पुनः वाल्मिकीये बालकाण्डे स० १५ श्लो० १६

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः॥
शंखचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः॥१॥
तमब्रुवन्सुराःसर्वेसमभिष्टूयसंनताः
त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया॥२॥
राज्ञो दशरथस्यत्वमयोध्याधिपतेर्विभो॥
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वात्मानं चतुर्विधम्॥३॥
तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककंटकम्॥
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम्॥४॥२२

देवताओंकी स्तुति सुनकर विष्णु भगवान् आये शंख चक्र गदा पद्म धारण किये पीले वस्त्रवाले साक्षात् जगदीश्वर १ भगवानसे सब देवता बोले हे भगवन्! आपको लोकोंके हितके वास्ते नियुक्त करते हैं २ कि राजा दशरथके यहां आप आत्माका चार प्रकारसे विभाग कर जन्मलो ३ मनुष्यरूप धारणकर लोकके कंटक देवतोंसे अवध्य महापापी रावणको मनुष्य होकै मारो ४ पुनरपि–

अथ विष्णुर्महातेजा अदित्यां समजायत ॥
वामनं रूपमास्थाय वैरोचनिमुपागमत् ॥ १ ॥
त्रीन्पदानथ भिक्षित्वा प्रतिगृह्य च मेदिनीम् ॥
वाल्मी० बा० सर्ग० २९ श्लो० २०

विष्णु भगवान् महातेजस्वी अदितिके गर्भसे जन्मले वामनरूप धारण कर राजा बलिके पास आये १ तीन पग पृथ्वीकी याचना करते हुए और पृथ्वी सब लेली इत्यादि वाल्मीकिरामायणमें भी अवतार विषय स्पष्ट हैं (प्रश्न) वेदमंत्रोंमें तौ कोई इतिहास नहीं होता इतिहास तौ पुराणादि ग्रंथोंमें है (उत्तर) यह उनकी भूल है जो कहते हैं कि, वेदमंत्रोंमें इतिहास नहीं होता बहुतसे मंत्र इतिहासमिश्रित निरुक्तमें व्याख्यान किये हैं यथाहि–

त्रितं कूपेऽवहितमेतत्सूक्तंप्रतिबभौतत्रब्रह्मेतिहासमिश्रमृङ्मिश्रंगाथामिश्रंभवति नि० अ० ४ खं० ६

कूपमें पडे हुए त्रित नामक ऋषिको यह अधो लिखित सूक्त प्रतीत हुआ वहां ब्रह्म वेद वाक्य इतिहासमिश्रित ऋचायुक्त हैं और गाथा मिश्रित हैं ॥

त्रितःकूपेऽवहितोदेवान् हवत ऊतये तच्छुश्रावबृहस्पतिःकृण्वन्नंहूरणादुरुवित्तंमे अस्यरोदसी ऋ० मं० १ अ० १५ सू० १०५ मं १७

(कूपे) कुयेमें (अवहितः) गिराहुआ (त्रितः) त्रितऋषि (ऊतये) रक्षाके लिये (देवान्) देवताओंको (हवते) स्तुतिकरता है (तत्) सो कि (मे) मेरे (अस्य) इस स्तोत्रको वा कूपतन रूप दुःखको (रोदसी) हे द्यावा पृथ्वीके अधिष्ठातृ देवता जानो यह आह्वान (बृहस्पतिः) देवताओंके बडे अधिपतिने (सुश्राव) सुना और (अंहूरणात्) पापरूप इस कूपसे निकालकर (उरु वित्तम्) बडाश्रेष्ठ (कृण्वन्) करताहुआ ॥

इतिहास शांखायन शाखामें प्रसिद्ध हैं,एकत द्वित और त्रित नामक ऋषि थे, वे तीनों एक समयपर मरुभूमिमें प्याससे सन्तप्त हुए एककूपपर पहुँचे तिन तीनोंमेंसे त्रित जल पान करनेको कूपमें प्रवेश कर जलपी उन दोनोंके अर्थ भी जल लाया, उन्होंने जल पीलिया पीछे फिर तीनों कूपके ढिग पानी पीनेके बहाने गये और त्रितको कूपमें ढके

ल उसके ऊपर रथचक्र धर सब उसका मालमता लेके चल दिये तब त्रितने देवताओंको स्मरण किया और कूपसे निकले यह इतिहास इस मंत्रमें गर्भित है इससे जो कहते हैं वेदमें इतिहास नहीं है वे अल्पश्रुत हैं और भी सुनो सामवेदमें भी लिखा है ॥

अपाम्फेनेननमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः ॥ विश्वायदजयस्पृधः छन्दआर्चिके ३१।२।८

"इन्द्र" त्वम् (अपांफेनेन) वज्रीभूतेन (नमुचेः) असुरस्य (शिरः) (उदवर्तयः) शरीरादुद्गतमवर्तयः अच्छैत्सीरित्यर्थः कदेतिचेत् (यद्) यदा (विश्वाः) सर्वाः (स्पृधः) स्पर्धमाना आसुरी सेना (अजयः) जितवानसि इन्द्रो वृत्रहन्ता असुरान् परास्य नमुचिमसुरं नालभत इत्यादिकमध्वर्युब्राह्मणमनुसन्धेयम् ॥

पदार्थः-(इन्द्र) हे इन्द्र (अपाम्) जलोंके (फेनेन) फेनसे (नमुचेः) नमुचिका (शिरः) शिर (उत् अवर्तयः) शरीरसे पृथक् किया (यत्) जब (विश्वा) सब (स्पृधः) स्पर्धाकरतीहुई असुरसेनाको (अजयः) जीता ! पहले इन्द्र असुरोंको जीतकर नमुचिअसुरको ग्रहण करनेको न समर्थ हुआ और युद्धमें उस राक्षसने इन्द्रको ग्रहण किया और इन्द्र के विनय करनेपर यह कहा कि, जो तू मुझे सन्ध्या समय सूखे गीले आयुधसे न मारे तौ मैं छोड़दूं इन्द्रने इस बातको मान जब छुटकारा पाया और फिर युद्ध किया तो सन्ध्यासयय इन्द्रने वज्रमें फेन लपेट कर उसे मारडाला यह इतिहास इस मंत्रमें गर्भित है ॥

इन्द्रोदधीचोअस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतःजघाननवतीर्नव
सामवेदे २ प्र० २। ७।९

" अप्रतिष्कुतः " परैरप्रतिशब्दितःप्रतिकूलशब्दरहितः (इन्द्रः) आथवर्णस्य (दधीचः) एतत्संज्ञकस्यऋषेः (अस्थभिः) पार्श्वशिरःसम्बान्धिभिरस्थिभिः (नवतीर्नव) नवसंख्याकानवतीः दशोत्तराअष्टशतसंख्याकाः (८१०) वृत्राणि आवरकाणि असुरजातानि (जघान) हतवान्-

पदार्थः-(अप्रतिष्कुतः) दूसरोंसे प्रतिकूल शब्दरहित (इन्द्रः) इन्द्र (दधीचः) अथर्वणदधीचकी (अस्थिभिः) अश्वशिरसम्बन्धी अस्थियोंसे (नवतीर्नव) आठसेदश (वृत्राणि) वृत्रोंको (जघान) मारता हुआ यहांभी यह इतिहास है आथर्वण कुलके दधीच ऋषिने जीवितसमय

देखनेहीसे असुरोंको परास्त किया जब वे स्वर्गको गये, तौ पृथ्वी असुरोंसे पूर्ण होगई जब इन्द्र उनके साथ युद्ध करनेको प्रवृत्त हुआ तौ उन्हें निग्रह करनेमें समर्थ नहो ऋषिको ढूँढने लगे बनवासियोंने कही महाराज ! वे तौ ब्रह्मलोकको गये, तब इन्द्र बोला उनका शरीर कहां पातहुआ और उनका कुछ अंग मिलसक्ता है, ऋषिगण बोले कि, उनका आश्वशीर्ष अंग है जिस शिरसे अश्विनीकुमारोंको विद्या सिखाई थी, पर वोह कहां है हम नहीं जानते तब इन्द्रने कहा ढूँढो तौ ऋषिगण खोजने लगे और पाया इन्द्रने उस शिरकी हड्डियोंसे (आयुध) बनाय८१० असुरोंको जीता सोई यह मंत्र कहाता है कि " इन्द्रने दधीचिके हाडसे आयुध बनाय असुरोंको जीता " ऋग्वेदमेंभी यही मंत्र है इसप्रकार औरभी बहुत इतिहास हैं । जायापतिं विपृच्छति राष्ट्रेराज्ञः परीक्षितः अथर्व कां० २० । ९।१२८। मं०९ राजापरीक्षित्के राज्यमें जायापतिको आनंदसे बोलतीहै इत्यादि और भी अथर्व वेदकाण्ड ८ अनु० ५सू० १० सोदक्रामत सासुरानागच्छत् तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति १ तस्याः विरोचनः प्राह्लादिर्वत्स आसीदायस्पात्रं पात्रम् ॥ २ ॥

तब वह चलकर असुरोंपर आई असुरोंने उसे बुलाया मा यहां आओ । प्रह्लादका पुत्र विरोचन गोरूप भूमिका वत्स हुआ लोह पात्र पात्र हुआ इत्यादि इस काण्डके पांचवें अनुवाकके अन्ततक भूमि दुहनका वर्णन है जैसा श्रीमद्भागवतमें राजा पृथुका गोदोहनवर्णनहै ।

(प्रश्न) इन बातोंसे तौ यह विदित होताहै कि इन इतिहासोंके पश्चात् वेदकी रचना हुई है (उत्तर) वेदमें भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालकी वार्ता वर्तमानवत् रहती है, ईश्वरके ज्ञानमें तीनों काल वर्तमानवत् हैं यथा—

भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति मनु० ।

अर्थात् भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालके समाचार वेदोंसे जाने जाते हैं परमेश्वरका ज्ञान सदा एकरस अखंडित वर्तमान रहताहै भूतभविष्य जीवोंके लिये है यह दयानंदजीनेभी स० प्र० पृ० १९४ पं० ९ में लिखा है फिर इतिहास अवतारादि वेदोंमें हो तो क्या संदेह है ?॥ समाप्तंचेदमवतारप्रकरणम् ॥

सर्वशक्तिमान्प्रकरणम् ।

स० पृ० १८२ पं० १३ (प्रश्न) ईश्वर सर्वशक्तिमान् है वा नहीं ? (उत्तर) है परन्तु जैसा तुमने सर्वशक्तिमानका अर्थ जानरक्खा है वैसा

नहीं किन्तु सर्वशक्तिमान्का यही अर्थ है कि, ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति पालन प्रलयादि और सब जीवोंके पुण्यपापकी यथायोग्य व्यवस्था करनेमें किंचित्भी किसीकी सहायता नहीं लेता, अर्थात अपने अनन्त सामर्थ्यसे सब काम पूर्ण करता है, फिर पं० १९ में लिखा है और जो तुम कहो कि, सब कुछ चाहता और कर सक्ताहै तौ हम पूछते हैं कि, परमेश्वरको अपनेको मार अनेक ईश्वर बना स्वयं अविद्वान् चोरी आदि पापकर्म कर दुःखीभी हो सक्ताहै ॥ १९।२२

समीक्षा-ऐसा विदित होताहै कि, ईश्वरने स्वामीजीसे कर्ज काढा होगा, और एक तमःसुक लिख दिया होगा, जिसके जरियेसे सत्यार्थ प्रकाश बनालिया कि, जिससे सर्वशक्तिमान्का अर्थ अपनाही ठीक रक्खा है, और ग्रंथोंका अशुद्ध जब कि ईश्वर उत्पत्ति पालन लय जीवों के काममें किसी प्रकारकी सहायता नहीं लेता, तौ इसके व्यतिरिक्त तारागणादिकी रचनामें जरूर सहायता लेता होगा, यह स्वामीजीकेही लेखसे खुलसक्ता है, जैसे कि, वेदार्थमें स्वामीजीसेही सलाह लीहोगी तथा आपने भूमिकाभी नई गढी क्या वेदका अर्थ आपहीको आताथा और आपने यहभी कोई ईश्वरपर बडीही कृपा करी जो सर्वशक्तिमान् नाम तौ रहने दिया, परन्तु अर्थ ऐसा किया है जैसे कोई बँधुएका नाम स्वतंत्र रखदे, वा स्वतंत्रका नाम बँधुआ रखदे स्वामीजी तुमने तौ अपने जान वेदभाष्य भूमिकामें ईश्वरको बांधही लिया है और सत्यार्थप्रकाशरूपी तमस्सुककी धमकी देतेहो कि, खबरदार अवतार न लेना नहीं तौ नालिश करदी जायगी, यह अवतारही दूर करनेके वास्ते आपने उसकी अनन्त सामर्थ्य में धब्बा लगाया है, मगर क्या होसक्ता है और यह तौ अजबही बात कही कि " जो चाहै सो करै तौ अपने आपको मारडालै चोरी करै" धन्य दयानंदजी ! इस निर्बोधानंदका क्या ठिकाना है । क्या जो जो चाहैं सो कर सक्तेहैं वे चोरी करतेहैं आत्मघात करतेहैं यह दोनों काम करनेको तौ निर्बलभी समर्थहै जब चाहैं तब प्राण त्यागें और जब चाहैं तब चोरी करैं तौ जितने इस कार्यमें समर्थ हैं सबही मरजाने चाहिये, सो तौ नहीं होता किन्तु जो अज्ञानी हैं वोही किसी वस्तुकी इच्छा होनेसे और उसके न मिलनेसे दुःखी हो प्राण खोदेते हैं पर ज्ञानी नहीं निर्धन दुष्ट चोरी करते हैं ईश्वरमें पूर्णज्ञान सदा रहताहै, वोह क्यों आत्मघात करैगा ?

उसकी इच्छामात्रसे सब जगत् उत्पन्न होजाताहै फिर वोह पूर्णज्ञानी कौनसे कारणसे मरे और नित्यका नाश नहीं होता, आत्माका कोई भी नाश करसकताहै ? जब ईश्वर अजर अमर है प्रकाशस्वरूप है अकाय है तौ अपनेको कैसे मारै आत्माके लक्षण तौ सुनो–

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः
न चैनं क्लेदयंत्यापो नशोषयति मारुतः । भ० गी० ॥

न कोई शस्त्र इसको छेदन करसकता, न अग्नि जला सकती, न पानी गला सकता, न वायु सुखा सकताहै, जब ऐसा आत्माहै जिसका स्वरूप कुछ जाना नहीं जाता फिर कैसे उसका नाश हो सकताहै ? क्या कोई ईश्वरको आपने मूर्ख जाना जो वोह सर्वशक्तिमान् होनेसे अपनेको मार डाले, तौ वोह शब्दही क्यों रक्खा, अलग कर दिया होता, इसी विद्यापर वेदभाष्यकी रचना करीथी, सर्वशक्तिमान्के अर्थ हैं कि, सब प्रकारकी जिसमें ताकत हो, जो चाहै सो करसकै, परन्तु आपसे कदाचित् ईश्वरने वार्ता करीहो ओर बतादिया हो कि, सर्वशक्तिमान्का प्राचीन अर्थ अशुद्ध है; यह अर्थ ठीक है परन्तु दयानंदजी वेद तौ यों कहता है ॥

नतंविंदाथयइमाजजानान्यद्युष्माकमन्तरम्बभूव । नीहारेण प्रावृताजल्प्याचासुतृपं उक्थशासश्चरन्ति यजु० अ० १७ मं० ३१

पदार्थः–(यः) जो ईश्वर (इमा) इस भुवन और सब प्राणियोंको (जजान) उत्पन्न करताहुआ तथा (युष्माकम्) तुम्हारे सबके (अन्तरम्) मध्य (अन्यत्) अन्तर्यामीरूपसे स्थित (बभूव) हुआ (तम्) उस ईश्वरको (यूयम्) तुम (नविदाथ) नहीं जानते क्योंकि (नीहारेण) नीहार सदृश अज्ञान (च) तथा (जल्प्या) देवता हूं मनुष्य हूं यह मेरा घर है क्षेत्र है इत्यादि असत्य जल्पनासे (प्रवृत्ताः) युक्त और (असुतृपः) केवल प्राणोंके पोषक होकर (उक्थशासः) परलोकमें भोगोंको संपादन करनेको यज्ञमें शास्त्रस्तुति करनेको (प्रवर्तन्ते) प्रवृत्त होते हैं ॥

जिसको जाननेको वेद कहताहै कि, तुम नहीं जानते दयानंदजी उसको और उसकी सर्वशक्तिको कैसे जानगये ? जो योगियोंकोभी अगम्य है ! और देखो–

एतावानस्य महिमाऽतोज्यायाँश्च पूरुषः
पादोस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि

यजु० अ० ३१ मं० ३

पदार्थः-(अस्य) इस परमेश्वरकी (महिमा) ऐश्वर्य विभूति (एतावान्) इतनीही नहीं (च) किन्तु (पूरुषः) चिदात्मा परमेश्वर (अतः) इस संसारसे (ज्यायान्) अतिशय अधिक है जिस कारण (विश्वा) सब (भूतानि) ब्रह्माण्ड (अस्य) इस परमात्माका (पादः) चतुर्थांश अर्थात् एक चौथाई हैं (दिवि) वैकुण्ठलोक अर्थात् निज स्थानमें (अस्य) इस (त्रिपादस्य) त्रिपादका स्वरूप (अमृतं) विनाशरहित है ॥

इससे विदित होताहै कि, जो कुछ यह आकाश पाताल सम्पूर्ण तारामंडल सहित है यह सब तो उसकी महिमाकी चौथाई है, जिसके पदार्थोंहीतकका अभीतक लाखों बरससे भेद नहीं जाना जाता, इससे तिगुनी महिमा उसके निजलोकमें स्थित है फिर उस अनन्त परमात्माकी महिमा और सर्वशक्तिमानी दयानंदजीने कैसे जानली और उस अनन्त ऐश्वर्यवाले परमात्माकी सृष्टिका क्रम आपने कैसे जाना ? जो कह देते हो कि, यह सृष्टिक्रमविरुद्ध है, वोह सब कुछ करसकताहै सारा संसार और जो कुछभी है यह सब उसीकी महिमासे उत्पन्न है ॥

नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं नासीद्रजोनोव्योमापरोयत् ।
किमावरीवः कुहकस्यशर्मन्नम्भः किमासीद्गहनंगंभीरम् ।

ऋ० मं० १० अ० ११ सू० १२९

(तदानीं) महाप्रलयकालमें (असत्) अपरा माया (न) नहींथी (सत्) जीव (नो) नहीं (आसीत्) था (रजः) रजोगुण (न) नहीं (आसीत्) था (यत्) जो (व्योम) आकाश तमोगुण (अपरः) सतोगुण (नो) नहीं था (कुहकस्य) इन्द्रजाल रूप (शर्मन्) ब्रह्माण्डके चारोंओर जो (आवरीवः) तत्त्वसमूहका आवरण होताहै (तत् किं) ("नकिमप्यासीत्") वोहभी नहींथा (गहनंगंभीरम्) गहन गंभीर (अम्भः) जल (किम आसीत्) क्या था अर्थात नहींथा ॥

स्वामीजी कान खोलकर सुनो उस समय यह तुम्हारे नित्य माने पदार्थभी नहींथे ॥

नमृत्युरासीदमृतंनतर्हि नरात्र्याअह्नआसीत्प्रकेतः
आनीदवातं स्वधयातदेकंतस्माद्धान्यन्नपरः किंचनास ऋ० २

(तर्हि) तिस समय (मृत्युः) मौत (न) नहीं (आसीत्) थी (अमृतम्) जीव (न) नहीं (आसीत्) था (रात्र्याः) रात (अह्नः) दिनका (प्रकेतः) ज्ञान (न आसीत्) नहीं था (अवातं) प्राणरहित (स्वधया) अपनी परा शक्तिसे (एकम्) अभिन्न एक (तत्) ब्रह्मही (आसीत्) था (तस्मात् ह) उस सर्वशक्तिमानसे (अन्यत्) अन्य (किंच) और कुछभी (न) नहीं (आस) था ॥

अब विचारनेकी बात है कि, एक ब्रह्मके सिवाय जब कुछभी न था और फिर अब सब कुछ करके दिखाया तो वोह सर्वशक्तिमान् क्यों नहीं और वोह सब कुछ करता स्वयं अवतारभी धारण करता है यथाहि ॥

यइमाविश्वाभुवनानि जुह्वदृषिर्होतान्यसीदत्पितानः
सआशिषाद्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ २ ॥ऽआविवेश
यजु० अ० १७ मं० १७

पदार्थः-(यः) जो (ऋषि) अतीन्द्रियद्रष्टा सर्वज्ञ (होता) संसाररूप होमका कर्ता (नः) हम वैदिक मंत्रोंका (पिता) जनक उत्पन्न करनेहारा परमेश्वर (इमा) इस (विश्वा) इस सम्पूर्ण संसारको (जुह्वत) प्रलयकालमें संहार करता हुआ (न्यसीदत्) अकेलाही स्थित हुआ (सः) वोही (प्रथमच्छत्) प्रथम एक अद्वितीयरूपमें प्रविष्ट होता (आशिषा) फिर सृष्टिकी रचनाकी इच्छासे (द्रविणम्) जगत् रूप धनको (इच्छमानः) इच्छा करताहुआ (अवरान्) मायाविकार व्यष्टि समष्टि देहोंमें (आविवेश) अन्तर्यामि रूपसे प्रविष्ट हुआ ॥

अब समझ लीजिये कि, वोह क्या क्या करसक्ताहै वोह सब कुछ करनेको समर्थ है और देखिये दयानंदजीने स्वयं सत्यार्थप्रकाशमें लिखा है परन्तु श्रुतिभी बदली है और अर्थभी बदला है परन्तु इनके यथार्थ अर्थसे उसकी सर्वशक्तिमत्ता प्रगट होतीहै कि, वोह सब कुछ करसक्ताहै ॥

स० पृ० १८८ पं० २४

अपाणिपादोजवनोग्रहीतापश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
सवेत्तिविश्वं*नचतस्यास्तिवेत्तातमाहुरग्र्यंपुरुषंपुराणम् १अ.३मं०१९

परमेश्वरके हाथ नहीं परन्तु अपनी शक्तिरूप हाथसे सबका रचन ग्रहण करता पग नहीं परन्तु व्यापक होनेसे सबसे अधिक वेगवान् चक्षु-का गोलक नहीं परन्तु सबको यथावत् देखता श्रोत्र नहीं तथापि सबकी बातें सुनता, अन्तःकरण नहीं परन्तु सब जगत्को जानताहै उसको अव-धि सहित जाननेवाला कोईभी नहीं उसीको सनातन सबसे श्रेष्ठ सबमें पूर्ण होनेसे पुरुष कहते हैं १

स० पृ० १८९ पं० ७

नतस्यकार्य्यंकरणंचविद्यते नतत्समश्चाभ्यधिकश्चदृश्यते ।
परास्यशक्तिर्विविधैवश्रूयते स्वाभाविकीज्ञानबलक्रियाच २
श्वे० अ० ६ । मं०८

परमात्मासे कोई तद्रूप कार्य और उसको करण अर्थात् साधकतम दूसरा अपेक्षित नहीं न कोई उसके तुल्य और न अधिक है सर्वोत्तम शक्ति अर्थात् तिसमें अनन्त ज्ञान अनन्त बल और अनन्त क्रियाहैं वोह स्वाभाविक अर्थात् सहज उसमें सुनीजाती हैं, जो परमेश्वर निष्क्रिय होता तौ जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलय न कर सक्ता इस लिये वोह विभु तथापि चेतन होनेसे उसमें क्रियाभी है ॥

समीक्षा—ऊपरकी श्रुतिमें स्वामीजीने बहुत पाठभेद किया है (स-वेत्तिवेद्यम्) के स्थानमें 'विश्वं' पद लिखा है और (महान्त) पदके स्थानमें (पुराण) पद (नचतस्यास्ति) इसमेसे अस्ति पदको त्या-कर उपनिषद् वचन लिखकर अर्थ किये है यह वचन श्वेताश्वतर उप० अ० ३ मं० १९ के हैं अर्थ यह है पाणि तथा पादसे वर्जितहै आत्मा और जवन तथा ग्रहीता अर्थात् ग्रहण करनेवाला है भाव यह है कि, हस्तपाद उपाधि सहित होकर वेगवान् तथा ग्रहण करताहै, परन्तु स्वरूपमें हस्त-पाद उपाधि रहित है, इसी रीतिसे वास्तव चक्षुकर्ण रहित है परन्तु चक्षु कर्णउपाधि सहित होकर देखता तथा सुनता है सो आत्मा वेद्य वस्तुको जानता है तिसके जाननेवाला दूसरा नहीं स्वयंप्रकाश होनेसे जिस

* सवेत्तिवेद्यंनच तस्यास्तिवेत्तातमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् १८९७ के सत्यार्थप्रकाशमें यह पाठ बदलाहै सो शुद्धहै ।

महान् पुरुष सर्व नाम रूप प्रपंचसे आगे होनेवालेको वेद वचन कथन करते हैं ॥

अब स्वामीजिके श्रुतिअर्थमें दृष्टि देना चाहिये " यह जो कहा कि परमेश्वरके हाथ नहीं परन्तु शक्तिरूप हाथसे सबका रचन ग्रहण करता है " यहां यह पूछना है कि, शक्ति परमात्मासे भिन्न है वा अभिन्न या भिन्न अभिन्नसे विलक्षण विचित्रतावाली अनिर्वचनीय है जो भिन्न कहो तौ अनादिही मानना होगा तौ तुम्हारे मानेहुए तीन पदार्थ जो नित्य हैं जीव ईश्वर प्रकृति जडरूप (पृ० २०९) में अब एक चौथा पदार्थ शक्तिभी होगी जो सादि मानो तो सादिशक्तिरूप शरीरसे ईश्वर शरीरी होजायगा इससे ईश्वरका शरीर सादि नहीं है यह कथन असंगत होगा और जो अभिन्न ईश्वरसे शक्तिको मानो तो शक्ति जड है और जड़ चेतनका अभेद वास्तवमें बाधित है और भिन्न अभिन्नसे विलक्षण मानोंगे तौ तिससे भिन्न जड़ प्रकृतिका मानना निष्फल है क्यों कि ऐसा अद्भुत शक्तिमान् ईश्वर जड़प्रकृतिकी सहायता नहीं चाहता वोह तो मन तथा कामनाद्वारा प्रपंचरचनां करदेताहै देखो–

ऋ० मं १० सू० १२९ मंत्र ४

कामस्तदग्रेसमवर्तताधिमनसोरेतः प्रथमंयदासीत्
सतोबन्धुमसतिनिरविन्दन्हृदिप्रतीष्याकवयोमनीषा १

पद । कामः, तत्, अग्रे, समवर्तत, अधिमनसः रेतः प्रथमम्, यत्, आसीत्, सतः, बन्धुम्, असति, निरविन्दन्, हृदि, प्रतीष्य, आ०कवयः, मनीषा ॥

(मनसोयत् प्रथमं रेत आसीत तत् अग्रेकामोअधिसमवर्तत) अन्वयः॥

अर्थ–मूल प्रकृतिसे जो जगत् सर्जन इच्छा ईक्षण संकल्पादिका आश्रय प्रथम मन उत्पन्न हुआहै तिस मनको जो प्रथम (रेतः) कार्य्य होता-हुआ सो पूर्वकालमें कामरूप होकर (अधि) अधिकता करके (सम-वर्तत) होताहुआ इतने मंत्रसे यह जनाया कि, जो प्रथम ईक्षण संक-ल्पविशिष्ट मन होताहुआ पश्चात् उस मनमें काम इच्छा उत्पन्न होतीहुई जैसा तैत्तिरीय श्रुतिमेंभी सिद्ध है " सोकामयतबहुस्यांप्रजायेयेति " वह मनोभावापन्न मूलप्रकृति कामना करती हुई कि, मैं बहुतरूप हो प्रजारूपसे अपने स्वरूपको वैसाही स्थितकर प्रतीत हूं अब मंत्रके उत्तरा-र्द्धसे परमात्मामें जगतस्थिति प्रकार कहते हैं (कवयोमनीषाहृदिप्रतीष्य

असतिसतोबन्धुंनिरविन्दन्) जो मेधावी पुरुष हैं वे अपने (हृदि) हृद-यकमलमें (प्रतीष्य) विचार करके (असति) पूर्व उक्त अनभिव्यक्त नाम रूप मूल प्रकृतिमें (सतः) सत्यरूप करके प्रतीयमान जगत्का (बन्धुम्) बन्धन हेतु पूर्वउक्त कामको (निरविन्दन्) निश्चय करतेहुए भावार्थ यह है जगत्का बन्धनहेतु काम है जो मनसे उत्पन्न हुआ है तो शक्तिरूप हस्तसे रचना कहना दयानंदजीका वेदविरुद्ध है और इस मंत्रमें तो ग्रहीता यह पद है अर्थ इसका पूर्वरचित पदार्थका ग्रहण है कुछ रचना शब्दार्थ नहीं इससे इसका रचना अर्थ करना अशुद्ध है इससे बृहदा० अ० ५ ब्रा० ७ यश्चक्षु इत्यादि १८ मंत्रके अनुसारही इसका अर्थ है सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीर, हस्त, पाद, चक्षु, श्रोत्र, मन आदि हैं वेही सम्पूर्ण परमात्माके शरीरादि हैं और वास्तव दृष्टिसे केवलही स्वरूप है इससे तिस तिस उपाधिसहित होकर क्रिया करता है परन्तु वास्त-वमें सर्व क्रियारहित है यह सब श्रुतियोंका अभिप्राय है और व्यापक होनेसे जो दयानन्दने अत्यन्त वेगवान् कहा है सोभी व्यापक वस्तुमें गमन उपाधि विना प्रतीत नहीं होता तो (जवनः) अत्यन्त वेगवान् यह शब्दप्रयोग कैसे होसकताहै इससे सोपाधिकत्व कल्पना विना दूसरा अर्थ बन नहीं सकता और यह जो लिखा है कि " तिसको अवधिस-हित कोई नहीं जानसकता " इस कहनेका भाव यह स्वामीजीने रक्खा है कि, जो परमेश्वर तो दूसरे करके जाना जाताहै परन्तु तिसकी अवधि न जाननेकर (नचतस्यास्ति) यह कहना बनसकताहै परन्तु यह अर्थ करेंगे तो परमेश्वरको वेद्यत्व प्रसक्त होगा और वेद्यत्व प्रसक्तिसे जड़-त्वादि दोष होंगे, स्वयंप्रकाशत्वबोधक श्रुतिका बाध होगा इससे इस श्रुतिमें परमात्माको अवेद्यत्व बोधन कर सर्वका वेत्ता कहनेसे स्वप्रका-शही बोधन कराहै इसीप्रकार दूसरी श्रुतिभी कहती है उसे कार्य और कारणकी कुछ आवश्यकता नहीं है वोह अपनी इच्छासे जो चाहै सो कर सकता है ॥

अघनाशनप्रकरणम् ।

पृ० १८२ पं० ३० क्या स्तुति आदि करनेसे ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करनेवालेका पाप छुटादेगा. (उत्तर) नहीं (प्रश्न) तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना (उत्तर) उसका फल अन्यही है स्तुतिसे ईश्वरमें प्रीति उसके गुण कर्म स्वभावसे अपने गुणकर्मस्वभा-

वका सुधारना प्रार्थनासे निरभिमानता उत्साह और सहायका मिलना उपासनासे परब्रह्मसे मेल और उसका साक्षात्कार होना. पृ० १८३ पं१८ और जो केवल भांडके समान परमेश्वरके गुणकीर्तन करताजाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसकी स्तुति करना व्यर्थ है पुनः पृ० १८६ पं० १३ ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न ईश्वर उसे स्वीकार करता है जैसे हे परमेश्वर आप मेरे शत्रुओंका नाश, मुझको सबसे बडा, मेरी प्रतिष्ठा और मेरे ही आधीन सब हो जाय पुनः पं० १९ ऐसी मूर्खताकी प्रार्थना करते २ कोई ऐसीभी प्रार्थना करैगा कि हे परमेश्वर ! आप हमको रोटी बनाकर खिलाइये मकानमें झाडू लगाइये वस्त्र धोदीजिये खेत वाडीभी कीजिये इस प्रकार जो परमेश्वरके भरोसे आलसी होकर बैठे रहते हैं वोह महामूर्ख हैं पुनः पृ० १९२ पं० ३ ईश्वर अपने भक्तोंके पाप क्षमा करताहै वा नहीं (उत्तर) नहीं क्यों कि जो पाप क्षमा करैं तौ उसका न्याय नष्ट होजाय क्योंकि क्षमाकी बात सुनतेही उनको पाप करनेमें निर्भयता और उत्साह होजाय, जैसे राजा अपराधको क्षमाकरदे तौ वे उत्साह पूर्वक बडेबडे पाप करैं क्यों कि राजा उनका अपराध क्षमाकरदेगा तौ उनको भरोसा होजायगा कि राजासे हाथ जोडकर अपराध छुडालैंगे और जो अपराध नहीं करते वेभी अपराध करनेसे न डरकर पाप करनेमें प्रवृत्त होजायंगे ॥ पृ०१९२। ११॥१९३।५॥१९६॥६॥२०२॥२०

समीक्षा–यहां तौ स्वामीजी सारी उपासना स्तुतिकी चटनी करगये लो अब ईश्वरकी प्रार्थनाभी मत करो क्योंकि वोह हमें उसका फल देता नहीं, पाप क्षमा करता नहीं, फिर ईश्वरका अंस्तित्व स्वीकारकरनेसे क्या लाभ ! उसका भजन करना वृथा होगा तौ " प्रयोजनंविना मन्दोऽपिनप्रवर्तते" विनाप्रयोजन मन्द पुरुषभी कोई काम नहीं करते फिर ईश्वरका नामस्मरणभी निरर्थक है, तौ सब कर्मोंका फलभी निरर्थक होगा बस कर्मकाण्डभी समाप्त करदिया, जब ईश्वरही जो सबसे श्रेष्ठ है स्तुति प्रार्थनासे पाप दूर नहीं करता तो कौनसा शुभकर्म है जिसके करनेसे मनुष्य दुःखसे छूटैं जब कि श्रेष्ठ कर्म करनेसे श्रेष्ठ फल बुरा कर्म करनेसे अनिष्ट फलकी प्राप्ति होतीहै तौ उस पवित्रात्माका स्मरण उपासना ध्यान करनेवाला पवित्र क्यों नहीं होगा ? (जो यह कहो कि उसके नामसे अपने गुणकर्मोंको सुधारै) तौ जब उसका नाम कुछ गुण रखता है तभी तौ मनुष्य उसके गुणकर्मसे अपने गुणकर्म सुधार सकताहै नहीं

तौ किस प्रकार सुधार सकताहै, यदि स्वयंही सुधारसकता तौ उसके नामस्मरणादिकी आवश्यकता क्या थी ? जब उसके नामसे गुण कर्म स्वभाव सुधरते हैं तौ पवित्र क्यों नहीं होसक्के ? जो पाप दूर नहीं हो सक्के तौ गुण कर्म स्वभावभी नहीं सुधरसक्के और ईश्वरमें कर्मही क्याहै जिसकी सदृश वोह अपने गुणकर्म सुधारैं, और गुणकर्मही सुधारैं तौ किसी भले आदमीके चरित्र देख अपने कर्म सुधार सक्ताहै, इससे ईश्वरकी आवश्यकताही नहीं रहती, ईश्वरको निराकार मान्ते हो तौ उसके कर्म क्या होंगे इससे तौ आप रामचन्द्रको श्रेष्ठ पुरुष मानते हो उनके सबही आचार श्रेष्ठ थे उन्हींके नामस्मरण करनेसे मनुष्य अपने चरित्र सुधार सक्केहैं, फिर आपको ईश्वरकी आवश्यकता क्यों, जब आप कहते हैं कि प्रार्थना करनेसे अहंकार दूर होगा सहायता प्राप्त होगी तौ क्या उसके पाप दूर न हुए साधारण हाकिम जिनकी सहायता करते हैं उनके दुःख दूर होजाते हैं, और जब ईश्वरने सहायता करी तौ पाप कहां बस ईश्वरने सहायता करी तौ भक्तोंके मनोरथ पूर्ण होगए, और पापसे छूट सुखके भागी हुए सुख जबही होताहै जब पाप दूर होते हैं, इस सहायता करनेसे तो दयानंदजीका लेखही उनके लेखको खंडन करताहै और उपासनासे ब्रह्मसे मेल होनाभी आपने क्या सोच कर लिखाहै जो मेल हुआ तौ फिर पृथक् होना कठिनहै, जो जल गंगाजलमें पडगया हजार यत्नसे वोह फिर अलग नहीं होसक्ता और वोह गंगाजलही होजाताहै इसी प्रकार जब उपासना करनेसे ईश्वरसे मेल होगया तौ उसकी पवित्रतामें क्या संदेह है पापीसे ईश्वरका मेलही नहीं होसक्ताहै, मेल होने उपरान्त फिर मुक्तिसे नहीं लौट सक्ताहै, और ईश्वरके प्रत्यक्ष होनेके आपने विशेष अर्थ नहीं खोले क्या वोह इन्द्रियोंके सामने होजाताहै, क्योंकि जो आकारवाला होगा वोही इन्द्रियोंके सामने होगा इससे तौ सिद्ध होताहै कि ईश्वर साकार है, निराकार प्रत्यक्ष कैसे होसक्ताहै और यह जो लिखा कि (जो भांडके समान परमेश्वरकी स्तुति करता है और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है)यह तौ बडाही उलटा लेखहै क्योंकि ईश्वरकी प्रार्थना तौ सकाम इसीसे करीजाती है कि यह कार्य हमसे नहीं हो सक्ता ईश्वर तू हमारी सहायता कर, जो अपने चरित्र सुधारनेमें असमर्थ है वा और किसी कार्यमें वेही तौ प्रार्थना-कर सहायता चाहतेहैं कि परमेश्वर हमारे चरित्र सुधरें हमारे काम बनें ऐसी कृपाकरो जो जिस कामके करनेमें स्वयं समर्थ होता है वोह कब

दूसरेसे सहायता चाहता है, जो अपने चरित्र सुधारनेमें स्वयं समर्थ हैं वोह ईश्वरकी उसमें सहायता क्यों चाहैंगे पहले तौ लिखा कि गुणकर्म सुधारनेको- ईश्वरकी प्रार्थना करनी यहां लिखते हैं अपने कर्म सुधारो विना सुधारे स्तुति प्रार्थना व्यर्थ है यह परस्पर विरुद्ध लेख कौन बुद्धिमान् मान सक्ता है (ऐसी प्रार्थना कभी न करनी मेरे शत्रुओंको मारो मुझे सबसे अधिक करो इत्यादि) और क्या प्रार्थनामें स्वामीजीके यंत्रालयकी वृद्धि मनाई जाय, शतशः वेदमंत्र इसी आशयसे पूर्ण हैं हे ईश्वर ! हमारे पाप दूरकरो, हमारे शत्रुओंको मारो हमको श्रेष्ठ बनाओ हमारी रक्षा करो क्या यह वेदमें मिथ्या प्रलापहै, नहीं तौ कह दीजिये कि किसीने मिला दियाहै बस इतनीही कसरहै आपकी चलती तौ अपने प्रतिकूल मंत्रोंपर जरूर हरताल फेरते पर तौभी अर्थ बदलकर अनर्थ करही दिया और (झाडू लगाइये वस्त्र धोदीजिये,) यह क्या स्वामी जीने लिखदिया क्या जिससमय यह पुस्तक लिखरहेथे आपका विस्तर मैलाथा या कूडा पडाथा, या कपडे मैले थे, भला यह तौ सोचाहोता कि जिसके भौतिक शरीर नहीं वोह कैसे ऐसे काम कर सकैगा और अपने मालिक उत्पन्न करता संकटमोचनसे कोई भी ऐसा कह सक्ताहै, साधारण मालिकके सामने तौ जवाब नहीं दियाजाता और उस बडे महन्तसे यह ढीठता, शायद ऐसी प्रार्थना तुमनेही की होगी जब आपके कपडे मैले, सामने कूडा पडा होगा कि ईश्वर हमारे यह दोनों कामकर दे, जब उसने नहीं किये तौ क्रोध करकै लिखदिया कि उसकी प्रार्थना मतकरो कुछ लाभ नहीं, फिर लिखाहै (जो परमेश्वरके भरोसे पर आलसी बने बैठेरहते हैं वे मूर्ख हैं) देखिये इस नास्तिकताको कि ईश्वरका भरोसा करना मूर्खताका काम जब ईश्वरका भरोसा करना मूर्खताहै, तौ जिसका भरोसा नहीं उसके गुण गानेसे क्या लाभ, और नास्तिकता क्या होती है, इसीको अनीश्वरवादी कहते हैं सहस्रोंऋषि मुनि अरण्यमें परमेश्वरके भरोसे जप-तप करतेथे, और करते हैं और वोही परमेश्वर उनकी रक्षा करताहै क्या स्वामीजी तुह्मारे भंडारसे सीधा जाया करताथा जो भोजनकर ऋषिमुनि तप करतेथे, आपको देना बुरा लगैथा, जो लिखदिया कि ईश्वरके भरोसे रहना वृथाहै, आप लिखते हैं कि पापक्षमा भक्तोंकेभी नहीं करता यदि करै तौ फिर सब पाप करने लगजाय, सुनिये वोह दुष्टोंके पाप क्षमा नहीं करता, भक्तोंके अवश्य क्षमा करता है, क्योंकि

वोह जानता है कि भक्तसे अनजाने यह पाप बनगया है और अब प्रतिज्ञाकरताहै कि आगेको नहीं करूंगा और करैगाभी नहीं उसका पाप परमेश्वर निश्चय क्षमा करैगा, वोह प्रार्थनाही उसका प्रायश्चित्त है और जो दुष्टहैं मनमें पाप और ऊपरसे बने भक्तवंचक उनका पाप कभी क्षमा नहीं होगा, जो भला आदमी होता है इसके अनजाने अपराधको राजा भी क्षमा कर देता है और जो दुष्ट हैं उनके पाप क्षमा नहीं करता क्योंकि जानताहै छोड देनेसे अधिक पाप करैंगे जो अन्तःकरणसे शुद्ध है और प्रेमसे ईश्वरका स्मरण करतेहैं उनके पापभी क्षमा होतेहैं और दुष्टोंको यथावत् दंड देता है, इसीका नाम न्याय है जो दुष्टहैं उन्हैं दंड और जो दयायोग्य हैं उनपर दयाकरना क्षमाके योग्य हैं उनपर क्षमा करना यह नहीं कि सब धान बाईस पसेरीहीं तोला जाय सुनिये शत्रु निवृत्ति अपनी उन्नति आदिकी प्रार्थना भी वेदोंमें है।

सुमित्रियानआपओषधयः सन्तुदुर्मित्रिया
स्तस्मैसन्तुयोस्मान्द्वेष्टियश्चवयंद्विष्मः यजु० अ०३६ मं०२३-

हे परमेश्वर ! (आपः) जल (ओषधयः) औषधी (नः) हमारे लिये (सुमित्रियाः) सुमित्ररूपा(सन्तु) हों (यः)जो शत्रु (अस्मान्) हमसे(द्वेष्टि) द्वेष करता है (च) और (वयम्) हम (यम्) जिसशत्रुसे (द्विष्मः) द्वेष करते हैं (तस्मै) उसके लिये (दुर्मित्रियाः) दुर्मित्ररूप (सन्तु)हों

पापक्षमामांगना।

यदग्रामेयदरण्येयत्सभायांयदिन्द्रिये । यदेनश्चकृमावयमिदन्त
दवयजामहेस्वाहा-यजु०अ० ३ मं० ४५

(वयम्) हमने (ग्रामे) गांवमें (यत) जो(एनः) मनवाणीशरीरसे परपीडारूप पाप कियाहै (अरण्ये) वनमें (यत्) जो वृक्षछेदन, मृगवध आदि पाप किया है (सभायां) सभामें (यत्) जो अनीतिआदि पाप किया (इन्द्रिये) इन्द्रियसमूहमें (यत्) जो धर्मविरुद्ध भोजनपानमैथुनादि पाप (आचकृम) किया (तत्) उस (इदम) इस पापको (अवयजामहे) विनाश करताहूं (स्वाहा) यह हवि पाप नाशक देवताको दिया । १ ॥ इसमें पापक्षमा चाही अब और प्रार्थना सुनीये ॥

तनूपाअंग्नेसितन्वम्मेपाह्यायुर्दाअंग्नेस्यायुर्मेदेहिवर्चोदाअंग्ने
सिवर्चोमेदेहि अग्ने यन्मेतन्वा ऊनन्तन्म आपृण–य० अ० ३ मं० १७

(अग्ने) हे परमेश्वररूप अग्नि तुम (तनूपाः) जाठराग्निरूपसे देहोंके रक्षक (असि) हो (मे) मेरे (तन्वम्) शरीरको (पाहि) रोगादिकोंसे रक्षाकरो (अग्ने) हे परमेश्वर तुम (आयुर्दा) आयुके दाता (असि) हो (मे) मुझे (आयुः) दीर्घायु (देहि) दीजिये अर्थात् अपमृत्युको दूर कीजिये प्रसिद्ध है कि जबतक जाठराग्नि रहती है तबतक मनुष्य नहीं मरता है (अग्ने) हे अग्नि तुम (वर्चोदा) तेजके दाता (असि) हो (मे) मुझे (वर्चः) तेज (देहि) दीजिये (अग्ने) हे अग्नि (मे) मेरे (तन्वा) शरीरका (यत्) जो अंग (ऊनम्) ज्ञानके अनुष्ठानमें असमर्थ है (मे) मेरे (तत्) उस अंगको (आपृणः) समर्थ कीजिये२ ॥

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः
अमैरमित्रमर्दय–सामवे० प्र० १ खं० २ मं० १

हे (अग्ने) देव (ते) तुभ्यं (नमोगृणन्ति) नमस्कारशब्दमुच्चारयन्ति किमर्थम् (ओजसे) बलाय के (कृष्टयः) मनुष्याः यजमानाः कृष्टिरिति मनुष्यनाम निघण्टुत्वं च (अमैः) बलैः (अमित्रं) शत्रुम (अर्दय) नाशय ॥

भाषार्थ–हे अग्निदेव ! मनुष्य यजमान तुझको नमस्कार करते हैं बलवान होनेको और तुम अपने बलसे हमारे शत्रुओंको नाश करो ॥

अग्ने रक्षाणो अꣳहसःप्रतिष्मदेव रीषतः
तपिष्ठैरजरो दह–साम० प्र० १अ० ३मं० ४

हे (अग्ने) त्वं (नः)अस्मान् (अंहसः) पापात् (रक्षाणः) पाहि अपिच हे (देव) द्योतमानाग्ने (अजरः) जरारहितस्त्वं (रीषतः) हिंसतः शत्रून् (तपिष्ठैः) अतिशयेनतापकैस्तेजोभिः (प्रतिदहस्म) भस्मीकुरु ॥

भाषार्थः–हे अग्निरूप परमेश्वर ! तुम हमको पापसे रक्षाकरो हे दीप्तियुक्त जरारहित अग्नि तुम शत्रुओंको मारतेहुए बडे तपानेवाले तेजोंसे शत्रुओंको भस्म करदो, दहका अर्थ भस्म करो प्रत्यक्षही है ॥

ओं नो अग्ने वयो वृधंᳫं रयिम्पावक शंᳫंयस्यम्
रास्वाचन उपमाते पुरु स्पृहंᳫं सुनीतीसुयशस्तरम्
साम० प्र० १ अ० १ खं० ४ मं० ९

(अग्ने) हे परमेश्वर (पावक) शुद्धकरनेवाले पापहर्ता पापदूरकरनेसेही परमेश्वरका नाम पावकहै (वयोवृधं) अन्नके बढानेवाले (शस्यं) स्तुतिवाले (रयिं) धनकूं (नः) हमारेवास्ते दीजिये और लाकर और (उपमाते) हमारे समीप प्रगट करिये हे ईश्वर (नः) हमको सुनीती अच्छेमार्गसे (पुरुस्पृहं) बडेश्रेष्ठ (सुयशस्तरम्) अच्छे यश कीर्तिधनको (रास्व) दीजिये और देखिये-

अग्नेनयसुपथाराये अस्मान् विश्वानिदेव वयुनानिविद्वान्
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनोभूयिष्ठांतेनमउक्तिंविधेम
यजु० अ० ४० मं० १६

(देव) हे दिव्य दानादि गुणयुक्त (अग्ने) अग्निदेव (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) हमारे कर्मोंको (विद्वान्) जाननेवाले आप (अस्मान्) हमको (रीये) मुक्तिलक्षणवाले धन वा भोगको (सुपथा) उत्तरायण दक्षिणायन मार्गसे (नय) प्राप्तकरो (जुहराणम्) कुटिलवंचनात्मक (एनः) पापको (अस्मत) हमसे (युयोधि) पृथक् करो हम (ते) आपके निमित्त(भूयिष्ठाम् (अनेक) नमउक्तिम् (नमस्कारोंको (विधेम) विधानकरतेहैं ॥

इसके अर्थ सत्यार्थप्रकाश पृ० १८९ पं० २१ में स्वामीजीने यों लिखे हैं हे सुखके दाता प्रकाशस्वरूप सबको जाननेहारे परमात्मन् आप हमको श्रेष्ठ मार्गसे संपूर्ण प्रज्ञानोंको प्राप्त कराइये और जो हममें कुटिल पापाचरण रूप मार्ग है उससे पृथक् कीजिये इसीलिये हम लोग नम्रतापूर्वक आपकी स्तुति करतेहैं कि आप हमें पवित्र करें यह स्वामजिका अर्थही इस बातको सिद्ध करताहै कि ईश्वर पाप दूर करता है इस दयानंदजीके लेखसे स्वयंही उनका लेख खंडित होताहै हम क्या करेंगे वेदमें सब स्तुति सार्थहैं स्तुति जिस २ गुणसे करीजातीहै सो सो गुण और कार्य अवश्य होताहै नहीं तो निराकारताको जलांजलि दे बैठे क्यों विधि निषेध करतेहो और निराकरता निर्गुणता स्तुतिको सार्थ-

मानोगे तौ साकारतासाधक स्तुतिने क्या पाप किया है यदि वेदमें स्तुति निरर्थक मानोगे तौ सार्थक क्या रहैगा और सुनो-

एवैवापागपरेसन्तुदूढ्यो॒ऽश्वायेषांदुर्युजआयुयुज्रे ॥ इत्थायेप्रागु परेसन्ति दावने पुरूणि यत्रवयुनानिभोजना ऋ० मं० १० सू४४

पदार्थः-ईश्वर कहताहै हे मनुष्यों (एवैव) इसीप्रकार (दूढ्यः) स्तुति प्रार्थना नहीं करनेवाले दुर्बुद्धि (अपरे) और यज्ञ नहीं करनेवाले (अपाग) नरक जानेवाले (सन्तु) हों (येषाम्) जिन स्तुति प्रार्थना और यज्ञ न करनेवालोंके (अश्वाः) इन्द्रियरूप घोड़े (दुर्युजः) प्रबल जो साधनेमें न आवें ऐसे (आयुयुज्रे) रथोंमें युक्त होते हैं और(इत्था) इसी प्रकार वे स्वर्गको जाते हैं और उनके सब पाप दूर होजातेहैं (ये उपरे) जो यज्ञकरनेवाले (प्राक्) मरणसे पहले (दावने) मुझ ईश्वरको हवि देनको (सन्ति) उद्यत होते हैं (यत्र) जिन यज्ञोंके करने वालोंमें (वयुनानि) प्रज्ञान (भोजना) भोग करने योग्य धन (पुरूणि) बहुतसे मेरे अर्पणके लिये होते हैं ॥

यह परमेश्वरकी आज्ञाहै योगी लोक उसीके भरोसे योग साधते हैं कुछ स्वामीजीकिसी गपोड़, वा धनके इकट्ठा करनेके उद्योगमें नहीं लगे रहतेहैं जब मनुष्य शुद्ध होताहै तब दूसरेको शुद्ध उपदेश देसक्ताहै अब और देखिये प्रार्थना यजुः अ० ३६ मंत्र २४॥

तच्चक्षुर्देवहितम्पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्॥पश्येमशरदः शतञ्जीवेमशरदःशतꣳशृणुयामशरदः शतम्प्रब्रवामशरदः शतमदीनाःस्यामशरदःशतम्भूयश्चशरदःशतात् २४

समष्टिमूर्तिव्यापकं परमेश्वरं प्रार्थयति (तत्) (देवहितम्) देवानां हितं प्रियं (चक्षुः) परमेश्वरस्य चक्षूरूपं (शुक्रम्) सूर्यरूपं ब्रह्म श० ४, ३, १, २६ (पुरस्तात्) पूर्वस्यांदिशि (उच्चरत्) उच्चरति उदेति तं (शतं) (शरदः) पूर्णायुःपर्यंतम् (पश्येम) (शतंशरदः) पूर्णायुःपर्यन्तम् (जीवेम) अल्पानां निवृत्तिरस्त्वित्यर्थः(शतं शरदः) पूर्णायुःपर्यंतम् भगवच्चरितानि शृणुयाम (शतं शरदः) पूर्णायुः पर्यन्तम् (प्रब्रवाम) भगवदवतारचरितानि कथयाम (शतं शरदः) पूर्णायुःपर्यन्तम (अदीनाः स्याम) (शतात् शरदः) पूर्णायुःपर्यपि (भूयः) योगशक्त्या बहुकालं जीवेम ॥ २४ ॥

भाषार्थः-परमेश्वरकी प्रार्थना है वह देवताओंका प्रिय परमेश्वरका चक्षु सूर्यरूप ब्रह्म पूर्व दिशामें उदय होताहै, उसको हम पूर्णायुपर्यन्त देखें पूर्णायुपर्यन्त जीते रहैं, अर्थात् अकालमृत्युकी निवृत्ति हो, पूर्णायुपर्यन्त भगवच्चरित्रोंको सुने पूर्णायुपर्यन्त परमेश्वरके अवतारचरित्रोंको कथन करैं पूर्णायुपर्यन्त अदीन रहैं तथा योगशक्तिसे पूर्णायुसे भी अधिक जियें ॥ २४ ॥

इस मंत्रमें परमात्माका गुण कहना सुनना आदि वर्णन किया है फिर क्या इसमें भरोसा नहीं आया और (सनो बन्धु०) जब वह हमारा बन्धु उत्पन्न करता पालन कर्त्ता है तौ हम उसपर क्यों न भरोसा करैं और क्यों न हमको फल वोह देगा और जो किया जाय सो कर्म ईश्वरकी स्तुति स्वामीजी भाँडके समान करना व्यर्थ बतातेहैं स्तुति करना भी कर्महै और जब कर्म हैं तौ अवश्य उसका कुछ फल होगा स्तुति करना कभी व्यर्थ नहीं वेदोंमें शतशः प्रार्थना विद्यमान हैं ॥

स० पृ० १८८ पं० ११ (में स्वयं पाप दूरही न मानते हैं यथा) ॥

सार्वज्ञ्यादि गुणोंके साथ परमेश्वरकी उपासना करनी सगुण और द्वेषरूप गन्ध स्पर्शादि गुणोंसे पृथक मान अति सूक्ष्म आत्माके भीतर बाहर व्यापक परमेश्वरमें दृढ स्थित होजाना निर्गुण उपासना कहाती है इसका फल जैसे शीतसे आतुर पुरुषका अग्निके पास जानेसे शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वरके समीप प्राप्त होनेसे सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वरके गुणकर्म स्वभावके सदृश जीवात्माके गुणकर्म स्वभाव पवित्र हो जाते हैं इससे उसकी प्रार्थना उपासना अवश्य करनी चाहिये (१९८।१२) पुनः पृ० १८७ पं० १४ में लिखा है उपासना शब्दका अर्थ समीप होना है अष्टांगयोगसे परमात्माके समीपस्थ होने और उसको सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी रूपसे प्रत्यक्ष करनेके लिये जो जो काम करना है वह सब करना (१९७।१०) पुनः पृ० १८७ पं० २९ नित्य प्रति जप किया करै पुनः पृ० १८८ पं० १ अपने आत्माको परमेश्वरकी आज्ञानुकूल समर्पित कर देवे ॥

पृष्ठ- १९८ । पं० ७ सन् १८९७

१ अथवा पीठके मध्यहाड़में किसीस्थानपर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्माका विवेचनकरके परमात्मामें मग्न होजानेसे संयमी होवे । सामीक्षा धन्यहै देवमंदिर आदि छोडकर दयानंदी उपासना पाठके मध्य हाड़में होती है ॥

समीक्षा–स्वामीजीकी परस्पर विरुद्धताको कहांतक लिखें और गिनावें सत्यार्थप्रकाश सारा ग्रंथही परस्पर विरुद्धतासे भरा पड़ा है कहीं तौ कुछ लिखा है और कहीं कुछ लिखाहै सार्वज्ञ्यादि गुण सहित उपासनाको जब सगुण माना है और रूप रस गन्ध स्पर्शसे अलगको निर्गुण उपासना कही है तौ इससे यही सिद्ध होता है कि सगुण उपासनामें स्पर्श रूप रस गंध होतेहैं और यह गंध स्पर्शादि अवतारमें बन सक्ते हैं स्वामीजीने निर्गुण उपासनामें स्पर्श रूपादिका निषेध किया है सगुणमें तौ सार्वज्ञ्यादि होनेसे रूपादि सबही आगये अतएव परमेश्वरका रूप भी स्वामीजीके कथनसेही सिद्ध होगया और उपासनाके अर्थ समीप होनेके लिखेहैं यह भी सगुणमेंही बन सक्ता है क्योंकि उसकी कोई मूर्त्ति बनाकर उसमें अनेक प्रकारके गुणरोपण कर उसके निकट वा समीप बैठकर स्तुति प्रार्थना करना इसीसे समीप हो सक्ता है निर्गुणमें यह बात कैसे बन सक्ती है क्योंकि जब उसमें रूपादि नहीं गुण नहीं तो उसके समीप कैसे होसक्ता है वह तौ शून्य होगया यदि कहो सर्व व्यापक होनेसे वह निर्गुण है तौभी नहीं बनसक्ता क्यों कि सर्वव्यापकता भी एक गुण है और जिसमें गुण हो वह सगुण और जो व्यापक मानते हो तौ उपासनासे समीपस्थ होना कैसा वोह तौ सदा सबहीके समीपहै समीप क्या बाहर भीतर वर्त्तमान है इससे दयानंदजी निर्गुण अवस्थामें ईश्वरको शून्यत्वसे युक्त करते हैं जिससे विदित होता है कि उस अवस्थामें ईश्वर नाममात्र है और जिसमें सर्वज्ञादि गुण स्पर्श रूपादि कुछ भी नहीं वह प्रत्यक्ष कैसे हो सक्ता है इससे उपासना सगुणमें बनेगी और मूर्तिपूजन भी इससे सिद्ध होता है ॥

अरंदासोनमीढुषेकराण्यहंदेवायभूर्णयेऽनागाः ॥
अचेतयदचितोदेवोऽअर्य्योगृत्संरायेकवितरोजुनाति ॥
ऋ० मं० ७ अनु० ५ सू० ८६ मंत्र ७।

पद। अरम् दासः न मीढुषे कराणि अहम् देवाय भूर्णये अनागाः अचेतयत् अचितः देवः अर्य्यः गृत्सम् राये कवितरः जुनाति ॥

इस स्थानमें न शब्दके अर्थ की मंत्रोंमें व्यवस्था करनेवाले निरुक्तको भी समझना चाहिये ॥

प्रतिषेधार्थीयःपुरस्तादुपाचारस्तस्ययत्प्रतिषेधति ॥
उपमार्थीयउपरिष्टादुपाचारस्तस्ययेनोपममिमीते ॥
नि० अ० १ । खं० ४

यत्प्रतिषेधति तस्यपुरस्तात् प्रतिषेधार्थी यो नशब्द इत्युपाचारः येनो पममिमीतेतस्योपरिष्टात् उपमार्थी योनशब्द इत्युपचारः यह अन्वय है । भावार्थ यहहै कि जिस अर्थका निषेध करतेहैं तिसवाचकके पदसे यदि पूर्व नकार हो तौ प्रतिषेध अर्थवाला होताहै मंत्रमें, और जिसकी उपमा दीजातीहै तद्वाचक शब्दसे यदि नकार पश्चात् हो तौ उपमा अर्थमें नकार होता है यह नियम बहुधा मंत्रोंमेंही होताहै ॥

मंत्रार्थः-(अनागा अहं भूर्णये मीढुषे देवाय अरंकराणि दासोन-दास इव) निषिद्धाचरण वर्जित मैं दासवत देवके अर्थ अलंकार करताहूं (भूर्णये मीढुषे) वो देव बहुत सी धनकी वृद्धि करनेवाले हैं, जैसे स्वा-मीका सेवक स्रक्चंदन वस्त्रादिसे अलंकार करताहै तद्वत मैं भी बहुत धन देनेवाले देवको अलंकार करता हूं इस मंत्रमें दासकी उपमा अहं-शब्दार्थ कर्ताको दीगई है और दास शब्दसे परे नकार है तिससे उपमा-र्थमें है इस मंत्रमें देवको अलंकार करना लिखाहै, और बिना समीप-हुए अलंकार नहीं होसक्ता, समीपस्थ होना उपासनासे युक्त है और निराकारमें अलंकारादि करना असंभव है इससे प्रतिमारूप आधा-रमेंही देवपरमात्माके अलंकारादि हैं और उपासना भी तभी हो सक्ती है (प्रश्न) इसमंत्रमें तौ आचार्यादि देवता मानकर उनका अलं-कार कहाहै कुछ प्रतिमामें अलंकार नहीं कहा (उत्तर) इसका उत्तर यह श्रुति ही देती है (अचेतयदचितो देवोअर्य्यः) स्वामी देव अचेत-नोंको चेतन करता है अपने जीवरूपसे प्रवेश करके (राये गृत्सं कवित-रोजुनाति) इसप्रकार धनकी प्राप्तिके अर्थ प्राणकेभी प्राणरूप देवको अत्यन्त बुद्धिमान (जुनाति) आश्रय करता है इस मंत्रमें प्रतिमामें पर-मेश्वरपूजनको काम्य कर्मता प्रतीत होतीहै, और आचार्य यद्यपि पूज-नीय है परन्तु वह अचेतनोंको चेतन नहीं करसकता जीवरूपसे प्रवेशकर इससे उपासना सगुणमें बनती है, और स्वामीजीने इतना फल तो माना है कि, परमेश्वरके समीप होनेसे सब दुःख दूर होजाते हैं और परमेश्वर के गुणकर्म स्वभावके समान जीवके गुण कर्म स्वभाव होजातेहैं उसकी समान पवित्रहोजाते हैं (और पूर्व लिखाहै कि, वह स्तुति प्रार्थनासे

पाप क्षमा नहीं करता कैसा अंधेरहै) और यहां कहा कि, ईश्वरके बराबर गुण कर्म स्वभाव जीवके होजातेहैं जीव और ईश्वरके जब गुण कर्म स्वभावँ एकसे हुए तौ अंतर कैसा जो वस्तु एकसी रंग रूपमें हों उनमें अंतर कैसा "अथोदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति द्वितीयाद्वै भयं भवति" बृ० उ० जो ब्रह्म और जीवमें थोड़ा भी भेद करताहै उसको भयं प्राप्त होताहै क्योंकि दूसरेसे भय प्राप्त होताहै और इसीसे यजुर्वेदके ४० अ० १७ मं० "योसावादित्ये पुरुषः सोसावहम्" जो यह आदित्यमें पुरुषहै सो मैं हूं इत्यादि जीव ईश्वरमें एकताबोधक बहुत श्रुति हैं फिर पाप दूरहोए बिना गुण कर्म स्वभाव समान कैसे होसकतेहैं, इससे भी पाप दूर होना स्वयं सिद्ध होताहै फिर लिखाहै नित्यप्रति जपकरै फिर लिखाहै ईश्वरके भरोसे रहना मूर्खताहै अब यहां लिखा अपने आत्माको समर्पित कर दे, इत्यादि विरुद्ध बातोंसे प्रतीत है कि, स्वामिजीने गहरी भंग पीकर सत्यार्थप्रकाश बनाया है, अब सबका सारांश यह हैं कि जो गीतामें श्रीकृष्णजी कहते हैं ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्यमामेकंशरणंव्रज ॥
अहंत्वासर्वपापेभ्योमोक्षयिष्यामिमाशुचः ॥भ०गी०

श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि और सब धर्मोंको छोड मेरी शरणरूप धर्ममें प्राप्त हो तौ मैं तुझे सब पापोंसे छुडा दूंगा इससेही सब कुछ समझलेना चाहिये—इति ॥*

जीवपरतंत्रप्रकरणम् ।

सत्या० पृ० १९२ पं० १२ (प्रश्न) जीव स्वतंत्र है वा परतंत्र (उत्तर) अपने कर्तव्य कर्मोंमें स्वतंत्र और ईश्वरके व्यवस्था में परतंत्र है जो स्वतंत्र हो उसको पुण्य पापका फल प्राप्त नहीं हो सक्ता पुनः पं० २९ जीवका शरीर और इन्द्रियोंके गोलक परमेश्वरके बनाये हैं पुनः पृ० १९४ पं० १० जीवोंके कर्मकी अपेक्षासे त्रिकालज्ञता ईश्वरमें है जैसा स्वतंत्रतासे जीव करता है वेसाही सर्वज्ञतासे ईश्वर जानता है जैसा ईश्वर जानता है वैसाही जीव करता है, भूत भविष्यत् वर्त्तमानका ज्ञान और फल देनेमें ईश्वर स्वतंत्र है और जीव किंचित् वर्त्तमान और कर्म करनेमें स्वतंत्र हैं ॥ २०३।१ ॥ २०५ । ५ । ईश्वरको त्रिकाल दर्शी कहना मूर्खताका काम है पृ० २० ५ । पं० २ सन् १८९७ ॥

---

* भा० प्र० ने इसके अर्थमें दोनोंलोक मान लिये हैं ।

समीक्षा—स्वामीजीकी अलौकिक बुद्धिका कहांतक ठिकाना लगाया जाय यह लेख कि कर्त्तव्य कर्मोंके करनेमें स्वतंत्र और ईश्वरकी व्यवस्थामें जीव परतंत्रहै फिर लिखा है जो जीव कर्त्ताहै वोह ईश्वर सर्वज्ञतासे जानता जब कि जीवके कर्मोंके करनेकी त्रिकालज्ञता ईश्वरमें है, तौ जीवके कर्म स्वतंत्रताके कब हो सक्तेहैं, क्यों कि जो जो वोह कर्म करैगा सो तौ ईश्वर सर्वज्ञतासे पहलेही जानचुकाहै वास्तवमें जीव कर्म करनेमें तथा पाप पुण्यके फल भोगनेमें सर्वथा परतंत्र अर्थात् अपने पूर्वकर्मानुकूल ईश्वराधीनहै, जब कि स्वामीजीके लेखानुसार जीव जैसा कर्म करैगा ईश्वरने पहलेही अपनी सर्वज्ञतासे जानरक्खाहै तौ जीव कर्म करनेमें स्वतंत्र कहां रहा, क्योंकि जैसा ईश्वरने अपनी सर्वज्ञतासे जानाहै उसके विरुद्ध करही नहीं सक्ता, यदि स्वामीजी कहैं कि, करसक्ता है तौ ईश्वरका ज्ञान अन्यथा हुआ, सो असम्भव है इससे अच्छीतरह सिद्ध हो गया कि, जीव कर्म करनेमें किसी प्रकार स्वतंत्र नहीं किन्तु जैसे ईश्वरने अपने ज्ञानसे जान रक्खा है उसीके आधीन है और जैसा स्वामीजीने पृ० १९२ पं २५ में लिखा है कि, पापफल भोगनेमें परतंत्र है, स्वामीजी यही कहेंगे कि पुण्यका फल भोगनेमें स्वतंत्र और इससे यही धुनि निकलती है कि पापकर्म तौ परतंत्रतासे भोगने पड़ैंगे तौ पुण्यफलमें स्वतंत्र हुआ चाहे, ग्रहण करै वा नहीं, सो इसमें भी जीव स्वतंत्र नहीं हो सक्ता तौ दयानंदजी यही कहेंगे कि, पुण्यका फल सुख है और उसका ग्रहण और त्याग जीवके आधीन है अर्थात् देवदत्तको उसके पुण्यादि अनुकूल धनादिककी प्राप्ति हुई उसके ग्रहण और त्यागमें वोह स्वतंत्र है, मैं कहताहूं ग्रहण और त्यागमेंभी जीव स्वतंत्र नहीं क्योंकि ग्रहण और त्याग कर्म है और हम अभी स्वामीजीके इस लेखानुसार कि (जैसा स्वतंत्रतासे जीव करता है वैसाही सर्वज्ञतासे ईश्वर जानता है) सिद्ध कर चुकेहैं कि, जीव किसीप्रकार कर्म करनेमें स्वतंत्र नहीं फिर जब कि, देवदत्तको पुण्यानुकूल ईश्वरने किसीप्रकारका भोग नियत कियाहै और स्वामीजीके मतानुसार कि, (अपने सामर्थ्यानुकूल कर्मोंके करनेमें स्वतंत्र है) वोह उसको न भोगे अर्थात् त्यागकर दे तौ जीव ईश्वरसे प्रबल ठहरा, अथवा स्वामीजीके मतमें कोई शैतानका प्रपितामह है जो ईश्वरके नियमित कार्यको बलात्कार जीवसे विरुद्ध करावै, ध्यान रहे कि, जिसके लिये उसके कर्मानुकूल ईश्वरने जो भोग नियत कियाहै वोह उसको अवश्य भोगैगा उसके विरुद्ध कदापि किसी प्रकार नहीं हो सकता, यदि कहो

कि यह बात प्रत्यक्ष है कि, जो पदार्थ हमारे पासहै जब चाहैं दूसरेको दे सक्ते हैं, वा उसका त्याग कर सक्तेहैं इससे जीवका पुण्योंके फल भोगनेमें स्वतंत्र होना स्पष्टहै, तो उत्तर यह है कि, किसी पदार्थका दूसरेको देना वा त्याग करना जीवके आधीन नहींहै, किन्तु जिस कालतक जिस पदार्थका परमात्माने जिसके पास रहना वा भोग नियत किया है, उस कालतक उसके पासको रहना वा भोगना अवश्य होगा और जिस कालमें उसके द्वारा दूसरोंको दिया जाना वा त्याग करना नियत किया है, तभि दूसरेंको देना वा त्याग करना होगा, प्रत्यक्ष देखा जाता है प्रायः मनुष्य धनवान् होतेहैं, परन्तु उस धनको अपने भोजन वस्त्रमेंभी यथोचित व्यय नहीं करते और अपने पुत्रादिकोंकोभी दुःखी करते हैं इससे यही जानाजाताहै कि, ईश्वरने उनके लिये उस धनका भोगना नियत नहीं कियाहै केवल रक्षंकही कियाहै जब कि, यह बातहै तौ किसी पदार्थका दूसरेको दे देना वा त्यागकर देना जीवके आधिन कहां है, दूसरेको कोई पदार्थ हम उसीसमय दे सक्ते हैं जिससमय परमात्माने उसके प्रारब्धमें उस पदार्थकी प्राप्ति नियतकी हो और त्यागभी हमसे तभी होगा जब कि, हमारे प्रारब्धमें उसका त्याग होना नियत है और प्रायः पुण्यफल इस प्रकारके हैं कि, उनका किसीको दे देना वा त्याग करनाही नहीं होसक्ता जैसा कि, उत्तम वंशमें उत्पन्न होना शरीरका रोगरहित होना विद्या बल बुद्धि ज्ञान संततिका होना, तथाच सत्यभाषणधर्मानुष्ठान परोपकारादि सद्गुणोंसे कीर्तिका होना अपने अनुकूल कार्योंकी उन्नति देख वा सुनकर आनन्दकी प्राप्तिका होना, स्वर्गादिके उत्तम लोकोंका प्राप्त होना, इत्यादि जो पुण्यके फल हैं इन्हें न कोई दूसरेको देसक्ताहै न पासक्ताहै, जबतक, जिसके भोगमें भोगना है भोगैगा और जिससमय दूसरेको देना होगा दे देगा, इससे सिद्ध है पुण्योंके फल भोगनेमें भी जीव स्वतंत्र नहीं किन्तु अपने कर्मानुकूल ईश्वराधीनही है और यह तौ स्वामीजी स्वीकार करचुक्के हैं कि पापों के भोगनेमें जीव पराधीन है फिर यह लिखा कि, कर्मोंके फलभोगने तथा (पुण्योंके) करनेमें स्वतंत्र है उन्हींके लेखके विरुद्ध है (प्रश्न) जब कि, हम कर्म करनेमें परतंत्र हैं तौ फिर कर्मोंका फल हमको न होना चाहिये किन्तु ईश्वरहीको होनाचाहिये (उत्तर) विद्यमान शरीरसे जो जो कर्मकिये जाते तथा सुख दुःख भोगे जातेहैं वे सब अपनेही पूर्वकर्मोंके

अनुकूल होतेहैं जैसे चोरको उसीके कर्मानुकूल राजा बन्दीगृहमें रखता है, और उससे चक्की पीसना आदि कर्म भी कराता है इसीप्रकार अस्मदादिकोंके पूर्वकर्मानुकूलही ईश्वर उन कर्मोंको हमसे कराता है, और फलोंको भुगवाताहै, यद्यपि जीव कर्म करनेमें सर्वथा परतंत्रहै परन्तु जब कि ईश्वर उसीके पूर्व कर्मानुकूल क्रियमाण कर्मको कराता है, अर्थात् जो पहली बुरी वासना चित्तमें है तौ वोही बुरी वासनायें उससे बुराकर्म कराती हैं, तौ इनका फलभी अवश्य पुनः जीवको होना चाहिये ईश्वरपर लेशमात्र भी दोष नहीं आता है जैसे कि कोई किसीको मार डाले तौ उसका मारना स्वतंत्रतासे नहीं हो सकता किन्तु उसके कर्मोंने उसे मार डालेनेकी प्रेरणा कराई और नहीं तौ जान बूझकर कौन पैरमें कुल्हाडी मारता है, और मरनेवालाभी कर्मानुसार मरा अथवा जैसा बीज वैसा ही पेड होताहै, तदनुसार फूल फल लगते हैं इसीप्रकार पूर्वकर्मकी वासनानुरूप सब यह जीव कर्म करताहै, ईश्वर पर दोष नहीं आसक्ता (प्रश्न) यदि जीव अपने पूर्वकर्मानुकूल कर्म करनेमें परतंत्रहै तौ उपदेशकरना वृथाहै, क्योंकि ईश्वरने जिसके लिये जो कर्म करना नियत कियाहै वोह अवश्य वोही करैगा इससे विरुद्ध तौ कर नहीं सक्ता (उत्तर) निःसन्देह ईश्वरने जो जिसके लिये उसके पूर्वकर्मानुकूल जो कर्म करना नियत कियाहै वोह अवश्यही करैगा उसके विरुद्ध कदापि कुछ नहीं करसक्ता बस जिसके लिये उपदेश करना नियत किया है, वोह उपदेश करता और जिसके लिये सुनना नियत कियाहै वोह सुनताहै जिसके लिये स्वीकार करना नियत कियाहै वोह स्वीकार करता है निदान इसीप्रकार प्रत्येक जीव जो जो कर्म करता है ईश्वराधीन होकर अपने पूर्वकर्मानुकूलही करताहै, किसीकर्मके करनेमें कोई भी किसी प्रकार स्वतंत्र नहीं अब जीवोंके परतंत्र होनेमें वेदादिशास्त्रोंका प्रमाण दियाजाताहै ॥

तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गोदेवस्यधीमहिधियोयोनःप्रचोदयात्

यह मंत्र सर्वप्रधानहै संक्षेपार्थ यह है कि उस जगत्प्रकाशक सविता देवताके वरणीय प्रकाशको हम ध्यान करतेहैं जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरणाकरताहै किसी कर्मके करनेमें हम स्वतंत्र नहीं किन्तु अपने कर्मानुकूल सर्वथा ईश्वराधीन हैं शंकराचार्य रामानुजाचार्यप्रभृति तथा सायणाचार्य (प्रचोदयात्) पदका अर्थ (प्रेरयति) ही करते हैं परन्तु

स्वामीजीने इसको प्रार्थनापर लगायाहै और (प्रचोदयात) कृपाकरकै सब बुरे कर्मोंसे अलग करै सदाउत्तम कर्मोंमें प्रवृत्तकरै यदि स्वामीजीका यह गडबड अर्थ भी मान लें तोभी जीवकी परतंत्रता कहीगई क्योंकि स्वामीजी आप लिखते हैं कि, परमेश्वर हमारी बुद्धियोंको कृपाकरके सब बुरे कर्मोंसे अलग करै सदा उत्तम कर्मोंमें प्रवृत्तकरै यदि कर्मोंके करनेमें जीव स्वतंत्र होते तो अपनी बुद्धियोंको बुरेकामोंसे हटाने और उत्तम कामोंमें लगानेकी परमात्मासे प्रार्थना क्यों करते जिस कामको मनुष्य आप नहीं करसक्ता उसीके लिये दूसरेसे प्रार्थना किया करताहै और जिस कामके करनेमें आप समर्थ होताहै उसके लिये कभी किसीसे प्रार्थना नहीं करता अब देखिये बृह० ब्रा० ७ अ० ५

यःसर्वेषुभूतेषुतिष्ठन्सर्वेभ्योभूतेभ्योऽन्तरोय॑ सर्वाणिभूतानिनविदुर्यस्यसर्वाणिभूतानिशरीरंयःसर्वाणिभूतान्यन्तरोयमयत्येषतआत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ १ ॥
यःप्राणेतिष्ठन्प्राणादन्तरोयंप्राणोनवेदयस्यप्राणःशरीरं यःप्राणमन्तरोयमयत्येषतआत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ २ ॥
योवाचितिष्ठन्वाचोन्तरोयंवाङ्नवेदयस्यवाक्शरीरं योवाचमन्तरायमयत्येषतआत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ ३ ॥
यश्चक्षुषितिष्ठ॑श्चक्षुषोन्तरोयंचक्षुर्न वेदयस्यचक्षुः शरीरंयश्चक्षुरन्तरोयमयत्येषतआत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ ४ ॥
यःश्रोत्रेतिष्ठञ्छ्रोत्रादन्तरोय॑श्रोत्रंनवेदयस्यश्रोत्र॑शरीरं यःश्रोत्रमन्तरोयमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ ५ ॥
योमनसितिष्ठन्मनसोन्तरोयंमनोनवेदयस्यमनःशरीरं योमनोन्तरोयमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ ६ ॥
यस्त्वचितिष्ठ॑स्त्वचोऽन्तरोयंत्वङ्नवेदयस्यत्वक्शरीरं यस्त्वचमन्तरोयमयत्येषतआत्मान्तर्याम्यमृतः॥७॥१५-२१
यआत्मनितिष्ठन्नात्मनोन्तरोयंआत्मानवेदयस्यआत्माशरीरं यआत्मनोन्तरोयमयत्येषतआत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ श०१४ ६।७।३०

अर्थ यह है (यः सर्वेषु भूतेषु) अर्थात् जो सब भूतोंमें स्थित होता हुआ सबसे पृथक् है जिसको सब भूत नहीं जानते जिसके सब भूत शरीर हैं जो भूतोंके अन्तर्वर्ती होकर उन्हें नियत करता है वोही अमृतस्वरूप परमात्मा तेरा अन्तर्यामी है ॥

इसी प्रकार शेष श्रुतियोंका अर्थ बुद्धिमान् (प्राण वाक् चक्षुः श्रोत्र मन त्वक् आत्मा) इनका भी विचारकर सक्ते हैं इन श्रुतियोंसे यहांतक सिद्ध होगया कि प्राण वाक् चक्षुः श्रोत्र मन त्वक् और आत्मासे जो जो क्रिया होती है वोह सब ईश्वराधीनही होतीहै जीव स्वतंत्रतासे कोईभी क्रिया नहीं करसक्ता पुनः बृहदारण्यउपनिषदमें ॥

यःप्राणेन प्राणिति सतआत्मा सर्वान्तरोयोऽपानेनापानितिसत आत्मा सर्वान्तरो यो व्यानेन व्यानितिसतआत्मासर्वान्तरो य उदानेनोदानिति सत आत्मा सर्वान्तर एषत आत्मा सर्वान्तरः १ बृ० अ० ५ ब्रा० ५

इसपर स्वामी शंकराचार्यजी भाष्य करते हैं ॥

यःप्राणेनमुखनासिकासंचारिणाप्राणितिप्राणचेष्टांकरोतियेन प्राणः प्रणीयत इत्यर्थः सतेतवकार्यकारणस्यात्माविज्ञानमयः समानय न्योऽपानेनापानितिव्यानेनव्यानितीतिसर्वाः कार्यकरणसंघात गताःप्राणनादिचेष्टादारुयंत्रस्येवयेनाक्रियन्तेनहिचेतनावदनाधिष्ठि तविलक्षणेनदारुयंत्रंतत्प्राणनादिचेष्टाप्रवर्त्तते ॥

आशय यह है कि जैसे काठकी पुतली आप कुछ भी चेष्टा नहीं करसक्ती उससे जो जो चेष्टा होतीहै किसी चेतनकेद्वारा होती है इसीप्रकार मनुष्य स्वतंत्रतासे कोई चेष्टानहीं करसक्ता जो जो चेष्टा करता है परमात्माधिष्ठितही होकर करताहै पुनः तत्रैव ॥

सर्वस्यवशीसर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः बृह०उ०अ०६ ब्रा०३।२।

परमात्मा सबको वशमें रखनेवाला है सबका ईशान है सबका अधिपति है कठोपनिषदमें लिखाहै (एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा) सबको वशमें रखनेवाला सब भूतोंका अन्तरात्माहै और श्वेताश्वतरोपनिषदमें लिखा है ॥

एकोदेवःसर्वभूतेषुगूढः सर्वव्यापीसर्वभूतान्तरात्मा
कर्माध्यक्षःसर्वभूताधिवासःसाक्षीचेताकेवलोनिर्गुणश्च६।११

अर्थात् एक देवता परमेश्वर सब भूतोंमें छिपा हुआ है, वोह सर्वव्यापी है और सब जीवोंका प्रेरकहै कर्मोंका अध्यक्ष है सर्वभूतोंमें उसका निवास है सर्व द्रष्टा है सबको चेतना देनेवाला है अर्थात् सबकी स्थिति प्रवृति उसीके आधीन है पुनः कौशीतकी उपनिषदमें लिखा है॥ परात्तु तच्छ्रुतेः वेदान्त सू० अ० २ पा० ३ सू० ४१ जीव ईश्वरके आधीन है उस पर यह नीचेकी श्रुति प्रमाण है ॥

एषह्येवसाधुकर्मकारयतितंयमेभ्योलोकेभ्यउन्निनी
षतएषउएवासाधुकर्मकारयतितंयमधोनिनीषते

अर्थात् वोही सुकर्म कराताहै उसको जिसको ऊपर लेजानेकी इच्छा करता है और वोही पापकर्म कराता है उसको जिसको नीचे लेजानेकी इच्छा करता है उसके कर्मानुसार और गीतामें लिखा है कि ॥

ईश्वरः सर्वभूतानांहृद्देशेर्जुनतिष्ठति
भ्रामयन्सर्वभूतानियंत्रारूढानिमायया भ० गी० १८।६१

हे अर्जुन ! ईश्वर सब भूतोंके हृदयमें विराजमान होकर अपनी माया से उनको कर्मानुसार कलकी पुतलीकी तरह घुमाता है। पुनः महाभारते॥

धात्रातुदिष्टस्यवशेकिलेदंसर्वंजगच्चेष्टतिनस्वतंत्रम्

अर्थात् निश्चय ईश्वरनियमित प्रारब्धके वशमें स्थित यह संपूर्ण जगत चेष्टा करताहै स्वतंत्र नहीं है वनपर्व अ० ३० ॥

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासंपुरातनम् ॥
ईश्वरस्यवशेलोकास्तिष्ठंतेनात्मनोयथा ॥ २१ ॥
धातैवखलुभूतानांसुखदुःखेप्रियाप्रिये ॥
दधातिसर्वमीशानः पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरन् ॥ २२ ॥
यथादारुमयीयोषानरवीरसमाहिता ॥
ईरयत्यंगमंगानितथाराजन्निमाः प्रजाः ॥ २३ ॥
आकाशइवभूतानिव्याप्यसर्वाणिभारत ॥
ईश्वरोविदधातीहकल्याणंयच्चपापकम् ॥ २४ ।

शकुनिस्तंतुबद्धोवानियतोयमनीश्वरः ॥
ईश्वरस्यवशेतिष्ठन्नान्येषामात्मनःप्रभुः ॥
मणिसूत्रइवप्रोतोनस्योतइवगोवृषः ॥ २५ ॥
धातुरादेशमन्वेतितन्मयोहितदर्पणः ॥
नात्माधीनोमनुष्योयंकालंभजतिकंचन ॥ २६ ॥
स्रोतसोमध्यमापन्नः कूलाद्वृक्षइवच्युतः ॥
अज्ञोजंतुरनीशोयमात्मनः सुखदुःखयोः ।
ईश्वरप्रेरितोगच्छेत्स्वर्गंनरकमेवच ॥ २७ ॥
यथावायोस्तृणाग्राणिवशंयांतिबलीयसः ।
धातुरेववशंयांतिसर्वभूतानिभारत ॥ २८ ॥

अर्थ–इस विषयमें पुरातन इतिहास कहते हैं जिसप्रकार जीव ईश्वरके वशमें रहते हैं न कि अपने २१ निश्चय सबका स्वामी ईश्वरही पूर्वकर्म बीजके अनुसार प्राणियोंको सुख दुःख और प्रिय अप्रियको नियत करता है २२ हे नरवीर ! जिसप्रकार काष्ठकी पुत्तली सूत्रधारके हाथमें स्थापित की हुई अंगको हिलाती है, उसीप्रकार यह प्रजा ईश्वरसे प्रेरित हस्तपादादि अंगोंको प्रचलित करती है २३ हे भरतवंशी ! वोह ईश्वर आकाशके समान प्राणियोंको व्याप्त करके उनके शुभाशुभ कर्मोंको इस लोकमें नियत करताहै २४ निश्चय यह असमर्थ जीव तन्तुबद्ध पक्षीकी समान ईश्वरके वशमें स्थित है, न दुसरोंकेमें और आप अपने आत्माका स्वामी नहीं है मणि सूत्रकी समान पिरोया हुआहै जैसे बैल नासिकामें सूत्रसे नाथा जाता है २५ वोह धाताकी आज्ञापर चलता है उसके आधीन और उसके अर्पण है, यह मनुष्य स्वाधीन किसीप्रकार नहीं है, किन्तु काल नाम ईश्वरके आधीनहै २६ अपने सुख दुःखका न जाननेवाला असमर्थ यह जीव ईश्वरसे प्रेरित स्वर्ग अथवा नरकको जाताहै जैसे नदीके तटसे गिरा और उसके मध्यमें विद्यमान वृक्ष २७ हे भरतवंशी ! जैसे तृणोंके अग्र बलवान् वायुके वशको प्राप्त होते हैं, इसीप्रकार सब प्राणी ईश्वरके वशको प्राप्त होते हैं २८ पुनः वनपर्वाणि ॥

यद्ययंपुरुषः किंचित्कुरुतेवै शुभाशुभम् ।
तद्धातृविहितंविद्धि पूर्वकर्मफलोदयम् अ० ३२ श्लोक२२व नप

यह पुरुष निश्चय जो कुछ शुभाशुभ कर्मको करता है उसको पूर्वकर्मके फलका उदय ईश्वरसे कियाहुआ जानो २२ पुनः वनप०

वार्यमाणोपिपापेभ्यः पापात्मःपापमिच्छति
चोद्यमानोपिपापेन शुभात्माशुभमिच्छति ॥

पापात्मा पुरुष पापोंसे रोकाहुआभी पाप कर्म करता है शुभात्मा मनुष्य पापसे प्रेरित करनेसेभी शुभकर्म करताहै पुनःउद्योगपर्व० अ०१५९

नह्येवकर्तापुरुषः कर्मणोःशुभपापयोः ।
अस्वतंत्रोहिपुरुषः कार्यतेदारुयंत्रवत् ॥ १४ ॥

अर्थात् पुरुष शुभाशुभ कर्मोंका करनेवाला नहीं पुरुष अस्वतंत्र है काष्ठके यंत्रोंकी सदृश कर्मोंमें नियुक्त कियाजाताहै ॥

एतत्प्रधानंचनकामकारो यथानियुक्तोस्मितथाकरोमि
भूतानिसर्वाणिविधिर्नियुंक्ते विधिर्बलीयानितिवित्तसर्वे ४८
महाभारत ० आपद्ध० अ० ३७

यह बात मुख्य है कि, मैं इच्छाके अनुसार कर्म करनेवाला नहीं हूं जिसप्रकार नियुक्त कियागयाहूं उसीप्रकार करताहूं सम्पूर्णभूतोंको ईश्वर नियुक्त करता है परमेश्वर बलवान् है तुम सब इसप्रकार जानो इसप्रकार जीव परतंत्र है ॥ फिर वेदान्तदर्शन देखो ॥

कृतप्रयत्नापेक्षस्तुविहितप्रतिसिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः४२ अ० २ पा०३

किये हुए प्रयत्नोंकी अपेक्षायुक्त परमात्मा करता है विहित वा प्रतिषिद्धोंके वृथा न होने आदि हेतुओंसे

सूर्योयथासर्वलोकस्यचक्षुर्न लिप्यतेचाक्षुषैर्बाह्यदोषैः
एकस्तथासर्वभूतान्तरात्मानलिप्यते लोकदुःखेनबाह्यः
कठवल्ली अ० २ वल्ली० ५ मं० ११

जैसे सूर्य सम्पूर्ण लोकोंका चक्षु है बाह्यदोष चक्षुमें लिप्तनहीं होता है वैसेही सर्वभूतान्तरात्मा एकहै परन्तु लोकदुःखसे आप नहीं लिप्त हो होताहै ॥

भयादस्याग्निस्तपतिभयात्तपतिसूर्यः
भयादिन्द्रश्चवायुश्च मृत्युर्धावतिपंचमः ३ वल्ली६ मं०३

जिसके भयसे अग्नि तपताहै जिसके भयसे सूर्य तपताहै, जिसके भयसे इन्द्र और वायु और पांचवीं मृत्यु, दौडतीहै, तो विचारिये कि, फिर जीव कैसे स्वतंत्र रहसक्ताहै और यही आशय वेदान्तशास्त्रके अ० २ पा०३ सू० ४०।४१। सूत्रमें कहाहै जैसे कि, (परातु तच्छुतेः) यहांसे इसका भाष्य देख लीजिये इसकारण जीव परतंत्रहै॥

जीवलक्षणप्रकरणम्।

स० पृ० १९३ पं० १२ ईश्वर और जीव दोनों चेतन स्वरूप स्वभाव दोनोंका पवित्र अविनाशी और धार्मिकता आदि है परन्तु परमेश्वर के सृष्टि उत्पत्ति प्रलय स्थिति सबको नियममें रखना, जीवोंको पाप पुण्योंके फल देना, आदि धर्मयुक्त कर्म हैं जीवके सन्तानोत्पत्ति उनका पालन शिल्प विद्या आदि अच्छे बुरे कर्महैं॥ पृ० २०४।२

समीक्षा—यह क्या स्वामीजी कहने लगे, महापरस्पर विरोधहै पहले तो लिखते हैं कि, दोनों ही स्वभावसे पवित्र हैं, फिर स्वभावसे पवित्र जीवमें बुरेकर्म कहांसे प्रवेशकर गये और जो स्वभावसे पवित्र जीवमें बुरे कर्म प्रवेशकरगये तो स्वभावसे पवित्र ईश्वर इससे कैसे बच सक्ताहै, कहीं आप जीवको पवित्र कहीं पापी बताते हो यह आपकी बात गडबडीकी है, जीव शुद्ध ही है आपको उसका ज्ञान नहीं हुआ इससे ऐसा लिखा है कि, जीवके सन्तानोत्पत्ति कर्म है इसमें कोई श्रुति तो लिखो कि जीवका सन्तानोत्पत्ति कर्म है॥

स० पृ० १९३ पं० १७

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिंगमितिन्या.सू० अ० १ आ० १ सू०

प्राणापाननिमेषोन्मेषमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषौप्रयत्नश्चात्मनोलिंगानि वैशेषिकसू० अ० ३आ२सू०४

(इच्छा) पदार्थोंकी प्राप्तिकी अभिलाषा (द्वेषः) दुःखादिकी अनिच्छावैर (प्रयत्न) पुरुषार्थ बल (सुख) आनन्द (दुःख) विलाप अप्रसन्नता (ज्ञान) विवेक पहचानना यह तुल्यहै परन्तु वैशेषिकमें (प्राणः) प्राण वायुका बाहर निकालना (अपान) प्राणको बाहरसे भीतरलेना (निमेष) आंखको मींचना (उन्मेष) आंखको खोलना (मन) निश्चय और अहंकारकरना (गति) चलना (इन्द्रिय) सब इन्द्रियोंका चलाना

(अन्तर्विकार) भिन्न२क्षुधा तृषा हर्ष शोकादि युक्त होना ये जीवात्माके गुण हैं परमात्मासे भिन्न हैं, इन्हींसे आत्माकी प्रतीति करनी क्यों कि, वोह स्थूल नहीं है जबतक आत्मा देहमें होता है तभीतक यह गुण देहमें प्रकाशित रहते हैं और जब शरीर छोडकर चला जाताहै तब यह गुण शरीरमें नहीं रहते जिसके होनेसे जो हों और न होनेसे न हों वे गुण उसीके होते हैं, जैसे सूर्य और दीपादिकके न होनेसे प्रकाशादिकका न होना और होनेसे होना है वैसेही जीव और परमात्माका विज्ञानगुण द्वारा होता है ॥ २०४ ॥ ८

समीक्षा–मूल मंत्रसे विना सूत्रोंसे जीवके स्वरूपका निरूपण करनेसे स्वामीजीकी वोह प्रतिज्ञा भंग होतीहै कि, मैं मंत्र भागको स्वतः प्रमाण मानताहूं, कोई जीवके स्वरूपकी श्रुति लिखी होती और यह सूत्र भी जीवके इच्छादिमान् स्वरूपके साधक नहीं किन्तु देहादिभिन्न आत्माके बोधक हैं, देहादिसे भिन्न आत्माके अनुमान करानेके वास्तेहैं, न्यायसूत्रमें (आत्मनो लिङ्गमिति) यह जो वाक्य है इसका अर्थ यह है इति आत्मनो लिंगम् ऐसा अन्वय करनेसे यह अर्थ होता है (इति) इच्छादि पूर्व उक्त आत्माके लिंग अर्थात् देहादि भिन्न आत्माके अनुमानकरानेवाले हैं जैसे धूम वह्निका लिंग है और यह नहीं कहाजाता जो धूमयुक्तहै वोह वह्नि है क्योंकि वह्नि विना धूम काष्ठ लोहपिंडादिमें भी है, ऐसे ही इच्छादि सब आत्माके अनुमापक होगये तब इतनेसे यह नहीं हो सक्ता जो इच्छादिमान है सो आत्माहै क्योंकि आत्मा सुषुप्ति समाधिमें भी है और इच्छादि है नहीं इससे इस सूत्रमें इच्छादि गुणवाला आत्मा कहना स्वामीजीकी अविद्याहै और वैशेषिकमें आत्मा विभु लिखाहै ॥

विभवान्महाकाशस्तथाचात्मा वै० अ० ७ आ १ सू० २२

विभवात् अर्थात् सर्व मूर्त्त संयोगरूप विभुत्व होनेसे आकाश (महान्) परममहत् है (तथा) तैसेही सर्व मूर्तसंयोगित्वरूप विभुत्व होनेसे आत्माभी परममहान्है जब आत्मा विभु है तो गति कैसी यदि आत्मा यह गुण होते तो मुक्ति नहीं होती गौतमजी मुक्तिमें इन सबका छूटना मानते हैं ॥

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापायेतदन्तरापायादपवर्गः तदत्यन्तविमोक्षोपवर्गः गौ० सू० २२

दुःख जन्मकी प्रवृत्ति मिथ्या ज्ञान इनका जो अत्यन्त विमोक्ष अर्थात् छूटजाना है उसीको अपवर्ग कहते हैं और भी कहाहै "नप्रवृत्तिःप्रतिसन्धानाप्रहीनक्लेशस्य" अर्थात जिसके क्लेश छूट जाते हैं फिर उसकी प्रवृत्ति नहीं होतीहै फिर यदि यह आत्माके गुण हों तौ इनका अत्यन्त विमोक्ष कैसे हो सक्ताहै और गौतमजी इनका नाश होना मानते हैं-गुण गुणीसे पृथक् नहीं होता यह यदि आत्माके गुण होते तौ अपवर्गमें भी न छूटते, गौतमजी इनका छूटजाना मानते हैं और यदि यह आत्माहीके गुण हों तौ शरीर छूटनेपर भी अपने कुटुम्बिओंसे प्रीति-शत्रुओंसे वैर होना चाहिये, खाने पीनेकी भी अशरीरमें इच्छा होवै आंख खोलकर देखै मींचै परन्तु यह तौ कुछ नहीं होता इससे यह आत्माके गुण नहींहैं, किन्तु देहादिभिन्न आत्माके अनुमान करानेवाले हैं, यह इन्द्रिय मनादिके धर्म हैं, जैसे दीपक बलनेसे घरकी सामग्री दृश्य आने लगती है, दीप निर्वाण होनेसे वोह सामग्री उसी कोठेमें रहती है दीपकके संग नहीं जाती, इसीप्रकार जब तक आत्मा इस देहमें प्रकाश करताहै तबतक सब इन्द्रिय अपने अपने विषयोंको ग्रहणकरती हैं, पृथक् होनेसे हीलोप जाती हैं बालकको द्वेष प्रयत्नादि नहीं होते यह लक्षण आत्माके नहीं किन्तु देह भिन्न आत्माके अनुमानकराने वाले हैं, इसके अर्थ वात्स्यायन भाष्यमें विस्तारसे लिखेहैं उसमें देख लेना यहाँ हमने संक्षेपसे लिखे हैं ॥

प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकारःसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनोलिङ्गानि वै० अ० ३ आ० २ सू० ४

देहमध्यवर्ति वायुके ऊर्ध्वगमनवत् रूप प्राण है और अधोगमनवत रूप अपान है, सो यह दोनों प्राणापान वायुचेष्टा चेतनाधीन जड़चेष्टावान् (रथचेष्टावत) इससे आत्मा देहप्राणभिन्न चेतन है यह सिद्ध हुआ ऐसेही निमेषोन्मेष व्यापारभी नियत है, सोभी चेतनका अनुमापकहै, जीवनपदसे वृद्धिहोना शरीरका तथा शरीरमें घावका भरजाना यह दोनोंका ग्रहण है, सो जीवितशरीरमें देखे जाते हैं वेभी शरीरभिन्न चेतनके अनुमापक हैं,अनुमानप्रकार यह है (इदं शरीरं सात्मकं वृद्ध्यादिमत्त्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा मृतशरीरम्) मनोगति अर्थात् मनका इष्टार्थग्राही इन्द्रियमें प्रवेश करना सोभी आत्माका अनुमापक है, जिसकी इच्छा वा सावधानता मनको प्रेरणाकरती है सो आत्माहै,

अनुमान प्रकार यह है (मनोगतिः चेतना धीना जडनिष्ठगतित्वात रथगतिवत्) जिस पुरुषने कभी नींबूका अचार वा नींबूका स्वाद पाया है, पुनः किसीके पास नींबू देखकर उसके मुखमें जो पानी भर आवै है तिसका नाम इन्द्रियान्तरविकारहै, यह इन्द्रियान्तर विकार भी आत्माका अनुमापक है, क्योंकि आगे गौतमजी इसीप्रकार लिखते हैं॥

इन्द्रियान्तरविकारात् न्याय॰अ॰३पा॰ १ सू॰ १२

(भाष्य) कस्यचिदम्लफलस्य गृहीतसाहचर्ये रूपे गन्धे वा केनचिदिन्द्रियेण गृह्यमाणे रसनस्येन्द्रियान्तरस्य विकारः रसानुस्मृतौ रसगर्द्धिप्रवर्तितोदंतोदकसंप्लवभूतो गृह्यते तस्येन्द्रियचैतन्येऽनुपपत्तिः नान्य दृष्टमन्यः स्मरति ॥

अर्थ -किसी अम्ल फलके रूपमें वा गन्धमें जिस पुरुषको रसके सहचारका ज्ञानहै तिसके रसना इन्द्रियमें रसस्मृतिसे जो रसग्रहणकी इच्छा तिससे प्रवृत्त होती है तिस जलप्रस्रवणरूप विकारकी इन्द्रिय चैतन्य स्वामीजीके मतसे अनुपपत्ति है क्योंकि अन्यदृष्टपदार्थकी अन्यको स्मृति नहीं होती, यहाँ रस दर्शने तौ रसना इंद्रियसे हुआ है और रसस्मृति चक्षु वा घ्राणको फलका रूप देख वा गन्धग्रहण करके कैसे होगी, इससे इन्द्रियोंसे सर्व अर्थका ग्रहण करनेवाला आत्मा भिन्न है यह मन्तव्यहै और सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न यह पाँचों जैसे अनेकार्थदर्शी स्थायी आत्माके अनुमापक हैं, सो वात्स्यायनजीने अपने भाष्यमें लिखाहै विशेष इच्छा हो तौ वहाँ देख लो गौतमजीने यह इन्द्रियोंहीके धर्म लिखे हैं ॥

बुद्धेरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यर्थान्तरम् गौ॰ १
युगपज्ज्ञानानामुत्पत्तिर्मनसोलिंगम् गौ॰ २
स्मृत्यनुमानागमसंशयप्रतिभास्वप्नज्ञानोहाः सुखादिप्रत्यक्षेच्छादयश्चमनसोलिंगानि ३ गौतमभाष्य.
ज्ञानायौगपद्यादेकंमनः ४

भाषार्थः-बुद्धिसे ज्ञानकी यथार्थता जानी जाती है, अर्थात भला बुरा बुद्धिसे ही निर्णय होताहै १ मनमें एकसमय दो बातोंका ग्रहण नहीं होताहै २ स्मृतिअनुमान आगमसंशय विचार स्वप्नज्ञानतर्क सुखादिइच्छा यह मनके लिंगहैं ३ ज्ञानका विचार मनसे होता है, क्योंकि जिस धातुसे मन शब्द सिद्ध होता है. वोह मन धातु विचारमें वर्तै है, बिना मनके मनन नहीं होता ॥ ४ ॥

ज्ञानलिंगत्वादात्मनोनविरोधः गौ०

अर्थात् आत्माका लिंग ज्ञानहै यहां मनुजीने सबका लिंग पृथक् करदिया केवल शुद्धज्ञान लिंग आत्माका वर्णन किया परन्तु आत्माका विचार वेदान्तशास्त्रसे होताहै यह शास्त्र पदार्थविद्याके हैं इसकारण वेदान्तसेही आत्माका निर्णयकरतेहैं॥

नजायतेम्रियतेवाविपश्चिन्नायंकुतश्चिन्नबभूवकश्चित् अजोनित्यः शाश्वतोयम्पुराणोनहन्यतेहन्यमानेशरीरे कठ०अ०१वल्ली०२

अर्थात् यह आत्मा न कभी उत्पन्न होता न मरता सर्वज्ञ है यह किसीसे हुआ नहीं अजहै, नित्यहै, शाश्वत अर्थात् वृद्धिक्षयादिसे रहितहै शरीरके विनाश होनेसे विनाश नहीं होता॥

अशरीरꣳशरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्
महान्तंविभुमात्मानंमत्वाधीरोनशोचति२१कठ०अ०१वल्ली२

यह आत्मा शरीररहित है, शरीरोंमें अवस्थित है, जिसकी स्थिति निश्चय नहीं होती वोह महान् विभु है ऐसे अपने आत्माको जानके धीरपुरुष शोच नहीं करते, विभुमहान् कहनेसे अखंडका बोध होताहै, अर्थात् सबसे स्थित होनेसे भी अखंडहै विभु होनेसे॥

नायमात्माप्रवचनेनलभ्योनमेधयानबहुनाश्रुतेनयमेवैषवृणुते
तेनलभ्यस्तस्यैषआत्माविवृणुते तनूंस्वाम् २२ कठ०

यह आत्मा बहुत पढनेहीसे नहीं प्राप्तहोता न बुद्धिसे न बहुत श्रवणसे क्योंकि (इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्च परंमनः॥ मनसस्तु पराबुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः प० १ व० ३॥ अर्थात् इन्द्रियोंसे परे अर्थ हैं अर्थोंसे परे मन मनसे परे बुद्धि और बुद्धिसे परे वोह आत्मा है) "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः" जिसको यह इच्छा करताहै तिसहीसे लभ्यहै अर्थात अपने आप आत्माको यह जो निष्काम सर्वसाधनसम्पन्न केवल आत्माकाभी मुमुक्षुहै सोजब ब्रह्मनिष्ठ आचार्यसे आत्मप्राप्तिके अर्थ प्रार्थना करता है तब तिस आचार्यसे तत्त्वमस्यादि महावाक्योंके श्रवण मननरूप उपाय करके ही प्राप्त होताहै तिसको यह, आत्मा अपने तनुको प्रकाशता है॥

आत्मानंरथिनंविद्धिशरीरंरथमेवतु ॥
बुद्धिन्तुसारथिंविद्धिमनःप्रग्रहमेवच ॥ ३ ॥
इन्द्रियाणिहयानाहुर्विषयाँस्तेषुगोचरान् ॥
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तंभोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥
कठ० अ० १ व० ३ । ४

आत्माको रथका स्वामी जानो (अर्थात् अन्तःकरणविशिष्ट सोपाधि कर्ता भोक्ता संसारी जीवात्मा) शरीरको रथ जानो, बुद्धिको सारथी क्योंकि शरीरका सब व्योपार बुद्धिपरही चलता है और बुद्धि विज्ञान नेत्रसम्पन्न होनेसे सब इन्द्रियोंको यथा प्रमाण चलावैहै मनको रस्सी जानो क्योंकि मनसे ही इन्द्रियोंका रोकना होता है ३ इन्द्रियोंको अश्व कहते हैं, चक्षुरादि और वागादि ज्ञान और कर्मेन्द्रियाँ यह घोडे हैं विषयोंको तिनके मार्ग जानो, अर्थात् शब्द, रूप, रस, गंध इन पांच विषयोंको इन्द्रियाँ रूपी घोडोंके चलनेके मार्ग जानो, यह इन्द्रियाँ रूपी घोडे शरीररूपी रथको विषयोंकी ओरही खींचते हैं इसकारण विषय मार्ग हैं यह जो आत्मा है वास्तवमें अकर्त्ता अभोक्ता परम शान्त अचल एकरस शान्त निर्विकारहै, परन्तु (आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्ता, शरीर इन्द्रिय मनयुक्त आत्माको भोक्ता ऐसा कहते हैं अर्थात् तिस आत्माको शरीर इन्द्रिय मन आदि उपाधि सहित होनेसे आवागमन वाला पापपुण्यके फल सुखदुःखादिका भोक्ताः भोगनेवाला ऐसा मनन शील विवेकी पुरुष कहते हैं अर्थात् केवल निरुपाधि शुद्ध अचल आत्माको गमनागमन कर्तृत्वभोक्तृत्वादि कुछभी है नहीं तथापि बुद्ध्यादि उपाधिके सहित होनेसे बुद्ध्यादिकोंके कर्तृत्वभोक्तृत्वादि धर्म आत्मामें भासतेहैं (बृहदारण्यमें यह मनके धर्म लिखेहैं) परन्तु यह धर्म आत्माके नहीं क्योंकि (ध्यायतीवलेलायतीव) यह बृहदारण्यकके छठे अध्यायमें है यह जो शरीररूपी रथ निरूपण कियाहै विष्णुपदकी प्राप्ति इसही रथद्वारा होती है, परन्तु रथके चलानेकी मुख्यसामग्री बुद्धिरूपी सारथीही है जिस रथीका सारथी परम विवेकी होता है सो रथीको अपने रथद्वारा संसारके पार मोक्षाख्य विष्णुके पदको प्राप्त करदेता है और जिसका सारथी अविवेकी मूर्ख है सो जन्म मरण रूपी संसारहीको प्राप्त होताहै, परन्तु आत्माको कुछ दोष नहीं क्यों कि ॥

सूर्योयथासर्वलोकस्यचक्षुर्नलिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः

एकस्तथासर्वभूतान्तरात्मानालिप्यतेलोकदुःखेनबाह्यःउपनि० कठ०

जिसप्रकारसे सूर्य सब लोकोंका प्रकाशक है और स्वयं लोक चक्षुदोषसे लिप्त नहीं होताहै इसीप्रकार सबका एक अन्तरात्मा है सो बाह्य दुःखसे लिप्तनहीं होता ।

आत्मामें कोई विकार नहीं है बुद्धयादिके आवरणसे कर्त्ता भोक्ता मालूम होताहै परंतु स्वामीजीने तौ आत्माके लक्षणही बिगाडदिये जीवके गुण शिल्पविद्या सन्तानोत्पत्ति लिखदिये भला जीव शिल्पी कौनसे शास्त्रसे सिद्धकरा कोई वाक्य तौ लिखा होता ॥

जीवविभुत्वप्रकरणम् ।

स० पृ० १९४ पं० १७ जीव शरीरमें भिन्न विभु है वा परिच्छिन्न (उत्तर) परिच्छिन्न जो विभु होता तौ जाग्रत सुषुप्ति मरण जन्म संयोग वियोग जाना आना कभी नहीं होसक्ता पं० २७ जैसे जीव ईश्वरका व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है वैसेही सेव्य सेवक आधाराधेय स्वामि भृत्य राजा प्रजा पिता पुत्रादिमें भी सम्बन्ध है. ॥ २०५ । १२ ॥ २०५ । २२ ॥

समीक्षा–स्वामीजी यदि वेदान्तशास्त्रको गुरुसे पढते तो ऐसे भ्रम जालमें न पडते क्योंकि इस लेखसे जीवका जन्म मानाहै और (अजामेकां) इसके अर्थमें प्रकृति जीव तथा परमात्मा तीनों अज अर्थात जिनका जन्म नहीं होता इस अपने विरोधयुक्त लेखकी भी स्वामीजीको किंचित् मात्र सुध न रही, यही तौ अनभिज्ञताहै परिच्छिन्न जीवको मानना यह जैनमत है, यदि जीव परिच्छिन्न परिमाण है तो कौनसे शरीरके तुल्य मानोगे यदि पुरुष शरीर तुल्य मानो तौ हस्ती चीटी आदिके शरीरमें प्रवेशकी व्यवस्था नहीं होगी यदि संकोच विकाश स्वभाव मानोगे तौ विकारित्वादि प्रसक्तिसे विनाशी वा जन्म सिद्ध होगा, इससे परिच्छिन्न अनादि सिद्ध नहीं हो सक्ता और जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिवाला जीव मानना, तिसमें विचारना चाहिये कि.

जाग्रत क्या पदार्थ है " जागृनिद्राक्षये " इस धातुसे निद्राके नाशका नाम जाग्रत और निद्राका नाम सुषुप्ति और मध्य अवस्थाका नाम स्वप्न है निद्राका लक्षण पतंजलिजी लिखते हैं ॥

अभावप्रत्ययालंबनावृत्तिर्निद्रा यो०पा० १सू० १०

अभावका जो कारण अज्ञान तिसे आलंबन करनेवाली मनकी वृत्तिका नाम निद्रा है अब विचारिये जाग्रत तौ मनकी प्रमाणादिवृत्तिहै और केवल विपर्य्यय वृत्तिस्वप्नहै जिसकी वृत्तिहै तिसका आश्रय भी वोही है इससे जीवात्मामें जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति जाना आना मानना स्वमीजीकी अज्ञता है वेदान्तसूत्रमें लिखाहै ॥

तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् शा० अ० २ पा० ३ सू० २९

आत्मा अणु नहीं जन्म सुननेसे वोह ब्रह्महीं है जीवरूपमें प्रविष्ट सुननेसे और तादात्म्यके कहनेसे ब्रह्महीं जीव कहाथा "ब्रह्माभिन्नत्वात विभुर्जीवः ब्रह्मवत्" फिर यदि ब्रह्महीं जीवहै तौ जितना ब्रह्म है उतना जीव होनेके योग्य है फिर ब्रह्म विभुहै तौ जीवभी विभुहै "सवाएष महानज आत्मायोयं विज्ञानमयः प्र णेष्विति" अणुत्वश्रुति औपाधिक अणुत्वपर है प्रधानविभुत्वके विरोधसे भावशैत्यकी असिद्धिसे अध्यस्ताणुत्वपर वो कथञ्चिदर्थवादहै और अणुजीवको सब देहमें वेदना सिद्ध नहींहै यदि कहो कि, त्वचाके सम्बन्धसे हो सोभी नहीं, कांटा लगनेसे भी सब देहमें वेदना हो त्वचा कांटेका संयोग सब त्वचामें वर्त्तताहै और त्वचा सब देहमें व्याप्तहै और कांटा तौ पांवतलेहीमें वेदना देताहै जो कहाथा कि, गुणकाभी गुणीसे विश्लेष है गन्धवत् "गन्धेनाश्रयाद्विश्लिष्टः गुणत्वाद्रूपवत्" गुणकाभी गुणीदेशहै गुणीके अनाश्रित गुणका गुणत्वही न हो गन्ध भी गुणत्वसे स्वाश्रयही संचारी है अन्यथा गुणहानि हो इत्यादि शंकरस्वामीके भाष्यमें स्पष्टहै कि, जीव विभुहै जिसे देखना हो सो वहां देखले. "जीवोऽनित्यः परिच्छिन्नत्वात घटादिवत्" इस अनुमानसे अनित्यत्वापत्तिदोषसे परिच्छिन्नत्वकथन असंगत है ॥

उपादानप्रकरणम्

स० पृ० १९० पं० १७ परमेश्वर जगत्का उपादान कारण नहीं निमित्त कारण है ॥

समीक्षा—स्वामीजीके इस प्रश्नके उत्तरमें वेदान्तदर्शनके सूत्र लिखते हैं जिससे विदित हो जायगा कि, परमेश्वर जगत्का अभिन्ननिमित्त उपादान कारणहै ॥

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात् सू० २३ अ० १ पाद ४

प्रकृति घट रुचकादिके मट्टी और सुवर्ण जैसे कारण हैं वा निमित्तकुलालहेमकारादि जैसे कारण हैं तैसे ब्रह्मको कैसी कारणता हो यह विचार है, सो ईक्षापूर्वक कर्तृत्व सुननेसे केवल निमित्त कारण है "सईक्षांचक्रे सप्राण मसृजदित्यादि" कुलालादिनिमित्त कारणमें ही ईक्षापूर्वक कर्तृत्व देखा है, लोकमें अनेक कारकपूर्विका क्रियाके फलकी सिद्धि देखी है यही न्याय आदि कर्तामें पहुंचानेके योग्य है जैसे राजा वैवस्वतादि ईश्वरोंका केवल निमित्त कारणत्वही है तैसेही परमेश्वरको भी केवल निमित्त कारणत्वही जाननेके लिये युक्त है यद्यपि ईक्षासे कर्तृत्व निश्चित है तथापि ब्रह्म प्रकृति नहीं कर्ता होनेसे, जो, जिसका कर्ता है वोह उसकी प्रकृति नहीं जैसे घटका कर्ता कुलाल जगत् कर्ता से भिन्नोपादानक है, कायस घटके समान ब्रह्म जगत्का उपादान नहीं, ईश्वर होनेसे, राजाके समान, जगत् ब्रह्म प्रकृतिक नहीं ब्रह्मसे विलक्षण होनेसे, जो इसप्रकारसे हैं, वोह तैसेही कुलालसे विलक्षण घट समान है जग सावयव अचेतन अशुद्ध देखतेहैं कारणभी उसका वैसाही होना चाहिये कार्यकारणका समान रूप देखनेसे ब्रह्म तौ ऐसा नहीं है(निष्कलं निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरंजनामिति श्वेता० ६।१९ तौ अब ब्रह्म कारण नहीं बना प्रधानही ठीक रहा ब्रह्मको कारण बताती श्रुति निमित्तकारणमें ही सोरही उठ बैठी, प्रधान बोधक स्मृति (इसका उत्तर)॥ तुम तौ कहचुके अब इसका उत्तर सुनो प्रकृतिश्च ब्रह्महो उपादान वो निमित्त कारण मानों केवल निमित्त कारण नहीं क्योंकि "प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्," ऐसी श्रौत प्रतिज्ञा वो दृष्टान्त इनकी रोक न होगी प्रतिज्ञा "उततमादेशमप्राक्ष्योयेनाश्रुतं श्रुतम्भवत्यमतंमतमविज्ञातं ज्ञातमिति" दृष्टान्त एकके जाननेसे अन्य सब जाना जाताहै वह उपादान कारणके जाननेसे सबका जानना सम्भव है, क्योंकि कार्य उपादानसे भिन्न नहीं लोकमें निमित्त कारणका कार्यसे भेद है जैसे तक्षा खाटसे भिन्नहै दृष्टान्त भी उपादानके विषयमें यथा "सोम्यैकेनमृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणंविकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येवसत्यमिति तथैकेन लोहमणिना सर्वंलोहमयंविज्ञातं स्यादेकेन नखनिकृन्तनेन सर्वङ्कार्ष्णायसंविज्ञातं स्यादिति" छां० प्रपा० ६ खं० १। हे सौम्य जैसे एक मट्टीके पिंडसे सब मट्टीके बरतन जानलिये जाते हैं, केवल उनके नाममें वाणी मात्रकाही भेदहै, सब मट्टी हैं इसी प्रकार एक लोहमणिसे सब लोहा जान लिया जाता है इत्यादि और ऐसे मुण्डकमेंभी पढाहै "कस्मिन्नु भगवो

विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति" हे भगवन् ! किसके जाननेसे यह सब जाना जाता है यही प्रतिज्ञा कर "यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति" जैसे पृथ्वीमें औषधी होतीहैं यही दृष्टान्त है और "आत्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितमिति" निश्चय आत्माहीमें देखने सुनने जाननेसे यह सब जाना जाताहै यह प्रतिज्ञा बृहदारण्यकमें है "सयथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्यनबाह्याच्छब्दान् शक्नुयात् ग्रहणाय दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुंदुभ्याघातस्य वाशब्दो ग्रहीतः" जैसे नगाडेके बजनेमें उसके शब्दोंको ग्रहण करनेमें कोई समर्थ नहीं होता और दुन्दुभीके ग्रहणमें दुन्दुभीके आघातका शब्द ग्रहण ही होजाता है यही दृष्टान्त है (यतो वाइमानि भूतानि जायन्ते) जिस परमात्मासे यह प्रजाउत्पन्न होती है इससे भी उपादानहीहै "जनिकर्तुःप्रकृतिरिति" इस विशेष स्मृतिसे जैसे लोकमें मृत् हेमादि उपादान कारण कुलाल हेमकारादि अधिष्ठाता-ओंको अपेक्षा करके प्रवर्त्ते हैं तैसे उपादान सत् ब्रह्म कारणको अन्य अधिष्ठाता अपेक्षित नहीं है उत्पत्तिके पहले एक अद्वितीय था इस निश्चयसे अन्य अधिष्ठाताका अभाव भी प्रतिज्ञा वो दृष्टान्तके निरोधसे कहाहुआ जानो ॥

अभिध्योपदेशाच्च अ० १ पा० ४ सू० २४

चेतनका कार्यके साथ भेद होना सुना है तिससे अचेतन अणु और प्रधान विश्व निदान नहीं "अभिध्योपदेशश्चात्मनः कर्तृत्वप्रकृतित्वेगमयति" "सोकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति" तैत्तिरीय "तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेतिच" छां० अर्थात् परमेश्वर कामना करताहुआ कि, मैं बहुत होजाऊं, इनमें संकल्प पूर्व जो स्वतंत्र प्रवृत्ति है तिसको कर्त्ता जाना जाताहै यह प्रत्यगात्मविषयसे बहुत होनेसे संकल्प का प्रकृति भी जाना जाताहै ॥

साक्षाच्चोभयाम्नानात् २५

जन्म और नाश यह दो शब्द ब्रह्महीसे सुने हैं तिससे निमित्त और उपादान ब्रह्महीहै अथवा ईक्षासे ब्रह्मको केवल निमित्तही समझाथा, जैसे कुम्हार मिट्टीका द्रष्टा निमित्त कर्त्ता है, जिससे भूतोंका जन्म है इस पंचमी विभक्तिसे उपादान का अपादान नाम धरके ब्रह्मको प्रगट उपादान कहाहै यथा हि "आकाशादेवसमुत्पद्यन्ते आकाशं प्रत्यस्तं यन्तीति" 'सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि "इत्यादि अर्थात् यह सब उससे ही उत्पन्न

होताहै और यह सब प्राणी उसीमें लय होजाते हैं, इनमें साक्षात् ब्रह्म-हीसे उत्पत्ति और प्रलय दोनों वेदने कहेहैं, "इतश्च प्रकृति ब्रह्मयत्कारणं साक्षात् ब्रह्मैव कारणमुपादायोभौ प्रभवप्रलयावाम्नायेते" जो जिससे जन्मताहै वो जिसमें मिलताहै सोही उसका उपादान प्रसिद्ध है जैसे व्रीहियवादिकः की पृथ्वी, साक्षादाकाशादेवेति श्रुति उपादानांतरके अभावको दिखाती है ॥

स्वाप्ययात् अ० १ पा० १ सू० ९

ब्रह्महीमें सब का लय कहाहै तिससे भी प्रधान विश्व निदान नहीं है सोजानेमें सब चेतनोंका लय होता जिसमें सोही चेतन विश्व निदान है ॥

गतिसामान्यात् १०

जैसे नेत्रादि इन्द्रियां रूपादिमें समान गतिसे वर्तैहैं, तैसे सब वेद ब्रह्मकोही जगत् कारण कहते हैं न कि, तार्किकोंके समान भिन्न कारण हैं "यथाग्नेर्ज्वलतः सर्वादिशो विस्फुलिंगा :विप्रतिष्ठेरन् एवमेवैतस्मादात्मनःसर्वे प्राणे यथा यतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्योदेवादेवेभ्यो लोका इति" "तस्माद्वाएतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत इति" "आत्मन एवेदं सर्वमिति" "आत्मन एष प्राणो जायत इति" जैसे जलती हुई अग्निसे चिनगारी निकलती हैं, इसीप्रकार आत्मासे प्राण प्राणोंसे देवता देवताओंसे लोकादि प्रतिष्ठित हैं, उसी परमात्मासे यह आकाशादि उत्पन्न हुआहै, यह सब कुछ आत्माही है, आत्मासे ही प्राण उत्पन्न हुयेहैं ॥

श्रुतत्वाच्च ११

वेदसे उपादान कारण कर्त्ता सब चेतनही सुनाहै यथाहि-

नतस्यकश्चित्पतिरस्तिलोके नचेशितानैवचतस्यलिंगम् ॥
सकारणंकरणाधिपाधिपो नचास्यकश्चिज्जनितानचाधिपः ॥

श्वेता० अ० ६।९

इस आत्माका लोकमें न कोई पति है न शिक्षक है न उसका लिंग है वोही कारण करणहै वोही ईश है उसका कोई उत्पन्न कर्त्ता वा अधिपति नहीं है अर्थात् सब कुछ वोही है इससे सिद्ध है कि उपादान कारण इस जगतका परमात्मा है इसका विशेष विवरण अगले समुल्लासमें करेंगे॥

महावाक्यप्रकरणम्

स० प्र० पृ० १९४ पं०३०से पृ० १९५ के अन्ततक

" प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म " वेदोंके इन महावाक्योंका अर्थ क्या है (उत्तर) यह वेदवाक्य नहीं है किन्तु ब्राह्मण ग्रंथोंके वचनहैं और इनका नाम महावाक्य कहीं सत्य शास्त्रोंमें नहीं लिखा अर्थात् (अहम्) मैं(ब्रह्म) अर्थात् ब्रह्मस्थ (अस्मि) हूं यहां तात्स्थ्योपाधि है जैसे (मंचाःक्रोशन्ति) मञ्चान पुकारतेहैं मञ्चान जडहैं उनमें पुकारनेका सामर्थ्य नहीं इसलिये मंचस्थ मनुष्य पुकारते हैं इसीप्रकार यहां भी जानना पुनःपृ०१९५ पं०९ जीवका ब्रह्मके साथ तात्स्थ्य वा तत्सहचारितोपाधि अर्थात् ब्रह्मका सहचारी जीवहै इससे जीव और ब्रह्म एक नहीं जैसे कोई किसीसे कहै कि, मैं और यह एकहैं अर्थात् अविरोधी है वैसेही जो जीव समाधिस्थ परमेश्वरके प्रेमबद्ध होकर निमग्न होता है वोह कह सक्ता है कि, मैं और ब्रह्म एक अर्थात् अविरोधी एकत्र अवकाशस्थ हैं, ❀जो जीव परमेश्वरके गुणकर्म स्वभावके अनुकूल अपने गुणकर्म स्वभाव करताहै, वोह साधर्म्यसे ब्रह्मके साथ एकता कहसक्ताहै (प्रश्न) अच्छा तौ इसका अर्थ कैसा करोगे (उत्तर) तुम तत् शब्दसे क्या लेतेहो " ब्रह्म " "ब्रह्म" पदकी अनुवृत्ति कहांसे लाये ॥

सदेवसौम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयंब्रह्म ।

इस पूर्ववाक्यसे तुमने छान्दोग्यका दर्शन भी नहीं किया जो वोह देखी होती तौ वहां ब्रह्म शब्दका पाठही नहीं है ऐसा झूठ क्यों कहते किन्तु छान्दोग्यमें तौ ॥

सदेवसौम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम् । प्र०६ ख २ मं० १

ऐसा पाठहै वहां ब्रह्म शब्द नहीं (प्रश्न) तो आप तच्छब्दसे क्या लेतेहैं ॥

स य एषोणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यं
स आत्मा तत्त्वमसिश्वेतकेतो इति छां०प्र०।६खं०८मं६।७

वह परमात्मा जाननेके योग्यहै जो यह अत्यन्त सूक्ष्म और इससब जगत् और जीवका आत्माहै वोही सत्यस्वरूप और अपना आत्मा आपही है हे श्वेतकेतो प्रियपुत्र और पृ० १८६ पं० १ में ॥

❀ ब्रह्म और जीव दानोएक अवकाशमें स्थित होगये यह पद दयानन्द जैसे कोरे लोगही कहसकतेहैं ।

तदात्मकस्तदन्तर्यामी त्वमसि

उस परमात्मा अन्तर्यामीसे तू युक्त है ॥ पृ० २०५ पं०२५ से

समीक्षा–इस लेखमें स्वामीजीने दो वार्ता कथन करीं एक तो इन वाक्योंकी महावाक्य संज्ञा प्रमाणिक नहीं दूसरा इनको वेदत्व नही सो मंत्र ब्राह्मण नाम वेदका है यह तौ आगे इसी समुल्लासमें सिद्ध करैंगे परन्तु अब महावाक्यकी व्यवस्था लिखते हैं, यहां महावाक्य संज्ञा अन्वर्थ है जैसे तुमने ईश्वरके नाम दयालु न्यायकारी रख लिये हैं उसी प्रकार यह संज्ञा है " महद्बोधकं वाक्यं महावाक्यं अथवा महच्च तद्वाक्यं च महावाक्यं" यह अन्वर्थ संज्ञाहै भाव यह है कि, महत् जो अखण्ड चेतन वस्तु तिसके बोधक होनेसे महावाक्यहैं और द्वितीय पक्षमें महद्वाक्य हैं इससे महावाक्य हैं पहले पक्षमें तौ महत् शब्दकी महद्बोधक इतने अर्थमें लक्षणावृत्तिहै और दूसरे पक्षमें ब्रह्मबोधकत्वही वाक्योंमें महत्त्वहै क्यों कि ब्रह्म (महत्) देश काल वस्तु परिच्छेदरहित है, ऐसे ब्रह्मके बोधक होनेसे महावाक्य है, भाव यह है कि, भेद भ्रम निवारक वाक्यको अद्वैतसिद्धान्तमें अपनी परिभाषासे महावाक्य कहतेहैं, जैसे पाणिनि ऋषिकेमतसे वृद्धिशब्द परिभाषासे आ ऐ औ का बोधक होता है वैसेही व्यास शंकर स्वामी अद्वैतसिद्धान्ताचार्योंके मतमें महावाक्य शब्द भी भेदभ्रमनिवारक वाक्योंमें पारिभाषिक है,इससे इन वाक्योंका नाम महावाक्य तौ सिद्ध हो गया अब अहं ब्रह्मास्मि इसकी व्यवस्था सुनिये इसके अर्थ करकै बावाजीने आपही अपनी अविद्वत्ता प्रगट करी है क्योंकि अपनी उक्तिसे आपही विरुद्ध कथन कराहै(य आत्मनि तिष्ठन्) इस श्रुतिमें जीवात्माको आधारता और ब्रह्मको आधेयता कही है और इस वाक्यमें ब्रह्मपदकी ब्रह्मस्थ अर्थमें लक्षणा करनेसे (ब्रह्मणि तिष्ठतीति ब्रह्मस्थः) इस व्युत्पत्तिसे पुरुषाधार पंचवत् ब्रह्माधार प्रतीत होता है तब एक बृहदारण्यकमें किसी वाक्यमें तौ ब्रह्म आधार और जीव आधेय और किसी वाक्यमें जीव आधार और ब्रह्म आधेय यह प्रतीत होता है, ऐसे विरुद्ध अर्थके स्वीकारसे स्वामीजीकी अविद्या प्रतीत होतीहै जैसे पृष्ठ १९६ पं० ३ में लिखाहै ॥

यआत्मनितिष्ठन्नात्मनोन्तरोयमात्मानवेदयस्यात्माशरीरम्‌ ।

यआत्मनोऽन्तरोयमयति एषतआत्मान्तर्याम्यमृतः

(यह बृहदारण्यकका वचन है महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्त्री मैत्रेयीसे कहते हैं कि, हे मैत्रेयि ! जो परमेश्वर आत्मामें अर्थात् जीवमें स्थित और जीवात्मासे भिन्न है जिसको मूढ जीवात्मा नहीं जानता कि, यह परमात्मा मेरेमें व्यापक है जिस परमेश्वरका जीवात्मा शरीर अर्थात् जैसे शरीरमें जीव रहता है वैसेही जीवमें परमेश्वर व्यापक है जीवात्मासे भिन्न रहकर जीवके पाप पुण्योंका साक्षी होकर उनके फल जीवोंको देकर नियममें रखताहै वही अविनाशी स्वरूप तेरा भी अन्तर्यामी अर्थात् तेरे भीतर व्यापकहै ॥)

यह दयानंदजीका कथन सर्वथा असंगतहै इस लेखसे जीवात्माको आधारता और ईश्वरात्माको आधेयता और अहं ब्रह्मास्मि इस वाक्यमें ब्रह्मपदबोध्य ईश्वरमें आधारता और जीवमें आधेयता सिद्धहोती है सो ऐसे असंगत अर्थको स्वामीजीके सिवाय और कौन लिख सकताहै और एक महा अज्ञानता यहहै कि, उद्दालक याज्ञवल्क्यके संवादकी श्रुतिको मैत्रेयी याज्ञवल्क्यके संवादकी वर्णनकीहै जिन्हे इतना भी ज्ञान नहीं कि,क्या कहरहे हैं और जो जीवको ब्रह्मके निकटस्थ और मुक्तिमें साक्षात्सम्बंधमें रहनेवाला और ब्रह्म सहचारी (अर्थात् ब्रह्मके साथ विचरनेवाला) कहा सो तौ सर्वथा झूंठ प्रलाप स्वामीजीके मतका विघातकहै क्योंकि यदि जीव निकटस्थ और दूसरे पदार्थ दूरस्थ और मुक्तिमें साक्षात्संबन्ध और बंधमें परंपरासंबंध और जीवके साथ रहने वाला है तौ ब्रह्म एकदेशीपरिच्छिन्न क्रियावत् होगा और जो जीवको ब्रह्मका अविरोधी रूप अथवा ब्रह्मको जीवका अविरोधीरूप कहा तो क्या जीव भिन्न पदार्थ ब्रह्मके विरोधी हैं, वे क्या ब्रह्मसे लड़ाई लडते हैं और वोह एक अवकाश ब्रह्मसे भिन्न कौन है जिसमें समाधिकालमें ब्रह्म और जीव स्थित है सबका आधार ब्रह्म यदि किसी दूसरे अवकाशमें रहैगा तौ परिच्छिन्नत्वादि दोष युक्त होगा इससे अहंब्रह्मास्मि इस वाक्यका व्याख्यान सर्वथा स्वामीजीकी अज्ञानता प्रकाश करता है और यह जो लिखाहै (जो जीव परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावके अनुकूल अपने गुणकर्म स्वभाव करता है वही साधर्म्ययुक्त होताहै ब्रह्मके साथ एकताकहसकताहै) इसस्थानमें यह विचारना चाहिये कि, वोह गुण कर्म स्वभाव कौनहैं जिनके अनुसार अपने गुण कर्म करने चाहिये यदि सत्यकामत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तित्व, नियंतृत्व धर्मादि फलप्रदत्व, यह गुण और सृष्टिपालन संहारकर्तृत्वादि कर्म कहो तौ इस गुण कर्म

के अनुसार अर्थात् तत्सदृश गुण कर्म कहोगे तब तौ यह गुणकर्म स्वामीजीके मतमें मोक्षमें भी नहीं होते, तो बंध कालमें कहांसे होंगे यदि न्यायकारित्व कर्म और दयालुत्वादि गुण परमेश्वरमें प्रसिद्धहैं तत्सदृश गुणकर्म अपनेमें करना चाहिये यह कहो तौ किस प्रमाणसे परमेश्वरको न्यायकारी दयालु जानाहै यदि जीवोंके सुख दुःखको देखके अनुमान होताहै कि, कोई सुख दुःखदाता न्यायकारी दयालु है सो तौ ठीक नहीं क्योंकि मूल प्रमाणसे विना अनुमानाभास होजाता है मीमांसक कर्मवादी सुख दुःख दाता कर्मको कह सक्ताहै इससे शब्द प्रमाणसे न्यायकारी दयालु निश्चय होगा तब तो परमेश्वरके अवतार मानेविना न्यायकारी दयालु कभी सिद्ध नहीं हो सक्ता सो स्वामीजीने माना नहीं तो परमेश्वरके गुणकर्म स्वभावानुकूल अपने गुणकर्म स्वभाव करने चाहिये यह कथन असंगत है हां परमेश्वरके अवतारादिमें गुणकर्म स्वभावके अनुसार आपभी अपने करेपर अवतार तौ माना नहीं अब भेदसाधक श्रुति जो स्वामीजीने लिखी उसे समग्र लिखते हैं जिससे अभेद निश्चय होताहै ॥

यआत्मनितिष्ठन्नात्मनोऽन्तरोयमात्मानवेदयस्यात्माशरीरम् यआत्मनोन्तरोयमयाति एषतआत्मान्तर्याम्यमृतोऽदृष्टोद्रष्टाऽश्रुतः श्रोताऽमतोमन्ताऽविज्ञातोविज्ञातानान्योऽतोऽस्तिद्रष्टानान्योतोऽस्तिश्रोतानान्योऽतोऽस्तिमन्तानान्योऽतोऽस्तिविज्ञातैषतआत्मान्तर्याम्यमृतोऽतोऽन्यदार्तम् बृह० २३ अ० ९ ब्रा० ७

लोकप्रसिद्ध भेदका प्रथम श्रुति अनुवाद करके पश्चात् प्रमाणान्तराज्ञात अभेदको प्रतिपादन करती है जो आत्मामें अर्थात् विज्ञानोपाधिक कर्तृत्व भोक्तृत्वरूपसे निर्णीत संसारी जीवमें कारणोपाधिक ईश्वर स्थित होकर तिस विज्ञानोपाधिका कारण होनेसे तिससे अन्तरहै और जिसको वोह जीव नहीं जानता जिसका जीवात्मा शरीरहै और वोह ईश्वर जीवको अन्तर स्थितही प्रेरणा करता है इतने श्रुतिभागसे औपाधिक भेद कहा अब उत्तर श्रुति भागसे अभेद कहतेहैं याज्ञवल्क्य कहते हैं हे उद्दालक ! जो अन्तर्यामी अमृत तत्पदलक्ष्य अदृष्ट द्रष्टा और अश्रुत श्रोता और अमत मन्ता वैसेही अविज्ञात विज्ञाता है (एष ते आत्मा) यह तेरा स्वरूप है और (एष ते आत्मा) इस वाक्यका दयानंदजीने (वही

अविनाशी स्वरूप तेरा भी अन्तर्यामी आत्मा अर्थात् तेरे भीतर व्यापक है,) यह अर्थ लिखाहै सो असंगत है क्योंकि पूर्व वाक्यसे इसी अर्थको बोधन कराहै इससे यह महावाक्यहै भेदभ्रमनिवारक होनेसे और हे उद्दालक ! इस चैतन्य ज्योतिसे भिन्न द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता नहीं इसवाक्यसे जीव और ईश्वर द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाताके भेदका निषेध करा पुनः दृढता करतेहैं(एष त आत्मा अन्तर्याम्यमृतः) यह अन्तर्यामी अमृत तेरा स्वरूपहै इससे जो भिन्न वस्तुहै सो (आर्त) विनाशी है, इस वाक्यके अर्थसे यह जनाया (यत्र ब्रह्मभिन्नत्वं तत्र विनाशवत्त्वं) जिसको ब्रह्मभिन्नत्वहै तिसको विनाशवत्त्वहै यदि जीवको ब्रह्मभिन्न मानैंगे तो तिसको विनाशवत्त्व होगा तब जीवको अनादि अनंतत्व कल्पना असंगत होगी इससे जीवको ब्रह्मरूप करकेही अनादि अनंतत्व है, अब तत्त्वमसि वाक्यकी लीला देखिये (सदेव सोम्येति) यह तत्त्वमसि वाक्यका व्याख्यान लिखाहै परन्तु इस स्थानमें जिस अद्वैतवादीके साथ प्रश्नोत्तर हुआ है जाने वो वेदान्ती भी कोई महामूर्ख है जिसे स्वामीजीके बृहदारण्यक बोधकी तरह छान्दोग्यका बोधहै क्योंकि यदि बृहदारण्यकका बोध होता याज्ञवल्क्य उद्दालकके संवादमें मैत्रेयीका संवाद न लिख बैठते और छान्दोग्य श्रुतिमें सत् शब्दको प्रकृतिवाचक न लिखते जैसे स्वामीजी हैं वैसाही कुशाग्रबुद्धि उन्हें पूर्वपक्षी मिलाहै जिसने छान्दोग्यका दर्शन भी नहीं करा ऐसेहीके मतका खंडन कराहोगा यदि शंकराचार्यके सिद्धान्तका खंडन कियाहै तौ किसी शंकरमतके ग्रंथका वाक्य लिखते क्योंकि शंकरस्वामीजीके भाष्य प्रसिद्धहै खंडन तौ क्या दयानंदजी शंकराचार्य्यके भाष्यकी पंक्ति भी नहीं समझसक्ते उपनिषदोंका दर्शन भी नहीं किया ॥

स्वामीने जो लिखा कि, तच्छब्दसे ब्रह्मकी अनुवृत्ति वहांसे लाये क्या तच्छब्द अनुवृत्तिके वास्ते है यदि अनुवृत्तिका बोधक होता तो असंगत होता क्योंकि अनुवृत्ति प्रकरणके बलसे वैसेही हो सक्ती किन्तु (सर्वनाम्नामुत्सर्गतः प्रधानपरामर्शित्वम्) सर्वनामसंज्ञकशब्दोंको प्रधान अर्थकी परामर्शित्व अर्थात् ज्ञापकता होती है सो इस प्रकरणमें सत् एक अद्वितीयरूप वस्तु ब्रह्म प्रकरणप्रतिपाद्य होनेसे प्रधान है तिसका लक्षक तत्पदहै किसी पदकी अनुवृत्तिका बोधक नहीं स्वामीजीकी शंका समाधान वृथाहै क्योंकि प्रथम एकपदसे एकपदकी अनुवृत्ति बोधन करनी

फिर दूसरे पदसे अर्थको बोधन करना महागौरव है और (तत्सत्यं स आत्मा) इस श्रुतिवाक्यका अर्थ यह किया (वही सत्यस्वरूप और अपना आत्मा आपही है) और (तत्त्वमसि) इस वाक्यका अर्थ स्वामीजीने यह कियाहै उस परमात्मा अन्तर्यामीसे तू युक्त है इस लेखको असंगत करनेको सम्पूर्ण श्रुति लिखते हैं ॥

अस्य सौम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि सम्पद्यते मनःप्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां स य एषोऽणिमा। ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो छां० उ० प्र० ६ खण्ड ८ मं० ६। ७

अर्थ–हे सौम्य ! इस म्रियमाण पुरुषके वागुपलक्षित सम्पूर्ण इन्द्रियवृत्ति मनमें लीन होजाती हैं और मन किंचित् काल अंतरही संकल्पादि रहित होकर जब पुरुष लंबेलंबे श्वास लेताहै, तब प्राणमें लीन होताहै प्राण भी किंचित् काल देहमें यथावत् चल कर तेजमें लीन होताहै तेज भी किंचित् काल रहताहै तब उस तेजसेही निश्चय करतेहैं जो जीवताहै फिर तेजभी परममूल कारणमें जो सत् ब्रह्महै तिसमें लीन होताहै और दयानंदजी कहते हैं ब्रह्मका पाठ नहीं सो सर्वथा विद्याहीनताका बोधकहै, क्योंकि ब्रह्मशब्दके पाठ न होनेसेभी सत्का प्रकरण तौ सम्पूर्ण षष्ठाध्यायहै यदि ब्रह्म सत् नहीं तौ क्या असत् शून्य रूपहै सो तो असंगतहै किन्तु सद्रूपहै इससे ब्रह्मकाही प्रकरण है जो यह पर देवता सद्रूप ब्रह्म है सो (अणिमा) अत्यन्त सूक्ष्म है जिसमें मरण समय जीव लीन हुआ है मरण समयमें सब वागादि उपाधिका ब्रह्ममें लय कथनका भाव यह है ब्रह्मको सर्वकी उपादानता बोधन करना क्योंकि उपादानमेंही कार्यका लयहोताहै दूसरा भी तात्पर्य यह है वागादिकी उपाधिके लीन हुएसे जीवका स्वरूप केवल ब्रह्म है इससे ब्रह्म जीवका भेद केवल उपाधिकृत है क्योंकि उपाधिके अभावकालमें जीवत्वभाव प्रतीत होता नहीं (इदं सर्वमैतदात्म्यम् ॥

षए सद्रूप आत्मा अन्तरात्मा यस्य सर्वस्य आकाशादिविराट् पिण्डान्तस्य वस्तुमात्रस्य स प्रपंचः एतदात्मा एतदात्मनोभाव सत्तारूपोऽर्थः। इदं सर्वं वस्तुमात्रमैतदात्म्यम्। एतेन प्रपंचस्य ब्रह्मसत्तातिरिक्तसत्ताशून्यत्वमपिबोधितम्। यथागन्धवत्त्वमित्य

त्रगन्धवच्छब्दोत्तरवृत्तिभावप्रत्ययस्य गन्धरूपार्थबोधकत्वं भाव प्रत्ययस्य । तथाच सर्ववस्तुमात्रस्यात्मनः एतदात्मशब्दप्रतिपाद्यस्य ब्रह्मण इदं सर्वमितिपदप्रतिपाद्येन प्रपंचेन सह समानविभक्तिकयोः पदयोरभेदसंसर्गेणान्वये प्रपंचस्य ब्रह्मसत्तातिरिक्त सत्ताशून्यत्वमेव निश्चितमिति भावः ॥ शंकरभाष्य०

भावार्थ–सर्व वस्तुका आत्मा वास्तवरूप जो सद्वस्तु ब्रह्महै (तत्सत्यं) सो नाशरहित है और (सआत्मा) सोई जीवहै यहाँ सद्वस्तु ब्रह्मको उद्देश्य करके आत्मा विधेय है और तत्त्वमसि यहाँ भी पुनः तच्छब्द बोध्य सद्ब्रह्मको उद्देश्य करके त्वंशब्दबोध्य जीवात्मा श्वेतकेतुसंबोध्य चेतन विधेयहै इसका पुनः कथन करनेका यह भाव है जो कि पूर्व सआत्मा इस वाक्यमें आत्मा शब्द जीवात्माका बोधक है और उत्तर वाक्यमें भी त्वंपदबोध्य आत्मा है अर्थान्तर नहीं इस प्रकार एकता दृढ होती है और केचित् भेद भ्रान्ति युक्त वास्तव भेदवादी यह कहते हैं (तत्त्वमसि) इस वाक्यमें तस्य त्वं तत्त्वम् इत्यादि समास करके भेदको सिद्ध करते हैं तिनके भ्रम दूर करने वास्ते सआत्मा यह पृथक् अभेद बोधक वाक्यका उपदेश करा है क्योंकि इस वाक्यमें समासकी संभावनाही नहीं हो सक्ती और उद्देश्य विधेय भाव स्थलमें भिन्न पदजन्य उपस्थिति पदार्थोंकी शाब्दबोधमें कारण वा देखीहै यदि समासकर एक पद होगा तो विभिन्नपदजन्य पदार्थोपस्थितिके अभावसे उद्देश्य विधेय भावही नहीं होगा और पूर्व वाक्यमें अभेद और उत्तर वाक्यमें भेद यह कथन असंगत होगा और दयानन्दजीने (तत्सत्यं सआत्मा) इसका (वही सत्य स्वरूप अपना आत्मा आप है) यह अर्थ लिखा है आशय स्वामीजीका यह है सशब्द आत्मशब्द दोनों ब्रह्मके बोधक हैं यदि इस वाक्यमें अपना आत्मा आप है यह अर्थही विवक्षित हो तो (य आत्मनि तिष्ठन्) इस श्रुति वाक्यमें भी अपने आत्मामें आपही स्थित है, अपना नियंता आत्मा आपही है, इस अर्थके करनेसे दयानंदजीका भेदही रसातलको चला जायगा, यदि इस श्रुतिमें (आत्मनि) यह पद जीवात्माका बोधकहै तब (सआत्मा) इस श्रुतिमें भी आत्मशब्द जीवात्माका बोधक है जैसे एकमें आधाराधेयभाव असंभव है वैसेही आत्मा आत्मवत्त्वभी एकमें असंभव है और उत्तर वाक्यसे विष

मता होगी, क्योंकि "तत्त्वमसि" का उस परमात्मा अन्तर्यामीसे तू युक्त है यह अर्थ करा तब कहना चाहिये कैसे युक्त है यही कहना होगा जो तेरे अन्तर अन्तर्यामी है तौ जीवका आत्मा परमेश्वर हुआ तो अपना आत्मा आप कैसे होसक्ता है, यदि अपना आत्मा आप हुआ तो जीव परमात्मासे अभिन्न सिद्ध होगया स्वयं स्वामीजीके मुखसे और यह भी सोचना चाहिये कि, परमात्मासे कौन वस्तु युक्त नहीं सर्व वस्तु परमात्मासे युक्त हैं यदि निकटस्थ जीवको कहोगे तो परमात्मामें व्यापकत्वका भंग होगा और वाक्यमें युक्त अर्थका बोधक पद कौन है और यह भी विचार करना जहाँ अत्यन्त भेद होता है वहाँ समान विभक्तिवाले शब्दोंका प्रयोग होता नहीं जैसे घटः पटः इस शब्दप्रयोग कर्ताको भ्रान्त कहते हैं तैसे यदि जीवसे परमात्माका अत्यन्त भेदहै, तौ तत्त्वम् अहंब्रह्म प्रज्ञानं ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म यह शब्द प्रयोग कैसे होंगे और जहां अत्यन्त अभेद होताहै वहां भी समान विभक्तिक शब्दप्रयोग होता नहीं, जैसे कटः कलशः यह प्रयोग नहीं होता इसी प्रकार जब सशब्द तथा आत्मा शब्द ब्रह्मकेही बोधक होगये तो(सः) ब्रह्म आत्मा ऐसा शब्दप्रयोग नहीं होना चाहिये, पुनरुक्ति दोष इसमें आता है परन्तु जहां औपाधिक भेद और वास्तव अभेद होताहै वहां ऐसा शब्द प्रयोग होताहै जैसे "नीलो घटः" इस वाक्यमें नीलत्वघटत्व धर्मसे भेद है वास्तव नीलरूपवत् व्यक्ति एक वस्तुहै तैसे (सआत्मा तत्त्वम्) इसस्थानमें भी जीवत्व परमेश्वरत्व उपाधिकाही भेद है वास्तव एकव्यक्ति सत् चित् आनन्दहै (प्रश्न) जीवत्व और परमेश्वरत्व उपाधिका नाम कैसे होगा यह दोनों तौ धर्म हैं (उत्तर)ऐसे समझो श्रुतिमें जब वाक् मन प्राण तेज यह कार्य्यरूप उपाधिके होते जीव कहा और इनके अभावमें कारणात्मा ब्रह्मपर देवतारूपता कही तब यह निश्चय हुआ जोकार्य्य उपाधितत्संस्कारविशिष्ट सदंश है,सो तौजीव और कारणोपाधिविशिष्ट सदंश परमेश्वर है,इतनेसे यह निश्चय हुआ जोउपाधि विशेषण और चित् सत् वस्तु विशेष्य और भाव अर्थमें त्वप्रत्ययका यह स्वभाव है विशेषणीभूत वस्तुका बोधक होताहै, जैसे नीलशब्द जब नीलवत् गुणीका बोधकहै,तब नीलत्व पद नील गुणमात्र का बोधक होताहै,तैसे जीव विशेषण कार्य्य उपाधि जीवत्वहै और परमेश्वर उपाधिकारणत्व संपादक विचित्रशक्ति परमेश्वरत्वहै और वास्तव व्यक्ति सच्चिदानंद वस्तु अखंड है, ऐसे अखंडार्थबोधक होनेसे इनकी महावाक्यसंज्ञा

पारिभाषिकहै और हठ छोड़ यह भी समझना चाहिये कि, इसस्थानमें अस्मिपद और असिपद वर्तमान कालके प्रयोगहैं, यदि समाधिस्थ होकर वा गुणकर्म परमेश्वरके अनुकूल करके पश्चात् कह सक्ता तौ वर्तमान् कालके प्रयोग न होते इसकारण यहां ऐसा उपदेश है जैसा कि, कर्णको सूर्यभगवान्का कुंतीपुत्रत्व उपदेश था, भ्रमसिद्ध राधापुत्रत्वकी निवृत्तिके वास्ते; दयानंदजीने जो कहा कि (तदात्मकस्तदन्तर्यामी त्वमसि) उस परमात्मा अन्तर्यामीसे तू युक्त है, यह असंगतहै क्योंकि एक विज्ञानमें सर्व विज्ञान प्रतिज्ञा उद्दालक ऋषिने जोकि उपदेशके प्रारम्भमें प्रथम करी है उसका भंग होगा और इसप्रकारका अर्थ प्रकरणविरुद्ध है क्योंकि यह प्रकरण अन्तर्यामीका नहीं किन्तु म्रियमाण जीवका जो वास्तवरूप है जहांसे तेज आदि जगत् उत्थान होनेसे जीवत्व भाव होता है, और तिनकी लीनतामें, जीवत्वभाव निवृत्त होताहै तिसका प्रकरण है, इसप्रकार प्रौढ युक्ति और श्रुति प्रमाणसे अहंब्रह्मास्मि और तत्त्वमसि इन वाक्योंका अर्थ निरूपण होगया तौ "प्रज्ञानं ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म" इत्यादि सर्व महावाक्योंके अर्थका निर्णय होगया, और इतनेही महावाक्यही हैं यह नियम नहीं किन्तु भेदभ्रम निवारक यावत् हैं वे महावाक्यही हैं प्रज्ञान शब्द और आत्मा शब्द अवस्थात्रितयसाक्षीका बोधक है और अयं शब्द अखण्ड चैतन्यमें अपरोक्षताका बोधक है इसप्रकार त्रिविध परिच्छेद वर्जित अखण्ड चैतन्यके बोधकःसब महावाक्य होगये और औपाधिक भेद और वास्तव अभेद सिद्ध होगया यदि औपाधिक भेद वास्तव अभेदका बाधक होवै अथवा उपाधिसे टुकड़े होवै तौ आकाशका वास्तव अभेदका बाध और घटादि उपाधिसे आकाशके टुकडे होजाने चाहिये उससे उपाधिसे चेतनके टुकड़े और चेतनमें वास्तव भेद कल्पना स्वामीजीका प्रलाप है ॥

पृ० १९६ पं० १६

> अनेनात्मना जीवेनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि–छां० प्र० ६ खं० ३ मं० २ ॥ तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्–तैत्तिरी० ब्रह्मानं० अनु० ६

अर्थ–पं०२२ में यहां ऐसा समझो एक प्रवेश और दूसरा अनुप्रवेश अर्थात् पश्चात् प्रवेश कहाता है परमेश्वर शरीरमें प्रविष्ट हुए जीवोंके

साथ अनुप्रविष्टकी समान होकर वेदद्वारा सब नामरूपादिकी विद्याको प्रगट करताहै और शरीरमें जीवको प्रवेश करा आप जीवके भीतर अनुप्रविष्ट होरहाहै ॥ २०७।२१

समीक्षा-स्वामीजी अपनीसी बहुतेरी करतेहैं पर कुछ बसाती नहीं जो जिस मार्गहीमें न चलाहो वोह उस मार्गको क्या जाने देखिये व्याकरणशास्त्र भी यहां भूल गये ॥

अनुर्लक्षणे अ० १ । ४ । ८४ यह अष्टाध्यायीका सूत्रहै

अर्थ-लक्षणअर्थमें अनुउपसर्ग कर्मप्रवचनीय संज्ञावाला हो ॥

कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया २ । ३ । ८ पाणिनीय०

अर्थ-कर्मप्रवचनीय संज्ञक पदसे जो युक्तहै दूसरा पद तिसमें द्वितीया विभक्ति हो अब इसपर जो भाष्यकार लिखतेहैं सो सुनिये ॥

शाकल्यस्य संहितामनु प्रावर्षत् शाकल्येन सुकृतां संहिता मनुनिशम्य देवः प्रावर्षत् महाभाष्य अ० १ पा० ४ आ० ४

अर्थ-शाकल्य ऋषि सुष्टु कृतकारी संहितानाम सीमाको देखकर देव वर्षण करता हुआ पहले उदाहरणका अर्थ दूसरे वचनसे आपही भाष्यकारने किया है क्योंकि भाष्यकारकी यह शैली है अपनी कठिन उक्तिका आपही व्याख्यान करते हैं जैसे वेदने संक्षिप्त अर्थ मंत्रोंका ब्राह्मण भागसे व्याख्यान कराहै जो अन्यकृत मानो महाभाष्यके व्याख्यान वाक्य भी किसी दूसरेके होने चाहिये अब सुनिये (तत्सृ०) इस श्रुति वचनमें भी अनुलक्षण अर्थमें है तब यह अर्थ सिद्ध हुआ जगत्को रचकर (तदेवानु निशम्य प्राविशत्) तिस जगत्को देखकर प्रवेश करताहुआ (लक्ष्यतेऽनेनेति लक्षणम्) जिस करके कुछभी लिखाजाय सो लक्षण है जैसे भाष्यके उक्त उदाहरणमें शाकल्यकृत सीमाका देवसे देखना सो वर्षनके दिखानेमें लक्षण है और प्रकृत श्रुति रूप उदाहरणमें जो परमेश्वर करके स्थूल सूक्ष्म संघातका अपनेमें देखना है सो प्रवेशका बताने हाराहै भाव यहहै कि, जो उपाधिसंगसे मनुष्योहं हिरण्यगर्भोहं विराडहं ऐसी प्रतीति होतीहै सोई प्रवेशका बोधक है तिस प्रतीतिसे प्रवेश कहा जाता है, वास्तवमें प्रवेश नहीं जैसे बृहदारण्यक श्रुतिमें जो अहंकारको अपनेमें देखकर अहंनामवाला परमात्मा हुआ अहंकारको जो अपनेमें देखाना यही प्रवेशका लक्षण है यथाहि-

आत्मैवेदमग्र आसीत् पुरुषविधः सोऽनुवीक्ष्य नान्यदात्म नोऽपश्यत् सोऽहमस्मीत्यग्रे व्याहरत्ततोऽहन्नामाभवत्
बृ० उ० अ०३ब्रा० ४

अर्थ–इदं मनुष्यादिशरीरजातम् अग्रे–इस उत्पत्तिसे पूर्व आत्माही पुरुषाकार हुआ, सो पुरुषाकार*आत्मा अनुवीक्ष्य–देखकर अर्थात आत्मासे पृथक् वस्तुको न देखकर अहमास्मि ऐसा सबसे प्रथम उच्चारण करताहुआ, उच्चारणमात्रसेही अहंनामवाला होगया, इसीप्रकार जो अपनेमें हिरण्यगर्भादि पिपीलिकातक देहोंका स्फुरण होकर प्रतीति होना है सोई अनुप्रवेश है और अनुशब्दका अर्थ जहां पश्चात होता है वहां प्रवेश और अनुप्रवेश दोनों मुख्य होते हैं जैसे "राजा प्रासादे प्रविशति अमात्योनुप्रविशति" राजा मंदिरमें प्रवेश करता है पीछे अमात्य प्रवेश करता है दयानंदजीके मतमें जब जीवने प्रवेश करा तब परमेश्वर तौ व्यापक होनेसे प्रथमही प्रविष्ट है और यह जो कहा (जीवको प्रवेश कराकर आप जीवके भीतर अनुप्रविष्ट होरहा है) सो भी असंगत है अनुप्रविष्टही रहाहै क्या प्रथम प्रविष्ट न था सो तौ पहले भी जीवमें प्रविष्ट था पीछे प्रवेश करनाही कैसे कहसक्तेहैं देखो जैसे शरीरके गृहमें प्रवेश होनेसे शरीरांतर्गत अन्न जलादि वा आकाशादि वा मनोबुद्धि आदिक (अनुप्रविष्ट) पश्चात प्रविष्ट हैं वा साथही प्रविष्ट हैं बस जब साथही प्रविष्ट हुए तौ जीवान्तरवर्त्ती ईश्वर भी अनुप्रविष्ट नहीं किन्तु सहप्रविष्टहै व युगपत् प्रविष्टहै ऐसा कहना चाहिये अनुप्रविष्ट कहना नहीं बनता और यह भी भूल मत करना जो जन्मादिवत् प्रवेश भी जीवमें आरोपित है (देहस्थत्वेनोपलब्धिः प्रवेशः) देहमें स्थित रूपसे प्रतीतिही प्रवेश है जो लक्षण अर्थमें अनुको इस श्रुतिमें नहीं मानेंगे किन्तु पश्चात अर्थमें मानेंगे तौ प्रवेश और अनुप्रवेश दोनों मुख्य होने चाहिये तैसे तदेव इसके स्थानमें तस्मिन्नेव इसप्रकार सप्तमीविभक्ति होनी चाहिये जैसा "राजा प्रासादे प्राविशत अमात्योऽनुप्राविशत्" ऐसा प्रयोग होता सो श्रुतिमें नहीं करा इसकारण इसका अर्थ स्वामीजीका किया हुआ मिथ्या है यहां व्याकरणशास्त्रको भी लपेट धरा ॥

स० प्र० पृ० १९७ पं० १०

---

* भा० प्र० पुरुषविधः का अर्थ व्यापक स्वरूप लिखाहै तु०रामसे पूछा जाय आप पुरुषहो नहीहो व्यापक स्वरूपहो वा नराकारहो ।

जीवे शौचविशुद्धाचिद्भिदस्तु तयोर्द्वयोः॥अविद्यातच्चितो यौंगःषडस्माकमनादयः ॥ कार्योपाधिरयं जीवःकारणोपाधि रीश्वरः॥ कार्यकारणतांहित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते ॥

यह संक्षेप शारीरक और शारीरक भाष्यमें कारिरका हैं ॥ पृ० २०८ पं०१९

समीक्षा-धन्य है स्वामीजीकी सत्यता और विद्याको जो महाझूंठ लिखते नहीं लजाते विदित होता है कि, कभी संक्षेप शारीरक और शारीरकका दर्शन भी नहीं किया उक्त दोनों ग्रंथोंमें यह कारिकाही नहीं है प्रथम वचन तो वार्तिककार सुरेश्वराचार्यका है प्रमाणरूप ग्रंथोंमें बहुधा लिखा जाता है द्वितीय वचन आथर्वणोपनिषद्का है जो प्रमाण विधि बहुत ग्रंथोंमें लिखी जाती है परन्तु उक्त दोनों ग्रंथोंमें प्रमाण विधि या उपन्यास कुछ भी नहीं करा इससे यह स्वामीजीका प्रमाद है वेदान्तका दर्शन स्वप्नमें भी नहीं किया ॥

स० प्र० पृ० १९९ पं० २१ ब्रह्मके सत् चित आनन्द और जीवके अस्ति भाति प्रियरूपसे एकता होतीहै फिर क्यों खंडन करते हो (उत्तर) किंचित साधर्म्य मिलनेसे एकता नहीं हो सक्ती जैसे पृथ्वी जड़ दृश्यहै वैसे जल और अग्नि आदि भी जड़ और दृश्य हैं इतनेसे एकता नहीं होसक्ती इनमें वैधर्म्य भेदकारक अर्थात् विरुद्ध धर्म जैसे गन्ध रूक्षता काठिन्य आदिगुण पृथ्वी और रसद्रवत्वको मलत्वादि धर्म जल और रूप दाहकत्वादि धर्म अग्निके होनेसे एकता नहीं जैसे मनुष्य और कीड़ी आंखसे देखते मुखसे खाते पगसे चलते हैं तथापि मनुष्यकी आकृति दो पग और कीड़ीकी आकृति अनेक पग आदि भिन्न होनेसे एकता नहीं होती वैसे परमेश्वरके अनन्त ज्ञान आनन्द बल क्रिया निर्भ्रान्तित्व और व्यापकता जीवसे और जीवके अल्पज्ञान अल्प बल अल्प स्वरूप सब भ्रान्तित्व और परिच्छिन्नतादि गुण ब्रह्मसे भिन्न होनेसे जीव और ब्रह्म परमेश्वर एक नहीं क्योंकि इनका स्वरूप भी परमेश्वर अति सूक्ष्म और जीव उससे कुछ स्थूल होनेसेभिन्न है ॥ २११ । ९

समीक्षा-स्वामीजीका यह लेख भी चैतन्य रूप सत्यानन्द आत्मामें भेदका साधक नहीं किन्तु विज्ञानमयकोश और आनन्दमय कोशके भेदका साधकहै क्योंकि इन्हीं दोनोंमें किंचित् स्थूलता और सूक्ष्मता बा-

ह्यता अन्तरता बनसक्ती है और पृथिवीको गन्ध, रूक्षता, काठिन्य रूपस जलसे भेद कहा है तिसमें यह पूछना है कि, पृथ्वीका जलसे अत्यन्त भेद है वा औपाधिक भेद है यदि अत्यन्त भेद है तौ जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति नहीं होगी जैसे रेतसे अत्यन्त भिन्न तेलकी उत्पत्ति नहीं होती इसप्रकार जलसे पृथ्वीकी उत्पत्तिके असंभव होनेसे (अद्भ्यः पृथिवी) यह श्रुति दयानंदजीके मतमें व्यर्थ होगी इसकारण जल और पृथिवीका औपाधिक किंचित् भेद है जैसे दुग्धसे दधिका और अग्निको दाहकत्वादि धर्मयुक्त होनेसे जलादिसे भिन्न कहा सोभी अशुद्ध है क्योंकि (अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी) अग्निसे जल उत्पन्न हुआ जलसे पृथिवी तौ * यह श्रुतिभी व्यर्थ होजायंगी और अनन्त पृथिवी कार्य्य औषधिमें दाहकत्वादि धर्म हैं तिनको पृथिवीत्व नहीं होना चाहिये और मनुष्यकीड़ीकाभी भेद किंचित् विकारसे है वास्तव भेद नहीं यदि वास्तव भेद हो तौ 'कुष्ठी मनुष्यो न' ऐसी प्रतीति न होनीचाहिये, इस कारण सर्वथा स्वामीजीका वेदान्तसे अनभिज्ञपना सूचित होताहै वेदसिद्धान्तमें परमाण्वादि अस्वीकृत हैं ॥

स० पृ० २०० पं० ३

अथोदरमन्तरं कुरुते अथतस्यभयं भवति द्वितीयाद्वैभयं भवति॥

पंक्ति ७ में अर्थ लिखाहै कि, जो जीव परमेश्वरका निषेध वा किसीएक देशकालमें परिच्छिन्न परमात्माको माने वा उसकी आज्ञागुणकर्म स्वभावसे विरुद्ध होवे अथवा किसी दूसरे मनुष्यसे वैर करै उसको भय प्राप्त होताहै ॥ २११।२१

समीक्षा—जब कि स्वामीजीने गुरुमुखसे वेदान्त पठन नहीं किया तो उसके ऊपर लिखना व्यर्थही है भला इसमें जीव परमेश्वरका निषेध देशकालपरिच्छिन्न गुणकर्मस्वभाव यह कहांसे लिखदिये यह अर्थ सबही भ्रष्टहै इसका अर्थ यहीहै कि, जो आत्मासे पृथक् देखताहै उसीको भय होताहै क्योंकि—

अभयं वैजनकप्राप्तोसिअयमहमस्मीति बृह० ६ ब्रा० २

तत्रको मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यत इति । ईशावास्य मं० ७

* भा० प्र० में इन प्रकरणोंपर कुछ भी लिखते नहीं बना है कहीं हेतु और प्रकरण बिलकुलं छोड गये हैं सत्य भी है विना पढे वेदान्त क्या समझाजाय केवल श्रुतिका मन माना अर्थ कर लेते हैं।

जब आत्माको जाना तबही जनकजीको अभय प्राप्तिहुई "ब्रह्मास्मीति" मैंही हूं यह सब वोही है जो सर्वत्र एक देखताहै उसको कुछ भय नहीं होता यह अभयहै " आत्माएवेदं सर्वं " यह सब आत्माही है वेदान्तशास्त्रमें ॥

शास्त्रदृष्ट्यातूपदेशो वामदेववत् ३० प्र० अ० पा० १

जैसे तत्त्वमसि इस वाक्यको देखकर वामदेव ऋषिने कहाहै कि, मैंही मनु सूर्य और कक्षीवान् हुआथा तैसाही इन्द्रने कहाहै कि, मैं ज्ञानरूपहूं तू इसीकी उपासनाकर (अहंमनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवानित्यादि ऋ० मं० ४ सू० २६ मं० १)

इस प्रकार यदि कोई इस कालमेंभी जीवात्माको ब्रह्म जानताहै जलतरंगवत इन दोनोंके अभेदको जानताहै वोही ब्रह्मभावको प्राप्त हो अभय होताहै ॥

स०पृ० २०१ पं० २२ (प्र०) ईश्वरमें इच्छा है वा नहीं (उत्तर पं०२५) ईश्वरमें इच्छाका तो संभव नहीं किन्तु ईक्षण अर्थात् सब प्रकारकी विद्याका दर्शन और सब सृष्टिका करना कहताहै ॥ २१३।१७

समीक्षा—अच्छे प्रश्नोत्तर कियेहैं जैसे गुरु वैसे चेले, ईश्वरमें कामना क्यों नहीं यदि कामना नहीं तो यह सृष्टि कहांसे आगई, यदि विना इच्छाके सबही जगत्की रचना होगई तौ ईश्वरकी आवश्यकता क्या है (बौद्धमतही होजाय) इस लिये ईश्वरमें इच्छाहै ॥

आनन्दमय प्रकरणसे सुनाहै कि, एकने बहुतकी इच्छा की "सोकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति" वोह परमात्मा कामना करताहुआ कि, मैं बहुतरूप होकर प्रतीत होऊं तैत्त० " एकंरूपंबहुधायः करोति " जो एक रूपको बहुत कर लेताहै जिसे विशेष देखनाहो वेदान्तदर्शनमें देखले ॥

वेदप्राप्तिप्रकरणम् ॥

स० पृ० २०२ पं० १७ (वेद) जीवोंको अन्तर्यामीरूपसे उपदेश कियाहै पंक्ति २२ से किनके आत्मामें कब वेदोंका प्रकाश किया (उत्तर) २१४ । १६ पं २०

*अग्नेर्वाऋग्वेदो जायते वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः शत० ॥ ११ । ४ । २ । ३

इन इन ऋषियोंके आत्मामें एक २ वेदका प्रकाश किया (प्रश्न)

---

* १८९७ के स० प्र० में अग्ने ऋग्वेदो ऐसा पाठ लिखाहै ।

योवै ब्रह्माणंविदधाति पूर्वंयोवै वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै ।

यह उपनिषदका वचनहै इस वचनसे ब्रह्माजीके हृदयमें वेदोंका उपदेश किया है फिर अग्निआदि ऋषियोंके आत्मामें क्यों कहा (उत्तर) ब्रह्माके आत्मामें अग्नि आदिके द्वारा स्थापित कराया देखो मनुमें क्या लिखाहै ॥

पृ० २०३ पं० ३

अग्निवायुरविभ्यस्तुत्रयं ब्रह्मसनातनम् ॥
दुदोहयज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥ मनु ॥१।२३

जिस परमात्माने आदि सृष्टिमें मनुष्योंको उत्पन्न करके अग्निआदि चारों महर्षियोंके द्वारा चारों वेद ब्रह्माको प्राप्त कराये और उस ब्रह्माने अग्नि वायु आदित्य और अंगिरासे ऋग्यजुःसाम और अथर्वका ग्रहण किया क्योंकि वोही सबसे अधिक पवित्रात्मा थे पृ० २०४ पं०५ जो परमात्मा उन आदि सृष्टिके ऋषियोंको वेद विद्या न पढाता और वे न पढते तौ सब लोग अविद्वान् रहजाते(पुनः पं०२२)धर्मात्मा योगी महर्षि जब जब जिसके अर्थ जाननेकी इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वरके स्वरूपमें समाधिस्थ हुए तब२परमात्माने अभीष्टमंत्रोंके अर्थ जनाये जब बहुतोंकी आत्मामें वेदार्थप्रकाश हुआ तब ऋषि मुनियोंने वोह अर्थ और ऋषि मुनियोंने इतिहासपूर्वक ग्रंथ बनाये उनका नाम ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म जो वेद उसका व्याख्यान ग्रंथ होनेसे ब्राह्मण नाम हुआ ॥ २१६।७

समीक्षा–स्वामीजीने तौ अपना मतही नवीन कल्पित किया है जबतक सब बातें सनातन धर्मसे उलटी न लिखते तब तक उनकी ख्याति कैसे होती जैसे कि, यवन हम लोगोंसे उलटीही रीति करते हैं हम जिसे रक्षा करैं (गौ) वे उसे मारैं हम सीधेपरदेका अंगरक्षा पहरैं वे बांयेका हम चौका दें वे भ्रष्टाचारकरैं इत्यादि विपरीतही करते हैं इसीप्रकार स्वामीजी, हम कहैं मूर्त्तिपूजन श्राद्ध अवतार पतिव्रत वेदमत है वे कहैं यह सब झूठ है और नियोग (व्यभिचार) ठीक है, हम कहैं वेद ब्रह्मापर आये वे कहैं नहीं चार ऋषियोंपर आये, यहां यह विचार कर्तव्य है कि सृष्टिकी आदिमें कौन ऋषि उत्पन्न हुए स्वामीजीने तीन ऋषियोंका सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न होना लिखा पर कोई प्रमाण नहीं दिया इस कारण उनका कहना मिथ्या है सृष्टिकी आदिमें ब्रह्माजी उत्पन्न हुए यह वेदमें लिखा है यथाहि–

ब्रह्मज्येष्ठासंभृतावीर्याणि ब्रह्माग्रेज्येष्ठंदिवमाततान ॥
भूतानां ब्रह्माप्रथमोतजज्ञेतेनार्हतिब्रह्मणास्पर्धितुंकः ॥
अथर्ववेदे. १९।२३।३०

(ब्रह्म) ब्रह्मने (ज्येष्ठा) बडे (वीर्याणि) बल (सम्भृता) धारण किये हैं (ब्रह्म) ब्रह्मनेही (अग्रे) सृष्टिके आरंभमें (ज्येष्ठं दिवम्) बडे द्युलोकको (आततान) विस्तार किया है (भूतानाम्) सबप्राणियोंमें (प्रथमोत) पहले वही (ब्रह्मा) ब्रह्मारूपसे (जज्ञे) प्रगट हुआहै (तेन) उस (ब्रह्मणा) ब्रह्मसे (स्पर्धितुम्) स्पर्धाकरनेको (कः) कौन समर्थहै. (हिरण्यगर्भः समवर्ततताग्रे १३ । ४ यजु) कि, हिरण्यगर्भ ब्रह्मा सबसे पहले उत्पन्न हुए मनुभी यही लिखतेहैं कि, ब्रह्माजी सबसे पूर्व उत्पन्न हुए ॥

तस्मिञ्जज्ञेस्वयंब्रह्मासर्वलोकपितामहः ॥ १ । ९

उस अंडरूपब्रह्माण्डसे सबसे प्रथम ब्रह्माजी उत्पन्न हुए मुंडकउपनिषद्मेंभी यही लिखाहै ॥

ब्रह्मादेवानांप्रथमः संबभूवविश्वस्यकर्ताभुवनस्यगोप्ता १

ब्रह्माजी सब देवताओंसे प्रथम उत्पन्न हुए जो संसारके रक्षक और विश्वके बनानेवाले हैं फिर भी—

यो देवानांप्रभवश्चोद्भवश्चविश्वाधिपोरुद्रोमहर्षिः
हिरण्यगर्भंजनयामासपूर्वंसनोबुद्ध्याशुभयासंयुनक्तु श्वेता० ३।४

जो परमात्मा इन्द्रादिक देवताओंके प्रभवका कारणहै और विश्वका स्वामी और पापियोंको रुवानेवाला और सर्वज्ञ है जिसने पूर्व अर्थात सृष्टिकी आदिमें श्रीब्रह्माजीको उत्पन्न किया वोह परमेश्वर हमको शुभ बुद्धिके साथ संयुक्त करै और कपिल देवजीने भी सांख्य शास्त्रके तीसरे अध्यायमें ब्रह्माजीका सृष्टिकी आदिमें होना माना है ॥

आ ब्रह्मस्तम्बपर्यन्तंतत्कृतेसृष्टिराविवेकात् कपि० सू०

यहां (ब्रह्मासे लेकर) इस शब्दसेही ब्रह्माका सृष्टिकी आदिमें होना सिद्ध है पाराशरजीने भी निज सूत्रोंमें ब्रह्माजीकी उत्पत्ति पूर्वही मानी है ॥

सकलजगतामनादिरादिभूतऋग्यजुःसामादिमयी भगवद्विष्णुमयस्यब्रह्मणोमूर्तिरूपंहिरण्यगर्भोब्रह्माण्डतोभगवान् ब्रह्माप्राग्बभूव ॥

सारे जगत्का कारण हिरण्यगर्भ ब्रह्माण्डसे पहले उत्पन्न हुआ जैसे कि ऊपर लिखे ग्रंथोंसे ब्रह्माजीका सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न होना स्पष्ट लिखा है इसी प्रकार यदि स्वामीजी किसी श्रुतिसे अग्न्यादि ऋषियोंका सब देवताओंसे प्रथम होना और ब्रह्माजीको वेदोंका पढाना सिद्ध करते तौ उनकी यह बात स्वीकार करने योग्य होती अन्यथा नहीं अब वोह दिखाते हैं जो ब्रह्माजीपरही प्रथम वेद प्रगट हुए ॥

योब्रह्माणंविदधातिपूर्वंयोवैवेदांश्चप्रहिणोतितस्मै
तँ‌ह्देवमात्मबुद्धिप्रकाशंमुमुक्षुर्वैशरणमहंप्रपद्ये श्वेता० अ० ६।१८

अर्थ यह है कि, जिस परमात्माने (पूर्व) अर्थात् सृष्टिकी आदिमें ब्रह्माजीको उत्पन्न किया और जिस परमात्माने ब्रह्माजीहीके लिये वेदोंको दिया उस ही प्रकाशस्वरूप आत्मज्ञानके प्रकाश करनेवाले परमात्माको मैं मुमुक्षु शरण होताहूं देखो इस श्रुतिमें (पूर्व) शब्द है जिससे विदित है कि, परमात्माने सृष्टिकी आदिमें ब्रह्माजीके हृदयमें वेदोंका प्रकाश किया और शतपथकी श्रुतिमें ऐसा कोई शब्द नहीं जिससे सृष्टिकी आदिमें अग्न्यादिके जन्मका बोधक हो और इस श्रुतिमें (वै) शब्दहै जिसका अर्थ अन्ययोगव्यवच्छेद अर्थात् सृष्टिकी आदिमें ब्रह्माजीकेही लिये वेदोंका उपदेश किया दूसरेको नहीं क्योंकि अन्ययोगव्यवच्छेद दूसरेके योगके पृथक् करनेको अर्थात् दूर करनेको कहते हैं इससे यही विज्ञान होता है कि सृष्टिकी आदिमें परमात्माने केवल एक ब्रह्माजीकेही हृदयमें वेदोंका प्रकाश किया, (वै) शब्दका अन्वय तत शब्दके साथ होगा जो कि ब्रह्माका वाचक है और जो वै शब्दका अन्वय यत शब्दके साथ करै जो परमात्माका वाचक है तौ यह अर्थ होगा कि ब्रह्माजीको वेदोंका उपदेश परमात्माहीने किया है अब बुद्धिमान् विचार करैं कि ऐसा कोई शब्द शतपथकी श्रुतिमें निकलता है इस कारण स्वामीजीका कथन सर्वथा अशुद्ध है फिर ऋग्वेद मंडल १० सू० ९२ मंत्र १४ में लिखा है ॥

यस्मिन्नश्वासऋषभासउक्षणोवशा मेषाअवसृष्टास
आ ताः ॥ कीलालपेसोमपृष्ठायवेधसेहृदामतिंजनये
चारुमग्नये ऋ० मं० १० अ० ८ सू० ९१ मंत्र १४

(यहां वेधसेहृदामतिंजनये) इसका अर्थ यही है कि,परमात्मा ब्रह्माजीके हृदयमें वेदोंका प्रकाश करता हुआ ॥

फिर स्वामीजीने अग्न्यादिकोंको महर्षि कहाहै यह सर्वशास्त्रबाह्य है किसी ग्रंथमें इनको महर्षि ऋषि नहीं लिखा परन्तु वेदादि शास्त्रोंमें इन नामके देवता लिखेहैं १

अग्निर्देवता वातोदेवता सूर्योदेवता चन्द्रमादेवतेत्यादि
यजु० अ० १४ मं० २०

अर्थ स्पष्ट है स्वामीजी और उनके पंथी पक्षपात छोड़कर विचार करें कि, स्वामीजीका यह कथन कि, अग्न्यादिकने ब्रह्माजीको वेद पढाये श्वेताश्वतरकी श्रुतिसे लेशमात्रभी नहीं पायाजाता यह उनकी कपोलकल्पनाहै अब यह तो सिद्धान्त हो चुका कि, वेद ब्रह्माजीपर प्रगट हुए और सृष्टिकी आदिमें ब्रह्माजी उत्पन्न हुए अब (अग्निर्वै) इस श्रुतिका अर्थ दिखलाते हैं इस श्रुतिके देखनेसे विदित होता है कि,शतपथ कभी स्वामीजीके दृष्टिगोचर भी नहीं हुआ अथवा देखा हो तो भूल गये क्योंकि सत्यार्थप्रकाशमें इस श्रुतिको कई जगह अशुद्ध लिखा है प्रथम अग्नि शब्दके आगे वै बढाया है और ऋग्वेदके आगे जायते यह बढाया है यजुर्वेदके आगे सूर्यात् यह पद नहीं हैं किन्तु आदित्यात् यह पाठ है स्वामीजीने भ्रमसे श्रुतिका पाठ अस्तव्यस्त लिखा है प्रसंगसहित पूर्ण पाठ इस प्रकार है ॥

प्रजापतिर्वाइदमग्रआसीदेकएव। सोकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति सोऽश्राम्यत्स तपोतप्यत तस्माच्छ्रान्तात्तेपानात्त्रयो लोका असृज्यन्त पृथिव्यन्तारिक्षंद्यौः १ सइमांस्त्रींल्लोकानभितताप तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणिज्योतींऽष्यजायन्ताग्नियों यं पवते सूर्यः २ स इमानित्रीणि ज्योतींऽष्यभितताप तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयोवेदा अजयन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदःसूर्यात्सामवेदः३ सइमाँस्त्रीन् वेदानभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त भूरित्यृग्वेदाद्भुवइति यजुर्वेदात् स्वरितिसाम वेदात् ४ श० कां० ११ अ०५।८। १-४

अर्थ पहले प्रजापति सृष्टिकी आदिमें थे उन्होंने इच्छाकी कि मैं बहुत होजाऊं सो तपकिया उस तपसे उन्होंने तीन लोक निर्माण किये, पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक १ फिर इन तीनलोकोंको तपाया तो तीन ज्योति प्रगट हुईं अग्नि वायु और सूर्य २ फिर ब्रह्माजीने इन तीनों ज्योतियोंको तपाया तो उनतपे हुओंसे तीनवेद प्रगट हुए अग्निसे ऋग्वेद वायुसे यजुर्वेद सूर्यसे सामवेद ३ तब फिर प्रजापतिने इन तीनोंवेदोंको तपाया तब इनसे तीन व्याहृति हुईं ऋक्से भूः। यजुर्वेदसे भुवः। सामवेदसे स्वः।आशय यहकि,भूमिका सार अग्नि अग्निका सार ऋग्वेदहै; इसमें भूसम्बन्धी पदार्थोंका विशेषरूपसे कथनहै, अन्तरिक्षका सार वायु वायुका सार यजुर्वेदहै इसमें अन्तरिक्षके पदार्थोंका विशेषरूपसे कथन है, जैसे: यज्ञकरना उसका फल आहुति मेघरूपसे परिवर्तन होना इत्यादि, द्युलोकका सार आदित्य और आदित्यका सार सामहै, सामद्वारा परमानन्दकी प्राप्तिकरना इत्यादि अथवा प्रजापतिने ज्ञानरूप तपसे प्रथम मनमेंही यह त्रिलोकी और वेदत्रयी देखली पीछे जगत्को प्रगट किया और मनुजीभी यही कहतेहैं (अग्नि वायु रविभ्यस्तु०) अग्नि वायु और रविसे यज्ञ सिद्धिके लिये सनातन ऋक् यजु सामको ब्रह्माजीने दुहा यहां पढना नहीं न यह ऋषि हैं किन्तु यह ज्योति हैं मानसिक विचारसे ब्रह्माजीने दुहा है। अब यहां दयानन्द और उनके चेले वह्लीलगावैं कि, यह अग्नि वायु रवि इसशतपथकी श्रुतिमें ऋषि कहां हैं यदि ऋषि सम्पादनकी सामर्थ्य हो तो लघुस्वामीही यह प्रसंग सम्हालें, पर सत्यके सामने असत्य कहां ठहर सकता है इसीसे तो कहते हैं स्वामीजीको शास्त्रका मर्म नहीं आता था, ब्रह्मासे पहले अग्नि आदि नथे तथाहि–

तदण्डमभवद्धैमंसहस्रांशुसमप्रभम्

तस्मिञ्जज्ञेस्वयंब्रह्मासर्वलोकपितामहः अ० १ श्लो० ९

वोह जो बीज सुवर्णके सदृश पवित्र और सूर्यके समान प्रकाशित ईश्वरकी इच्छासे अंडके आकार हो गया उसमें आप ब्रह्माजी सब लोकके पितामह उत्पन्न हुए जब ईश्वरने ब्रह्माजी सबसे प्रथम उत्पन्न किये तो अग्नि आदि सृष्टिके अन्तर्गत हुए इनसे ब्रह्माका वेद पढना असंगत है और देखिये–

सर्वेषांतुसनामानिकर्माणिचपृथक्पृथक् ॥
वेदशब्देभ्यएवादौपृथक्संस्थाश्चनिर्ममे अ० १ श्लो०२१

ब्रह्माजीने सृष्टिकी आदिमें सबके नाम और सबके कर्म वेदके शब्दोंसे जानकर भिन्न २ बनाये, गौजातिका नाम गौ, अश्वजातिका नाम अश्व, मनुष्यजातिका नाम मनुष्य रक्खा जब सबके नाम और वायुका कर्म वेद शब्दोंसे जानकर बनाये तो निश्चय है कि. अग्निका अग्नि और वायुका वायु आदित्यका आदित्य नाम वेदसेही ब्रह्माजीने रक्खाहै वोह कौनसा वेद था, कि, सब सृष्टिकी आदिमें अग्निकी अग्नि संज्ञा वायुकी वायु आदित्यकी आदित्यसंज्ञा होनेसे पहले ब्रह्माजीके पास था जिससे उन्होंने सबके नाम रक्खे इससे यही विदित है कि, सृष्टिके प्रथम ब्रह्माजीपरही वेद आये यदि इन तीनोंपरही वेद आते तौ वही सबके नामकी व्यवस्था वेदानुसार करते ॥

कर्मात्मनांचदेवानांसोसृजत्प्राणिनांप्रभुः
साध्यानांचगणंसूक्ष्मंयज्ञंचैवसनातनम् अ० १ श्लो० २२

उस प्राणियोंके प्रभु ब्रह्माजीने कर्मस्वभाववाले देवताओंका समूह साध्योंका समूह और सनातन यज्ञको उत्पन्न किया इस श्लोकमें प्रभु शब्द ब्रह्माजीका विशेषण है अर्थ उसका जनक अर्थात् पिताहै क्योंकि निरुक्ति उसकी यह है कि, प्रकर्षेण भवत्यस्मादिति अर्थात् जिससे जन्म हो वही प्रभु है इससे यही विदित होता है कि, अग्नि आदिकी गणना भी इसी देवगणमें है इससे बाहर नही है इसके आगे (अग्निवायुरविभ्यस्तु) यह २३ वां श्लोकहै ब्रह्माजीने इन तीनों ज्योतिओंको देवगणकी सृष्टिके संग उत्पन्न किया और वेदानुकूल इनके नाम रक्खे जब कि, इनकी उत्पत्ति और नाम रखनेहीके पहले ब्रह्माजीके पास वेद विद्यमान थे तौ क्योंकर हो सक्ता है कि, अग्नि सूर्य वायुने ब्रह्माजीको वेद पढाये अब अंगिरासे वेद पढनेकी वार्ता सुनिये ॥

ब्रह्मादेवानां प्रथमःसम्बभूवविश्वस्य कर्ताभुवनस्यगोप्ता
स ब्रह्मविद्यांसर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वायज्येष्ठपुत्रायप्राह *

* भा० पृ० भी यहां कोई ब्रह्मा मानते है पीछे इसी श्रुतिका अर्थ छोटे नये स्वामीने परमात्मा किया है बनावटमें झोल पडताही है.

अथर्वणेयांप्रवदेतब्रह्माथर्वातांपुरोवाचाङ्गिरसेब्रह्मविद्यांसभरद्वाजायसत्यवाहायप्राहभरद्वाजोंगिरसे परावराम्—मुण्डक० ॥ २

विश्वके कर्ता भुवनोंके रक्षक ब्रह्माजी सब देवताओंसे पहले हुए ब्रह्माजीने वोह वेदविद्या जिसके सब विद्या आश्रय हैं अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्व ऋषिको पढाई अथर्वने वोह ब्रह्मविद्या अंगिरा ऋषिको पढाई अंगिरा ऋषिने भारद्वाजगोत्री सत्यवाहको पढाई उसने वोह परावर विद्या अंगिराको पढाई धन्य है स्वामीजीके निर्णयपर श्रुतिमें तौ अंगिराको शिष्यपरम्पराकरके ब्रह्माजीका चतुर्थ शिष्य गिनाहै और स्वामीजी कहते हैं कि, अंगिराने ब्रह्माजीको अथर्ववेद पढाया जानै इस कथनसे स्वामीजीने अपना क्या लाभ समझा है फिर एक बड़ा आश्चर्य यह है कि, परमात्माने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिराको एक २ वेदका उपदेश किया और उनकेद्वारा ब्रह्माजीको चारोंवेदोंकी प्राप्ति कराई यदि परमात्माने अग्न्यादिकोंमेंसे किसी एकको चारों वेदोंका अधिकारी नहीं समझा और ब्रह्माजीको चारोंवेदोंका अधिकारी जाना तौ ब्रह्माजीको स्वतः चारों वेदोंका उपदेश क्यों न किया निदान स्वामीजीके व्याख्यानसेभी यही प्रगट हुआकि, अग्न्यादिकोंकी अपेक्षा ब्रह्माजी पूर्णविद्वान् हैं इसीकारण श्वेताश्वतरमें आया है कि ॥

तद्वेदगुह्योपनिषत्सुगूढंतद्ब्रह्मावेदते ब्रह्मयोनिम् श्वेता० अ०५। ६

जो परमात्मा वेदगुह्योपनिषदमें संवृतहै और ब्रह्माजीका उत्पन्न करनेवाला है उसको ब्रह्माजीही जानते हैं जैसे कि, ब्रह्माजीका ब्रह्मज्ञान उपनिषदसे प्रगट है वैसे अग्निप्रभृतिके ब्रह्मज्ञानमें कोई प्रमाण नहीं ब्रह्मज्ञान तौ एक ओर है अग्नि तौ देवताओंमें भागप्राप्तिके लिये प्रार्थना करता है ॥

अग्निर्वाअकामयत अन्नादोदेवानांस्याम्

अग्नि यहां प्रार्थना करता है और पराशरसूत्रमें आदित्यको ब्रह्माजीके पुत्रका धेवता वर्णन किया है ॥

ब्रह्मणश्चदक्षिणांगुष्ठजन्मादक्षः प्रजापतिः

दक्षस्याप्यदितिरदितेर्विवस्वानिति० पा०

अर्थात्—ब्रह्माजीके दक्षिणांगुष्ठसे दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए और दक्षप्रजापतिसे अदितिनामकी कन्या उत्पन्न हुई उससे विवस्वान् अर्थात्

आदित्य उत्पन्न हुआ यहांसे प्रगट है कि, आदित्य ब्रह्माजीके पुत्रका धेवता है और मनुजीके १ अध्यायके ३२ श्लोकका यह आशय है कि, ब्रह्माने एक स्त्री और एक पुरुष उत्पन्न किया, उनसे विराट् विराट्से मनु और मनुसे अंगिरा उत्पन्नहुआ तौ अंगिरा ब्रह्माजीकी चौथी पीढीमें हुआ, अंगिरा आदित्यके जन्मसे बहुत पहले चारों वेद ब्रह्माजीके पास विद्यमानथे उन्होंने वेदके शब्दोंसे अंगिरा और आदित्यके पितापितामहादिकोंके नाम रक्खे, फिर यह क्योंकर होसक्ताहै कि अंगिरा और आदित्यने ब्रह्माजीको साम और अथर्व वेद पढाया. यदि ईश्वर प्रथम इन्हीको वेदका उपदेश करता तौ वही सबके नाम और कर्म और लौकिक व्यवस्था वेदानुसार निर्माण करते न कि, ब्रह्माजी, और अथर्ववेदको बृहदारण्यकादि उपनिषदोंमें जो आंगिरस कहाहै उसका कारण यहहै कि, अंगिरा ऋषिने मुंडकोपनिषदके वचनानुसार ब्रह्माजीके बेटेके शिष्यके शिष्यने इस वेदको पढकर अथर्वको ऐसा हस्तामलक किया कि, उसीके नामसे सम्बद्ध होगया यदि स्वामीजीके कथनानुकूल अथर्ववेदका नाम इसलिये आंगिरस होता कि, अंगिराके हृदयमें ईश्वरने उसका प्रकाश किया तौ स्वामीजीके मतानुसार ऋग्वेद अग्निके नाम यजुर्वायुके नामकेसाथ सम्बद्ध होता परन्तु कहीं इसका चिह्नभी नहीं पाया जाता इसलिये इस विषयमें जो कुछ स्वामीजीने लिखाहै वोह निर्मूल है फिर स्वामीजीने यह जो लिखाहै कि, (अबभी जो कोई चारों वेदोंको पढताहै वोही यज्ञमें ब्रह्मासनको प्राप्त और उसीका नाम ब्रह्माभी होताहै) इससे भी यही विदित होताहै कि, चारों वेदोंका ब्रह्माजीके साथ सम्बन्ध विशेष है दूसरेके साथ वैसा नहीं है और वोह यहीहै कि, आदि सृष्टिमें ब्रह्माजीकोही वेदोंका उपदेश दियाहै इसीकारण अबभी वेदाभ्यासयुक्त पुरुष ब्रह्माका प्रतिनिधि गिना जाता है यज्ञमें यदि स्वामीजीकी नाई होता तो वेदके जाननेवाले यज्ञमें, अग्न्यादिकोंके प्रतिनिधि होते यदि स्वामीजी और उनके शिष्य वेद, शास्त्रको यथार्थ विचार करते तौ ऐसे धोखेमें न पडते और (सपूर्वेषामपि गुरुः) इस योगसूत्रमें अग्न्यादिकोंका कुछभी वर्णन नहीं है किन्तु पूर्वेषां से व्यासजीनेभी योगभाष्यमें ब्रह्मासे आदि ले ऋषियोंका वोह गुरु है यही वर्णन किया है इससे स्वामीजीका कथन असत्य है, अब मंत्र ब्राह्मण दोनोंका नाम वेद है इस विषयमें लिखा जायगा ॥

स्वामीजीने भी ब्रह्माजीको प्रथम माना है जैसा यजुर्वेदके प्रथम अंकमें नोटिस छपा है कि ब्रह्मासे लेकर जैमिनितकके ग्रन्थ साक्षीकी समान प्रमाण मानता हूं इससे भी प्रथम ब्रह्मा हुए यह सिद्ध है ॥

मंत्रब्राह्मणप्रकरणम् ।

स० प्र० पृ० २०५ पं० ६

संहिता पुस्तकके आरम्भ अध्यायकी समाप्तिमें वेद यह सनातनसे शब्द लिखा आताहै और ब्राह्मण पुस्तकके आरम्भ वा अध्यायकी समाप्तिमें कहीं नहीं लिखा और निरुक्तमें-

इत्यपिनिगमोभवति, इति ब्राह्मणम् नि० अ०५।खं०३।४
छन्दोब्राह्मणानिचतद्विषयाणि अष्टाध्या०४।२।६६

यह पाणिनीय सूत्र है इससे भी स्पष्ट विदित होताहै कि, वेद मंत्रभाग और ब्राह्मण व्याख्या भाग हैं इसमें जो विशेष देखना चाहैं वे ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकामें देखलें अनेक प्रमाणोंसे विरोध होनेसे ॥

मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् का० सू०

यह कात्यायनका वचन नहीं होसक्ता जो ऐसा माने तो वेद सनातन कभी नहीं हो सक्के क्योंकि ब्राह्मणग्रंथोंमें ऋषि मुनि राजादिकोंके इतिहास लिखे हैं और इतिहास जिसका हो उसके जन्मके पश्चात् लिखा जाता है किसी मनुष्यकी संज्ञा वेदमें नहीं है स० पृ० २०६ पं० १७ जो किसीसे कोई पूछे तुम्हारा क्या मत है तो यही उत्तर देना कि, हमारा मत वेद है जो कुछ वेदोंमें कहा है हम उसको मानते हैं ॥ २१७ । १४

समीक्षा-स्वामीजीने यहां भी अपनीही धुनि निकाली भला मंत्र और ब्राह्मणको आप वेद नहीं मानते और कहते हो कि, अनेक प्रमाणोंसे विरोध होनेसे यह कात्यायन वचन नहीं होसकता अब हम यही प्रमाण दिखावैंगे कि, सबहीं आचार्योंने यह बात मानी है यह बात मानी है कि, मंत्र और ब्राह्मण मिलकर वेद कहाता है प्रथम तो आपहीने उपनिषदोंकोभी वेद माना है स० पृ० ११ पं० २ देखिये वेदोंमें ऐसे २ प्रकरणोंमें ओम् आदि परमेश्वरके नाम हैं ओमित्येतदक्षरमिद ँ उपासीत छान्दोग्य०, ओमित्येतदक्षरमिद ँ सर्वमित्यादि मांडूक्य, यहां उपनिषदों के प्रमाण दिये और सब वेदके नामसे उच्चारण किये पुनः पृष्ठ १९० पं- १० श्रुतिरपि प्रधानकार्य्यत्वस्य सांख्यसू० इसके अर्थमें स्वामीजी लिखते हैं उपनिषद्भी प्रधानहीको जगतका उपादान कारण

कहता है यहां श्रुतिशब्द देखिये उपनिषद्योतकका नाम सिद्ध होता है और यदि वेद शब्दसे व्यवहार्य्य वाक्यकलापके दूसरे पदोंसे अर्थ करनेको व्याख्यान कहते हैं तौ स्वामीजी इसे क्या कहैंगे ॥

प्रजापतेनत्वदेतान्यन्योविश्वारूपाणिपरिताबभूव
यत्कामास्तेजुहुमस्तन्नो अस्तु वयꣳस्यामपतयोरयीणाम्
यजु० अ० २३ मं० ६५

और—प्रजापतेनत्वदेतान्यन्योविश्वाजातानिपरिताबभूव
यत्कामास्तेजुहुमस्तन्नो अस्तु वयंस्यामपतयोरयीणाम्
ऋ० मं० १० सू० १२२ मं० ४

और—नवोनवोभवसिजायमानोऽह्नांकेतुरुषसामेष्यग्रम्
भागंदेवेभ्योविदधास्यायन्प्रचन्द्रमास्तिरतेदीर्घमायुःअथर्व०
नवोनवोभवतिजायमानोऽह्नांकेतुरुषसामेत्यग्रम्
भागन्देवेभ्योविदधात्यायन्प्रचन्द्रमास्तिरतेदीर्घमायुः
ऋक्०मं१०सू०८५मं०१९

इनमें पहले मंत्रमें (विश्वारूपाणि) ऐसा पद है और दूसरेमें (विश्वाजातानि) ऐसा पद है तीसरेमें (भवसिजायमान उषसामेत्यग्रम् विदधात्यायन्) ऐसे विलक्षण पद हैं तो इन भिन्न २ मंत्रोंमें वेदपदोंके पदान्तरसे अर्थ कथनरूप स्वामीजीका पूर्वोक्त (ऋग्वेद भा० भूमिका) वेद व्याख्यानत्व तौ स्पष्टतासे प्रतिपन्न होता है तौ फिर वेद भी व्याख्यान कहलावैगा ॥

(प्रश्न)भरद्वाज अंगिरा वसिष्ठादि ऋषियोंके संवाद देखननेसे ऋषिप्रणीतत्व ब्राह्मण है (उत्तर) अच्छे भ्रममें पडेहो वेदोंका वेदत्व तौ इतनाही है कि,भूत भविष्य वर्तमान सन्निकृष्ट विप्रकृष्ट सर्ववस्तु साधारणसे सबोंको जानते हैं और दूसरोंको जनाते हैं (लौकिकाना मर्थपूर्वकत्वात्) ऐसा कात्यायन ऋषिने प्रातिशाख्यमें कहाहै इसका अर्थ यह है कि, लौकिकानां अर्थात् " गामानयशुक्लांदंडेन" इत्यादि लौकिक वाक्योंका प्रयोग अर्थ पूर्वक होता है अर्थात् प्रयोग करनेवाले लोग उन् उन वक्तव्य अर्थोंका लाभ करके वा अनुसंधान करके लौकिक वाक्योंका प्रयोग करते हैं और

वैदिक नित्य वाक्योंका अर्थपूर्वक प्रयोग नहीं घटसक्ता क्योंकि, वैदिक वाक्योंके अर्थ सृष्टिप्रलयादिक नित्य नहीं हैं इससे वस्तुसत्ताकी अपेक्षा न करके लोकवृत्तको जनाते हुए वेद यदि याज्ञवल्क्यादि जनकादिके संवादका कथनभी करैं तौ क्या हानि होती है अन्यथा तौ "सूर्याचन्द्रमसौधाता यथा पूर्वमकल्पयत्" अर्थात् सूर्यचन्द्र परमेश्वरने जैसे पहले बनायेथे ऐसेही इस सृष्टिमें बनाये इत्यादि इस संहिता भागकीभी अवेदत्वापत्ति होजायगी जैसे जनकादिसंवादोंके ब्राह्मण ग्रंथोंमें देखनेसे जनकादिकके उत्पत्तिकालके पश्चात् कालमें उत्पन्न होना ब्राह्मण भागमें उत्प्रेक्षित करते हो वैसे (सूर्याचन्द्रमसौ०) और (त्रितःकूपे०) इस पूर्व लिखित श्रुतिकोभी सूर्यचंद्रकी सृष्टि कहने और त्रितऋषिके उत्पत्तिकालके पश्चात् कालमें मंत्रकाभी उत्पन्न होना प्रतीत होनेके कारण अनित्यत्वापत्ति होजायगी तब तौ वही हुई कि; आप व्याजको मरतेथे मूलभी गँवाबैठे इस आपत्तिके निवारणार्थ आपको यही कहना पड़ैगा कि. सूर्यचन्द्रादिककी उत्पत्तिको कहनेवालेभी वेद कुछ सूर्यादिकी सृष्टिके पश्चात् कालमें उत्पन्न नहीं हुए हैं क्योंकि वेदवाक्यका प्रयोग अर्थपूर्वक नहीं होता किन्तु उसमें जो कथन है वह अवश्य होगा तौ फिर ब्राह्मण भागने क्या बिगाडा है जो इससे आप चिडते हो आपने भी यजुर्वेद अ० १२ मं० ४ वामदेव्यम् इस पदके अर्थमें वामदेव ऋषिके जाने वा पढाये सामवेद ऐसा लिखाहै तो यह इतिहास पहले आया यापीछे अब यजुर्वेद आपका रहाही नहीं ब्राह्मणवेदद्वेष अच्छा नहीं अब आगे देखिये कि मीमांसाके प्रथमअध्याय १ पादका ३२ सूत्र मंत्रके लक्षणमें इस प्रकार है ॥

तच्चोदकेषु मंत्राख्या ३२

शेषेब्राह्मणशब्दः ३३

यहां ऐसा आचार्य शेषे ब्राह्मणशब्दः इस द्वितीय सूत्रोक्तिसे (शेषे) मंत्र भागसे अवशिष्ट मंत्रैकदेशमें (ब्राह्मणशब्दः) ब्राह्मण शब्दसे व्यवहार होता है ऐसा कहते हैं इस कथनसे यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि, वेदके मंत्र और ब्राह्मण दो भेद हैं यदि आचार्य ब्राह्मणको वेदका एक भाग नहीं मानते तौ शेषे ब्राह्मणशब्दः ऐसा कैसे कहते प्रकृतिस्थजन रामायण महाभारतका शेषहै ऐसा कोई नहीं कहेगा तब शेष शब्दके कथनसे ब्राह्मणको वेदत्व अवश्य अभिमत है ऐसा प्रतीत होताहै

अतएव ब्राह्मणनिर्वचनाधिकरणमें आचार्य शबरस्वामी ऐसी व्याख्या करते हैं (प्र०) ब्राह्मणका क्या लक्षण है ? (उत्तर) मंत्र और ब्राह्मण दो भाग वेद हैं उसमें मंत्रभागके लक्षण कहने हीसे परिशेषतः ब्राह्मणका लक्षण सिद्ध होगया फिर कहनेकी क्या आवश्यकता है और यही समझकर भगवान् जैमिनिनेभी पूर्व लिखित दो सूत्रोंसे मंत्र ब्राह्मणात्मक समस्त वेदका लक्षण कहकर वेदके एक देश ऋक्का ॥

तेषामृग्यत्रार्थवशेनपादव्यवस्था ३५
गीतिषुसामाख्या ३६
शेषेयजुःशब्दः ३७

अर्थवणसे पादव्यवस्थावाली ऋक गीतिवाले साम और शेष मंत्रोंमें यजुशब्दका प्रयोगहै इसमें (ऋक् यजु सामका लक्षण कहा है और यजुषके भी एकदेशका)

निगदोवाचतुर्थस्याद्धर्मविशेषात् ॥ ३८ ॥

इस सूत्रसे यजुर्विशेष निगदकाभी लक्षण कहा है यदि आचार्य ब्राह्मणको वेद नहीं मानते तब तौ (तच्चोदकेषु मंत्राख्या) इससे मंत्र लक्षण कहनेके उपरान्तही ऋगादिकाभी लक्षण कहते पर यह तौ मंत्र लक्षणके अनन्तर (शेषे ब्राह्मणशब्दः) इस सूत्रसे ब्राह्मणका लक्षण कहते हैं इससे जैमिनि मंत्र और ब्राह्मण दोनोंहीको वेद मानते हैं अब लीजिये श्रीकणादाचार्य ६ अध्यायकी आदिमें लिखते हैं कि ॥

बुद्धिपूर्वावाक्यकृतिर्वेदे—क० ६।१।१

अर्थ यह है कि (वेदे) वेदनामक वाक्यकलापमें (वाक्यकृतिः) वाक्यरचना बुद्धिपूर्वा वक्ताका यथार्थ जो वाक्यार्थ ज्ञान तत्पूर्वक है अर्थात् वेदमें जो जो वाक्य लिखे हैं उन वाक्योंके अभिप्रेत अर्थोंको यथार्थ जान करके वक्ताने प्रयोग किया है वाक्यरचनाका यह नियमही है कि, जबतक जिस अर्थको नहीं जानते तबतक उस अर्थके वाक्यकी रचना नहीं करसक्ते (यथा नृपतिः सेव्यः) "काञ्ची नगरीमें त्रिभुवनतिलक राजा हुआ है" इत्यादि अस्मदादिककी रचना ज्ञान पूर्वक होतीहै, इससे विधि निषेध वाक्यअनापत्या अपनी उपपत्तिके लिये वक्ताका यथार्थ जो वाक्यार्थ ज्ञान तत्पूर्वकत्वका अनुमान करता है हम लोगोंका जो

ज्ञान तत्पूर्वकत्वेन अन्यथासिद्धि तौ नहीं होसक्ती क्योंकि "स्वर्गकामो यजेत" स्वर्गकी कामना हो तौयज्ञ करै उससे हमारा अभीष्ट साधन होसकैगा और इसको करना चाहिये इत्यादि ज्ञान हमलोगोंके ज्ञानसे बाहर है अर्थात् यज्ञ करनेसे स्वर्ग होताहै ऐसी बात हमलोगोंकी क्षुद्र बुद्धिमें नहीं बैठ सक्ती अतः ऐसा ज्ञानवान् कोई स्वतंत्र पुरुष अवश्य पूर्वमें था जो कि, इस विधि निषेधका रचनेवाला है और ऐसा स्वतंत्र एक वेदपुरुषही है इससे संहिताआदिका भ्रम प्रमादादि दोषसे शून्य जो स्वतंत्र पुरुष वोही रचनेवाला है यह सिद्ध हुआ और प्रकारान्तरसेभी वेदवाक्योंका बुद्धिपूर्वकत्व वही कहते हैं कि, "ब्राह्मणे संज्ञाकर्मसिद्धिर्लिङ्गम्" कणा० ६।१।२ अर्थात् ब्राह्मणनामक वेद भागमें नामकरण (सिद्धि) अर्थात् बुद्धिपूर्वकत्वका अनुमापकहै जैसे लोकमें चैत्र मैत्र आदि नाम रखनेवालोंकी बुद्धिका आक्षेप करता है ब्राह्मणमें 'उद्भिदायजेत' 'बलिभिदायजेत' 'अभिजितायजेत' 'विश्वजितायजेत' इत्यादि नामकरण हैं इनमें 'उद्भिदा' इत्यादि नाम किसी स्वतंत्र पुरुषकी बुद्धिका आक्षेप करता है अर्थात् अलौकिक अर्थ तौ हम लोगोंकी बुद्धि गोचर हुआ नहीं है कि 'उद्भिद' इत्यादि नाम जो हम लोग रखसकें इससे ऐसे नामहीसे किसी एक स्वतंत्र पुरुषका बोध होता हैं और वैसा एक वेदपुरुष भगवान् है और ऐसेही "बुद्धिपूर्वोददाति" ३ यहां भी "स्वर्गकामोगांदद्यात्" अर्थात् स्वर्गकी इच्छासे गोदान करना ऐसा कहनेसे वक्ताका यथार्थ ज्ञान जान पडता है गोदान करनेसे स्वर्ग होता है ऐसा निःसंशय ज्ञान हम लोगोंको प्रत्यक्ष नहींहै इससे यहांभी वैसाही ज्ञानवान् स्वतंत्र पुरुष सिद्ध होताहै ऐसेही–

तथा प्रतिग्रहः–क० सू० ६ । १ । ४

इस चौथे कणादसूत्रकाभी ऐसाही अर्थ जानना चाहिये पृथ्वीदान लेनेसे स्वर्ग होताहै और कृष्णचर्मादि दान लेनेसे नरक होता है ऐसे हम नहीं निश्चय करसक्ते इत्यादि रीतिसे वेदोंके आप्तोक्तत्व साधनद्वारा उनका प्रामाण्य साधन करतेहुए कणादाचार्य मन्त्र ब्राह्मण दोनोंको वेद स्पष्ट मानते हैं यदि केवल मंत्रभागहीको वेद मानते तौ पूर्वोक्त सूत्रोंमें दोनोंके उदाहरण दानपूर्वक लेख नहीं करते इससे कणादाचार्यभी ब्राह्मण भागको वेद मानते हैं इससे स्वामीजीका वोह कहना कि, कात्यायनके विना और किसीने मंत्र ब्राह्मणको वेद नहीं कहा असत्य प्रतीत हो गया

अब ब्राह्मणके वेद होनेमें और प्रमाण सुनिये कि, गौतमजीने वेदप्रमाणनिरूपणावसर स्थूणानिखननन्यायसे वेदके प्रमाणहीको दृढ करानेके लिये आशंका की है॥

तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः न्याय० अ० २ आ० १ सू० ५६

अर्थात् (तदप्रामाण्यम्) उस वेदका प्रमाण नहीं हो सक्ता क्योंकि (अनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः). उसके वाक्योंमें असत् पूर्वापरविरोध दोवार कहना इत्यादि दोष हैं असत्यका उदाहरण यथा " पुत्रकामः पुत्रेष्टया यजेत् " जिसे पुत्रकी इच्छा हो पुत्रेष्टी यज्ञ करै परन्तु कहीं पुत्रेष्टी करनेसेभी पुत्र नहीं होता जब कि, इस प्रत्यक्ष वाक्यका प्रमाण नहीं तौ " अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः " स्वर्गकी कामनासे अग्निहोत्र करै ऐसा जो वेदमें अदृष्टार्थ वाक्य है उसके (प्रामाण्यं) सत्यतामे कैसे विश्वास होवै यहाँ (तदप्रामाण्यम्) इस सूत्रमें तत्पदसे वेदहीका परामर्श है इस रीतिसे वेदके अप्रमाणकी आशंका करके (अग्निहोत्रं) इस ब्राह्मणवाक्यका अप्रमाण दिखलाते हैं यदि ब्राह्मणको वेद न मानते होते तौ वेदके अप्रमाण दिखलानेके समय ब्राह्मणका अप्रमाण दिखाना तौ कान छूनेके समय कंधलचकाने समान अति हास्यकारक होता इस कारण गौतमजी ब्राह्मणको वेद अवश्य मानते हैं क्योंकि दृष्टान्त उन्होंने मन्त्र और ब्राह्मण दोनोंहीके दियेहैं सो भाष्यकारने खोलकै लिख दिये हैं आगे इस शंकाका समाधान किया है और देखिये—

वाक्यविभागस्यचार्थग्रहणात् अ० २ सू० ६०
विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात् ६१ न्या०

इसपर वात्स्यायनजी लिखतेहैं " त्रिधा खलु ब्राह्मणवाक्यानि विनियुक्तानि युक्तानि विधिवचनानि अर्थवादवचनानि अनुवादवचनानीति तत्र विधिर्नियामकः यद्वाक्यं विधायकं चोदकं स विधिः विधिस्तु विनियोगो अनुज्ञा वा यथा अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः॥ "

यहां ब्राह्मणवाक्योंके विभागावसरमें वात्स्यायनजीके "अग्निहोत्रं" इस वाक्यके लिखनेसे इनकी व्याख्याप्रणालीसे (अग्नि) इस ब्राह्मण वाक्य सूत्रस्थ (तत्) पदसे संग्रह करना अवश्य गौतमजीको अभिमत है इस रीतिसे ब्राह्मणको वेद सभी ऋषि मानते हैं॥

जैसे सृष्टिकी उत्पत्ति आदि क्रम वेदोंमें वारंवार कहा है पर उनसे वेद पौरुषेय नहीं होसक्ते, इसीप्रकार लौकिक इतिहासोंको भी समझिये वेद सभी विद्याओंका मूल है इससे लौकिक जनोंकी सुगमताके लिये भगवान् परमेश्वरने याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, जनक इत्यादिके नामोल्लेखपूर्वक ब्रह्मविद्यादि विद्याओंका उपदेश किया है जैसे कि, सृष्टिको कहनेवाला वेद सृष्टिके पीछे बना है (यह नहीं) किन्तु सृष्टिही अनादि प्रवाहसिद्ध वेदोंके पश्चात् हुई है इससे सृष्टिको वर्णन करनेवाले भी वेद कुछ सृष्टिके अनन्तर बने नहीं कहलाते ऐसेही ब्राह्मणमें लौकिक इतिहास वर्णन करनेपर भी ऐतिहासिक अर्थोंकी उत्पत्तिके पश्चात कालमें उत्पन्न वा बने ब्राह्मण नहीं कहलासकते और "तमित्तिहासश्च पुराणञ्च गाथाश्च" इस अथर्ववेदमें इतिहास पुराणके आनेसे क्या वेद इतिहास पुराणके पीछे बना है कभी नहीं इसप्रकार वेदमें इतिहास होनेसे भी सादित्व नहीं आता और व्याख्यान वा भाष्य करता अलग-अलग हों यह कोई नियम नहीं है क्योंकि शंकरभाष्यमें "पश्चादिभिश्चाविशेषात्" इस अपने भाष्यकी आपही व्याख्या शंकराचार्यजीने की है और पातंजल भाष्यमें भी "अथ शब्दानुशासनम्" इसका "अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः" इत्यादि व्याख्यान स्वयं भाष्यकारने किया है फिर जब भाष्यका व्याख्यान भाष्य कहलाता है तो वेदके व्याख्यानको भी वेद कहलानेमें क्या संदेह है (प्रश्न) ॥ ऋग्वेदा० भा० भूमिका पृ० ८६पं० २८ ॥

द्वितीया ब्राह्मणे २ । ३ । ६० अष्टा०
चतुर्थ्यर्थे बहुलंछन्दसि २ । ३ । ६२
पुराणप्रोक्तेषुब्राह्मणकल्पेषु ४ । ३ । १०५
छन्दोब्राह्मणानिचतद्विषयाणि ४ । २ । ६६

यहां पाणिनि आचार्य वेद और ब्राह्मणको पृथक् २ कहते हैं पुराण अर्थात् प्राचीन ब्रह्माआदि ऋषियोंसे प्रोक्त ब्राह्मण और कल्प वेदव्याख्यान हैं इससे इनकी पुराणेतिहास संज्ञा की गई है यदि यहां छन्द और ब्राह्मण दोनोंकी वेदसंज्ञा सूत्रकारको अभिमत होती तौ (चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि) इस सूत्रमें छन्दग्रहण न करते "द्वितीया ब्राह्मणे" इस सूत्रमें "ब्राह्मणे" इस पदकी अनुवृत्ति प्रकरणतः प्राप्त है इससे जानते हैं कि, ब्राह्मण ग्रंथकी वेद संज्ञा नहीं और यदि छन्द पदसे ब्राह्मणकाभी

ग्रंथ पाणिनिको अभिमत होता तौ "छन्दोब्रा०" इस सूत्रमें ब्राह्मण ग्रहण क्यों करते केवल छन्दसि कहदेते क्योंकि ब्राह्मणभी छन्दहीहै (उत्तर) वाह! व्याकरणमें भी आपकी बहुत पहुंचहै यह कहना सर्वथा आपका अनुचित है देखिये " द्वितीया ब्राह्मणे" इस सूत्रसे ब्राह्मण विषयक प्रयोगमें अब पूर्व कह और पण धातुके समानार्थक दिव धातुके कर्ममें द्वितीया विभक्ति होतीहै यथा "गामस्यतदहः सभायां दीव्येयुः" यहां शतस्य दीव्यति इत्यादिमेंकीनाईं "दिवस्तदर्थस्य" २ । ३ । ५८ इस सूत्रसे गोरस्य ऐसी षष्ठी प्राप्त थी सो वहां "गामस्य" ऐसी द्वितीया की जाती है यहां ब्राह्मणरूप वेदैकदेशहीमें द्वितीया इष्ट है न कि मन्त्र ब्राह्मणात्मक श्रुति छन्दः आम्नाय निगम वेद इत्यादि पदसे व्यवहार्य्य समस्त वेदमात्रमें और "चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि" २ । ३ । ६२ इस उत्तर सूत्रसे मंत्रब्राह्मणरूप छन्दोमात्रके विषयमें चतुर्थीके अर्थमें षष्ठीका विधान किया जाता है "पुरुषमृगश्चंद्रमसः" "पुरुषमृगश्चन्द्रमसे" इत्यादि इस सूत्रसे छन्दसि इसपदसे मंत्रब्राह्मणरूप समस्त वेदमात्रका संग्रह पाणिनि आचार्य्यको अभिमत है, अतएव इसके उदाहरणमें (या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वोजायते तिस्रोरात्रीरिति तस्या इति प्राप्ते, यां मलवद्वाससं संभवन्ति यस्ततो जायते सोभिशस्तो यामरण्ये तस्यै स्तेनो यां पराचीं तस्यै ह्रीतमुख्यप्रगल्भा या स्नाति तस्या अप्सु मारुकोयाऽभ्यङ्क्ते तस्यै दुश्चर्मा या प्रलिखते तस्यै खलतिरपस्मारी याङ्क्ते तस्यै काणो या दतो धावते तस्यै श्यावदन् या नखानि निकृन्तते तस्यै कुनखी या कृणत्ति तस्यै क्लीबो यारज्जुं सृजति तस्या उद्बंधुको या पर्णेन पिबति तस्या उन्मादुको जायते अहल्यायै जारमनाय्यै तन्तुः) इत्यादि बहुतसे ब्राह्मणोंही को प्रमाणमें भाष्यकारने दिया है यदि इस सूत्रमें छन्दोग्रहण न रहैगा तौ पूर्व सूत्रसे 'ब्राह्मणे' इसपदकी अनुवृत्ति लानेपर भी केवल ब्राह्मणहीमें षष्ठी होगी वेदमात्रसे नहीं इसकारण इस सूत्रसे (छन्दसि) ग्रहणका विशिष्ट फल हुईहै और ब्राह्मणकी भी छन्दोरूपतामें भाष्यकार सम्मति देतेहीहैं फिर इस सूत्रमें छन्दोग्रहणको व्यर्थकहते हुए आप निरे स्वच्छन्द नहीं हैं तो और कौन है और नहीं तौ (मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशोण्विन् ३ । २ । ७१ अवेयजः ३ । २ । ७२ विजुपे छन्दसि ३ । २ । ७३) ऐसे क्रमिक सूत्रमें पाठसे अन्तिम सूत्रमें "छन्दसि" ऐसा कहनेसे मन्त्रभागमें भी छन्दोरूपता न सिद्ध होने पावेगी देखिये जैसे (ब्राह्मणे) ऐसा कहकर (छन्दसि) ऐसा कहनेसे ब्राह्मणका

छन्दपदमें व्यवहार पाणिनीको अभिमत नहीं है ऐसी उत्प्रेक्षा आप करते हैं तैसेही पूर्व सूत्रमें मंत्र ऐसा कहकर (विज्ञुपेछन्दसि) ऐसा कहनेवाले पाणिनीको मंत्रभागमेंभी छन्दपदसे व्यवहार अभिमत नहीं है ऐसा कहना पडैगा तब तौ ब्राह्मणद्वेषी आपके शिरपरभी महाअनिष्ट आपडैगा और भी "अम्नरूधरवरित्युभयथाछन्दसि ८।२।७०" इस सूत्रमें पाणिनि (छन्दसि) ऐसा कहकर "भुवश्च महाव्याहृतेः ८ । २ । ७१" इस उत्तर सूत्रमें महाव्याहृतेः ऐसा कहते हैं इससे महाव्याहृतिकीभी छन्दोभावच्युति अवश्य होजायगी क्योंकि " ब्राह्मणे" ऐसा कहकर "छन्दसि" ऐसा कहनाही ब्राह्मणका छन्दोभावका अभाव साधन करैगा और "छन्दसि" ऐसा कहकर " महाव्याहृतेः " ऐसा विशिष्ट व्याहृतिका कहना महाव्याहृतिका छन्दोभावका नाशक न होगा ऐसी आंखमें धूल तौ आप नहीं डालसकते इस हेतुसे पाणिनि आचार्य प्रयोगसाधुत्वके अप्रसंग और अतिप्रसंग निवारण करनेकी इच्छासे कही सामान्यसे (छन्दसि)ऐसा कहकर विशेषसे"महाव्याहृतेः"ऐसा कहते हैं और कहीं तौ विशेषसे "ब्राह्मणे""मन्त्रे"ऐसा कहकर सामान्यसे"छन्दसि" ऐसा कहते हैं इससे यदि यहां छन्द और ब्राह्मण दोनोंकी वेदसंज्ञा सूत्रकारको इष्ट न होती तौ (चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि) इस सूत्रमें छन्दोग्रहण वो क्यों करते क्योंकि (द्वितीया ब्राह्मणे) इस सूत्रसे ब्राह्मणे इस पदकी अनुवृत्ति प्रकरणतः सिद्ध थी इससे जानते हैं कि, मंत्र ब्राह्मणका नाम वेद है और आपका कहना सब मिथ्या है और(छन्दोब्राह्मणानीति)ब्राह्मणों और मन्त्रोंका छन्दोभाव समान होनेसे पृथक् ब्राह्मण व्यर्थहै ऐसा प्राप्तथातथापि ब्राह्मण ग्रहण यहां "अधिकमधिकार्थम्" इस न्यायसे ब्राह्मण विशेषके परिग्रहार्थ है इससे (याज्ञवल्क्येन प्रोक्तानि ब्राह्मणानि याज्ञवल्क्यानि सौलभानि) इस प्रयोगसे पूर्वोक्त नियम नहीं हुआ वर्तिककारभी (याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः) ऐसा कहते हुए इस सूत्रमें ब्राह्मण ग्रहणका प्रयोजन यही सूचित कराते हैं और "पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ४ । ३ । १०५ " इस सूत्रमें ब्राह्मणका पुराणप्रोक्त ऐसा विशेषणकहते हुए पाणिनिको यही अर्थ अभिमत है अन्यथा यदि ब्राह्मण विशेषके परिग्रहकरनेकी इच्छा न होती तौ (पुराणप्रोक्तेषु०) इसके कहनेसे आचार्यकी प्रवृत्ति व्यर्थ होजाती चाहै स्वामीजी आप कुछ समझें परन्तु भाष्यके श्रम करनेवाले विद्वानोंको यह बात कुछ परोक्ष नहीं है इस हेतु हम इसमें कुछ और नहीं कहा चाहते और मंत्रभागकी नाई

ब्राह्मणभागकाभी प्रामाण्य वारंवार सिद्धकर आये हैं अतएव पुराणप्रामाण्यव्यवस्थापनके प्रसंगसे (प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणानां प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते) ऐसा वात्स्यायनमहर्षिने कहा है यदि ब्राह्मणोंका स्वतःप्रामाण्य न हो तो दूसरेकी प्रामाण्यबोधकता कैसे उनमें संभवित होसक्ती है क्योंकि ब्राह्मणभाग स्वयं जबतक प्रमाणपदवीपर व्यवस्थित न होवेगा तबतक इतिहास पुराणके प्रामाण्यका व्यवस्थापन करनेमें कैसे समर्थ हो सकेगा यह कहावत प्रसिद्ध है कि (स्वयमसिद्धः कथं परान् साधयिष्यति) इससे श्रुति वेद शब्द आम्नाय निगम इत्यादि पद मंत्रभागसे लेकर उपनिषद् पर्यंत वेदोंका बोधक है यह शास्त्र मार्मिक विद्वानोंका परामर्श है अतएव (श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः) श्रुतिको वेद कहते हैं धर्मशास्त्रको स्मृति कहते हैं ऐसा आस्तिक जनोंके जीवनौषध भगवान् मनुजीनेभी माना है अतएव वेदान्तचतुरध्यायीमें भगवान् व्यास मुनि उपनिषदोंके कहनेके इच्छुक होकर ॥

श्रुतेस्तुशब्दमूलत्वात् अ० २ पा० १ सू० २७

परात्तुतच्छ्रुतेः अ० २ पा० ३ सू० ४१

भेदश्रुतेः अ० २ पा० ४ सू० १८

सूचकश्चहिश्रुतिराचक्षतेचतद्विदः अ० ३ पा० २ सू० ४

तदभावोनाडीषुतच्छ्रुतेरात्मनिच अ० ३ पा० २ सू० ७

वैद्युतेनैवततस्तच्छ्रुतेः अ० ४ पा० ३ सू० ६

इत्यादि सूत्रोंमें वारंवार श्रुतिपद शब्दपदका उपादान करते हैं श्रुतिसे उपनिषदोंकोही ग्रहण किया है और श्रीकणादाचार्यने भी दशाध्यायीके अन्तमें (तद्वचनादाम्नायस्यप्रामाण्यम्) ऐसा आम्नायपदसे वेदके प्रामाण्य का उपसंहार किया है यहां आम्नाय पद संहितासे लेकर उपनिषद् पर्य्यन्त समस्त वेदका बोधक है क्योंकि इसके समान तन्त्र गौतमीय न्यायदर्शनके (मन्त्रायुर्वेदवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्) इस सूत्रमें तत्पदसे उपादेय उपनिषदोंके संहितवाक्यकलापहीके प्रामाण्यका अवधारण किया है और वहीके तत्पदकी मन्त्रब्राह्मणात्मक वेदमात्रकी बोधकता पूर्वमें निश्चित करही चुके हैं और मन्वादि स्मृतियां इसी अर्थके अनुकूल हैं देखिये—

एताश्चान्याश्चसेवेतदीक्षाविप्रोवनेवसन् ।
विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धयेश्रुतीः अ० ६ श्लो० २९

दीक्षायुक्त ब्राह्मण वनमें वास करता हुआ आत्मज्ञानके अर्थ अनेक उपनिषदोंकी श्रुति विचारै यहां (औपनिषदीः श्रुतीः) ऐसा कहनेसे उपनिषदोंका श्रुतिपदवाच्यत्व स्पष्ट सिद्ध होता है और स्वामीजीकी लीला देखो सौवर पृ० ७ पं० ७

नसुब्रह्मण्यायांस्वरितस्यतूदात्तः १ । २ । ३७

जो सुब्रह्मण्या ऋचामें यज्ञकर्ममें पूर्व सूत्रसे एकश्रुतिस्वर प्राप्त है सो न हो किन्तु जो उनमें स्वरित वर्णहो उनके स्थानमें उदात्त होजाय. सुब्रह्मण्या एक ऋचाका नाम है उसका व्याख्यान शतप० ब्रा० तीसरेकाण्डके तीसरे प्रपा० के प्रथम ब्राह्मणमें सत्रहवीं कण्डिकासे लेकर वीसवीं कण्डिकातक कियाहै ॥

समीक्षा-इसमें स्वामीजीसे पूछना है कि, आप यह तौ कहें कि, जिस ऋचाका व्याख्यान मौजूदहै वह मंत्रभी अवश्य होगा यदि दयानंदजी कहीं उस ऋचाको दिखादें तो हमभी इस बातको मानै कि, हां मंत्र ब्राह्मण मिलकर वेद नहीं मंत्रहीका नाम वेद है परन्तु पाणिनिजी भी मंत्र ब्राह्मण वेद मानते हैं, इसीकारण सुब्रह्मण्या शतपथकी श्रुतिमें भी मन्त्रवत् स्वरका विधान किया है पाठकवर्ग किसी दयानन्दीसे यह प्रश्न करतौ देखैं क्या उत्तर देते हैं ॥

स० प्र० पृ० २०२ पं० २४

प्रथम सृष्टिकी आदिमें परमात्माने अग्नि वायु आदित्य तथा अंगिरा इन ऋषियोंके आत्मामें एक एक वेदका प्रकाश किया ॥ २१४ ॥ २३ ॥

यों तौ दयानंदके मतसे वेदकी उत्पत्ति हुई अब ब्राह्मणका प्रादुर्भाव सुनिये-

स० प्र० पृ० २०४ पंक्ति २१

वेदोंका अर्थ उन्होंने कैसे जाना (उत्तर) परमेश्वरने जनाया और धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब जब जिस अर्थके जाननेकी इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वरके स्वरूपमें समाधिस्थ हुए तब तब परमात्माने अभीष्ट मंत्रोंके अर्थ जनाये जब बहुतोंके आत्मामें वेदार्थका प्रकाश हुआ तब ऋषि मुनियोंने वह अर्थ और ऋषि मुनियोंके इतिहासपूर्वक ग्रन्थ बनाये उनका नाम ब्राह्मण वेदका व्याख्यान हुआ ॥२१६॥ २५

समीक्षा—अब इसपर यह विचार करना है कि, जब ईश्वरके प्रकाश किये मंत्र ईश्वरप्रोक्त कहे जांय तौ परमात्माके प्रकाश किये मंत्रार्थ ईश्वरप्रोक्त क्यों न कहे जांय स्वामीजीकी अच्छी बुद्धि है जिन दो वस्तुओंका एकही कर्ता है उनमें एक उसके द्वारा निर्गत तौ उसका वचन माना जाय दूसरा न माना जाय इसमें क्या प्रमाण दोनोंकी उत्पत्ति भी एकही प्रकार है इससे ईश्वरप्रोक्त दोनोंही हो सक्ते हैं, जैसे अग्नि वायु रवि मंत्रोंमें अनेक स्थानमें आयेहैं इसीप्रकार व्याख्यान जिसको तुम कहते हो, ब्राह्मणोंमें उन १ महर्षियोंके नाम आये हैं, इत्यादि जब दोनोंमें एकही बात हैं तो दोनों एकही क्यों न कहे जांय और यहां स्वामीजीने साक्षात् ईश्वरका स्वरूप भी मान लिया अब आकारमें क्या सन्देह रहा, कहांतक कहें सत्यार्थप्रकाशका जो पत्रा उठाकर देखो वहां ही अशुद्धि है यह दिग्दर्शन मात्र है ॥

बौधायनभी ' मंत्रब्राह्मणमित्याहुः' मंत्र और ब्राह्मण दोनोंका नाम वेद मान्तेहैं ' मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' मंत्रब्राह्मणकानामवेदयही आपस्तम्बं मानते हैं 'मंत्रब्राह्मणात्मकः शब्दराशिर्वेदः यहीसायणाचार्य मानतेहैं 'मंत्र ब्राह्मणयोराहुर्वेदशब्दंमहर्षयः' सर्वानुक्रमणीवृत्ति भूकिका में यही सिद्धान्त है और गोदुहन, परीक्षितकी कथा तृतवृत्रासुरवधादि बहुतसी कथा मंत्रभागमें विद्यमानहींहैं वैसेही ब्राह्मण भागमें हैं इससे दोनों मिलकर वेद कहाते हैं ॥

और श्रुतिशब्द वेदका आम्नाय पदका पर्य्याय शब्द है जैसे कि, मनुजीने कहा है (श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः) इत्यादि पूर्व लिख आये हैं जब मनुजीने उपनिषदोंको श्रुति माना और व्यवहारभी वैसाही किया तब ब्राह्मणोंका वेद भाव अवश्य हुआ, क्योंकि ब्राह्मणोंहीके शेषभूत तौ उपनिषद् हैं इसी कारण वेदान्त नामसे विख्यात हैं अतः यह कात्यानवाक्य कि, " मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् " मंत्र ब्राह्मण दोनोंका वेद नाम है यह अपेल सिद्धान्त है नहीं तौ दिखाया होता यह वाक्य कि, वेद ब्राह्मण नहीं है और ब्राह्मणके आदि अन्तमें वेद ऐसा जो नहीं लिखा यह केवल भाग जाननेकी इच्छासे नहीं लिखा जिससे यह विदित होता रहै कि, यह मंत्रभाग है यह ब्राह्मण यदि दोनोंहीको एक पद दिया जाता तौ मंत्र ब्राह्मण ऐसे मिश्रित हो जाते जिससे यह निर्धारण करना कठिन होजाता कि, यह श्रुति मंत्रकी है या ब्राह्मणकी कुछ ब्राह्मण भागके अन्तमें पुराण शब्द तौ लि

खाही नहीं है लिखा तौ यही है कि; ब्राह्मणसो यह भाग निर्धारण करनेको लिखा है.इससे मंत्र ब्राह्मणका नाम वेद है,यह सिद्धान्त निश्चित है और जब आपही मंत्रभाग ब्राह्मण भाग कहते हैं तौ भाग मानना तुम्हारेही वचनसे सिद्ध है इस खंडनमें वेदभाष्यभूमिकाकाभी खंडन आगया है और वेदभाष्यभूमिका पृ० २७३पंक्ति ७ में आपने संहिताको मंत्रभाग लिखाही है ॥

सत्यार्थप्रकाशकी विचित्र लीला देखिये पृ० २०५ पं० २० वेदोंकी कितनी शाखाहैं (उत्तर) एकसौ सत्ताईस । समीक्षा–समझे साहब कहीं तो ग्यारह सौ सत्ताईस बताईं यहां एक सहस्रकी चटनी कर गये ॥ पांचवीं बारके छपे पृ० २१७ पं०२९ में ११२७ लिखी हैं पर महाभाष्यके मतसे११३१होतीहैं ॥

फिर आपने यह भी एक तमासेकी बात लिख दी है कि,जो कोई पूछै कि, तुम्हारा क्या मत है तौ कहना कि, वेद मत यदि आपका वेदका मत है तौ अपने तौ वेदमें रेल तार कमेटी वर्णसंकरता सब एक जाति हो जाओ एक स्त्री ग्यारहतक पति करले इत्यादि बहुतसी बातें लिखी हैं तौ आपके मतवाले क्या करैं आपको मतमें ईश्वर पाप क्षमा नहीं करता जैसा करना वैसा भरना फिर ईश्वरका स्मरण क्यों करना फिर जिस मतमें ईश्वरहीसे प्रेम नहीं वोह मतही क्या है वेदके नामसे लोगोंको जालमें फसाना है जैसे पीतलके ऊपर मुलम्मा करके सोना बनाके कोई भोले भालेको ठग लेता है ऐसी यह स्वामीजीकी चाल है आपके वेदार्थको दूरहीसे नमस्कार है वेदका तौ नाम है अर्थ तौ मन माने घरमेंही किये हैं जो कि,निघंटु निरुक्त प्राचीन भाष्यादिसे संपूर्ण विरुद्ध हैं इसकारण आपका वेदार्थ ठीक नहीं और उन अर्थोंके अनुसार वैसा मतभी ठीक नहीं उसके अनुसार नियोगमत आदि सिद्ध होते हैं ॥

इति श्रीमद्दयानन्दतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतसप्तमसमुल्लासस्य खंडनं समाप्तम् ॥ ३० । ७ । ९० ।

श्रीः ।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गताष्टमसमुल्लासस्य खण्डनंप्रारभ्यते ।

वेदान्तप्रकरणम्–सृष्ट्युत्पत्तिप्रकरणम् ।

स० पृ० २०७ पं० १२

पुरुषएवेदꣳसर्वंयद्भूतंयच्चभाव्यम्

उतामृतत्वस्येशानोयदन्नेनातिरोहति यजु० अ०३१मं०२

इसका अर्थ पृ० २०८ पं० ४ हे मनुष्यों जो सबमें पूर्ण पुरुष और जो नाशरहित कारण और जीवका स्वामी जो पृथिव्यादि जड और जीवसे अतिरिक्त है वोही पुरुष सब भूत और भविष्यत् और वर्तमानस्थ जगत्का बनानेवाले है ॥ पृ०२२१८

समीक्षा–स्वामीजीके अर्थोंकी कैसी विचित्र महिमा है इस मंत्रमें जीव प्रकृति और ईश्वरका वर्णन कर बैठे हैं वेदान्त विषयमें आता तो कुछभी नहीं परन्तु ढाई चावलकी खिचडी पकाये विना रहा भी नहीं जाता देखिये इसका यह अर्थ है ॥

(इदम्) यह (यत्) जो (भूतम्) अतीत ब्रह्मसंकल्प जगत् है (च) और (यत्) जो (भाव्यम्) भविष्य संकल्प जगत् है (उत) और (यत्) जो (अन्नेन) बीज वा अन्न परिणाम वीर्यसे (अतिरोहति) वृक्ष नर पशु आदि रूपसे प्रगट होता है (सर्वम्) वोह सब (अमृतत्वस्य) मोक्षका (ईशानः) स्वामी (पुरुषः) नारायण (एव) ही है उसका अन्य न होनेसे ब्रह्मसे उत्पन्न होनेसे सब जगत् ब्रह्मरूपही है इससे ब्रह्म अनन्त है स्वामीजी ब्रह्मको अन्योन्याभावप्रतियोगी मानते हैं क्यों कि, जीव जगत् जड़ प्रकृतिमें ब्रह्मका भेद मानते हैं तो यही ऊपरकी श्रुतिसे विरोध पडैगा और (ब्रह्मविकारी भवितुमर्हति अन्योन्याभावप्रतियोगित्वात् पृथिव्यादिवत्) इस अनुमानसे ब्रह्ममें विकारत्वप्रसक्ति होगी. ॥

स० पृ० २०७ पं० १४ ॥

यतोवाइमानिभूतानिजायन्ते येनजातानिजीवन्ति

यत्प्रयंत्यभिसंविशन्तितद्विजिज्ञासस्वतद्ब्रह्म तैत्तिरी०भृगुवल्ली. अनु१

पृ० २२८ में इसका अर्थ लिखा है जिस परमात्माकी रचनासे यह सब पृथिव्यादि भूत उत्पन्न होते हैं जिससे जीव और जिससे प्रलयको प्राप्त होतेहैं वोह ब्रह्म है उसके जाननेकी इच्छा करो ॥ २२१ । १२

समीक्षा-यह क्या स्वामीजी इतनाही पद लिखकर गडप गये (जिससे जीव) इससे तो प्रत्यक्ष है कि, जिस परमेश्वरसे जीव उत्पन्न होते हैं और आप आगे इनको नित्य मानते हैं नित्यभी मानना और जन्मभी कहना यह वैदिक विरोध रसातलमें अर्थकर्ताको क्यों न ले जायगा सूधा अर्थ है कि, जिससे यह प्राणी उत्पन्न होते और उसीसे जीते और अन्तमें उसीमें प्रवेश करते हैं उसेही ब्रह्म जानो अब प्रकृति जीव नित्य और पृथक् न रहे ॥

पृ० २०८पं० १८

द्वासुपर्णासयुजासखायासमानंवृक्षंपरिषस्वजाते
तयोरन्यःपिप्पलंस्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योअभिचाकशीति
ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० २०
शाश्वतीभ्यःसमाभ्यः य० अ० ४० मं० ८

(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और पालनादि गुणोंसे सदृश (सयुजा) व्याप्य व्यापक भावसे संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रता युक्त सनातन अनादि हैं और (समानं) वैसेही (वृक्षम्) अनादि मूलरूप कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलयमें छिन्न भिन्न होजाता है वोह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनोंके गुणकर्म स्वभावभी अनादि हैं इन जीव ब्रह्ममेंसे एक जो जीव है वोह इस वृक्षरूप संसारमें पाप पुण्यरूप फलोंको " स्वाद्वत्ति " अच्छे प्रकार भोक्ता है और दूसरा परमात्मा कर्मोंके फलोंको (अनश्नन्) न भोक्ता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान होरहाहै जीवसे ईश्वर ईश्वरसे जीव और दोनोंमें प्रकृति भिन्नस्वरूप तीनों अनादिहैं शाश्वती अर्थात् अनादि सनातन जीवरूप प्रजाके लिये वेदद्वारा परमात्माने सब विद्याओंका बोध कियाहै ॥

समीक्षा-जैसे किसीके हाथ हलदीकी गिरह लग गई और वोह पसारी बन बैठा ठीक यही दृष्टान्त स्वामीजीपर है बस उनके शिष्योंको

और उन्है द्वैतप्रकरणको यह श्रुति सजीवनमूल है परन्तु उनकी बुद्धि तौ ❀ अज्ञानतिमिरसे आच्छादित है उन्है सूझे कहांसे वास्तव इसका अर्थ यहहै जो प्रकाश करते हैं ॥

प्रथम तौ इस मंत्रमें यह प्रश्न है कि, यह मंत्र चेतनमें भेद सिद्ध करता है या भोक्ता अभोक्ता रूप पक्षियोंके भेदको सिद्ध करता है जो चेतनमें भेदसाधक कहो तौ इस मंत्रमें ऐसा कोई पद नहीं जो चेतनमें भेद साधन करै इसकारण चेतनमें भेद नहीं किन्तु दो सुपर्णोंका बोधन करता है सोभी सुपर्ण वेदप्रतिपाद्य होने चाहिये मन्त्रका अर्थ दोसुपर्ण है (द्वासुपर्णा) दोसुपर्णा (सयुजा) परस्पर सम्बन्धवाले (सखाया) समानं प्रीतिवाले अर्थात् जिनका प्रतीत होना तुल्य है वे दोनों (समानं) एक (वृक्षं) वृक्षको(परिषस्वजाते)आश्रय कर रहे हैं(तयोः) तिन दोनोंमें (अन्यः) एक (पिप्पलं) (स्वाद्वत्ति) वृक्षफलको भोक्ता है और दूसरा (अनश्नन्) न भोक्ता हुआ (अभिचाकशीति) प्रकाश करता है वोही प्रकाश करनेवाला सुपर्ण मंत्रप्रतिपाद्य है यथाहि-

एकःसुपर्णःससमुद्रमाविवेशसइदंविश्वंभुवनंविचष्टे
तंपाकेनमनसापश्यमन्तितस्तंमातारेह्ळिसउरेह्ळिमातरम्
ऋ० मं० १० सू० ११४ मं० ४

अर्थ-(एकः) एक (सुपर्णः) प्राणवायु उपाधिक सुपर्णवत् सुपर्ण है (सः) सो (समुद्रम्) समुद्रवत् विस्तृत अन्तरिक्षको (आविवेश) प्रवेश करता है (सः) सोई प्राणोपाधिक परमात्मा (इदम्) इस (विश्वं भुवनम्)सर्व लोकको(विचष्टे)पश्यति प्रकाशित करता है(तम्)तिस प्राणदेवको (पाकेन मनसा) परिपक्व मन करके मैं उपासक (अन्तितः)अपने हृदयकमल (अपश्यम्) देखता हुआ किस प्रकारसे जो (तम्) तिस प्राणदेवको अध्ययनकालमें (माता) मा कहैसो (रेह्ळि) अपने आपमें लीनकर लेती है और तूर्ष्णीभावकालमें वा स्वापकालमें वोह प्राणदेव (मातरम्) वाक्को अपने आपमें लीनकर लेता है एक तौ सुपर्ण इस मंत्रसे प्राणोपाधिक ईश्वर चेतन प्रतिपाद्य है यहां जो लीनता कही है सो केवल उपाधि धर्म्मका व्यवहार विशिष्टमें करा है और जो प्राण उपाधिक ईश्वर प्रतिपाद्य इस मंत्रमें न होता तौ सर्वजगत् प्रकाशकर्ता कैसे कहते निघण्टुके अ० ३ । खं० ११ में (विचष्टे) पश्यतिकर्मा कही है इससे केवल जड़ प्राण इसमंत्रमें प्रतिपाद्य नहीं और केवल चेतनभी प्रतिपाद्य नहीं क्यों-

❀ भा० प्र० मनमाना शोधतो पांचवी बार भी न हुआ आप नया सत्यार्थ प्रकाश बनावै।

कि, वाक्में लीनता कही है इससे प्राणोपाधिक चित् प्रतिपाद्य है यह सुपर्ण तौ केवल प्रकाशक अभोक्तारूपसे मंत्रप्रतिपाद्य है और भोक्तारूप बुद्ध्युपाधिक जीव चित् है तथाहि–

तद्यथास्मिन्नाकाशेश्येनोवासुपर्णोंवाविपरिपत्यश्रान्तःसंहत्यपक्षौ सल्लयायैवध्रियतएवमेवायंपुरुषएतस्माअन्तायधावतियत्रसुप्तोन कञ्चनकामंकामयतेनकञ्चनस्वप्नंपश्यति बृ०उ०अ०६ब्रा०३कं०१९

भावार्थ–जैसे इस प्रसिद्ध आकाशमें श्येन बडे शरीरवाला वा सुपर्ण शरीरवाला बाज है सो अधिक भ्रमण करनेसे श्रमको प्राप्त होकर पक्षों-को (संहत्य) विस्तार करके (सल्लय) अपने नीडको (ध्रियते) अन-वस्थित हो गमन करता है तैसे यह (पुरुष) जीव बुद्ध्युपाधिक (अन्त) अन्तरस्थान जो हृदयकमल है तहांको दौडता है जहां सोता हुआ कुछ भी (कामं) विषयको (न कामयते) नहीं चाहता और कुछ स्वप्न भी नहीं देखता इस श्रुतिमें सुपर्ण दृष्टान्तसे जो बुद्ध्युपाधिक जीव सुपर्णवत् जाग्रतस्वप्नसुषुप्तिमें गमन करनेवाला द्वितीय सुपर्ण कर्मफल भोक्ता प्रतिपादन करा है सो यह दो सुपर्ण वाक्यान्तरप्रतिपाद्यही द्वासु-पर्णा इत्यादि मंत्रसे कहे हैं तिन दोनोंका प्राणबुद्धि उपाधि भेदसे भेद वेदान्तियोंके सिद्धान्तमें स्वीकृतही है चेतन ब्रह्म सर्वात्मरूपसे (सोसा-वहम्) इस मंत्रमें प्रतिपादन कराहै तिसके भेदका साधन कौन है अर्थात् तिसके भेदका साधन कोई मंत्र नहीं यह भेद केवल मोह और उपाधिसे प्रतीत होता है वास्तवमें जीव कुछ और नहीं है वोही आत्मा जीवरूपसे मोहके होनेसे प्रतीत होता है यह मंत्रही कहता है ॥

समानेवृक्षेपुरुषोनिमग्नोअनीशयाशोचतिमुह्यमानः
जुष्टंयदापश्यत्यन्यमीशमस्यमहिमानमितिवीतशोकः
यह मंत्रश्वेताश्वतरके अ०४।७में आयाहै

(समानेवृक्षे) एक शरीररूपीवृक्षमें (पुरुषः) परमात्माही (निमग्नः) निगूढ है (अनीशया) अनीशबुद्धिसे (मुह्यमानः) मोहको प्राप्तहुआ (शोचति) मैं सुखी दुःखीहूं ऐसा शोचकरताहै (यदा) जब (अन्यम्) यथार्थ दूसरे (जुष्टम्) नित्य तृप्त शोकरहित (ईशम्) अपने ईश्वरीय रूपको तथा (अस्य महिमानम्) इस अपने रूपकी महिमाको अन-

न्यतासे (पश्यति) देखता अर्थात् साक्षात्कार करता है तब (वीत-शोकः) शोकरहित हो जाता है यहां महिमाका यही अर्थ है अपने परमेश्वर रूपको प्राप्त होता है इसकारण वास्तवमें वोह एकही है मोहसे भेद तथा दो प्रतीत होते हैं और (शाश्वतीभ्यः समाभ्यः)इसका अर्थ पूर्वकर चुके हैं ॥

सत्या० पृ० २०९ पं० ४

अजामेकांलोहितशुक्लकृष्णांबह्वीःप्रजाःसृजमानांसरूपाः
अजोह्येकोजुषमाणोनुशेतेजहात्येनांभुक्तभागामजोन्यः॥श्वेता०४।५

प्रकृति जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी यह जन्म लेते अर्थात् यह तीन सब जगतके कारण हैं इनका कारण कोई नहीं इस अनादि प्रकृतिका भोग अनादि जीव करता हुआ फसता है और उसमें परमात्मा न फँसताहै और न उसका भोग करताहै ॥२२२।१०

समीक्षा–दयानंदजीने सत्या० पृ० ६९ में दश उपनिषद् प्रमाण माने हैं यह वचन श्वेताश्वतर उपनिषद्का है जो उनके प्रमाण किये उपनिष-दोंमें नहीं है अपने अर्थसिद्धिको और उपनिषदभी माने हैं दूसरेके प्रमा-णमें कह देते हैं हम यह नहीं मानते भला इसमें वेदमंत्रका प्रमाण क्यों न लिखा यहां तो लिखा कि, प्रकृति जीव परमात्माका जन्म नहीं होता इससे निश्चय होता है कि, एक अज शब्द जीववाचक है और द्वितीय अज शब्द ईश्वरवाचक है यह स्वामीजीने समझा होगा परन्तु यदि यहां ईश्वरका ग्रहण करोगे तो (जहात्येनांभुक्तभोगामजोन्यः) इस श्रुतिभागकी असंगति होगी क्योंकि (भुक्तो भोगो यया सा भुक्त-भोगा तां भुक्तभोगामेनां प्रकृतिं जहाति) भोग लिया है भोग पूर्व का-लमें जिससे तिस प्रकृतिको त्याग देता है ऐसा अर्थ होनेसे परमेश्वरमें सुख दुःख साक्षात्कार रूप भोग मानना असंगत है इस कारण इसमें अनुत्पन्न साक्षात्कार और उत्पन्न साक्षात्कार जीवोंका ग्रहण है स्वामी-जी यहां जीवको जन्मरहित कहते हैं, और पृ० १९४ जो विभु हो तो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति मरण जन्म संयोग वियोग आना जाना कभी नहीं होसक्ता यह लिखते हैं यहां उसका परिछिन्न मानकर जन्म मानते हैं इनकी अनभिज्ञताका क्या ठिकाना है अब इस श्रुतिका यथार्थ अर्थ लिखते हैं ॥

अजावत् अजारूप जो एक लोहितशुक्लकृष्णरूपवाली प्रकृति है अर्थात् रक्त शुक्ल कृष्णरूपवाली तेज जल पृथिवीरूप सद्रूप ब्रह्म कार्यभूत त्रयरूप प्रकृति अपने समान रूपवत् बहुतसी प्रजाको उत्पन्न करतीको अनुत्पन्न साक्षात्कार एक अज अर्थात् जीव सेवन करताहुआ तिसके पश्चात गमन करता है, अर्थात् अपने करणग्रामसे प्रकृति भोगता है और भुक्तभोग इस प्रकृतिको उत्पन्न साक्षात्कार जीव दूसरा त्याग देता है अब यहां यह विचार कर्तव्य है जो रक्त शुक्ल कृष्णरूपवाली प्रकृति है सो अनादि अर्थात् अजन्य है यह किसकी बुद्धिमें आसकता है (विमता प्रकृतिजन्या रूपवत्त्वात् घटवत) इस अनुमानसे सादि सिद्ध होतीहै इस कारण इस श्रुति वचनसे अनादि प्रकृति नहीं सिद्ध हो सकती और इससे पूर्व वाक्य देखनेसे ब्रह्मतादात्म्यापन्न भिन्नाभिन्न विलक्षण प्रकृति सिद्ध होती है यथाहि–

तेध्यानयोगानुगताअपश्यन्देवात्मशक्तिंस्वगुणैर्निगूढाम् ।

श्वे० अ० १ मं० ३

वे ब्रह्मवादी ब्राह्मण योगाभ्यास करके परमात्मामें अनुगत अर्थात् प्रविष्ट होकर देव परमात्माकी आत्मरूप शक्ति तादात्म्य संबंधसे वर्तमान अपने कार्योंसे आच्छादितको योगज प्रत्यक्षसे देखते हुए इस कहनेसे भिन्न २ विलक्षण अचिन्त्य शक्ति सिद्ध होगई ॥ इस श्रुतिमें कल्पना करके अजात्व है अजावत् अजा है जैसे लोकमें कोई अजा नाम छागी लोहित कृष्ण शुक्लरूपवाली अपने तुल्य प्रजा उत्पन्न करै तिसके पीछे कोई अज गमन करता है कोई अज छाग भुक्तभोगको त्याग देता है तैसेही यह प्रकृति है और इसी प्रकारकी अजात्व कल्पना व्यासजी अपने सूत्रमें लिखते हैं ॥

कल्पनोपदेशाच्चमध्वादिवदविरोधः शा० अ १ पा० ४ सू० १०

अजावत् अजा ऐसी कल्पनाका उपदेश अजा मंत्रमें होनेसे अविरोध है जैसे प्रकरणान्तरमें अमधु आदित्यको देव मधु कहा है और अधेनुवाकको धेनु कहा है केवल कल्पना करके देवताओंका मोदन हेतु होनेसे मधु और सर्व कामना पूरक होनेसे धेनु आदित्य और वाकका कहा है ॥

और जब कि, सब कुछ ईश्वरहीने उत्पन्न किया है तो प्रकृति नित्य कैसे ॥

तस्माद्वाएतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योन्नम् अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः सएवाएषपुरुषो न्नरसमयः तैत्ति० १ ब्रह्मा० वल्ली अनु० १

इदं सर्वम सृजत् यदिदंकिंचेति तैत्तिरी० २ अनु० ६

आत्मावा इदमेकएवाग्रआसीन्नान्यत्किंचन ३ ऐतरेय उप० १

अर्थ-इस आत्मासे आकाश आकाशसे वायु वायुसे अग्नि अग्निसे जल जलसे पृथिवी पृथिवीसे औषधी औषधीसे अन्न अन्नसे वीर्य वीर्यसे पुरुष इस कारण यह पुरुष अन्नरसमय है॥ १॥

जो कुछ भी यह है सब परमेश्वरने बनाया है॥ २॥

प्रथम एक आत्माही था अन्य कुछ नहीं॥ ३॥

और (नासदासीत्) इत्यादि वेदमंत्र जो पीछे लिख आये हैं कि प्रलय कालमें सत् रज तम प्रकृति आदि कुछ भी नहींथा इस कारण प्रकृतिको इश्वरके समान नित्य मानना ठीक नहीं॥

स० पृ० २०९ पं० १२

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्थाप्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पंचतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियंपंचतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः सांख्य० १।६१

(सत्व) शुद्ध (रज) मध्य (तमः) जाड्य अर्थात् जडता तीन वस्तु मिलकर जो एक संघात है उसका नाम प्रकृति है उससे महत्तत्त्व बुद्धि उससे अहंकार उससे पांचतन्मात्रा सूक्ष्म भूत और दश इंद्रियां तथा ग्यारहवां मन पांच तन्मात्राओंसे पृथिव्यादि पांच भूत ये चौवीस और पच्चीसवां पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर है॥ २२२।१८

समीक्षा-स्वामीजी जो सूत्रार्थ बिगाडते हैं कि, पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर क्या कपिलदेवजी पर गिनती नहीं आती थी जो जीव पच्चीस और परमेश्वर २६ वाँ प्रगट न लिखकर पच्चीसहीमें समाप्त कर दिया स्वामीजीके जीव ईश्वर दो अर्थ ठीक नहीं यहां पुरुष शब्दसे एकही चेतन आत्मा ग्रहण किया है॥

स० पृ० २०९ पं० २२ से पृ० २११ पं० १ तक

(प्र०) सदेव सोम्येदमग्रआसीत् १ छा० प्र० ६ खं० २ असद्वाइदमग्रआसीत् २ तैत्त० ब्रह्मा० अनु० ७

आत्मैवेदमग्र आसीत् ३ बृह० अ० १ ब्रा० ४ मं० १ ब्रह्मवाइदमग्रआसीत् ४ श० ११।१।१।१।१

ये उपनिषद् वचन हैं हे श्वेतकेतो ! यह जगत् सृष्टिके पूर्व सत् १ असत् २ आत्मा ३ और ब्रह्मरूप था पश्चात् ॥

तदैक्षतबहुस्यांप्रजायेयेति १ सोकामयत बहुस्यांप्रजायेयेति २ तैत्त० ब्रह्मा० अनु० ६

यह तैत्तिरीयोपनिषद्का वचन है वही परमात्मा अपनी इच्छासे बहुरूप हो गया है १।२

सर्वंखल्विदंब्रह्मनेहनानास्तिकिञ्चन ॥

यह भी उपनिषद्का वचन है जो यह जगत् है वह सब निश्चय करके ब्रह्म है उसमें दूसरे नानाप्रकारके पदार्थ कुछ भी नहीं किन्तु सब ब्रह्मरूप है (उत्तर क्यों इन वचनोंका अनर्थ करते हो क्यों कि उन उपनिषदोंमें ॥

अन्नेनसोम्यशुंगेनापोमूलमन्विच्छ अद्भिस्सोम्यशुंगेनतेजोमूलमिच्छ तेजसासोम्यशुंगेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाःसोम्येमासर्वाःप्रजाःसदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः * ॥ छा० प्र० ६ खं० ८ मं० ४

छान्दोग्यउपनि० हे श्वेतकेतो ! अन्नरूप पृथिवी कार्यसे जलरूप मूल कारणको तू जान कार्यरूप जलसे तेजोरूप मूल और तेजोरूप, कार्यसे सद्रूप कारण जो नित्य प्रकृति है उसको जान यही सत्यस्वरूप प्रकृति सब जगत्का मूलघर और स्थितिका स्थान है यह सब जगत् सृष्टिके पूर्व असत्के सदृश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृतिमें लीन होकर वर्तमान था अभाव न था और जो "सर्वं खलु" यह वचन ऐसा है जैसा कि, कहींकी ईंट कहींका रोडा भानमतीने कुवा जोडा ऐसी लीलाका है क्योंकि–

सर्वं खल्विदंब्रह्मतज्जलानितिशान्तउपासीत ॥

छान्दोग्य । प्र० ३ ख० १४ मं० १

* पांचवींवारमें एवमेवखलुसोम्यानेन, इत्यादि शुद्धकिया है ।

और–नेहनानास्तिकिंचन कठोपनि॰अ॰२वल्ली४मं॰११

यह कठवल्लीका वचन है जैसे शरीरके अंग जबतक शरीरके साथ रहतेहैं तबतक कामके और अलग होनेसे निकम्मे हो जाते हैं वैसेही प्रकरणस्थ वाक्य सार्थक और प्रकरणसे अलगकरने वा किसी अन्यके साथ जोडनेसे अनर्थक होजातेहैं (यह बात स्वामीजीपरही लगती है आपने ऐसा बहुतही जगह कियाहै) सुनो इसका अर्थ यह है हे जीव! तू ब्रह्मकी उपासना कर जिस ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति स्थिति और जीवन होता है जिसके बनाने और धारणसे यह सब जगत् विद्यमान हुआ है वा ब्रह्मसे सहचरित है उसको छोड़ दूसरेकी उपासना न करनी इस चेतनमात्र अखण्डैकरस ब्रह्मरूपमें नानावस्तुओंका मेल नहीं है किंतु यह सब पृथक् स्वरूपमें परमेश्वरके आधारमें स्थित है ॥ २२३ । २ से ।

समीक्षा–स्वामीजीकी कैसी बाजीगरकेसी लीला है आपही प्रश्न कर्ता है और आपही उत्तरदाता है स्वयंही कहींकी ईट कहींका रोडा लेकर उपनिषदोंकी श्रुति लिखी है जैसा (सर्व) में (नेहनाना) यह श्रुति मिलादी भला यह प्रश्न किसने स्वामीजीसे किये थे यह मिथ्या कल्पना इनके घरकी है (नेहनाना) इसके अर्थ जो (इस चेतनमात्र) इत्यादि पूर्व लिखित किये हैं इस अक्षरार्थमें दृष्टि दीजिये तो यह अर्थ होता है कि (इह नाना किंचन नास्ति) अर्थात् इस ब्रह्ममें कुछभी पृथग्भूत वस्तु नहीं है जैसे लोकमेंभी कहते हैं (इह मृदि घटादिकं किंचन नाना नास्ति) (अर्थात् पृथग्भूतं नास्ति किन्तु मृदेव घटादिरूपेण प्रतीयते) इन घडोंमें मिट्टीके सिवाय कुछ नहीं है किन्तु यह मिट्टीही घडोंके रूपसे प्रतीत होती है स्वामीजीने जो इसका लम्बा चौडा अर्थ किया है वोह कौनसे पदोंका अर्थ है (और परमेश्वरके आधारमें स्थित है) तो क्या कोई परमेश्वरकाभी आधार दूसरा है सबका आधार तो परमात्मा आप है उसमेंभी आप पृथक्वस्तुओंका आधार लगाते हैं और उसमें नानावस्तुओंका मेल नहीं यह कहनाभी आपका असंगत है क्योंकि पंचभूतोंके मेल विना कोईभी कार्य्य सिद्ध होता नहीं इसीकारण त्रिवृत्करण होकर सर्वकार्य सिद्ध होते हैं यह समग्र श्रुति लिखते हैं जिससे स्वामीजीका खंडन स्वतः हो जायगा ॥

मनसैवेदमाप्तव्यंनेहनानास्तिकिंचन

मृत्योः समृत्युमाप्नोतियइहनानेवपश्यति कठ.उ.वल्ली ४मं. ११अ.२

अर्थ-ज्ञानयुक्त मनसे ही अखण्ड एकरस ब्रह्म प्राप्त होसक्ता है इस ब्रह्ममें कुछभी पृथग्भूत वस्तु नहीं है जो सर्वाधिष्ठान सर्व प्रपंचका सारांश ब्रह्म है तिसमें नानाकी नाईं पृथग्भूत वस्तुतुल्य कुछभी ब्रह्म भिन्न आत्माको वा प्रपंचको देखता है सो मृत्युसे मृत्युको प्राप्त होता है भाव यह है भेददर्शी ब्रह्मके ज्ञान होनेसे वारंवार जन्म मरणको प्राप्त होते हैं इससे स्वामीजी का भेदपक्ष उडगया अब (सर्वंखलु) इसका जो स्वामीजीने अर्थ लिखा है सोभी भ्रष्ट है क्योंकि-

(इदं सर्वं ब्रह्म) यह संपूर्ण ब्रह्म है इदंशब्द प्रत्यक्षादि प्रमाणसिद्ध वस्तुका बोधक है जैसे कोई कहै यह संपूर्ण कटक कुंडलादिक सुवर्ण हैं सो यहां सुवर्ण कटकादिका उपादानोपादेय भाव है (शंका) इसका यह अर्थ नहीं किन्तु (यह संपूर्ण ब्रह्म अर्थात् ब्रह्ममें स्थित है) इसी शंकाकी निवृत्तिके वास्ते (तज्जलान्) यह विशेषण है अर्थ यह है तिस ब्रह्मसे ही उत्पन्न होकर तिसहीमें लीन होता और उसीमें चेष्टा करताहै जिसमें कार्यका लय होता है सोई उपादान कारण होता है जैसे किसी निमित्तसें मेघका जल ओले होकर फिर ओले जलहीमें लीन होजाते हैं और जलरूप होतेहैं ऐसेही कटकादि सुवर्णमें लीन होकर सुवर्णही होजाते हैं कटक ओले आदिका आदि मध्य अन्तमें सुवर्ण वा जलही तत्त्व है इसीप्रकार जब संसारका (तज्जलान्) यह विशेषण कहा तौ ब्रह्म जगत्का उपादान कारण निश्चय होगया बस यह जगत् ब्रह्ममें ऐसे स्थित है जैसे सुवर्णमें कटक जलमें ओला इसी कारण ब्रह्म और जगत् के अभेद साधक (सर्वं ब्रह्म) यह सामानाधिकरण्य भी श्रुतिमें संगत होता है जब ऐसा सर्वात्मा ब्रह्म है तौ ऐसीही उसकी उपासना करनी योग्य है जब ब्रह्म जगत्का उपादान कारण है तब ब्रह्मभिन्न प्रकृति मानना और ब्रह्मसे सहचरित है यह मानना असंगत है अब यह सब श्रुति लिखते हैं जिससे उपादान कारण और इसका अर्थ विदित हो जायगा

सर्वंखल्विदंब्रह्मतज्जलानितिशान्तउपासीताथखलुक्रतु
मयःपुरुषोयथाक्रतुरस्मिँल्लोकेपुरुषोभवतितथेतःप्रेत्य
भवति सक्रतुंकुर्वीत ॥ १ ॥

मनोमयःप्राणशरीरोभारूपः सत्यसङ्कल्पआकाशात्मासर्वक
र्मासर्वकामःसर्वगन्धःसर्वरसःसर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः२
एषमआत्मान्तर्हृदयेऽणीयान्व्रीहेर्वा यवाद्वासर्षपाद्वाश्यामा

काद्वाश्यामाकतण्डुलाद्वाएषमआत्मान्तर्हृदयेज्यायान् दिवो-ज्यायानेभ्योलोकेभ्यः ॥ ३ ॥ सर्वकर्मासर्वकामःसर्वान्धः सर्वरसःसर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरएषमआत्मान्तर्हृदयएत-द्ब्रह्मैतमितःप्रेत्याभिसंभवितास्मीतियस्यस्यादद्धानविचि-कित्साऽस्तीतिहस्माहशाण्डिल्यः ॥ ४ ॥ छान्दो० प्रपा० ३ खं० १४

अर्थ–वोह उपासना कैसे करनी चाहिये सो लिखतेहैं "सक्रतुं कुर्वीत" सो उपासक क्रतु अर्थात् निश्चयरूप संकल्प करके शान्त ब्रह्मकी उपासना करै जिस हेतुसे कि, क्रतुमय पुरुष है अर्थात् संकल्प प्रधान पुरुष होता है जैसे संकल्पवाला पुरुष इस लोकमें होता है वैसेही भावनानुसार प्राणवियोगसे उत्तर कालमें होता है ! जिसको शरीर मनोमय अर्थात् प्रधान मन उपाधि विशिष्ट (प्राणशरीरः) ज्ञान और क्रिया शक्ति विशिष्ट है, ऐसा ब्रह्म उपास्य है (भारूप) प्रकाशस्वरूप और सत्यसंकल्प है, इस विशेषणसे संसारी जीवकी व्यावृत्ति बोधन करी आकाशवत् व्यापक और सर्वकर्मा अर्थात् जिसका सम्पूर्ण विश्व कार्य है दोषरहित और सर्वकामनायुक्त सुखसे सर्व गंधयुक्त और दिव्य सर्व रसयुक्त (सर्वम् इदम् अभिआत्तः) इस सर्वके चारोंओरसे व्याप्त हो रहा है (अवाकी अनादरः) वाग् उपलक्षित सब इन्द्रिय वर्जित अर्थात् आप्तकाम है २ (एष म आत्मा) यह मेरा स्वरूप भूत आत्मा है यह ध्यानका आकार है आशय यह है अपनेमें ईश्वरात्माका आरोप करके उपासना करै इसे अहंग्रह उपासना कहते हैं जो ऐसी उपासनासे साक्षात्कार होजाय तौ शीघ्र मुक्ति होजाती है मनउपाधिक उपास्यका वर्णन करते हैं (हृदयमें अंन्तर अत्यन्त सूक्ष्म है और धान यव श्यामाक और श्यामाकतंडुल इन सबसे सूक्ष्म है) परिच्छिन्नपरिमाण पदार्थोंसेभी सूक्ष्मतर कहनेसे अणुपरिमाणत्व शंकाभी हत होगई यह मेरा आत्मा पृथिवी अन्तरिक्ष सर्व लोकसे अधिकतर है ऐसे पूर्व मनोमयत्वादिगुणविशिष्ट ईश्वर ध्येय है सो इसका तीसरे अध्यायमें उपदेश कर ज्ञेय वस्तुका षष्ठ सप्तममें उपदेश करैंगे ३ इस उपासनामें सर्वकर्मा इत्यादि गुणयुक्तही उपास्य है इसीकारण श्रुतिमें सर्वकर्मादिक पद पुनः आये हैं (एतद्ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभिसम्भवितास्मीति) यह उपास्य देव

ब्रह्म है इसको इस शरीरसे प्राणको त्यागकर प्राप्त होऊंगा (यस्यस्याद्द्धा) जिस उपासकको यह दृढ निश्चय है सो उपासनेके फलको प्राप्त होगा यह शाण्डिल्य ऋषिने कहा है पुनरुक्ति विद्या समाप्तिके वास्ते बोधन करी है अब इसे सज्जन पुरुष विचारेंगे कि, इस श्रुतिमें सर्वप्रपंचका उपादान कारण ब्रह्म सर्वात्मा सर्व कर्मत्वादिविशिष्ट निश्चय होता है ऐसे २ स्वामीजीके असंगत लेखको कहांतक गिनावैं अब और सुनिये–

सदेवसोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम् तद्धैकआहुरस
देवेदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायेत १
कुतस्तुखलुसोम्यैव २ स्यादितिहोवाचकथमसतः सज्जा
येतेतिसत्त्वेवसोम्येदमग्रआसीत् । एकमेवाद्वितीयम् २
तदैक्षतबहुस्यांप्रजायेयेतितत्तेजोऽसृजत छां.उप. अ. प्र. ६ खं. २

अर्थ–उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतुसे कहते हैं हे सोम्य ! यह प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्ध वस्तुमात्र सृष्टिसे पूर्व कालमें सद्रूपही होता हुआ अर्थात् सत्‌रूप वस्तुके साथ तादात्म्यापन्न होता हुआ जैसे वृक्ष उत्पत्तिसे प्रथम बीजभावापन्न था वैसेही सद्वस्तु जो सर्वका बीज है तद्रूपही यह प्रथम था सो सद्वस्तु क्या है (एकमेव) अर्थात् कार्य्यभावापन्नवस्त्वन्तररहित है निश्चय (अद्वितीय) निमित्तकारणान्तरवर्जित है कोई ऐसा कहते हैं कि, यह नामरूप प्रपंच प्रथम (असत) अभावमात्रथा (एकमेव) कार्यवस्त्वन्तरवर्जितनिमित्तादिरहित था तिस असत्‌से यह सत् नाम रूप वस्तु हुआ है उनका कहना ठीक नहीं है सोम्य ! यह कैसे हो सक्ता है (असतः) अभावमात्रसे सतहो इस कारणसे सतही कार्य भावापन्न वस्त्वन्तरवर्जित निमित्तकारणान्तर वस्तु रहित होता हुआ सो सद्वस्तुका आलोचन करता हुआ भावी जगत्‌को अपनेमें देखा और इच्छाकरी मैं बहुतसा होकर प्रतीत होऊं प्रजारूपको धारण करूं सो तेजका सर्जन करता हुआ इसी प्रकारके भावको (ऋ० मं० ६ सू० ४७ मं० १८ रूपं रूपं प्रतिरूपोबभूव) में कहा है इस लेखसेही परमेश्वर जगत्‌का उपादान कारण है यह सिद्ध होगया अब यहां यह भी विचार है जब सतमें देखना अथवा बहुत होनेकी कामना हुई तो चेतनत्व सिद्ध होगया इससे इस श्रुतिमें सत शब्दको जड प्रकृतिका बोधक मानना

स्वामीजीकी वेदान्तानभिज्ञता प्रगट करता है अब दूसरी श्रुतिमें जो अज्ञानता प्रगट करी है उसे दिखलाते हैं ॥

तत्रैतच्छुङ्गमुत्पतित ँसोम्यविजानीहिनेदममूलंभविष्यतीति ३ तस्यक्कमूलंस्यादन्यत्रान्नादेवमेवखलुसोम्यान्नेनशुङ्गेनापोमूलमन्विच्छद्भिःसोम्यशुङ्गेनतेजोमूलमन्विच्छतेजसासोम्यशुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छसन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः—छां॰प्रपा॰६ खं॰ मं॰ ४

अर्थ–जब अन्न रसादिकार्य देह प्रसिद्ध हुआ तब यह जो शुङ्ग देह है सो उत्पतित, उत्पन्न है जैसे वटबीजसे वटका वृक्ष उत्पन्न होता है तैसे यह देह भी मूलशून्य नहीं ऐसे तू जान सो इस देहका अन्नसे विना कौन मूल है किन्तु अन्नही मूल है इसीप्रकार हेप्रिय श्वेतकेतो! अन्नरूप विकारसे जल और जलसे तेज जान तेजसे सत् मूल जान इस प्रकार सत् मूल कारणवाली संपूर्ण प्रजा है और सत् वस्तुही आयतन अर्थात् स्थितिस्थान है और सत्‌ही प्रतिष्ठा अर्थात् लयाधार है, स्वामीजीने खलु पर्य्यन्त श्रुतिभागको त्यागके अर्थ शेषश्रुतिका भ्रष्ट कर दिया सो पूर्व लिख चुके हैं स्वामीजीने सत् शब्दको प्रकृतिवाचक मानकर सर्व जगत्‌का मूलकारण प्रकृतिको माना है इस स्थानमें सत्‌रूप और नित्य प्रकृति यदि चेतनरूप है तौ ब्रह्मरूपही प्रकृति सिद्ध होगी यदि जडप्रकृति ब्रह्मभिन्न अभिमत है तब तौ स्वामीजीका महामोह है क्यों कि, जड़ प्रकृतिमें ईक्षण और बहुभवन संकल्प कैसे होगा इसीकारण प्रकृतिको जगत् कारणत्वका व्यासजी अपने सूत्रमें निषेध करते हैं ॥

ईक्षतेर्नाशब्दम्—शा॰ अ॰ १ पा॰ १ सू॰ ५

ईक्षतेः न अशब्दम्।

अर्थ–तत्तु समन्वयात् इस चौथे व्याससूत्रमें प्रतिपादित सर्व उपनिषद्वचन तात्पर्य्य विषय ब्रह्मसे भिन्न जड प्रकृति परमाणु आदि जगत्‌के कारण नहीं क्योंकि अशब्द अर्थात् वेदसे अप्रतिपाद्य होनेसे और वेद अप्रतिपाद्यमें हेतु (ईक्षतेः) यह दिया है अर्थात् ईक्षणवालेको कर्तृत्व श्रवण करा जाता है सो ईक्षण चेतनका धर्म है जडका नहीं इससे जडप्रकृतिको यदि सत् शब्द बोध्य मानेंगे तो सत् शब्द वाच्य वस्तुमें ईक्षण तथा बहुत होनेकी कामनाका बाध होगा इसकारण छान्दोग्यके ६

अध्यायमें सत् शब्दसे ब्रह्महीका ग्रहण कियाहै सोई जगतकी उत्पत्ति स्थितिलयाधार है तिससे भिन्न जड प्रकृति नहीं अब दूसरी श्रुतिभी देखिये जिससे ब्रह्मभिन्न प्रकृतिको उपादानकारणता सिद्धान्तका खंडन होता है–

सोऽकामयत । बहुस्यांप्रजायेयेति । सतपोऽतप्यत । सतपस्तप्त्वा । इद ँ सर्वमसृजत । यदिदंकिंच । तत्सृष्ट्वा । तदेवानुप्राविशत् । तदनुप्रविश्य । सच्चत्यच्चाभवत् । निरुक्तश्चानिरुक्तश्च । निलयनश्चानिलयनश्च । विज्ञानश्चाविज्ञानश्च । सत्यश्चानृतश्चसत्यमभवत् । यदिदंकिञ्च । तत्सत्यमित्याचक्षते । तदप्येषश्लोको भवति । असद्वाइदमग्रआसीत् । ततोवैसदजायत । तदात्मानंस्वयमकुरुत । तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति ॥ तैत्ति० ब्रह्मा० अनु० ५ । ६

अर्थ–सो पूर्वप्रकरणप्रतिपाद्य आकाशादि भूतकारण स्वरूप आत्मा कामना करता हुआ कि, मैं बहुतरूप होकर प्रतीत होऊं और प्रजारूपको धारण करूं (तपोऽतप्यत) आलोचन करता हुआ आलोचन करके सब नामरूप प्रंपचको रचता हुआ जो कुछभी वस्तु है । पीछे तिस सब वस्तुको बनाकर सो आपही तिस सब वस्तुमें जीवरूपकर प्रविष्ट हुआ तिसमें प्रविष्ट होकर (सत्) पृथिव्यादिभूत (त्यत्) वायु आकाशरूप हुआ (निरुक्तंचानिरुक्तश्च) निर्वचन योग्य और निर्वचनायोग्य (निलयनश्चानिलयनश्च) लयाधार और लयानाधार (विज्ञानश्चाविज्ञानश्च) प्रत्यक्षादि विषय और प्रत्यक्षादिका अविषय (सत्यंचानृतंच) व्यावहारिक सत्य और प्रातिभासिक (सत्यमभवत्) यह संपूर्ण पृथिव्यादि प्रातिभासिक वस्तु पर्य्यन्त सर्व वस्तु सत्यरूप परमात्माही हुआ अपनी अचिन्त्य शक्तिकर जो कुछ वस्तुमात्र है तिसको सत्य कथन करते हैं आशय यह कि, सत्यका कार्य होनेसे सत्य कहलाता है इसमें वक्ष्यमाण यह श्लोक भी प्रमाण है ॥ यह सर्व वस्तु (असत्) अनभिव्यक्त नाम रूप केवल कारण तादात्म्यापन्न था अब तिससे सद्रूप होकर प्रतीत हुई सो आत्मा अपने आपको जगतरूप अपनी अपूर्व शक्तिसे करताहुआ जैसे कोई योगसिद्धियुक्त योगीजन अपनी शक्तिसे अनंत शरीर धारण कर-

ता है वैसे परमात्मा महायोगीश्वर महाशक्तिसम्पन्नने अपने आत्माकोही जगद्रूप करा इसीकारण जगत्को (सुकृत) अर्थात् स्वयंकृत कहते हैं ॥

स० पृ० २११ पं० २५ (प्रश्न) नवीन वेदान्ती लोग केवल परमेश्वरहीको जगत्का अभिन्न निमित्तोपादान कारण मानते हैं ॥

यथोर्णनाभिःसृजतेगृह्णतेच मुंडक० १ खं० १ मं० ७

आदावन्तेचयन्नास्तिवर्तमानेपितत्तथा—माण्डू० कारिका[१] ३१

(इसका उत्तर पृ– २१२ पं– ९ में) जो तुम्हारे कहने अनुसार सब जगत्का उपादान कारण ब्रह्म हो जावै तौ वोह परिणामी अवस्थान्तर युक्त विकारी होजावै और उपादान कारणके गुण कर्म स्वभाव कार्यमें आते हैं ॥

कारणगुणपूर्वकःकार्य्यगुणोदृष्टः—वैशेषिक सू० २४ अ० २ आ० १

उपादान कारणके सदृश कार्यमें गुण होते हैं तौ ब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप जगत् कार्यरूपसे असत् जड और आनंद रहित ब्रह्म अज और जगत् उत्पन्न हुआ है ब्रह्म अदृश्य और जगत् दृश्य है ब्रह्म अज और जगत् खण्डरूप है जो ब्रह्मसे पृथिव्यादि कार्य उत्पन्न होवै तौ पृथिव्यादिमें कार्यके जडादि गुण ब्रह्ममेंभी होवैं अर्थात् जैसे पृथिव्यादि जड़ हैं वैसा ब्रह्म भी जड़ होजाय और जैसा परमेश्वर चेतन है वैसे पृथिव्यादि कार्य भी चेतन होना चाहिये और जो मकरीका दृष्टान्त दिया वोह तुम्हारे मतका साधक नहीं बाधक है क्योंकि वोह जड़रूप शरीर तन्तुका उपादान और जीवात्मा निमित्त कारण है और यहभी परमात्माकी अद्भुत रचनाका प्रभाव है क्योंकि अन्य जन्तुके शरीरसे जीवतन्तु नहीं निकाल सक्ता वैसेही ब्रह्मने अपने भीतर व्याप्य प्रकृति और परमाणु कारणसे स्थूल जगत्को बनाकर बाहर स्थूलरूप कर आप उसीमें व्यापक होके आनंदमय होरहा है और पृष्ठ २१२ पं० १४ में लिखा है वह कारिका भ्रममूलक है क्योंकि प्रलयमें जगत् प्रसिद्ध नहींथा और सृष्टिके अन्त अर्थात् प्रलयके आरम्भसे जब तक दूसरीवार सृष्टि न होगी तबतकभी जगत्का कारण सूक्ष्म होकर अप्रसिद्ध रहता है क्योंकि—

तमआसीत्तमसागूढमग्रे ऋ० मं० १० सू० १२९ मं० ३

ऋग्वेदका वचनहै—

---

१ आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेपितत्तथा ।

आसीदिदंतमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥
अप्रतर्क्यमविज्ञेयंप्रसुप्तमिवसर्वतः ॥ मनु १ । ५

यह सब जगत् सृष्टिके पहले प्रलयमें अंधकारसे आवृत आच्छादित था और प्रलयारम्भके पश्चात्‌भी वैसाही होता है उस समय न किसीके जानने न तर्कमें लाने और न प्रसिद्ध चिह्नोंसे युक्त इन्द्रियोंसे जानने योग्य था और न होगा किन्तु वर्तमानमें जाना जाता है, और प्रसिद्ध चिह्नोंसे युक्त जानने योग्य होता और यथावत् उपलब्ध है पुनःउस कारिका करके वर्तमानमें भी जगत्‌का अभाव लिखा है सो सर्वथा अप्रमाण है क्योंकि जिसको प्रमाता प्रमाणोंसे जानता और प्राप्त होता है वोह अन्यथा कभी नहीं होसक्ता ॥ २२५।५

समीक्षा–यद्यपि हम उपादान कारण आदिकी व्यवस्था पूर्व अच्छी प्रकार कथनकर चुके हैं परन्तु स्वामीजीने इस प्रकरणको वार २ लिखा है इससे हम कुछ इसके उत्तरमें व्यासजीके सूत्र लिखते हैं ॥

दृश्यतेतु–अ० २ पा० १ सू० ७

यहां तुशब्द पूर्वपक्षकी निवृत्तिके वास्ते है (एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः) इसमें चेतनसे जड़का जन्म सुना है बस स्वामीजीका वोह कथन कारणके सदृश कार्य होता है खंडित होगया (विज्ञानघन एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थायेति) इसे जड़से चेतनका जन्म है लोकमें भी चेतनोंसे विलक्षण केशनखादिका जन्म और अचेतन गोमयादिसे चेतन वृश्चिकादिका जन्म देखते हैं ननु अचेतनही देह अचेतन केशादिका कारण वो अचेतन वृश्चिकादि देह अचेतनगोमयादिका कार्य है इसमें कुछभी अचेतन चेतनका आयतन भावको पहुँचा वो कुछ नहीं यही वैलक्षण्य है यह बड़ा परिणामिक स्वभावका विप्रकर्ष है पुरुषादिकोंका व केशादिकोंका क्योंकि स्वरूपभेदसे तैसे गोमयादिका वो वृश्चिकादिका है अत्यन्त सारूप्यमें प्रकृति विकृति भान नहीं होसक्ता है जो पार्थिवादि स्वभाव पुरुषादिका केशादिमें वो गोमयादिवृश्चिकादिमें अनुवर्ते हैं तो ब्रह्मका भी सत्ता लक्षण स्वभाव आकाशादिमें भी देखते हैं फिर ब्रह्मवादीसे यह नहीं कहसक्ते हो कि जो चेतनसे युक्त नहीं है सो अब्रह्म प्रकृतिक देखा है. वोह तो सब वस्तुको ब्रह्मप्रकृतिक मान्ता है निष्पन्न ब्रह्ममें रूपादिके अभावसे प्रत्यक्षादि प्रमाण वो लिंगादिके अभावसे अनुमानादिका असंभव है ब्रह्मही धर्मके समान केवल वेदहीसे जाना जाता है

(नैषातर्केण मतिरापनेया) तर्ककी मतिसे यह प्राप्त नहीं होसक्ता वोही तर्क प्रमाण है जो श्रुतिसे मिली है चेतन शुद्ध शब्दादि हीन ब्रह्म उलटा कार्य है शब्दादिवत् और जो केवल तर्कसेही निर्णय करता है उसका निर्णय ठीक नहीं व्यासजी सूत्र लिखते हैं॥

तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथानुमेयमितिचेदेवमप्यविमोक्षप्रसंगः ११ १२ वेदा० अ० २।१

वेदबोधक अर्थमें केवल तर्कसेही नहीं झगड़ना चाहिये क्योंकि वे तर्कना पुरुषकी बुद्धिसे रचीगई हैं इसकारण सर्वथा प्रमाण नहीं क्योंकि उत्प्रेक्षा निरंकुश अर्थात् किसीने तर्कबलसे उत्प्रेक्षा करी दूसरेने उसको तर्काभास कहा है फिर अन्यने उसको भी तर्काभास कहा इससे तर्क ध्रुव मानने योग्य नहीं है यद्यपि कहीं तर्क प्रतिष्ठित हो तथापि जगत्कारणके विषयमें तर्क स्वतंत्र नहीं है यह अति गंभीर परमानन्दमुक्तिनिबंध वेदके विना अन्य प्रमाणोंसे जाननेको शक्य नहीं है यह अर्थ रूपादिके अभावसे प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका विषय वा लिंगादिके अभावसे अनुमानादिकोंकाभी गोचर नहीं है॥

स्वामीजी उस सूत्रमें वेदप्रमाण लिखते यह सूत्र यहां चरितार्थ नहीं है॥

यथाचप्राणादि-व्याससूत्र २० अ० २ पा० १

जैसे लोकमें जबतक प्राणपवन हृदयमें रहता है तबतक उससे जीवन मात्रही सिद्ध है अन्य प्राण भेदोंसे प्रसारणादि कार्य भी सिद्ध होते हैं परन्तु वे सब प्राणादि भेद पवनस्वभावही हैं न कि, पवनसे भिन्न हैं. ऐसेही विश्वरूप कार्य कारण ब्रह्मसे भिन्न नहीं है तिससे सब विश्व ब्रह्मका कार्य और ब्रह्मसे अनन्य है यह श्रौतप्रतिज्ञा सिद्ध हुई है "येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति" जब कि, कार्य कारण सब ब्रह्मही है तौ दृश्य अदृश्य खंड अखंड जड़ चेतन आदिका सम्बन्ध कैसा उससे कुछ पृथक् हो तौ कल्पना की जासक्ती है इससे स्वामीजीका कथन भ्रान्तियुक्त है अब आगे ऊर्णनाभिका प्रसंगभी देखिये॥

देवादिवदपि लोके२५ अ० २ पा० १

जैसे लोकमें देव पितर ऋषि बड़े बड़े प्रतापी चेतनविना सामग्रीके ऐश्वर्ययोग द्वारा संकल्प ध्यानहीसे जो पूर्व नहीं थे देह घर रथादि उनको रचते देखते हैं यही मंत्र वो अर्थवाद वृद्धव्यवहारोंसे प्रगट है फिर

मकरी भी आपही डोरोंको सृजती है वकुलीभी शुक्रके विना मेंघके गर्जनसेही गर्भको धारण करती है पद्मिनीभी गमनके साधन विना एक तालसे दूसरे तालमें जमती है ऐसेही चेतनभी ब्रह्म बाह्य सामग्रीके विना आपही जगत् सृजता है ब्रह्म तौ सबसे विलक्षण है वोह बाह्यसाधन नहीं चाहता, अपनेसे आपही जगत् बनाता है और आपही लयकर लेता है क्योंकि ब्रह्म देवताओंसेभी विलक्षण है, इसीमें ऊर्णनाभिका दृष्टान्तहै उसे बाह्यवस्तुकी अपेक्षा नहीं होती, अपनेसेही तन्तुआदि निकालती है और इसीप्रकार ईश्वरभी अपनेसेही सब वस्तु निकाल कर जगत् बनाता है, उसे कुह्मारकी नाईं बाह्यवस्तुओंकी अपेक्षा नहीं होती ॥

कारिकापरभी आपका मिथ्याही आक्षेप है क्योंकि कारिकाका आशय यह है कि जब आदि अन्तमेंही ब्रह्मसे व्यतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है तौ वर्तमानमें कब हो सक्तीहै, अर्थात् आदि अन्त मध्यमें ब्रह्मसे व्यतिरिक्त कोई वस्तु नहीं सब वोही है (जगत्) इसका अर्थ विनाजाने महात्माजीने गड़बड़का लिखदिया है फिर (आसीदिदं) इसमेंभी झूंठही लिख दिया है कि (प्रसिद्ध चिह्नोंसे जानने योग्य होता है) अर्थ तौ इसका यह है कि, यह जगत् प्रलयमें अंधकाररूप प्रत्यक्ष अनुमान शब्द ये तीन प्रमाण हैं, इनसेभी जाननेके अयोग्य है क्योंकि देख नहीं पड़ताथा तथा लक्षणसे रहित अपने कार्यमें असमर्थकी नाईं रहा, यह मनुजीका श्लोक है और प्रथमही वेदमंत्र लिखचुके हैं कि, महाप्रलयमें ब्रह्मके विना और कुछ नहीं था फिर प्रकृति आदि कहां २ थे देखो (नासदासीत्) आदि मंत्र जो पीछे लिख आये हैं * ।

स० पृ० २१४ पं० ६ सर्व शक्तिमानका अर्थ इतनाही है कि, परमात्मा विना किसीकी सहायताके अपने सब कार्य पूर्ण करसक्ता है॥ २२७ । २४

समीक्षा-स्वामीजीकी विद्याबुद्धि बालकोंकीसी है कहीं लिखते हैं कि, विना प्रकृतिके वोह कुछ नहीं कर सक्ता कहीं लिखा कि, विना सहाय कार्य कर सक्ता है सर्वशक्तिमत्ता तौ ईश्वरकी उडगई ॥

पृ० २१४ पं० १८ जब वो प्रकृतिसे भी सूक्ष्म और उसमें व्यापक है तभी उनको पकडकर जगदाकार बना देता है ॥ २२८। ८

समीक्षा-प्रकृति भी भागी जाती होगी ईश्वर उसके पीछे दौडता होगा वोह पकड़ता होगा प्रकृति नाहीं करती होगी पर ईश्वर जगदाकार बनाही देता है धन्य अब तौ ईश्वरके हाथ भी आप मान चुके ॥

* वेदान्त प्रकरण छोटे स्वामीकोभी नहीं आता इससे श्रुतियोंके गडबड़ अर्थ कियेहैं कुछ कहते न बनाहैभा.प्र.

स० पृ० २१४ पं० २६ कारणके विना ईश्वर कार्यको नहीं करसक्ता (उत्तर) नहीं २२८।१६

समीक्षा–स्वामीजी पूर्व तौ लिखि आये हो कि, (न तस्य कार्यं करणं च विद्यते) कि, उसे कार्य करणादिकी कुछ अपेक्षा नहीं अब यहां यह गड़बडी वोह सब कुछ करनेमें समर्थ है ॥

स० पृ० २१५ पं० २३ सर्वमनित्यमुत्पत्तिविनाशधर्मत्वात् ॥ २२९। १६

२१६ पं० २५ श्लोकार्धेनप्रवक्ष्यामियदुक्तंग्रंथकोटिभिः ॥ ब्रह्मसत्यंजगन्मिथ्याजीवोब्रह्मैवनापरः॥२३०।१९से.

पांचवां नास्तिक कहता है कि, सब पदार्थ उत्पत्ति और विनाशवाले हैं इसलिये सब अनित्यहैं; नवीन वेदान्तीलोग पांचवें नास्तिककी कोटीमेंहैं क्योंकि वे ऐसा कहते हैं कि, करोडों ग्रंथोंका यह सिद्धान्तहै ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्मसे भिन्न नहीं ॥

समीक्षा–जिसके नेत्रोंमें जैसी रंगतकी ऐनक लगी होती है, उसे जगत् वैसाही दीखता है, नास्तिकशिरोमणि तो आप हैं, जो कि आपका ईश्वर कुछ करही नहीं सकता औरोंको नास्तिक बताते हैं, जब कि सब कुछ ब्रह्म है तौ जीव कहांसे है, और जगत् क्या है कुछ नहीं इसी प्रकार स्वामीजीकी अनेक गडबडी है, बस सिद्धान्त यही है कि, जैसे घटाकाश घटके टूटनेसे आकाशमें मिलता है, इसी प्रकार कर्मबंधन टूटनेसे यह शुद्ध आत्मा सर्वसामर्थ्ययुक्त होता है, यहां और जो स्वामीजीने (नित्यायाः) और (नासतो विद्यते) इत्यादि जो वाक्य लिखे हैं उन सबका उत्तर पूर्व प्रसंगमें आगया है इस प्रकारसे बुद्धिमान् महाशय जान लेंगे यह उपादानकारणआदिका विषय पूर्ण हुआ यह सब वेदान्तप्रकरणके अन्तर्गत हैं ॥

आदिसृष्टिस्थानप्रकरणम्।

स० पृ० २२३ पं० ७ सृष्टिकी आदिमें एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे वा क्या (उत्तर) अनेक क्योंकि जिन जीवोंके कर्म ऐश्वरी सृष्टिमें उत्पन्न होनेके थे उनका जन्म ईश्वर सृष्टिकी आदिमें देता क्योंकि "मनुष्या ऋषयश्च ये, ततो मनुष्या अजायन्त" यह यजुर्वेदमें लिखा है इससे निश्चय है कि, आदिमें अनेक सैकडों सहस्रों मनुष्य उत्पन्न किये ॥ २३७। १९

समीक्षा–स्वामीजीने असत्य बोलनेका बीडा उठा लिया है यजुर्वेद में कहीं यह वाक्य नहीं कि " ततो मनुष्या अजायन्त" और दूसरे पदमें लौट फेर किया है "मनुष्या ऋषयश्च ये" इसमें साध्याऋषयश्च ये ऐसा है यह मंत्र इस प्रकारसे है ॥

तंयज्ञम्बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषञ्जातमग्रतः ॥

तेनदेवाअयजन्तसाध्याऋषयश्चये।यजु० अ० ३१ मं० ९

(ये) जो (साध्याः देवाः च ऋषयः) साध्य देवता और ऋषिहैं उन्हों ने (अग्रतः) सृष्टिके पूर्व (जातम्) उत्पन्नहुए (तम्) उस (यज्ञम्) यज्ञसाधनभूत (पुरुषम्) विराट् पुरुषको (बर्हिषि) आत्मामें (प्रौक्षन्) प्रोक्षण क्रिया (तेन) उसी पुरुषद्वारा (अयजन्त) यज्ञ किया ९ तथा अथैतात्मनः प्रतिमामसृजतयाद्यज्ञं शं० ११ कां० इस श्रुतिसे यज्ञ नाम उसकी प्रतिमाकाहै अर्थात् प्रतिमामें यजन किया ॥

अब न्यायदृष्टिसे विचारिये कि, दयानंदजीने वेदके नामसेभी कैसी २ झूंठी गप्पैं उठाईथीं, सृष्टिके प्रथम ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, सो पूर्व वर्णन कर आयेहैं अब और लीला देखिये सृष्टिकी आदिमें बहुत मनुष्य नहीं हुए स० प्र० पृ० २२४ पं० २ मनुष्योंकी आदिसृष्टि किस स्थलमें हुई (उत्तर) त्रिविष्टप अर्थात् जिसको तिब्बत कहतेहैं ॥ २३८ । १६

यहां तो स्वामीजी आर्य्यावर्त्तका सत्यानाशही करचुके लीजिये तिब्बतमें प्रथम सृष्टिकी उत्पत्ति हुई स्वामी तो सब बातोंमें वेदका प्रमाण देते थे, इस प्रकरणमें कोई प्रमाण क्यों नहीं दिया अंग्रेज कहते हैं कि, ईरानसे आर्य आये, आप उनसे भी आगे बढगये जो तिब्बत देशमें उत्पत्ति लिखदी और जैसा कि, आप पृ० २२४ पं० १० में लिखते हैं जब आर्य और दस्युओंमें अर्थात् विद्वान् जो देव अविद्वान् जो असुर उनमें सदा लडाई बखेडा हुआ किया जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य लोग सब भूगोलमें उत्तम इस भूमिखण्डको जानकर यहीं आकर बसे, इसीसे इस देशका नाम आर्य्यावर्त्त हुआ पुनः पं० २९ में इसके पूर्व इस देशका नाम कोई भी नहीं था, और न कोई आर्योंके पूर्व इस देशमें बसतेथे, क्योंकि आर्य्यलोग सृष्टिकी आदिमें कुछ कालके पश्चात् तिब्बतसे सूधे इसी देशमें आकर बसे थे, और ईरानसे आनेकी बात झूंठ है (२३८ । २३९) अब स्वामीजीसे यह प्रश्न है कि, आपने कौनसे वेदानुसार यह तिब्बतसे आना लिखा है और त्रिविष्टपको तिब्बत लि-

खा यह कौनसे कोशमेंसे निकाला है मैं जानताहूं कोईभी ऐसा ग्रंथ नहीं है पूर्वकाल वा नवीन कालका हमारे मतका जिसमें यह बात लिखी होकि तिब्बतसे आये स्वामीजी तौ अंग्रेजोंके अनुयायीही ठहरे उन्होंने ईरान लिखा इन्होंने तिब्बत लिखकर पहले नम्बरका सर्टिफिकट हासिल किया और इससे स्वामीजीके वृद्धोंकी भी मूर्खता प्रगट होतीहै कि तिब्बत जिसे त्रिविष्टप अर्थात् स्वर्गकी सदृश कहिये उससे आर्यावर्तको श्रेष्ठ और निवासके योग्य जाना और जब कि आर्य्यावर्त सब भूगोलमें श्रेष्ठहै तौ परमेश्वर प्रथम सृष्टिकी उत्पत्ति इसी देशमें करता क्योंकि वे पहले उत्पन्न हुए पुरुष धर्मात्मा थे और यह एक कैसे आश्चर्यकी बातहै कि, उत्पत्ति होतेही लडाई हुई और विजयी आर्यही हारे और आर्योद्देश्यरत्नमाला पृ० ११ में लिखाहै कि आर्य उसको कहतेहैं जो श्रेष्ठस्वभाव धर्मात्मा परोपकारी सत्यविद्यादिगुणयुक्त और आर्य्यावर्त देशमें सब दिनसे रहनेवाले हों यह पुस्तकभी स्वामीजीकी ही बनाई है इससे दो बातें प्रगट होती हैं एक तौ स्वामीजीको अपने लेखका स्मरण नरहा दूसरे यह कि, सृष्टिकी आदिमें दयानंदसरस्वतीके जितने लोग हुए हैं उनमेंसे कोई आर्य न था तिब्बती थे क्योंकि वे सब दिनसे आर्यावर्तमें नहीं रहते थे किन्तु तिब्बतके रहनेवाले थे इस देशको उत्तम जान यहां आ वसे सिद्धान्त यह है कि जो कुछ वेदशास्त्रने आर्य्यावर्तकी महिमा लिखीहै दयानंदजीने उसपर धूल डालदी, यह कैसे साबित हुआ कि त्रिविष्टपका नाम तिब्बत है, जब त्रिविष्टपसे तिब्बतकी निस्वत ठीकहोगी तौ ईरानसे आर्य यह यूरूपवासियोंका कथन क्यों प्रमाण योग्य नहीं और यह कौनसे ग्रंथमें लिखा है कि तिब्बतमें * उत्पत्ति हुई पहले सत्यार्थप्रकाशपरभी धूल डालदी जो लिखाथा कि आर्य सदासे यहांके रहनेवाले थे और यदि आर्योंके आनेसे इस देशका नाम आर्यावर्त पड़गया तो यह जिस देशमें रहते थे उसका त्रिविष्टप तिब्बत क्यों उसका नामभी आर्य्यावर्तही होता और यदि तिब्बतसे वे लोग यहां आते तौ तिब्बती कहे जाते जैसे कि कहीं कोई किसी देशको जाता है तौ उसको उस देशके नामसे पुकारते हैं जैसा गुजराती काबुली युरूपियन जिस द्वीपमें युरूपियन वा और कोई जाति जाकर वास करती है तौ वोह उनकी जातिके नामवाला नहीं होता किन्तु

* भा० प्र० मेंभी तिब्बतमें रहनेका कोई प्रमाण नहीं लिखा लिखते क्या।

उसके नामका उनमें सम्बन्ध आजाता है फिर जब इस देशको कोई नहीं जानता था, तौ (तुम्हारे वजुर्ग तिब्बतियोंने कैसे जाना) क्या कोई रेलका मार्ग बनाथा या ज्योतिष पढे थे फलितको तुम मानते नहीं मार्ग महा भयंकर है अनेक प्रकारकी दुर्दशा हिमालय महापर्वत बीचमें पडता है 'कदाचित् आप कंधेपर चढाकर लाये होंगे' इससे यह बात कभी चित्तमें नहीं लानी चाहिये कि, आर्यलोग कहींसे आये हों किन्तु सदांसे इसी देशके रहनेवाले हैं जो कि, प्राचीन कालसे आर्यलोग इस देशमें रहते चले आते हैं इसीसे इस देशको आर्य्यावर्त कहते हैं जैसा कि मनुजीने लिखा है.॥

आसमुद्रात्तुवैपूर्वादासमुद्रात्तुपश्चिमात् ॥
तयोरेवान्तरंगिर्योरार्य्यावर्तंविदुर्बुधाः॥ अ० २ श्लो०२२

बंगालके समुद्रसे लेके अरबदेशके समुद्रतक हिमालय और विंध्याचलके बीचमें जितना देश है उसको आर्य्यावर्त कहते हैं आर्य्योंका यही देश (आर्य्याणामावर्त आर्य्यावर्तः)अर्थात् जन्मभूमि थी आर्य्यावर्तके कुछ भागका नाम ब्रह्मावर्त है:-

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदंतरम् ॥
तं देवनिर्मितंदेशंब्रह्मावर्तंप्रचक्षते ॥ मनु० अ० २ श्लो० १७

सरस्वती नदी जोकि गुजरात और पंजाब देशके पश्चिमभागमें बहती है और दृषद्वती नदी जोकि नयपालके पूर्वभागमें वहतीहै इन दोनों पवित्र नदियोंके मध्यमें जितना देशहै वोह आर्य्यावर्तकी अपेक्षासे पुण्य देश है और देवताओंका निर्मित है उसको ब्रह्मावर्त कहते हैं सबसे प्रथम ब्रह्माजीने यही देश रचा और इनके द्वारा मनुष्यकी उत्पत्ति यहांही हुई इसी कारण इस देशका नाम ब्रह्मावर्त रक्खा गया इसके पश्चात् दूसरे देश वसे, सब देशके मनुष्योंने इस देशसे विद्या सीखी जैसा कि मनुजीने लिखा है:-

एतद्देशप्रसूतस्यसकाशादग्रजन्मनः ॥
स्वंस्वंचरित्रंशिक्षेरन्पृथिव्यांसर्वमानवाः ॥ मनु० २० अ०२

इस देशके उत्पन्न हुए विद्वानोंसे सारी पृथ्वीके मनुष्य अपने चरित्र (आचार)और विद्याओंको सीखैं यहींके लोगोंसे सबने विद्याएं सीखी यहां यह सिद्ध हुआ कि,ब्रह्मावर्तही सबकी सृष्टिका मूलस्थान है और यहींसे

और २ देशोंमें विद्या गई यदि आर्य्य लोग तिब्बती होते तौ तिब्बतसे सब विद्या सीखी जाती, क्योंकि आपके कथनानुकूल इस देशमें कोई रहताही नहीं था तौ आर्य्य लोग विद्या अपने साथही तिब्बतसे लाये थे, तौ तिब्बतही सब विद्याओंका स्थान होता इससे यही सिद्ध है कि, आर्य्य इस देशमें सदाके हैं और विद्याभी सदासे है और न कभी हिमालयवासियोंने आर्योंपर चढाई करी ॥

स० पृ० २२९ पं० २६

*आर्य्यवाचोम्लेच्छवाचः सर्वेतेदस्यवःस्मृताः मनु० १०।४९

म्लेच्छदेशस्त्वतःपरः २ अ० २ श्लो० २३ मनु०

जो आर्य्यावर्तदेशसे भिन्न देश हैं वे दस्युदेश और म्लेच्छदेश कहलाते हैं ॥

समीक्षा-क्या स्वामीजीने गपोड़ा लिखा है जो ऊपरके आधे श्लोकका अर्थ गडापही गये हैं सुनिये यह श्लोक मनुजीने यों लिखा है ॥ २४०। १३

मुखबाहूरुपज्जानांयालोकेजातयोबहिः ॥

म्लेच्छवाचश्चार्यवाचःसर्वेतेदस्यवः स्मृताः ॥ मनु० १०।४९

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इनकी क्रियालोपसे जो अधमजाति उत्पन्न हुई चाहें वे म्लेच्छभाषा करके संयुक्त हों चाहें आर्यभाषा बोलते हों वे सब दस्यु हैं इसका अर्थ यह नहीं कि, इससे भिन्न देश दस्युदेश कहाता है इसका यह भाव है कि, आर्य्यावर्त देशमेंभी कर्महीन क्रियाभ्रष्ट लोगोंका नाम दस्यु प्रचलित था और यदि आधाही पद प्रमाण मानों तौ जितने अपनेको आर्य्य कहते हैं उन सबकी दस्युसंज्ञा हो जायगी दूसरे श्लोकका अर्थ है इससे आगे म्लेच्छदेशहै देवासुरसंग्रामभी स्वामीजीने मिथ्याही कल्पना कियाहै यह संग्राम वास्तवमें राजा इन्द्रसे और दैत्योंसे जो उसका सिंहासन लेनेकी इच्छा करते थे अनेकवार हुआ है जो बहुत प्रसिद्ध है और आर्य्यस्वामिवैश्ययोः३।१।१०३इस अष्टाध्यायी सूत्रके अनुसार वैश्य तो आर्य्य होताहै आर्य नहीं तो वैश्यभी दस्यु हुए कारण कि आपके मतसे जो आर्य नहो वह दस्यु ॥

स० पृ० २२३ पं० ७

---

* पांचवीवारकीमें म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः शुद्धपाठहै ।

बहुतमनुष्यसृष्टिकीआदिमेंबनाये २३७ । २० [अनेक]

समीक्षा-यह स्वामीजीका सृष्टिक्रम लोप होगया पूर्व तौ कहाहै वोह सृष्टिक्रमको बदल नहीं सक्ता अब उसने बहुत मनुष्य कैसे उत्पन्न करदिये स्वयं विना स्त्रीपुरुष संयोगके मनुष्य उत्पन्न नहीं होसक्ता फिर परमेश्वरने स्त्री कहाँसे प्राप्त करी स्त्रियोंकी उत्पत्ति सत्यार्थप्रकाशमें इस स्थलपर लिखी नहीं, जो कहो कि, उसने प्रयोजन पडनेसे ऐसा किया था तो हमारा यह कहना फिर सिद्धही है कि, आवश्यकता होती है तौ वोह तुरत अवतार धारण करलेता है और आवश्यकतासे सब कुछ करसक्ता है परन्तु स्वामीजीका सृष्टिक्रम अब दूरतक दृष्टि नहीं पडैगा और आर्य्योंमेंका तिब्बतमें पहला राजा कौन था यहभी तौ कुछ लिखाहोता ॥

स० प्र० पृ० २२६ पं० ९

ब्रह्मका पुत्र विराट् विराट्का मनु मनुके मरीच्यादि दश इनके स्वयंभुवादि सात राजा और उनके संतान इक्ष्वाकु आदि राजा जो आर्य्यावर्तके प्रथम राजा हुए जिन्होंने यह आर्य्यावर्त बसाया है ॥ २४० । २७

समीक्षा-स्वामीजीके लेखसे विदित होता है कि, इक्ष्वाकु राजासे पहले सब तिब्बती थे परन्तु मनुस्मृति जो मनुजीने रची है उन्होंने मनुका राज्यभी इसी देशमें होना लिखा है जब कि, ब्रह्मावर्त देश देवनिर्मित- और ब्रह्माजीका भूमिनिर्माण होनेसे आदि निवास है तौ बेटे पोतेभी सब यहीं हुए और स्वामीजी तौ अग्निवायुआदिसे परंपरा लिखते ब्रह्मा- से क्यों लिखी क्योंकि महात्माजीने तौ प्रथम अग्निवायुकी उत्पत्ति लिखी है और प्रथम एक जातिभी नहीं थी चारोंवर्ण सदासे हैं यथाहि (ब्राह्मणोस्य मुखमासीदिति यजुर्वेदे) और मनुजी लिखते हैं ॥

लोकानांतुविवृद्ध्यर्थमुखबाहूरुपादतः ।
ब्राह्मणंक्षत्रियंवैश्यंशूद्रंचनिरवर्तयत ॥ मनु० १ । ३१

लोककी वृद्धिके अर्थ मुख बाहू जंघा चरणसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रको उत्पन्न किया सृष्टि कर्मानुसार है तौ चारोंवर्ण कर्मानुसारही उत्पन्न हुए सबके एकसे कर्म नहीं इसकारण चारों वर्ण उत्पन्न हुए और शेष नाम परमात्माकाही है वही पृथ्वीको धारण करते हैं इससे शेषजी- का पृथ्वीधारणकरना विख्यात है वोही पृथ्वीको धारण करते हैं अब आगे और स्वामीजीकी विरुद्धता देखियेः-

उक्षादाधारपृथिवीउतद्याम् ऋ० स० पृ०२२७।२६

स० पृ० २२८ पं० १ से उक्षा वर्षाद्वारा भूगोलके सेचन करनेसे सूर्यका नाम है उसने अपने आकर्षणसे पृथ्वीको धारण कियाहै और पं० २१ में॥

सदाधारपृथिवीमुतद्याम् * १

यह यजुर्वेदका वचन है जो पृथिव्यादि प्रकाशरहित लोकलोकान्तर पदार्थ तथा सूर्यादि प्रकाशसहित लोक और पदार्थोंका रचन धारण परमात्मा कराताहै जो सबमें व्यापक हो रहाहै वोह सब जगत्का कर्ता और धारण करनेवाला है॥

समीक्षा–चार पांच पंक्तियोंकेही अंतरमें स्वामीजीकी स्मरणशक्ति लोप होगई वहां लिखा कि, सूर्य धारण करता है यहां कहा ईश्वर. कौनसा वाक्य आपका सत्य माना जावै विनाही पढे अंग्रेजी विद्याका इतना असर है कि, सारी यूरूपियनोंकी बातें ग्रहण करीं हैं किसी इंग्लैण्डवासी अंगरेजने बहुत सत्य कहा है कि, यदि दयानंदसरस्वती अंग्रेजी पढे होते तौ जैसा वेदको ईश्वर वाक्य कहते हैं औरभी जो मत-विषयक बातें कहते हैं उन सबको तिलांजली देदेते यह बात बहुतही सत्य कहीथी अनुमानसेही विदित होता है॥

स० पृ० २२८ पं० २९ पृथिव्यादि लोक घूमते हैं वा स्थिर (उत्तर) घूमते हैं (प्रश्न) कितनेही लोग कहते हैं कि, सूर्य घूमता है पृथिवी नहीं घूमती दूसरे कहते हैं सूर्य नहीं घूमता इसमें कौन सत्य वाक्य माना जाय (उत्तर) यह दोनोंही आधे झूंठे हैं क्योंकि, वेदमें लिखा है:–

आयंगौःपृश्निरक्रमीदसदन्मातरंपुरः॥पितरञ्चप्रयन्त्स्वः अ. ३मं. ६

अर्थात् यह भूगोल जलके साहित सूर्यके चारों ओर घूमता जाता है इसलिये भूमि घूमा करती है॥ २४३।२०

स० पृ० २२९ पं०३

आकृष्णेनरजसावर्त्तमानोनिवेशयन्नमृतंमर्त्यंच। हिरण्ययेनसवितारथेनादेवोयातिभुवनानिपश्यन्। यजु० अ० ३३ मं० ४३

---

* भा० प्र० कर्त्ताजी इसश्लोकमें सदांसे जातिबताई तिब्बती सिद्ध नहीं कियेहैं तनक आंखको काममें लाओ।

१ सदाधारपृथिवीयामुतेमाम् यजु०१३।४ पांचवी बारमें पाठ शुद्ध कियाहै।

जो सविता अर्थात् सूर्य वर्षादिका कर्ता प्रकाशस्वरूप तेजोमय रमणीय स्वरूपके साथ वर्तमान सब प्राणिअप्राणियोंमें अमृतस्वरूप वृष्टि वा किरणद्वारा अमृतका प्रवेश करा और सब मूर्तिमान द्रव्योंको दिखलाता हुआ सब लोकोंके साथ आकर्षण गुणसे सहवर्तमान अपनी परिधिसे घूमता रहता है किन्तु किसी लोकके चारों ओर नहीं घूमता वैसेही एक२ब्रह्माण्डमें एक सूर्य प्रकाशक और दूसरे सब लोकलोकान्तर प्रकाश्य हैं पुनः पं० २५ जैसे राईके सामने पहाड घूमे तौ बहुत देर लगती है और राईके घूमनेसे बहुत समय नहीं लगता है वैसेही पृथ्वीके घूमनेसे दिनरात होता है सूर्यके घूमनेसे नहीं और जो सूर्यको स्थिर कहते हैं वे भी ज्योतिर्विद्यावित् नहीं क्योंकि यदि सूर्य न घूमता होता तो एक स्थानसे दूसरी राशिको प्राप्त न होता और गुरुपदार्थ विना घूमें आकाशमें नियमस्थानपर कभी नहीं रहसक्ता ॥ २४४ । १

समीक्षा-स्वामीजीपर विनाही अंग्रेजी पढे बहुत कुछ अंग्रेजी विद्याका असर है सोचनेकी बातहै यदि पृथ्वी घूमती होती तौ जिस प्रकार ग्रह बारह राशियोंमें घूमते हैं उसी प्रकार पृथ्वीभी राशियोंमें घूमती और इसकी ग्रहमें संख्याभी होती और यदि लोक घूमनेहीसे स्थिर रहते तौ ध्रुवका तारा नहीं घूमता इस बातको सभी मानते हैं और इसीकारण उसका नाम ध्रुव है कि वोह घूमता नहीं तौ ध्रुव ताराभी गिर पडना चाहिये तथा और भी तारागण हैं जो नहीं घूमते वे भी गिर पडैं तौ यह आकाश शून्य होजाय इसकारण यह कहना ठीक नहीं कि, जो नहीं घूमते हैं वे गिर पडैं और जो पृथ्वी सूर्यके चारों ओर घूमती है तौ गरमियोंके दिनोंमें सूर्यके निकट होनेसे यत्किंचित् सूर्य बडा दृष्टि आना चाहिये ऐसा अंग्रेजीवाले मान्तेहैं सो ऐसा भी नहीं होता और राईका जो दृष्टान्त दिया है वोह भी अशुद्ध है क्योंकि आपने लिखा है कि, राईको पहाड़के सामने घूमते देर लगती है यह कहनाही हास्ययुक्त है आपने सूर्यको पृथ्वीसे लाखगुणा बड़ा कहा और करोडों कोस दूर माना है देर तो जब लगै जब राईके बराबर घूमना पड़े और राईका लाखगुना पहाड नहीं हो सकता यदि आठ राईको एक चावलकी बराबरही मानले तो तोलाभरराईमें ६१४४ दाने हुए तो १७ ही तोलेमें १०४४४८ लाखसे भी अधिक दाने होजायंगे जिनका बोझ पाव भरकाभी नहीं हो सक्ता इस कारण राईपर्वतका दृष्टान्त सम्पूर्णतः अशुद्ध है फिर एक पृथिवीही तो नहीं अनेक ब्रह्माण्डोंमें यही सूर्य

प्रकाश करता और दूर होनेसे क्या परमात्माके प्रतापसे अधिक वेगसे गमन करता है क्यों कि, (सूर्यएकाकीचरति) यजु० २३ । ७ और (हिरण्ययेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्) यजु० ३३ ॥ ७९ अर्थात् " सूर्य असहाय चलता है " सुवर्णके रथमें सूर्य देवलोकोंको देखते जाते हैं यह यजुर्वेदके वाक्य है जिससे सूर्यका लोकोंके चारों ओर घूमना सिद्ध होता है और जो पृथ्वी चलती होती तौ एक मिनटमें ५ $\frac{1}{2}$ मील ७ $\frac{1}{3}$ गज पृथ्वी घूमती है पृथ्वीका व्यास अंगरेजीमें ७९२६ मीलका लिखा है, स्वामीजीने लिखा तौ नही पर उन्ही कैसा माना होगा और जो अधिक मानेंगे तौ अधिकही चाल होगी इस हिसाबसे जब घंटेभरमें ३३० $\frac{1}{4}$ मील पृथ्वी घूमती है तौ जो कबूतर सबेरेको उडते हैं और दुपहरको आते हैं तौ वे घरपर न आने चाहिये क्योंकि छः घंटे भरमें पृथ्वी १९८१ $\frac{1}{5}$ मील निकल जाती है कबूतर इतना चल नहीं सकता यदि कहो कि, पृथ्वीकी कशिश उसे खैंच ले जाती है तौ ऐसी बडी पृथ्वीके घूमनेसे हवाका बहुत बडा धक्का लगना चाहिये और उडनेवाले अस्ताव्यस्त हो जाने चाहिये और सदा आंधीही चला करनी चाहिये जैसेकि जब रेल वेगसे चलती है तौ उसके निकट कितना हवाका वेग होता है और जहां तहां निकटके तृणादि अस्ताव्यस्त हो जाते हैं इसी प्रकार पृथ्वीके चलनेसे उडनेहारे जीवोंकी गति होनी चाहिये किन्तु जीव सर्व निर्विघ्न उडते हैं फिर पृथ्वीके चलनेके वायुके रुखको जीव चलते परन्तु सो भी नहीं इच्छाचारी उडते हैं काशिश होती तौ खींचते मालूम पडते सो गुब्बारे पै चढनेवालोंको अनुभव होना चाहिये सोभी नहीं होता और पृथ्वीसे तिगुना जल है वोह बिखर जाय क्योंकि, आकर्षण शक्ति अपनेसे न्यूनको आकर्षण करसक्ती है वर्तीको नहीं यदि कहो कि, पुरुएमें जल भरके फिरानेसे वोह नहीं गिरैगा तद्वत् पृथ्वी मानो सो भी नहीं हो सक्ता क्योंकि पुरुएके भीतर पानी भराहोता है मुख छोटा होता है पृथ्वीके भीतर पानी नहीं ऊपर है इससे दृष्टान्त ठीक नही विना आडके वर्तनमें पानी नही ठहरसक्ता, यदि पृथ्वीमें आकर्षणशक्ति समवाय संबंधसे रहती है तौ एक मिट्टीका गोला बनाकर उसमें तीन गुने गड्ढे करके पानी भरै यदि पानी ठहर जाय तौ पृथ्वीमेंभी ठहर जायगा सो ऐसा नहीं होता इस प्रकारसे पृथ्वीका घूमना सिद्ध नहीं होता अब वेदमंत्रोंसे पृथ्वीका स्थिरहोना सिद्ध करते हैं औरको स्वामीजी आधे झूंठे बताते

हैं परन्तु आप यहां सारेही झूंठे हैं मंत्रमें गौ शब्द देखकर पृथ्वीका चलना सिद्ध कर दिया निरुक्तिमें इस शब्दका इस प्रकार व्याख्यान किया है (गौरिति पृथिव्या नामधेयम् यद्दूरंगता भवति यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति गातेर्वौकारो नामकरणः) जो अन्तमें प्राणियोंसे दूरहोतीहै जिस कारणसे कि इसपर प्राणी चलते हैं इससे पृथ्वीका नाम गौ है वा गीयते स्तूयते असाविति यह स्तुति कीजाती है इससे गौ कहलाती है यथा-गौर्जगार यद्ध पृच्छान् अ० १०॥ ३१ ॥ १० निघंटु निरुक्ति २ । ७ में पृथ्वीका नाम निर्ऋतिः लिखा है [निर्ऋतिः निरमणात्] 'निश्चलत्वेनावस्थानात्' जिसमें गति नहीं होती अर्थात् जो स्थिर हो उसे निर्ऋति कहते हैं जैसे ऋग्वेदमें (बहुप्रजानिर्ऋतिमाविवेश १ । १६४ । ३२) उदाहरण है जो पृथ्वी चलती होती तौ क्यों निर्ऋति नाम होता क्योंकि जिसमें गति नहीं वोह निर्ऋति है स्वामीजीने आयंगौः इसको तीसरे अध्यायका ९ मंत्र लिखा है परन्तु यह छठा मंत्र है नवमा नहीं ❋ इस मंत्रका सर्पराज्ञी कद्रुऋषिः गायत्रीच्छन्दः अग्निर्देवता है यहभी जान रखनेकी बात है कि जिस मंत्रका जो देवता होता है उस मंत्रमें उसीका गुण कथन होता है जब इस मंत्रका अग्निर्देवता है तौ अग्निकेही गुण इसमें कथन किये हैं यहां गौ नाम अग्निका है यथा हि-

(आयम्) इस (गौः) यज्ञसिद्धिके अर्थ यजमानके घर आने जानेवाले (पृश्नि) श्वेतरक्त आदि बहुप्रकारकी ज्वालाओंसे युक्त अग्निने (आ) सब ओरसे आहवनीय गार्हपत्य दक्षिणाग्निके स्थानोंमें (अक्रमीत्) अतिक्रमण किया (पुरः) पूर्वदिशामें (मातरम्) पृथ्वीको (असदत्) प्राप्तकिया (च) और (स्वः) सूर्यरूप होकर (प्रयन्) स्वर्गमें चलते अग्निने (पितरम्) स्वर्गलोकको (असदत्) प्राप्त किया ॥ ६ ॥

सायनाचार्यने "आयंगौः" सर्पराज्ञ्यात्मदैवतंसौर्यं वेति इस अनुक्रमणिकाके अनुसार सूर्यपरत्व व्याख्यान कियाहै यथा-गौर्गमनशीलः प्राप्तवर्णः प्राप्ततेजाः अयंसूर्यः अक्रमीत् आक्रान्तवानित्यादि गमनशील तेजसम्पन्न यह सूर्य उदयाचलसे गमनकरताहै इत्यादि इसमेंभी भूमिका गमन नहीं है.

* पांचवी बारमें शुद्ध है ।

इस मंत्रमें कहीं यह बात नहीं निकलती कि, पृथ्वी चलती है अब दूसरें मंत्रका अर्थ सुनियेः–

(सविता) सूर्य (देवः) देवता (हिरण्ययेन) ज्योतिर्मय (रथेन) निज मंडलरूप रथके द्वारा (आवर्तमानः) मेरुपर्वतको परिक्रमण करता (कृष्णेन) अंधकार और (रजसा) ज्योतिसे (अमृतम्) देवताआदि (च) और (मर्त्यम्) मनुष्यादिको (निवेशयन्) अपने व्यापारमें स्थापन करता (भुवनानि) भुवनोंको (पश्यन्) देखता अर्थात् साधु असाधु कर्मोंको विचरता (आयाति) गति करता है और देखिये यजुर्वेदमें–

येनद्यौरुग्रापृथिवीचंदृढायेनस्वस्तभितं येननाकःयोअन्तरिं
क्षेरजंसोविमानःकस्मैंदेवायंहविषाविधेम–यजु०अ०३२मं०६

पदार्थः–(येन) जिसने (द्यौः) द्युलोक (उग्रा) जलपूर्ण अर्थात् वृष्टि दायक कीहै (च) और (पृथिवी) भूमि (दृढा) निश्चल वृष्टिग्रहण और अन्ननिष्पादनमें दृढ कीहै (येन) जिसने (स्वः) स्वर्लोक जहां आदित्यमंडल तपताहै सो और (येन) जिसने (नाकः) दुःख रहित स्वर्ग लोक (स्तभितम्) स्तंभित कियाहै (यः) जो (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्षमें (रजसः) वृष्टिरूप जलका (विमानः) निर्माताहै (कस्मै-देवाय) उस प्रजापति देवताके निमित्त (हविषम आविधेम) हविदेतेहैं ।

सिद्धान्तशिरोमणिगोलाध्याय

यथोष्णतार्कानलयोश्वशीतताविधौद्रुतिःकेकठिनत्वमश्मनि ।
मरुच्चलो भूरचलास्वभावंतो यतो विचित्रा वत वस्तुशक्तयः ९

अर्थ–जैसे सूर्य और अग्निमें उष्णता चन्द्रमामें शीतलता जलमें गति पाषाणमें स्वभावसे कठिनताहै ऐसेही स्वभावसे पृथिवी अचल है वस्तु-ओंकी शक्ति विचित्रहै ।

भूमेःपिण्डःशशाङ्कज्ञकविरविकुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षा
वृत्तैर्वृत्तो व्रतःसन्मृदनिलसलिलव्योमतेजोमयोयम् ॥
नान्याधारःस्वशक्त्यैव वियति नियतंतिष्ठतीहास्यपृष्ठं
निष्ठंविश्वंच शश्वत्सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समन्तात् ॥

भूमि पिण्ड चन्द्र बुध शुक्र रवि मंगल बृहस्पति शनि और नक्षत्रोंकी कक्षासे आवृतहै मिट्टी अग्नि जल वायु आकाश तेजसे गठित है यह विना आधारके अपनी परमेश्वरकी ही शक्ति केवलसे सदा शून्यमें स्थित (अचल) है असुर मनुष्य देव दैत्य इसपर निवासकरतेहैं इसप्रकार विश्व इसपर निवास करताहै ष्ठागतिनिवृत्तौ धातुसे तिष्ठति रूप बन्ताहै जिसके अर्थ अचलकेहैं औरभी सिद्धान्तशिरोमणिमें पृथिवी नघूमनेकी कितनीही युक्तियांहैं देखने वाले देखसकतेहैं अस्तु पृथिवी चल और अचल मान्नेसे हमारे फलमें कोई हानि नहीं आती दोनों प्रकारसे दिन रात आदि होतेथे फिर वेद जो कहै सोई सत्यहै वेदका सिद्धान्त लिख-दिया इसविषयमें हमको विशेष विवाद इष्टनहीं है ॥

इतिश्रीदयानन्दतिमिरभास्करे मिश्रज्वालाप्रसादविरचिते सत्यार्थप्रकाशान्तर्गताष्टम समुल्लासस्य खंडनं समाप्तम् ॥ २२ । ८ ॥ ९०

श्रीगणेशायनमः ।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतनवमसमुल्लासस्य खंडनं प्रारभ्यते ।

मुक्तिप्रकरणम् ।

स्वामीजीने इस समुल्लासमें मुक्तिसे जीवका लौटना लिखा है प्रथम इसके कि, मुक्तिके विषयमें कुछ लिखें यहभी दिखादेना अवश्य है कि, स्वामीजीने भाष्यभूमिका पृ० १११, और ११२ आर्य्याभिविनय पृ० १६, ४२, ४९ वेदान्तध्वान्तनिवारण पृ० १० । ११ वेदविरुद्धमत-खंडन पृ० १४ सत्यधर्मविचार पृ० २९ में यह लिखा है कि मुक्ति कहते हैं छूट जानेको अर्थात् जितने दुःख हैं उनसे छूटकर एक सच्चिदानंद परमेश्वरको प्राप्त होकर सदा आनन्दमें रहना और फिर जन्म मरणादि दुःखसागरमें नहीं गिरना इसीका नाम मुक्ति है फिर न मालूम कौनसे कारणसे मुक्तिसे लौटना मानलिया सो वही विषय लिखा जाता है स० पृ० २३३ पं० ४ (प्रश्न) बंधमोक्ष स्वभावसे होता है वा निमित्तसे (उत्तर) निमित्तसे, क्योंकि जो स्वभावसे होता तो बंधमोक्षकी निवृत्ति कभी नहीं होती ॥ २४८ ॥ ९

समीक्षा–स्वामीजीको घरका मार्ग भी विस्मृत होगया जब कि, बंध मोक्ष निमित्तकारणसे होता है तो जब निमित्त मोक्ष हुई तो फिर

कौनसे निमित्तसे उसे जन्म लेना पडैगा इससे तौ यही सिद्ध होता है कि उसका जन्म नहीं होता ॥

स० पृ० २३३ पं० ६

ननिरोधोनचोत्पत्तिर्नबद्धोनचसाधकः
नमुमुक्षुर्नवैमुक्तिरित्येषापरमार्थता गौड्या० कारि० २ प्र० का० ३२

यह माण्डूक्यपर कारिका है पं० ११ में इसका अर्थ किया है यह नवीन वेदान्तियोंका कहना सत्य नही क्योंकि जीवस्वरूप अल्प होनेसे आवरणमें आता शरीरके साथ प्रगट होनेरूप जन्मलेता पापरूप कर्मोंके फलभोगरूप बंधनमें फसता उसके छुडानेका साधन करता दुःखसे छूटनेकी इच्छा करता है दुःखसे छूटकर परमानंद परमेश्वरकी प्राप्ति होकर मुक्ति भी भोगता है ॥

समीक्षा–स्वामीजीके इस वाक्यको तौ देखिये आप तौ प्राचीन वेदान्ती बनते हैं और दूसरोंको नवीन वेदान्ती कहते हैं और सरासर उल्टीही धांगते हैं यह कारिकाही असत्य बताते हैं इसका आशय यह नहीं जैसा कि, स्वामीजीने कथन किया है अर्थ तौ इसका यह है कि, जब अपने स्वरूपका ज्ञान होजाता है तब निरोध उत्पत्ति बंधसाधक मुमुक्षु मुक्ति कुछ शेष नहीं रहता है केवल स्वयंप्रकाश लक्षित होने लगता है उपरोक्त बातोंमेंसे कुछभी नहीं रहता इसीका नाम परमार्थता है यथा–

नतुतद्द्वितीयमस्तिततोन्यद्विभक्तंयत्पश्येत् बृह० उप० ६ ब्रा० २ कं० २३ ।

अत्रपिताऽपिताभवतिमाताऽमातालोकाअलोकादेवाअदेवावेदाअवेदाः कं० २२

अथयत्र ॥ देवइवराजेवाहमेवेद ँ सर्वोस्मीतिमन्यतेसोऽस्यपरमोलोकः बृ० उ० कं० २०

मोक्षावस्थामें जब अपने स्वरूपका ज्ञान होजाता है तौ वहां कोई दूसरा नहीं है जिसको अपनेसे पृथक् देखे स्वयंप्रकाश एक वही है ॥

मुक्तिमें पिता अपिता माता अमाता लोक अलोक देव अदेव वेद अवेद होते हैं अर्थात उसके सिवाय दूसरा हैही नहीं ॥

१ पांचवीं वारमें नवैमुक्त इत्येषा० पाठहै ।

जब यह राजाकी नाईं यह जानता है यह सब कुछ मैं-ही हूं सोई इसका परमलोक अर्थात् मुक्तिहै जब कि सत्यएक ब्रह्म तद्व्यतिरिक्त सब अनित्यहै जब ऐसा ज्ञान हुआ तो बंधयुक्त अविद्याज्ञान कुछ नहीं रहता इससे ब्रह्ममें कुछ दोष नहीं ॥

स० पृ० २३६ पं० १८ मुक्तिमें जीवका लय होता है वा विद्यमान रहता है ॥ (उत्तर) विद्यमान रहताहै (प्रश्न) कहां रहताहै (उत्तर) ब्रह्ममें (प्रश्न) ब्रह्म कहां है और वोह मुक्तजीव एक ठिकाने रहता है वा स्वेच्छाचारी होकर सर्वत्र विचरता है (उत्तर) जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसीमें मुक्तजीव अव्याहतगति अर्थात् उसको कहीं रुकावट नहीं विज्ञान आनन्द पूर्वक स्वतंत्र विचरताहै(प्रश्न)मुक्तजीवका स्थूल शरीर होता है या नहीं (उत्तर) नहीं रहता (प्रश्न) फिर वोह सुख और आनंदभोग कैसे करता है (उत्तर) उसके सत्यसंकल्पादि स्वाभाविक गुणसामर्थ्य सब रहते हैं भौतिक संग नहीं रहता जैसे-

शृण्वञ्छ्रोत्रंभवतिस्पर्शयन्त्वग्भवतिपश्यंश्चक्षुर्भवतिरसयन् रसनाभवतिजिघ्रन्घ्राणंभवतिमन्वानोमनोभवतिबोधयन्बुद्धिर्भवतिचेतयँश्चित्तंभवत्यहंकुर्वाणोऽहंकारोभवति-शतपथका० १४ *

मोक्षमें भौतिक शरीर वा इन्द्रियोंके गोलक जीवात्माके साधन नहीं रहते किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं जब सुनना चाहताहै तब श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा; देखनेके संकल्प करनेके समयसे चक्षु, स्वादके अर्थ रसना, गंधके लिये घ्राण, संकल्प विकल्प निश्चय करनेके किये बुद्धि, स्मरण करनेके लिये चित्त और अहंकारके अर्थ अहंकाररूप अपनी शक्तिसे जीवात्मा मुक्तिमें हो जाताहै और संकल्पमात्र शरीर होजाता है जैसे शरीरके आधार रहकर इन्द्रियोंके गोलकद्वारा जीव स्वकार्य करताहै वैसे अपनी शक्तिसे मुक्तिमें सब आनंद भोग लेताहै ॥

समीक्षा-यह स्वामीजीका मिथ्या लेखहै इसमें सारार्थ केवल इतना है कि, मुक्तिमें स्थूलशरीर रहित होता है और अपनी शक्तिसे श्रोत्रादिरूप होकर आनन्दको भोगताहै और उसको भौतिक पदार्थका संग

* पांचवीं वारके सत्यार्थप्रकाशतक इस श्रुतिका पता नलगा न भास्कर प्रकाशके कर्ताको पता लगा यह श्रुति चौदहवें काण्डमें नहीं है दयानंदी बतावें कहां है।

नहीं रहता परन्तु जो श्रुतिप्रमाण लिखी है सो मोक्षप्रकरणकी नहीं है और इस अर्थका साधकभी नहीं तथाहि—

सएषइहप्रविष्टआनखाग्रेभ्योयथाक्षुरःक्षुरधानेऽवहितः स्याद्विश्वंभरोवाविश्वंभरकुलायेतंनपश्यंत्यकृत्स्नोहिस प्राणन्नेवप्राणोनामभवतिवदन्वाक्पश्यंश्चक्षुःशृण्वञ्छ्रोत्रंमन्वानोमनस्तान्यस्यैतानिकर्मनामान्येवसयोऽत एकैकमुपास्तेनसवेदाकृत्स्नोह्येषोऽतएकैकेनभवत्यात्मेत्येवोपासीतात्रह्येतेसर्वएकंभवन्ति—

बृह० उप० अ० ३ ब्रा०४कं०७

इसी श्रुतिके आशयकी स्वामीजीने श्रुति लिखी है परन्तु स्वामीजीके अर्थकी सिद्धि नहीं होती, इस पूर्ण श्रुतिका अर्थ यह है (सो यह आत्मा पूर्व जो अव्यक्तका अधिष्ठानरूपसे निर्णीत है वोह अव्यक्तकार्य शरीरमें नखाग्रपर्यन्त प्रविष्ट हुआ और प्रवेशभी विशेषरूपसे तथा सामान्यरूपसे हुआ) इसमें दृष्टान्त कहतेहैं (यथा क्षुरधानेक्षुरोऽवहितःस्यात्) जैसे नाईके बरतनमें क्षुर प्रविष्ट होता है अर्थात् जैसे नाईके शस्त्रोंके पात्र (किस्वत) में क्षुरा आदि एकदेशमें प्रविष्ट होते हैं वैसे ही परमात्मा प्राणादि विशेषस्थानमें प्रविष्ट होकर विदित हुआ अथवा "विश्वंभरकुलाये" काष्ठोंमें जैसे अग्नि प्रविष्ट होती है सामान्य रूपसे इसीप्रकार सामान्यरूपसे सब देहमें प्रविष्ट हुआ तिस स्पष्टप्रविष्टको भी नहीं जानते (हि) जिस कारणसे वोह आत्माका रूप (अकृत्स्न) सम्पूर्ण नहीं क्यों कि, वोह आत्मा प्राणउपाधिक होकर प्राणन क्रियाको करता हुआ प्राणनामवाला होता है और वदनक्रियाको वागुपाधिक होकर करता हुआ वाङ्नामवाला होता है और चक्षुउपाधिक होकर दर्शनक्रियाको करता हुआ चक्षुनामवाला इसी प्रकार मननक्रियाका कर्ता होकर मननामवाला होता है इसी प्रकार जब शाखान्तरीयपाठ होवै तो रसना घ्राण बुद्धि चित्त अहंकार नामवाला होता है परन्तु यह सब आत्माके कर्म नाम अर्थात् औपाधिक क्रियाजनित नाम हैं इस कारण जो एक एकको आत्मरूपसे उपासना करता है सो नहीं जानता क्यों कि इन एक एक एक करकै वोह आत्मा असंपूर्ण होताहै इसकारण सर्वको आत्मा इस रीतिसे ध्यान करै क्योंकि इस आत्मामें ही

सर्व प्राणादि नामवाले एकताको प्राप्त होते हैं अब स्वामीजीकी मिथ्या कल्पना देखनी चाहिये कि मोक्षमें शरीरभाव अथवा अपनी शक्तिसे मुक्त जीवको श्रोतृत्वादि रचना करना इस श्रुतिमें कहां सिद्ध होसक्ता है क्यों कि आगेकी श्रुति देखनेसे यह प्रसंगके विरुद्ध प्रतीत होतीहै ॥

यद्वैतन्नजिघ्रतिजिघ्रन्वैतन्नजिघ्रतिनहिघ्रातुर्घ्रातेर्विपरिलोपोवि-द्यतेऽविनाशित्वान्नतुतद्द्वितीयमस्तिततोन्यद्विभक्तंयज्जिघ्रेत् ॥ १ ॥ यद्वैतन्नरसयतेरसयन्वैतन्नरसयते नहिरसयितूरसयतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्नतुतद्द्वितीयमस्तिततोन्यद्विभक्तंयद्रसयेत् २ यद्वैतन्नवदतिवदन्वैतन्नवदति नहिवक्तुर्वक्तेर्विपारिलोपोविद्यतेऽ विनाशित्वान्नतुतद्द्वितीयमस्तियतोन्यद्विभक्तंयद्वदेत् ॥ ३ ॥ यद्वैतन्नशृणोतिशृण्वन्वैतन्नशृणोतिनहि श्रोतुःश्रुतेर्विपरिलोपोवि द्यतेऽविनाशित्वान्नतुतद्द्वितीयमस्तिततोन्याद्विभक्तंयच्छृणुयात् ४ यद्वैतन्नमनुतेमन्वानोवैतन्नमनुतेनहिमन्तुर्मतेर्विपारिलोपोवि-द्यतेऽविनाशित्वान्नतुतद्द्वितीयमास्तिततोन्यद्विभक्तंयन्मन्वीत ॥५॥ यद्वैतन्नस्पृशतिस्पृशन्वैतन्नस्पृशतिनहिस्प्रष्टुः स्पृष्टेर्विपरिलोपोवि द्यतेऽविनाशित्वान्नतुताद्द्वितीयमस्तिततोन्याद्विभक्तंयत्स्पृशेत् ६ ॥ यद्वैतन्नविजानातिविजानन्वैतन्नविजानातिनहिविज्ञातुर्विज्ञाते र्विपरिलोपोविद्यतेऽविनाशित्वान्नतुतद्द्वितीयमस्तियतोन्यद्वि-भक्तंयद्विजानीयात् ॥७॥ बृ० अ० ६ बा० ३ कं० २४से ३०तक

भावार्थ-मुक्तिको प्राप्तहोकर न वोह सूंघता है वो सूंघता हुआभी नहीं सूंघता सूंघनेवालेको सुगंधिसे बिपारिलोप "विभक्तता" नहीं है अविनाशी होनेसे जब वहां कोई दूसरा है ही नहीं तो क्या सूंघैगा अर्थात् उसके सिवाय दूसरा कुछ नहीं है १ इसी प्रकार रसन बोलना मनन छूना जानना इत्यादि मुक्तमें कुछ भी नहीं है जब कि, दूसरा कोई हैही नहीं तो उपरोक्त विचार कैसे कर सकता है, इत्यादि सातों श्रुतियोंका अर्थ इसी प्रकार सरल है इससे सिद्ध हुआ कि, मुक्तिमें ब्रह्म जीवकी एकता हो जाती है इच्छादिका करना बनही नहीं सक्ता इस-

कारण स्वामीजीकी उपरोक्त श्रुति इस विषयमें नहीं है मुक्तिमें जीव अपने शुद्ध चेतन स्वरूपको प्राप्त होता है ॥

स० पृ० २३७ पं० ८

उसकी शक्ति कैप्रकारकी और कितनी है (उत्तर) मुख्य एक प्रकारकी शक्तिहै परन्तु बल पराक्रम आकर्षण प्रेरण गति भीषण विवेचन क्रिया उत्साह स्मरण निश्चय इच्छा प्रेम द्वेष संयोग विभाग संयोजक विभाजक श्रवण स्पर्शन दर्शन स्वादन और गंधग्रहण तथा ज्ञान इन चौवीस प्रकार सामर्थ्यके ज्ञानयुक्त जीव है इससे मुक्तिमें भी आनन्दकी प्राप्तिभोग करता है ॥ २५२।२४

समीक्षा–इसमें यह विचार करना चाहिये कि क्रियाशब्दार्थ यदि गमन है तौ गतिका पृथक ग्रहण व्यर्थ है यदि धात्वर्थमात्रका नाम क्रिया है तो जैसे बल प्राणने इस धातुका अर्थ बल है वैसेही परिक्रमादि सर्वही किसी न किसी धातुके अर्थ हैं इनका पृथक् ग्रहणकरना असंगत है और यदि ज्ञानका ग्रहण किया था तब निश्चय स्मरण श्रवण स्पर्शन दर्शन स्वादनं गन्धग्रहण इन सप्तका ग्रहण होगया था फिर इनका ग्रहण करना निष्फल है औरभी विचारनेकी बात है जो स्वामीजीने पृ०२३६ पं०७ में दुःखसे छूटनेका नाम मुक्ति है यह लिखा है और अब २३७पं०१०में भीषण इच्छा प्रेम द्वेष यह गुण तब कहे इनका यही अर्थ होगा किसीसे भयभीत होना अथवा किसीको भय देना इसका नाम भीषण है यह दोनों भी दुःखरूप हैं और इच्छा तृष्णाका नाम है सो महाक्लेशकारी सर्वथा प्रसिद्ध है यद्यपि मुक्त आत्मा अपनी इच्छा निवृत्त करसक्ता है तथापि उसके पीछे दुःख तो लगेई हैं प्रेम नाम रागका है और द्वेष नाम क्रोधका है सो यह बद्धजीवमें होसक्ते हैं मुक्तजीवमें किसीप्रकार हो नही सक्ते इससे स्वामीजीको मोक्षमें बडा ही भ्रम है सो मिथ्या ज्ञानसे यह भ्रम उत्पन्न हुआ है ॥

स० पृ० २३७ पं० १६

अभावंबादरिराहह्येवम् वेदा० ४ । ४ । १०

जो बादरि व्यासका पिता है वोह मुक्तिमें जीवका और उसके साथ मनका भाव मानता है अर्थात् जीव और मनका लय पराशरजी नहीं मानते ॥ २५३ । २ से ॥

समीक्षा–यह भी सूत्रार्थ स्वामीजीने अशुद्ध ही लिखा है सूत्रके अक्षरार्थतककीभी स्वामीजीको खबर नहीं यह स्वामीजीका अर्थ प्रक-

रण और श्रुतिविरुद्ध है क्योंकि इस सूत्रके अभावम् बादरिः आह हि एवम् यह पद हैं इसमें बादरि कर्ता है और अभाव कर्म है मन्यते क्रियाका अध्याहार होताहै तब यह अर्थ होगा कि, बादरि आचार्य अभाव मानतेहैं सो किसका अभाव मानते हैं इसका उत्तर इस सूत्रके विषयकी श्रुतिमें है (सो आगे लिखेंगे) (हि) जिस कारणसे कि,(एवम) ऐसे (आह) श्रुति कहतीहै इस कारण इस सूत्रमें जीव और मनका भाव अर्थ नहीं और आह हि एवम् इन तीनों पदोंके अर्थकी तौ स्वामी जी चटनी कर गये इससे यह अर्थ ठीक नहीं ॥

स० पृ० २३७ पं० २१

भावंजैमिनिर्विकल्पामननात् । ४ । ४ । १२

और जैमिनि आचार्य मुक्तपुरुषका मनके समान सूक्ष्मशरीर इंद्रिय प्राण आदिको भी विद्यमान मानते हैं अभाव नहीं ॥

समीक्षा—यह भी अर्थ असंगत है क्योंकि इस सूत्रमें सूक्ष्मशरीर इन्द्रिय प्राण आदिका सद्भाव माना इसमें यह असंगत है कि सूक्ष्मसे पृथक् इन्द्रिय प्राणको कहा क्योंकि इन्द्रिय प्राण तौ सूक्ष्मान्तर्गत हैं और मन भी सूक्ष्म अन्तर्गत है पहले सूत्रमें मनका सद्भाव माना है और मन प्राण इन्द्रियसे विना नहीं रहसक्ता तौ पहले मतमें इन्द्रिय और प्राण भी मानने होंगे तौ बादरिके और जैमिनिके मतमें अंतर ही क्या रहा तौ उनका मतभेद ही क्या रहा जिन्हें सूक्ष्म शरीरकी खबर नहीं सो व्यास सूत्रोंका क्या अर्थ करेंगे इस सूत्रमें विकल्पामननात् का अर्थ नहीं लिखा है फिर अर्थ कहांसे बने ॥ पं० २४ ॥

द्वादशाहवदुभयविधंबादरायणोऽतः ४।४।१२

व्यासमुनि मुक्तिमें भाव और अभाव इन दोनोंको मानते हैं अर्थात शुद्ध सामर्थ्य युक्त जीव मुक्तिमें बना रहता है अंपवित्रता पापाचरण दुःख अज्ञानादिका अभाव मानते हैं ॥

समीक्षा—इस लेखमें भी सूत्रार्थका पता नहीं द्वादशाहवत् उभयविधं बादरायणः अतः इतने पद इस सूत्रमें हैं स्वामीजीने इसमें आदि अन्तके पद छोडके (उभयविध) का अर्थ किया है कि शुद्ध सामर्थ्य युक्त हो पापाचरणादि विशिष्ट न होना यह कथनभी पूर्व दोमतोंका साधक नहीं क्योंकि पूर्वमतोंमेंभी पापाचरणादि नहीं माने शुद्ध सामर्थ्यही मानेंगे जब पूर्व मतोंमें भी यह अर्थ हुआ तो तीन मतोंका पृथक् लिखना

असंगत है और स्वामीजी तो प्रेम द्वेष इच्छादि क्लेश मानते हैं सो यह अपवित्रता है वा और कुछ है फिर अपवित्रताका मोक्षमें अभाव कथन करना बादरायणके मतमें असंगत है क्योंकि स्वयं स्वामीजी अपवित्र मान चुके हैं और स्वतः प्रमाण संहिताके मंत्र लिखते व्याससूत्र क्यों लिखे अब हम अच्छी प्रकारसे इन सूत्रोंको पूर्वापर सहित लिखते हैं जिससे सज्जन पुरुषोंको निर्णय होजायगा कि, स्वामीजीने सूत्रोंका अर्थ बिगाड दिया है ॥

मुक्ति तीन प्रकारसे शास्त्रमें कथन करी है कैवल्यमुक्ति ब्रह्मलोकप्राप्ति और ब्रह्मलोकप्राप्तिद्वारा क्रमसुक्ति प्रथम कैवल्यमुक्तिवर्णन करते हैं ॥

सम्पद्याविर्भावः स्वेनशब्दात्–शारीरक अ० ४ पा० ४ सू० १

विषयवाक्य अशरीरोवायुरभ्रंविद्युत्स्तनयित्नुरशरीराण्येतानितद्य थैतान्यमुष्मादाकाशात्समुत्थायपरंज्योतिरुपसंपद्यस्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यन्ते एवमेवैषसम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्था-यपरंज्योतिरुपसम्पद्यस्वेनरूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमः पुरुषः छां० उ० प्र० ८ खं० १२

सूत्रार्थ–सम्पद्य नाम अविद्या तिरोहितरूपके आविर्भावका है क्यों कि श्रुतिमें स्वेन ऐसा शब्द देखा जाता है और स्वरूपनाम पूर्वसिद्ध अपने रूपका है इससे अविद्यातिरोहितरूपका अविद्यानिवृत्तिसे आवि-र्भावही कैवल्य हैं विषयवाक्य श्रुतिका अर्थ किसी निमित्तसे स्वस्वरूप तिरोधान होकर पश्चात् निमित्तान्तरमें स्वस्वरूपप्राप्तिमें दृष्टान्त कहते हैं, जैसे वायु सूक्ष्ममेघ विद्युत् स्तनयित्नु, अर्थात् स्थूलमेघ यह सम्पूर्ण पदार्थ वर्षाकालसे भिन्न कालमें शरीर अर्थात् तिरोहितशरीर होते हैं, आकाशके साथ एकताको प्राप्त होते हैं वे कालरूप निमित्तसे आका-शमें तिरोहित रहते हैं, और वर्षाभिन्नकाल निमित्तके अभाव होतेही आषाढके ज्योतिरूप तेजको प्राप्त होकर आकाशसे समुत्थितहो अपने पूर्वसिद्ध चातुर्मासिक रूपसे प्राप्त होते हैं तैसेही यह चैतन्य जीव इस शरीररूप निमित्तसे देहादितादात्म्यभावको प्राप्त होकर अपने स्वतः-सिद्ध रूपके भान होतेही ज्ञानसे देहतादात्म्यभावको त्याग कर अपना स्वतः सिद्ध परंज्योतिस्वरूप आत्मा है तिसको प्राप्त होकर विराजमान होता है और मुक्तात्माही उत्तम पुरुष अर्थात् परमात्मारूप है ॥

मुक्तः प्रतिज्ञानात्-शा० अ० ४ पा० ४ सू० २

श्रुतिमें जो अभिनिष्पद्यते यह कहा है वोह सर्वबंधरहित शुद्धस्वरूप करके अवस्थान ज्ञानरूप जो मुक्तावस्था तिसको प्राप्त होता है ॥

आत्मप्रकरणात्-अ० ४ पा० ४ सू० ३

इस श्रुतिमें ज्योतिःशब्द भौतिक ज्योतिका बोधक नहीं आत्माका प्रकरण होनेसे मुक्तिमें कैसा स्वरूप हो जाता है परमात्मासे पृथक् हो रहता है अथवा लय हो जाताहै इसपर अगला सूत्र है ॥

अविभागेनदृष्टत्वात्-अ० ४ पा० ४ सू० ४

मुक्त ब्रह्मसे अभिन्न स्थित होता है ऐसी श्रुति कहती है मुक्तका ब्रह्मके साथ भेद नहीं है "स उत्तमः पुरुष इति" इस वाक्यमें जो सः शब्द है उसने अभिनिष्पन्नरूप मुक्तस्वरूपका परामर्ष कर मुक्तकोही उत्तमशब्दवाच्य ब्रह्मस्वरूप कहा है तिससे मुक्त स्वरूपसे ब्रह्म भिन्न नहीं है अविभक्तही परसे मुक्त रहता है तथाहि-

यत्रनान्यत्पश्यतिनान्यच्छृणोतिनान्यद्विजानातिसभूमा-छां० प्र० ७ खं० १४

नतुतद्द्वितीयमस्तिततोन्यद्विभक्तंयत्पश्येत् । बृह० अ० ६ ब्रा० ३ कं० २३.

जिस भूमा ब्रह्ममें अन्य किसी वस्तुको अन्य द्रष्टा वा श्रोता देखता वा सुनता नहीं तथा अन्य किसी वस्तुको अन्य विज्ञाता जानता नहीं सो भूमा है जो भूमाको प्राप्त होकर पृथक् रहता तौ पृथक् द्रष्टा होकर देखता इससे अभेदरूपसेही मुक्तिमें स्थिति होती है और जब दूसरा हैही नहीं तौ अन्य क्या देखैगा और एकमेंभी आधारान्तर निषेधके हेतु स्थिति कही जाती है यथा

सभगवः कस्मिन्प्रतिष्ठितः स्वेमहिम्नीतिहोवाच-छां० प्र० ७ खं० २४

नारदजीने सनत्कुमारसे पूछा हे भगवन्! सो भूमा किसमें स्थित है (उत्तर) अपनी अखण्डैकरसमहिमामें स्थित है रूपान्तरसे स्थितिका निषेध किया है ॥

अब यह प्रश्न है कि स्वस्वरूप इसका चेतनमात्र है वा सत्यकामत्वादि धर्मविशिष्ट है प्रथम इसमें जैमिनिआचार्यका मत कथनकरते हैं॥

ब्राह्मेणजैमिनिरुपन्यासादिभ्यः-शा० अ० ४ पा० ४ सू० ५

जो ब्रह्मका सत्यकामत्वादि विशिष्ट रूप है तिसी रूपसे मुक्तिमें जैमिनिजी स्थिति मान्ते हैं वाक्यके प्रारम्भमें अयमात्मापहतपाप्मा इत्यादि सत्यकामत्व सत्यसंकल्पत्व विशिष्टका उपन्यास नाम कथन करा है ॥

सतत्रपर्य्येतिजक्षन्क्रीडन्रममाणः—छां० प्र० ८ खं० १२

सो मुक्त मोक्षपदमें वर्तमान हास क्रीडा रमण करताहुआ सब प्रकारसे जानता है इन प्रमाणोंसे ईश्वर सत्यकाम सत्यसंकल्प है किसी रूपसे मुक्तका आविर्भाव होता है ॥

चितितन्मात्रेणतदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः-शा०अ०४पा०४सू०६

चैतन्यमात्रस्वरूपसे मुक्तकी स्थिति होती है क्यों कि, (तदात्मकत्वात्) चैतन्यस्वरूप है केवल ज्ञानमात्रही आत्माका स्वरूप है तिसी रूपसे मोक्षमें स्थिति होती है और जो श्रुतिमें सत्यकामत्वादि कथन करा है सो असत्यकामत्वादि जो बंध कालमें प्रसक्त थे तिनका निषेध करा है बृहदारण्यकमेंभी केवल ज्ञानमात्रस्वरूप आत्माका निर्णय करा है ॥

सयथासैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नोरसघनएवैवंवाअरेऽयमात्माऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नःप्रज्ञानघनएव-बृ० अ० ६ ब्रा० ५ कं० १३

जैसे सेंधेका टुकडा अन्तरबाहरसे मैलरहित सम्पूर्ण रस घन है, इसीप्रकार यह सर्वानुभवसिद्ध आत्मा अन्तर बाहरसे पदार्थान्तर मैलरहित संपूर्ण प्रज्ञानघन है इस कारण आत्मा चैतन्यरूप है मोक्षावस्थामें चैतन्यमात्ररूपसे स्थिति है यह औडुलौमि आचार्य मानते हैं ॥

एवमप्युपन्यासात्पूर्वभावादविरोधंबादरायणः

शा० अ० ४ पा० ४ सू० ७

यद्यपि श्रुतिप्रमाणसे चैतन्यमात्र स्वरूपका रहै तौभी पूर्व श्रुतिप्रतिपाद्य ब्राह्म ऐश्वर्यका निषेध न होनेसेभी विरोध नहीं है यह बादरायण

ऋषि मानते हैं भाव यह है मुक्त पुरुषमें चैतन्यमात्र स्वरूपहै श्रुतिभी ईश्वर धर्मका कथन बद्ध पुरुषोंकी अपेक्षासे सत्यकाम सत्यसंकल्पादि करती हैं विद्वान् मुक्त पुरुषका रूप चैतन्यमात्र है तौ अखण्ड चैतन्यसे अन्यत्र सत्यकाम सत्यसंकल्प जक्षन् क्रीडन् रममाणादि नहीं है इससे व्यासजीके मतमें दोनों वाक्योंका अविरोध है यह सिद्धान्त पक्ष है यह ज्ञानसे कैवल्यमुक्ति कथन करी अब सगुण उपासनासे ब्रह्मलोकप्राप्तिद्वारा मुक्तिनिरूपण करते हैं ॥

संकल्पादेवतुतच्छ्रुतेः–शा० अ० ४ पा० ४ सू० ८

सयदा पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति तेन पितृलोकेन सम्पन्नो महीयते । अथ यदि मातृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य मातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन मातृलोकेन सम्पन्नो महीयते ।

छां० प्र० ८ खं० २

भावार्थ–जो उपासक उपासनाके प्रभावसे ब्रह्मलोकमें प्राप्त भया है तिसे सर्व काम भोग्यवर्ग आनंदके कारण संकल्पमात्रसेही प्राप्त होजाते हैं, सो उपासक जब पितृलोककी कामनावाला होता है तब संकल्पमात्रसेही इसके पितर समुत्थित होते हैं तिनसे पितृलोकमें प्राप्त हुआ पूजित होता है इसी प्रकार मातृलोककी इच्छासे वोह भी उपस्थित होता है (प्रश्न) उपासकमें सत्यसंकल्पताकी दृढता संभव नहीं क्योंकि वोह ईश्वराधीन है (उत्तर)

अतएवचानन्याधिपतिःशा० अ० ४ पा० ४ सू० ९

सत्यसंकल्प होनेसेही सगुण ब्रह्म विद्वान् उपासक (अनन्याधिपति) पराधीनतावर्जित है भाव यह है ईश्वरका धर्म सत्यसंकल्पही उपासकमें आविर्भावको प्राप्त हुआ है क्योंकि, कार्यउपाधि जीवमेंभी सत्यकामादि तिरोभूत थे उपासनाबलसे प्रादुर्भाव होतेहैं अब यह विचार कर्तव्यहै ब्रह्मलोकमें प्राप्त उपासकका श्रुति प्रमाणसे संकल्पका साधन माने तो सिद्धही है शरीर वा बाह्य इन्द्रिय ऐश्वर्य प्राप्त विद्वान्के होते हैं या नहीं इसमें मतभेद है तथाहि–

अभावंबादरिराहह्येवम्–शा० अ० ४ पा० ४ सू० १०

बादरि आचार्य्य ब्रह्मलोक प्राप्त विद्वान्के शरीर इन्द्रियोंका अभाव मान्तेहैं क्योंकि इसमें श्रुति प्रमाण है ॥

मनसैतान्कामान्पश्यन्रमतेयएतेब्रह्मलोके-छां०प्र०८खं१२

ब्रह्मलोकमें शरीरेन्द्रियसे विना केवल मनसेही भोग साधन है यह ब्रह्म लोकमें जो विषय है तिनको मनसे अनुभव करता रमण करता है स्वामीजीने प्रकरण छोड मनसहित जीवका मोक्षमें होना लिखा है और मोक्षका निर्धारण नहीं करा कि कौनसी मुक्तिमें जीव मन सहित है ॥

भावंजैमिनिर्विकल्पामननात्-शा० अ० ४ पा० ४ सू० ११

जैमिनि आचार्य ब्रह्मलोक प्राप्तिरूप मुक्तिमें मन सहित इन्द्रियके शरीरका भाव मानते हैं (विकल्पामननात्) नानात्वभावका अभ्यास श्रुतिमें देखा जाता है यथाहि-

सएकधाभवतित्रिधाभवतिपञ्चधासप्तधानवधाचैवपुनश्चैका
दशस्मृतःशतंचदशचैकश्चसहस्राणिचविंशतिः-छां० ७ खं०२६

सो मुक्त पुरुष एक प्रकारका तीन प्रकारका पांच सात नव पुनः ग्यारह सौ दश फिर एक फिर सहस्र वीस इत्यादि प्रकारके भावको प्राप्त होता है इस श्रुतिप्रमाणसे मोक्षमें सहित इन्द्रिय शरीरका होना जैमिनि मानते हैं ॥

द्वादशाहवदुभयविधंबादरायणोऽतः--शा०अ०४पा०४ सू० १२

इन दो प्रकारमें व्यासजी कहते हैं कि, जब सशरीर कल्पना करता है तब तो सशरीर होता है और जब अशरीरता कल्पना करता है तब अशरीर होता है यह दोनों प्रकारही होते हैं क्योंकि ब्रह्मलोक प्राप्त विद्वान् सत्यसंकल्प है इससे संकल्पकी विचित्रतासे उभयविधभाव होसक्ता है (द्वादशाहवत्) जैसे दो प्रकारकी श्रुतिसे पूर्वमीमांसामें द्वादशाह यागको सत्रत्व तथा अहीनत्व यह दोनों प्रकार मान्ते हैं तैसेही मुक्त पुरुषको सशरीरत्व तथा अशरीरत्व दो प्रकारकी श्रुतिसे मान्ते है ॥

तन्वभावेसंध्यवदुपपत्तेः--शा०अ० ४ पा०४ सू० १३

देहके अभावमें जैसे स्वप्नमें मातादिककी उपलब्धि होती है ऐसेही मोक्षमें मातादि विषयकी उपलब्धि सिद्ध है मनसे कल्पित विषयोंका

स्वप्नमें भोग साक्षी भास्य है तब तौ सन्ध्यनाम स्वप्नवत् पित्रादि विषय तथा अपना शरीर भी स्वप्नतुल्य प्रतीत मात्र जानने ऐसेही भोगकी उपपत्ति होसक्तीहै अन्यथा नहीं ॥

भावेजाग्रद्वत्--शा० अ०४ पा० ४ सू० १४

शरीरके भावमें मुक्तको जाग्रतके तुल्य भोग होता है ॥

प्रदीपवदावेशस्तथाहिदर्शयति--शा०अ०४पा०४सू० १५

एक आत्मा अनन्त शरीरोंमें कैसे प्रवेश करैगा तहां व्यासजी कहते हैं प्रदीपवत आवेश होता है जैसे प्रदीप अनेक बत्तिओंमें प्रवेश होता है वैसे मुक्तभी विद्यायोग बलसे अनेक शरीरोंमें प्रविष्ट होजाता है क्योंकि उसका लिंगशरीर विद्याबलसे व्यापक होजाता है एकधा भवति त्रिधा भवति इत्यादि पूर्व दिखा दिया है ॥

जगद्व्यापारवर्जंप्रकरणादसंनिहितत्वाच्च-शा०अ०४पा०४सू०१७

जगतकी उत्पत्ति पालन संहारको छोड़कर मुक्त पुरुषका ऐश्वर्य है महाप्रलयके अनन्तर सृष्टिमें ईश्वरसे विना और किसी पुरुषका संनिधान नहीं होसक्ता ॥

स० पृ० २३९ पं० ४ (प्रश्न) जीव मुक्तिको प्राप्त होकर पुनः जन्ममरण दुःखमें कभी आते हैं वा नहीं क्योंकि-

नचपुनरावर्ततेनचपुनरावर्तते-उपनिषद्वचनम् छान्दो०प्र०८खं०१५
अनावृत्तिःशब्दादनावृत्तिःशब्दात्-शारीरक अ०४।पा०४सू०२२
यद्गत्वाननिवर्तन्तेतद्धामपरमंमम भ०गी० *

इत्यादि वचनोंसे विदित होता है कि, मुक्ति वोही है जिससे निवृत्त होकर पुनः संसारमें कभी नहीं आता (उत्तर) यह बात ठीक नहीं क्योंकि वेदमें इस बातका निषेध किया है ॥

कस्यनूनंकतमस्यामृतानांमनामहेचारुदेवस्यनाम
कोनोमह्या अदितयेपुनर्दात्पितरंचदृशेयंमातरंच १
अग्नेर्वयंप्रथमस्यामृतानांमनामहेचारुदेवस्यनाम

---

* यं प्राप्य न निवर्तन्ते भ० गी०८।२१, शुद्धपाठ इसप्रकारहै पांचवींदफेभी शुद्धनहोसका ।

सनोमह्याअदितयेपुनर्दात् पितरंचदृशेयंमातरं च २
ऋ०मं०१सू० २४ मं०१।२

इदानीमिवसर्वत्रनात्यन्तोच्छेदः—सांख्यसूत्रम् अ० १०सू०१५९

हम लोग किसका नाम पवित्र जानें कौन नाशरहित पदार्थोंके मध्य में वर्तमान देव सदा प्रकाशस्वरूप है हमको मुक्तिका सुख भुगाकर पुनः इस संसारमें जन्म देता और माता तथा पिताका दर्शन कराता है ? (उत्तर) हम इस स्वप्रकाशरूप अनादि सदा मुक्त परमात्माका नाम पवित्र जाने वोह हमको मुक्तिमें आनंद भुगाकर पृथ्वीमें पुनः माता पिताके सम्बन्धमें जन्म देकर माता पिताका दर्शन कराताहै वोही परमात्मा मुक्तिकी व्यवस्था करता सबका स्वामी है जैसे इससमय बंध मुक्त जीव हैं वैसेही सर्वदा रहते हैं अत्यन्त विच्छेद बंध मुक्तिका कभी नहीं होता किन्तु बंध और मुक्ति सदा नहीं रहती २५५। १॥

समीक्षा—धन्य है स्वामाजीकी बुद्धिको कि, उपनिषद् और शारीरकके वचनको वेदविरुद्ध कहते हैं यहाँ स्वामीजीने ब्राह्मण और शारीरकको अप्रमाण ठहराया और आप परम विद्वान् बने कौन मान सक्ता है कि, ब्राह्मण और शारीरकमें तो वेदकी विरुद्धता हुई उनमें यथार्थ अर्थ न लिखा और दयानंदजी अपने वेदभाष्यके वेदके यथार्थ आशयको समझे और उसे ठीक ठीक प्रगट किया स्वामीजीने विक्रयार्थ पृ० ८ पर व्याख्यान छपवाया था कि, यह वेदभाष्य अपूर्व होता है इसमें कुछ कपोलकल्पित नहीं है शिक्षासे लेकर शाखान्तर पर्यन्त ब्रह्मासे लेकर जैमिनितकके ग्रंथ जो वेदके सत्यार्थयुक्त व्याख्यान हैं ऋषि मुनियोंके किये उन सनातन सत्यग्रंथोंके वचनोंके लेख प्रमाणसे सहित यह वेदभाष्य रचा जाता है॥

अब पाठकगण विचारें कि, ब्रह्मासे जैमिनितक जो वेदवचनोंके यथावत जाननेवाले थे, उनको सत्यवक्ता मानकर उनकी व्याख्या स्वामीजीने सत्य स्वीकार की फिर यह उनका हठदुराग्रह वा अज्ञान नहीं तौ और क्या है जो उपनिषद्के वचन और शारीरकसूत्रका निरादर करते हैं यह सांख्य शास्त्रका सूत्र मुक्तिविषयका नहीं है यह तत्त्वके निर्णयमें है इसका अर्थ आगे करेंगे मुक्तिविषयमें वोही सांख्यकर्ता यों लिखतेहैं॥

नमुक्तस्यपुनर्बंधयोगोप्यनावृत्तिश्रुतेः सां० अ० ६ सू० १७

मुक्तको फिर बंधका योग नहीं है (अनावृत्ति) नहीं लौटना यह श्रुति होनेसे यदि कपिलदेवजी मुक्तका जन्म मानते तौ ऐसा सूत्र क्यों बनाते क्या वेभी दयानंदजीके सदृश भ्रमजालमें पड़ेथे, कि, अपने ग्रंथों में परस्पर ऐसा विरुद्ध लेख कर बैठते जैसा कि, सत्यार्थप्रकाश संन्यासप्रकरणमें लिखा है, कि मुक्तिरूप अक्षय आनंदका देनेवाला संन्यासधर्म है, कहिये यहां अक्षय शब्दका क्या अर्थ है, जिन्हे अपने दो चार पंक्तियोंके लेखमेंभी परस्पर विरोधका ज्ञान नहीं वे ब्राह्मण और शारीरक शास्त्रके लेखको वेदविरुद्ध ठहरावैं॥

वेदमंत्रोंकी व्यवस्था सुनिये प्रथम तौ मूल श्रुतिमें ऐसा कोई पद नहीं है जिससे प्रार्थना करनेवालेका मुक्तजीव होना सिद्ध हो दूसरे यह अर्थ स्वामीजीका सम्पूर्णतः प्रकरणविरुद्ध है ऐतरेय ब्राह्मणमें इस प्रकारसे इसका निर्णय है

सोऽसिंनिःशानरायायाथहशुनःशेपईक्षांचक्रेऽमानुषमिववै माविशसिष्यन्तिहंताहंदेवताउपधावामीतिसप्रजापतिमेव प्रथमंदेवतानामुपससारकस्यनूनंकतमस्यामृतानामित्येत यर्चातंप्रजापतिरुवाचाग्निर्वैदेवानांनेदिष्ठस्तमेवोपधावेति सोग्निमुपससारअग्नेर्वयंप्रथमस्यामृतानामित्येतयर्चातमग्नि रुवाचेत्यादिऐतरेयब्रा० सप्तमपंचिका खं० १६

इसका अर्थ यह है अजीगर्त नाम एक राजर्षि असि खड्गको तीक्ष्ण करके शुनःशेपके पास आया तब शुनःशेप विचारनेलगा कि यह पशुकी नाईं मुझे मारैगा मैं इस समय देवताओंका आराधन करूं यह विचार प्रथम हुए प्रजापतिकी शरण हुआ और कस्य नूनं इत्यादि मंत्रका उच्चारण किया तब प्रजापतिने शुनःशेपको बताया अग्निही देवताओंके मध्यमें समीप है इस कारण अग्निको स्मरण कर तब वोह शुनःशेप अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानामित्यादि मंत्रसे अग्निकी प्रार्थना करने लगा तब अग्नि बोले सविता देवताकी आराधना करो यह राजसूय यज्ञके प्रकरणमें ऐतरेय ब्राह्मणमें वर्णित है मुक्तका संसारबंधनमें आनेका कोई प्रसंग नहीं है अब मंत्रार्थ दिखाते हैं॥

कस्यनामप्रजापतेःअमृतानांदेवानांमध्येकतमस्यश्रेष्ठत्वेननि र्धारितस्यदेवस्यचारुउत्तमंनामममनामहे अभ्यस्यामः महै

पृथ्वीरूपायैअदितयेमातृरूपायपुनर्दात्कःप्रजापतिः तदापित-
रंचमातरंचदृशेयंपश्यामि १

पदार्थः (अमृतानाम्) देवताओंके मध्यमें (नूनम्) निश्चयकर (कस्य)किस (कतमस्य देवस्य) कोनदेवताके (चारुनाम) उत्तम नामको (मनामहे) अभ्यास करें (अदितयेमह्यै) भूमिरूप माताके निमित्त (नः) हमको (कः) कौन प्रजापति (पुनः) फिर (दात्) दे जहां (पितरञ्च) पिताको भी (च) और (मातरम्) माताको (दृशे-यम्) देखैं । इसमें मुक्तोंका वर्णन कहीं नहीं जब संकल्पसिद्ध मुक्त जीव है तो तुम्हारे मतसे फिर संसारमें क्यों आवैगा.

शुनःशेपका आशय यह है कि, पुनर्जन्ममें विलक्षण गुणयुक्त माता पिताको प्राप्तहूं जो इन मातापिताकी नाईं लोभी न हों ॥

अब दूसरा अग्निकी प्रार्थनामें मंत्र है तिससे निरूपण करते हैं ॥

पद । अग्नेः वयम् प्रथमस्य अमृतानाम् मनामहे चारु देवस्य नाम सः नः मह्यै अदितये पुनः दात् पितरम् च दृशेयम् मात रम् च ॥ ऋ० मण्ड० १ सू० २४ मं० २

पदार्थः (अमृतानाम्) देवताओंके मध्यमें (प्रथमस्य) पहले (अग्नेःदेवस्य) अग्नि देवताके (चारुनाम) उत्तम नामका (वयम) हम (मनामहे) स्मरण करते हैं (सः) वह प्रजापति अग्नि (नः) हमको (मह्यै आदितये) भूमिरूप माताको (पुनः) फिर (दात्) देगा (च) और (पितरम्) पिता (च) और (मातरम्) माताको (दृशे-यम्) देखेंगे.

और भी अगिले मंत्रमें शुनःशेपका संवाद है ॥

शुनःशेपोह्यह्वद्गृभीतस्त्रिष्वादित्यंद्रुपदेषुबद्धः
अवैनंराजावरुणःससृज्याद्विद्वाँअदब्धोविमुमोक्तुपाशान्
ऋ० मं० १ सू० २४ मं० १३

भाषार्थः (गृभीतः) बांधनेके निमित्त ग्रहण किया हुआ (त्रिषु) तीन (द्रुपदेषु) काष्ठविशेषोंके मध्यमें (बद्धः) बंधा हुआ (शुनः शेपः) शुनःशेप (आदित्यम्) अदितिके पुत्र वरुणको (अह्वत्) आह्वान करता हुआ (हि) कारण कि (राजा वरुणः) राजा वरु-ण (एनम्) इस शुनःशेपको (अवससृज्यात्) बन्धनसे मुक्त करै

(विद्वान्) छोडनेका प्रकार जान्नेवाला (अदब्धः) किसीसे हिंसाको प्राप्त नहोनेवाला (पाशान्) रज्जुपाशोंको (विमुमोक्तु) विच्छेद कर इसे मुक्त करो ॥

और वरुणने प्रसन्न होकर शुनःशेपको मुक्त किया ऐसा इससे अगिले मंत्रमें स्पष्ट लेखहै इसमें मुक्तजीवोंका बंधनमें आना नहीं पाया जाता किन्तु बद्ध मुक्ति चाहतेहैं ॥

प्रथम तौ स्वामीजी भाष्यभूमिकामें लिखचुकेहैं कि मुक्तिसे नहीं लौटते अब कहतेहैं कि संसारसागरमें आपडतेहैं, कहिये परस्परविरोध है वा नहीं शोकहै स्वामीजीकी बुद्धिपर और उनके किये अर्थोंपर कि, संसारके तुच्छ जीवभी जानते हैं कि परमेश्वर उपास्य स्मरणीयहै और स्वामीजीके विचारानुसार मुक्त जीवोंकोभी यह ज्ञान नहीं कि कौनसा देव उपास्य है और यहभी विचारना चाहिये कि संपूर्ण सुखोंकी सीमा मुक्ति है जिसे परम गति कहते हैं उससे बढकर कोई आनंद नहीं और संसारबंधन सदा दुःखकी खान है फिर मुक्त जीवोंपर क्या विपत्ति पड़ी और कैसे अज्ञानी होगये जो सर्वानंद सर्वोत्तम पदसे दुःखरूप संसारमें आनेकी इच्छा करने लगे, सबही सुखप्राप्ति दुःखनिवृत्तिकी इच्छा करते हैं कोई महामूर्खभी सुखसे दुःख भोगनेकी इच्छा नहीं करता, क्या कोई धनीपुरुष निर्धन होनेकी इच्छा करता है या राजा होकर नौकर बना चाहता है या हाथीपर चढकर गधेपर चढना चाहता है कदापि नहीं क्या मुक्तव्यक्ति हमारीसीभी बुद्धि नहीं रखते जो परम पद मुक्तिसे दुःखसागरमें आनेके लिये प्रार्थना करते हैं यहभी ध्यान रहै कि सबलोग अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिके लिये यत्न किया करते हैं प्राप्तवस्तुकी प्राप्तिके लिये कोई यत्न नहीं करता मुक्त जीवोंको कोई पदार्थ अलभ्य नहीं संकल्पमात्रसेही सब उत्पन्न हो जाता है जैसा पूर्व लिख आये हैं (एकधा भवति आदि) जब कि सगुण उपासीमुक्तजीव संकल्पमात्रहीसे अनन्त शरीर धारण करसक्ता है तौ उसकी बुद्धिपर क्या अज्ञान छाया है कि जो ऐसे भ्रमजालमें पडें (कि हम देवतोंके मध्यमें जन्में संसारमें जाय) पहले तौ स्वामीजीने यह लिखा कि ब्रह्ममें जीव अव्याहत गति अर्थात् वे रुकावटाविज्ञान आनंदपूर्वक स्वतंत्र विचरता है फिर पृ० २३८ पं० २४ में लिखाहै कि जीव जो संकल्प करते हैं वोह २ लोक और वोह २काम उनको प्राप्त होता है (२५४ । १७) और पृ० २४९ पं० २५ में ॥

सत्यंज्ञानमनंतंब्रह्म योवेदनिहितंगुहायां परमेव्योमन्
सोश्नुतेसर्वान्कामान्ब्रह्मणासहविपश्चितेति–तैत्तिरीय०
आनं० वल्ली अनु० १

ब्रह्मके साथ सब कामोंको प्राप्त होताहै अर्थात् जिस २ आनंदकी इच्छा करता है वोह वोह उसको प्राप्त होता है (२६६।१७) पुनः पृ०२५० पं० ५ मुक्तजीव अनंतव्यापक ब्रह्ममें स्वच्छन्द घूमता शुद्ध ज्ञानसे सब सृष्टिको देखता हुआ सब लोक लोकान्तरोंमें घूमता है सब पदार्थोंको देखता है मुक्तिमें जीवात्मा निर्मल होनेसे पूर्ण ज्ञानी होकर उसको सब सन्निहित और असन्निहित पदार्थोंका ज्ञान और (भान) यथावत होता है इत्यादि ॥ २६७।२

जब कि मुक्त जीवको कहीं कुछ रुकावट नहीं और वोह आनंदपूर्वक स्वतंत्र विचरता है दुःखोंसे छूट आनंदमें रहता जो जो संकल्प करता वोह वोह लोक वोह वोह काम उसे प्राप्त होता है सब लोकान्तरोंमें घूमता संसारका सुखदुःख स्पर्श नहीं होता सदा आनंदमें रहता ब्रह्मके साथ सब कामोंको प्राप्त होता निर्मल होनेसे पूर्ण ज्ञानी सन्निहित असन्निहित पदार्थोंका भान यथावत् होता है तौ किसप्रकार होसक्ता है कि,मुक्त जीव ऐसी प्रार्थना करैं कि हम किस देवताका नाम पवित्रजाने जो हम मुक्त जीवों को फिर पृथ्वीमें जन्म दे जिससे माता पिताको फिर देखैं ऐसी प्रार्थना मुक्त जीव कभी नहीं करसक्ते क्योंकि पूर्णज्ञानी और अवाप्तसमस्तकाम हैं किन्तु दुःखी जीव जो संकटमें पडे होते हैं वे ऐसी प्रार्थना करसक्ते हैं क्योंकि वे पीडित हैं अब यहभी विचारना है कि, जन्ममरणका कारण क्या है इस विषयमें सब विद्वानोंका यही मत है कि जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंसे जन्म होता है मुक्त जीवके शुभाशुभ कर्मोंका सर्वथा नाश हो जाता है यथाहि–

भिद्यतेहृदयग्रन्थिश्छिद्यन्तेसर्वसंशयाः
क्षीयन्तेचास्यकर्माणितस्मिन्दृष्टे परावरे १मुण्ड०२खं०२मं०८
यदा पश्यः पश्यतेरुक्मवर्णकर्तारमीशंपुरुषंब्रह्मयोनिम्
तदाविद्वान्पुण्यपापेविधूयनिरंजनःपरमंसाम्यमुपैति
२ मुंडक ३ खं० १ मं० ३

तरतिशोकंतरतिपाप्मानंगुहाग्रंथिभ्यो
विमुक्तोऽमृतोभवति--मुण्ड० ३ खं० २ मं० ९
एषआत्माऽपहतपाप्माविजरोविमृत्युर्विंशोकोऽविजिघत्सोऽ
पिपासःसत्यकामःसत्यसंकल्पः ४ छां० प्र० ८ खं० ७
नजरानमृत्युर्नशोकोनसुकृतंनदुष्कृतंसर्वेपाप्मानोऽतोनि
वर्तन्ते—छां० प्र०८खं०४।अपहतपाप्पाऽभयंरूपम्—बृहदा-
रण्यके ५ अ० ६ प्र० ३ कं० २१
ज्ञात्वादेवंमुच्यतेसर्वपाशैः ६ श्वेता० अ० १।८
ज्ञात्वादेवंसर्वपाशापहा।निः--श्वेताश्वतरे ७ अ० १ मं० ११

अर्थ—उस परमेश्वरका पूर्ण ज्ञान होनेसे ज्ञानीके हृदयकी गांठ खुल जातीहै सारे संशय निवृत्त होजाते हैं और पापपुण्य सारे कर्म नष्ट होजाते हैं १जब यह प्रकाश स्वरूप जगत्कर्ता वेदके कारण ईश्वरको देखताहै तब पुण्य पापको छोडकर निरंजन होता हुआ ईश्वरकी परम समताको प्राप्त होताहै अर्थात् तद्रूपहोता है २ शोक और पापरूपी नदीको तरकर हृदयकी गांठोंसे विमुक्त होकर अमृत होताहै ३ यह मुक्त पुरुष पापशून्य होता हुआ जरा मृत्यु शोक भोजन पान इच्छासे निवृत्त होता है सत्यकाम सत्यसंकल्पवाला होता है ४ मुक्त जरा मृत्यु शोक सुकृत दुष्कृत रहित होता है उसके सारे पाप नष्ट होजाते हैं । मुक्त होकर पापशून्य भयरहित होता है ५ ज्ञानी परमात्माको जानकर पाप पुण्यरूप सब बंधनोंसे छुटता है ६ परमात्माको जानकर ज्ञानीके पुण्य पापरूप सारे बंधनोंका नाश होता है७इससे स्पष्ट है कि, मुक्ति होनेपर पापपुण्य शुभाशुभ कर्मोंका नाश होजाता है जब कि, उनके कर्मही न रहे तो उनका पुनर्जन्म किस प्रकार होसक्ता है क्योंकि, जन्म मरणका कारण शुभाशुभ कर्मही है मुक्त होकर फिर जन्म मरणोंसे छूटजाता है यह वेद और उपनिषदोंसे प्रगट है ॥ औरभी—

वेदाहमेतंपुरुषंमहान्तमादित्यवर्णंतमसःपरस्तात्
तमेवविदित्वातिमृत्युमेतिनान्यःपन्थाविद्यतेऽयनाय—
१ यजु० ३१।१८

यदासर्वेंप्रमुच्यन्तेकामायेऽस्यहृदिश्रिताः
अथमर्त्योऽमृतोभवत्यत्रब्रह्मसमश्नुते ॥२॥बृ.अ.६ब्रा.३कं.७
यएतद्विदुरमृतास्तेभवंति--बृह० ३ अ० ६ ब्रा० ३ कं० १४
नपश्योमृत्युंपश्यतिनरोगंनोतदुःखतांसर्वंहपश्यः
पश्यतिसर्वमाप्नोतिसर्वशः--छां० प्र० ७ खं० २६
धीराःप्रेत्यास्माल्लोकादमृताभवंति--तलवकारे
॥ ४ ॥ खं० १ मं० २
यएतद्विदुरमृतास्ते भवंति ॥ ५ ॥ कठ० अ० २ व० ६।९
यज्ज्ञात्वामुच्यतेजंतुरमृतत्वंचगच्छाति ॥ ६ ॥
कठ० अ० २ वल्ली ६ । ८
यदासर्वेंप्रभिद्यन्तेहृदयस्येहग्रंथयः
अथमर्त्योऽमृतोभवत्येतावदनुशासनम् ॥
कठ० ॥ ७ ॥ व० ६ मं. १५
क्षीणैःक्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणि ॥ ८ ॥
तंज्ञात्वाऽमृताभवंति ॥ ९ ॥

अर्थ-मैं इस महान् पुरुषको जानताहूं जो प्रकाशस्वरूप अंधकारसे परे है उसीको जानकर यह प्राणी मृत्युको अतिक्रमण करता है अर्थात् जन्म मरणसे छुटता है परमपद प्राप्तिके निमित्त और कोई मार्ग नहीं है ॥ १ ॥ इस मनुष्यके हृदयमें जितनी कामना हैं वे सब छूट जाती हैं तब वोह अमृत होता है ॥ २ ॥ जो कोई इस (परमात्मा) को जान्ते हैं वे अमृत होते हैं ॥ २ ॥ ज्ञानी मृत्यु और रोगको नहीं देखता इसीसे दुःखको नहीं देखता ज्ञानी सबको देखता है और सब प्रकारसे सबको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ ज्ञानी इस शरीर त्यागनेके अनंतर अमृत होते हैं ॥ ४ ॥ जो कोई इस परमात्माको जान्ते हैं वे अमृत होते हैं ॥ ५ ॥ जिसको जानकर मनुष्य संसारबंधनसे छूटता है और अमृतत्वको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ इस मनुष्यके हृदयमें जितनी कामना हैं वे सब छूट जाती हैं तब वोह अमृत होता है तब वोह अमर होजाता है इतनाही

अनुशासन है ॥ ७ ॥ अविद्यास्मितादि पंचक्लेशोंके नाश होनेसे मनुष्य जन्ममरणरहित होजाता है ॥ ८ ॥ परमात्माको जानकर अमृत होते हैं ॥ ९ ॥

इन वचनोंसे यह बात सम्यक् सिद्ध होती है कि मुक्तजीवोंको जन्म मरण नहीं है क्योंकि, वोह तौ उसमें प्रवेश कर जाते हैं आश्चर्यकी बात है कि सच्छास्त्रोंमें तौ स्पष्ट लिखा है कि मुक्त जीवोंका पुनर्जन्म मरण नहीं है दयानंदजी उनका पुनर्जन्म सिद्ध करते हैं शास्त्रोंमें ऐसे वचन हैं कि, मुक्तिसे फिर नहीं लौटते ॥

एतस्मान्नपुनरावर्तते ॥ १ ॥ प्रश्नोपनिषदि
ब्रह्मलोकमभिसंपद्यतेनचपुनरावर्ततेनचपुनरावर्तते ॥ २ ॥
छान्दो० प्र० ८ खं० १५
तेषुब्रह्मलोकेषुपरापरावतोवसंतितेषांनपुनरावृत्तिः ॥ ३ ॥
बृहदा० अ० ८ ब्रा० १ कं० १५
नमुक्तस्यपुनर्बंधयोगोप्यनावृत्तिश्रुतेः ॥ ४ ॥ सांख्य०
अ०६सू०१७
तदत्यन्तविमोक्षोपवर्गः—न्याय०॥५॥अ.१आन्हि.१सूत्र२२
अनावृत्तिःशब्दादनावृत्तिःशब्दात्॥६॥शा.अ.४पा४सू०२२

भाषा—यहांसे फिर नहीं लौटते ॥ १ ॥ ब्रह्मको प्राप्त होकर इस जन्म मरणरूपी चक्रमें नहीं लौटते नहीं लौटते ॥ २ ॥ ब्रह्मलोकको प्राप्त हो कर फिर नहीं लौटते फिर नहीं लौटते ॥ ३ ॥ मुक्तको फिर बंधका योग नहीं अनावृत्ति अर्थात् नहीं लौटना यह श्रुति होनेसे ॥ ४ ॥ दुःख जन्मप्रभृति दोष मिथ्याज्ञानकी अत्यन्त जो निवृत्ति उसको मोक्ष कहते हैं ॥ ५ ॥ मुक्तका फिर जन्म नहीं होता यह वेदसे सिद्धान्त है ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त व्यासजीने और कुछ नहीं लिखा ॥

यदि कोई कुशाग्रबुद्धिसे न आवृत्तिः नावृत्तिः ननावृत्तिः अनावृत्तिः ऐसे व्युत्पत्ति करें तौ उनको यह सोचना चाहिये की उपनिषदोंमें जो दक्षिणायन उत्तरायण दो मार्ग लिखे हैं जिस्में कर्मकाण्डी दक्षिणायन मार्गसे चन्द्रलोक होते हुए फिर लौटते हैंऔर ज्ञानी सूर्यलोक होकर फिर नहीं लौटते (तद्येहवै तदिष्टापूर्तेकृतमित्युपास्तेते चान्द्रमसमेव लोकमभिजायन्ते त एवपुनरावर्तन्ते) यही पितृयान है इष्टापूर्ति आदि कर्म-

काण्डी चन्द्रलोक जाकर फिर लौटते हैं और ज्ञानी सूर्यलोक मार्गसे जाते हैं (एतस्मान्न पुनरावर्तन्ते) जहांसे फिर नहीं लौटते तो कहिये वे इसका अब क्या अर्थ करैंगे यदि दोनोंका अर्थ लौटनाहीं करैंगे तो इन दो मार्गोंमें अन्तरही क्या रहा इस कारण यह उनका कथन ठीक नहीं और जीव कभी निश्शेष नहीं होते क्योंकि वे अपार हैं और यह प्रश्न आत्माके प्रकरणसे विरुद्ध है क्योंकि सब कुछ आत्माही है ॥

स० पृ० २३९ पं० २७ प्रश्न–

तदत्यन्तविमोक्षोपवर्गः ।

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापायेतदन्तरापायादपवर्गः–न्या० सू० १ आ० २ सू० २

जो दुःखका अत्यन्त विच्छेद होताहै वही मुक्ति कहातीहै क्योंकि, जब मिथ्या ज्ञान लोभादि दोष दुष्ट व्यसनोंमें प्रवृत्त जन्म और दुःखका उत्तरके छूटनेसे पूर्व २ के निवृत्ति होनेसे मोक्ष होताहै जो कि सदा बना रहता है (उत्तर) यह बात नहीं कि अत्यन्त शब्द अत्यंताभावही का नाम है जैसे (अत्यन्तं दुःखमत्यन्तं सुखं चास्य वर्तते) बहुत दुःख और बहुत सुख इस मनुष्यको है इससे यही विदित होता है कि इसको बहुत सुख वा दुःख है इसीप्रकार यहांभी अत्यन्त शब्दका अर्थ जानना चाहिये ॥ २५५ । २२ ॥

समीक्षा–इस सूत्रमें अत्यन्त शब्द अत्यन्ताभावहीका वाचक है स्वामीजीको अपना लेखभी स्मरण नहीं रहा ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृ० १८४में इन सूत्रोंका अर्थ लिखा है(दुःखजन्य)जब मिथ्या ज्ञान अर्थात् अविद्या नष्ट हो जाती तब जीवके सब दोष नष्ट हो जाते हैं उसके उसके पीछे (प्रवृति) अर्थात् अधर्मका अभ्यास विषयासक्ति आदिकी वासना दूर हो जाती है उसके नाश होनेसे जन्म अर्थात् फिर जन्म नहीं होता दुःखोंके अभावसे पूर्वोक्त परमानंद मोक्षमें सब दिनके लिये परमात्माके साथ आनंदही आनंद भोगनेको बाकी रह जाता है इसीका नाम मोक्ष है १ (तदत्यन्त) फिर उस दुःखके अत्यन्त अभाव और परमात्माके नित्य भोग करनेसे जो सब दिनके लिये परमानन्द प्राप्त होता है इसीका नाम मोक्ष है और वेदान्तध्वान्तनिवारणमें इस सूत्रका यही अर्थ स्वामीजीने किया है कि, विविध प्रकारकी पीडा उसका नाम दुःख है उसकी अत्यन्तनिवृत्ति होनेसे जीवको अपवर्ग जो मोक्ष ईश्वरके

आधारमें अत्यानंद सो सदाके लिये प्राप्त होता है यह स्वामीजीकेही लेखसे प्रगट है कि मुक्तिसे फिर नहीं लौटता ॥

स० पृ० २४० पं० ९

ते ब्रह्मलोकेहपरान्तकालेपरामृतात्परिमुच्यन्तिसर्वे *

यह मुण्डक उपनिषद्का वचन है वे मुक्तजीव मुक्तिमें प्राप्त होके ब्रह्ममें आनंदको तबतक भोगके महाकल्पके पश्चात् मुक्ति सुखको छोड़के संसारमें आते हैं ॥

समीक्षा-दयानंदजी जब अपनी इच्छानुसार कोई बात प्रचार करना चाहते हैं तौ कोई श्रुति लिखकर उसके अर्थमें अपना प्रयोजन सिद्ध किया करते हैं जिससे अज्ञानी लोग जानै कि यह बात सत्य है परन्तु वोह लेख जब बुद्धिमानोंके दृष्टिगोचर होता है तौ प्रगट होता है कि श्रुतिमें स्वामीजीके अभिप्रायकी गन्धभी नहीं, नहीं जानते स्वामीजीने यह अर्थ कौनसे पदोंसे किया है यद्यपि स्वामीजीने यह श्रुति बदली है तौ भी इसका यह अर्थ नहीं बनता जो वे करते हैं इसका यह अर्थ होता है कि-

वे सब विद्वान् संन्यासी ब्रह्मलोकमें (ह) निश्चय (परान्तकाले) ब्राह्म महाप्रलयमें (परामृतात्) परामृत ब्रह्मज्ञान जन्म मुक्तिको प्राप्त होकर (परिमुच्यन्ति) विदेहकैवल्यको प्राप्त होते हैं जैसे (प्रासादात्प्रेक्षते) इसका अर्थ यह है कि प्रासादपर आरोहण करकै देखता है ऐसेही "परामृतात्परिमुच्यन्ति" का अर्थ पूर्वोक्त है इसमें लौटना तो किसीभी पदसे नहीं विदित होता ॥

और अब यहभी विचारना है कि यहां जो ब्रह्माका महाकल्प माना है तौ वोह ब्रह्मा देवता है मनुष्य है वा ईश्वरका विशेष विग्रह है ईश्वरका विग्रह माननेसे तौ स्वामीजीका मतभंग होता है और मनुकी सृष्टिसे बाह्य होनेसे मनुष्यभी नहीं है क्योंकि ब्रह्माजीके मनु पोते हैं तौ देवता हैं जिनकी महाकल्पतककी आयु है तौ अब यह बात यहां खंडन होगई कि विद्वानोंहीका नाम देवता है अब श्रुति लिखते हैं ॥

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाःसंन्यासयोगाद्यतयःशुद्धसत्वाः
तेब्रह्मलोकेषुपरान्तकालेपरामृताःपरिमुच्यन्तिसर्वे १

* पांचवीवारमें ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे मुण्डक. ३ खं० २ मं० ६ ऐसा शुद्ध पाठ है पृ० २५६ पं० ९

गताःकलाःपंचदशप्रतिष्ठादेवाश्चसर्वेप्रतिदेवतासु
कर्माणिविज्ञानमयश्चआत्मापरेऽव्ययेसर्वएकीभवन्ति २
यथानद्यः स्पन्दमानाः समुद्रेऽस्तंगच्छन्तिनामरूपेविहाय
तथाविद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परंपुरुषमुपैतिदिव्यम् ॥ ३ ॥
मुंड० खं० २ मं० ६ । ७ । ८

भावार्थः-जिन्होंने विज्ञानसे वेदान्तके अर्थोंका निश्चय किया है और वे यत्नशील सर्वस्व त्यागरूप संन्यासयोगसे शुद्ध चित्तवाले होगये हैं ते सम्पूर्ण विदित वेद्य ब्रह्म लोकमें यावज्जीव वर्तमान परान्तकाल अर्थात् विद्वद्देहपातकालमें जीवन्मुक्ति दशाहीमें (परामृताः) परम अमृत मोक्षको प्राप्त हुए मुक्तहो विदेहकैवल्यको प्राप्त होते हैं यद्यपि ब्रह्मस्वरूप लोक एक है तथापि महात्माओंको स्थितिकी अपेक्षासे अनेकवत् प्रतीत होताहै इस कारण ब्रह्मलोकेषु यह बहुवचनका प्रयोग करा है १ जो कि महात्मा विद्वानोंकी पंचदश कला हैं वे अपने २ कारणमें लीन हो जाती हैं वे कला यह हैं प्राण श्रद्धा आकाश वायु तेज जल पृथ्वी इन्द्रिय मन अन्न वीर्य तप मंत्र कर्म लोक यह पंचदशकलाहैं और धर्माधर्मरूप कर्म तथा विज्ञानोपाधिनिवृत्तिपूर्वक घटोपाधिनिवृत्तिपूर्वक घटाकाशवत् विज्ञानोपाधिक जीवपर अव्ययमें एकीभावको प्राप्त होते हैं २ अब दृष्टान्त कहते हैं जैसे नदी सम्पूर्ण स्पन्दायमान समुद्रमें लीन होजाती है तैसे मुक्तभी नामरूपको त्यागकर पर जो सूक्ष्म समष्टिहिरण्यगर्भ तिससे भी पर परमात्माको प्राप्त होता है क्योंकि, जो परब्रह्मको जान्ता है वोह परब्रह्महीं होता है ३ इससे भी मुक्तिसे लौटना सिद्ध नहीं होता ॥ पृ० १२७ श्रुति यही लिखकर अपना प्रयोजन पडने पर श्रुति बदल डाली धन्य है संन्यासीजी ॥

पृ० २४० पं० २१ जो मुक्तिमेंसे कोई भी लौटकर जीव इस संसार में न आवै तौ संसारका उच्छेद अर्थात जीव निश्शेष हो जाने चाहियें॥ २५६ । २१

समीक्षा-यह वही आक्षेप है जो दयानंदजीपर किसी यवनने कियाथा और उसके संमुख निरुत्तर होकर मुक्तिसे पुनरावृत्ति मान बैठे और अर्थ उलटे करादिये जीवोंके संसारमें न आनेसे उच्छेद कभी नहीं होसक्ता क्योंकि, जीव असंख्य हैं पहले स्वामीजी भी जीवोंको अनन्त मान्तेथे

जबसे मुक्तिसे लौटना माना तबसे सान्त कहने लगे उच्छेद इस प्रकार नहीं होसक्ता जैसे कि, अज्ञात कालके स्रोत नदियोंके चले आते और समुद्रमें मिलजाते हैं परन्तु उन स्रोतोंका उच्छेद नहीं होता इसी प्रकार जीव भी निश्शेष नहीं होसक्ते और वास्तविक विचारमें तो जगत् मिथ्याही है इसमें सारही क्या है ज्ञानीकी दृष्टिमें संसारही नहीं है जीव आत्मास्वरूप है, फिर आप संसारके उच्छेदसे क्यों डरते हो ॥

पृ० २४० पं० २७ मुक्तिके स्थानमें बहुतसा भीड़ भड़क्का होजायगा क्योंकि वहां आगम अधिक और व्यय कुछ नहीं होगा बढतीका पारावार न रहैगा ॥ २५६ । २६

समीक्षा—दयानंदजीके विचारमें मुक्तिका स्थान कितना लंबा चौड़ा है जो आपको जीवोंकी पुनरावृत्ति न होनेसे वहां भीड़ भड़क्का होजानेका भय हुआ सत्यार्थप्रकाशमें आपने लिखा है ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसी में मुक्तजीव अव्याहतगति अर्थात् उसको कहीं रुकावट नहीं फिरतेहैं जबकि मुक्तजीव ब्रह्ममें रहते हैं और ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है तो मुक्तिके स्थानमें भीड़भड़क्का होनेकी शंका बुद्धिविरुद्ध है आप तो गोलोकादिपर आक्षेप करतेथे पर आपनेभी यहां कोई मुक्तिका स्थान माना है जहां कोई चौतरासा होगा ॥ ❀

स० पृ० २४१ पं० १ कोई मनुष्य मीठा मधुरही खाता जाय उसको वैसा सुख नहीं होता जैसा सब प्रकारके रसोंके भोगनेवालेको होता है जो ईश्वर अन्तवाले कर्मोंका अनन्त फल दे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय ॥ २५७ । ३

---

* यदि स्वामीजीको जगत्के उच्छेदका डरहै कि मुक्तहोनेसे एक दिन सबवहीं पहुंचजायँगे तो फिर यही बात आवागमनमेंभी सम्भव होगी एकदिन सबयहीं आजायेंगे तो फिर भीडकादोनो जगह स्वामाजीको धक्काखाना होगा वह यह कि कोई मनुष्य एक घेरेको पांचमिनटमें कोई दसमिंनट कोई पन्द्रहमिनट कोई वीसमिनटमें घूमताहै तो वे घूमनेवाले सब एकसमयय एकस्थानमें इकट्ठे होजायँगे यथा—

५	५	१०	१५	२०
२	१	२	३	४

१ । १ । ३ । २ । ५+२+१+१+३+२+२=६० मिनट

इसप्रिकार दयानन्दी जीव कभी मुक्तिमें या कभी भूलोंकमें इकट्ठे होगये तब क्या बढतीका पारावार नरहैगा तथा मुक्तहोनेपर भी भूलोकके खाली होजानेकी सम्भावना होगी तव क्याकरोगे इससे जीव अनन्तहैं मुक्तिमें अपने ब्रह्मरूपको प्राप्त होजातेहैं वास्तवमें जगत्माया कल्पितहै ।

समीक्षा—इस दृष्टान्तके लिखनेसे स्वामीजीका अभिप्राय यह है कि, कोई मनुष्य एक दशामें चाहै वोह कैसीही सुखरूपहो सर्वदा रहना पसन्द नहीं करता कोई मनुष्य यह नहीं जान्ता कि सम्पूर्ण रसोंमें मधुर रसही सर्वोत्तम है किन्तु षड्रसमें उत्तम और निकृष्ट दोनों प्रकारके पदार्थ होते हैं जो षड्रसयुक्त नानाप्रकारके उत्तम पदार्थोंका भोजन करनेवाला होता है उसकी रुचि निकृष्ट पदार्थोंके भोगनेकी कभी नहीं होती अर्थात् पेडा कलाकंदका खानेवाला शीरा, तंडुल और गोधूमादिका खानेवाला यवादिकके खानेकी कभी इच्छा नहीं करता, इसीप्रकार जो रेशमके अच्छे वस्त्र बहुमूल्य पहरता है वोह कभी फटे पुराने धोतर गजीके पहरनेकी इच्छा नहीं करता जिसको राज्याधिकार प्राप्त है वोह कभी नौकर बननेकी इच्छा नहीं करता, जो पालकीमें चलता है वोह कहार बनकर उठाना नहीं चाहता जो आरोग्यं है वोह रोगकी इच्छा नहीं करता प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित होना नहीं चाहता मुक्त बंदीगृह जानेकी इच्छा नहीं करता कौन विद्वान् मूर्ख बननेकी इच्छा करत है कोई मनुष्य पशुपक्षी कीट पतंगादिकी योनिको पसंद करता है कोई नही उसीप्रकार कोई मुक्तिके आनंदसे दुःखमें आनेकी इच्छा नहीं करता इन दृष्टान्तोंसे यही विदित होता है कि, उत्तम पद छोड़कर कोई बुद्धिमान् निकृष्ट पद ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करता ऐसी बातको दयानंदजीकी बुद्धि जो उनके शरीरसेभी अति स्थूल है स्वीकार करे तो आश्चर्य नहीं मुक्त पुरुष जिनको बड़े परिश्रमसे सर्वोत्तम पद अर्थात् आत्माकी प्राप्ति होतीहै जिससे सम्पूर्ण दुःखोंकी निवृत्ति प्राप्त हुई है क्या वोह संसाररूप बंधन जन्ममरणादि अनेक दुःखोंके स्थानकी चाहै करैंगे कदापि नहीं करैंगे परन्तु ईश्वरके न्यायके कारण युक्ति लगानी पड़ी ॥

स० पृ० २४१ पं० ४ जो जितना भार उठासके उतना उसपर धरना बुद्धिमानोंका काम है जैसे एक मनभर उठानेवालेके शिरपर दशमन धरनेसे भार धरनेवालेकी निन्दा होती वैसे अल्प सामर्थ्यवाले जीवपर अनन्त सुखका भार धरना ईश्वरके लिये ठीक नहीं ॥ २५७।६

समीक्षा—स्वामीजीकी बुद्धिकी कोई कहांतक बड़ाई करे क्या सुखका भी कोई बोझ है जो जीवपर धराजायगा क्या सुखकी गठरी है या बोरी है या गाडी भरीहुई है जो ईश्वर जीवके ऊपर धर देगा बस यह बुद्धिमानी स्वामीजीकी बुद्धिमानोंहीके ऊपर छोडे देते हैं ॥

स० पृ० २४१ पं० ११ मुक्तिमें जाना वहांसे आनाही अच्छा है क्या थोडेसे कारागारसे जन्मकारागार दंडवाले प्राणी अथवा फांसीको कोई अच्छा मानता है अन्तर इतनाही होगा कि वहां मजूरी नहीं करनी पडती ब्रह्ममें लय होना समुद्रमें डूब मरनाहै ॥ २५७।१२*

समीक्षा-सुनिये पाठकगण जो कोई मुक्तिको कारागार और फांसीके समान कहता है उससे अधिक नास्तिक कौन है स्वामीजीके मतमें मुक्ति कालापानी अथवा फांसी है इससे प्रगट है कि, स्वामीजीका अभिप्राय गुप्त रीतिसे वैदिक धर्म नष्ट करनेका था और लोगोंके धर्म भ्रष्ट करनेकी इच्छा थी जैसा कि पहले सत्यार्थप्रकाशके ४५ पृष्ठमें सायं प्रातः मांससे हवन करना लिखा है नियोगादिव्यवस्था लिखी है ॥ अब समझे मुक्त जीव विना मजदूरीके बेमशक्कतकी सजावालेहैं आगेके पदमें डूबनेसे बचें कभी स्वरूपको न प्राप्तहों यही चेलोंको आज्ञाहै ॥

स० पृ० २४४ पं० ३० (प्र०) पौराणिक लोग (सालोक्य) ईश्वरके लोकमें निवास (सारूप्य) जैसे उपासनीय देवकी आकृति है वैसा बन जाना (सामीप्य) सेवकके समान ईश्वरके समीप रहना (सायुज्य) ईश्वरसे संयुक्त होजाना यह चार प्रकारकी मुक्ति मानते हैं वेदान्तीलोग ब्रह्ममें लय होनेको मोक्ष समझते हैं (उत्तर) पृ० २४५ पं० ११ पौराणिक लोगोंसे पूछना चाहिये जैसी तुह्मारी मुक्ति वैसी कीटपतंगादिकोंकी भी स्वतःसिद्ध है क्योंकि यह सब जितने लोक हैं वे सब ईश्वरके हैं इन्हीमें सब जीव रहते हैं इसलिये सालोक्य मुक्ति अनायास प्राप्त है सामीप्य ईश्वर सर्वत्र प्राप्त होनेसे सब उसके समीप हैं इसलिये सामीप्य मुक्ति भी स्वतःसिद्ध है सायुज्य जीव ईश्वरसे सब प्रकार छोटा और चेतन होनेसे स्वतः बन्धुवत् है सब जीव परमात्मामें व्याप्य होनेसे संयुक्त हैं इससे सायुज्य मुक्ति भी स्वतःसिद्ध है ॥ २६१ । १०

समीक्षा-स्वामीजीको यह खबर नहीं कि, यह आक्षेप हमपर भी आताहै जब आपका यह लेख है कि जीव मुक्तिमें ईश्वरमें रहकर विचरते हैं तौ ईश्वर सर्वत्र व्यापक होनेसे सबकी मुक्ति स्वतःही सिद्ध है फिर क्यों इतने झगडे डाले परन्तु इसमें यह जानिये कि, उपरोक्त चार प्रकारसे जीवोंकी जो मुक्ति कही है उनमें किसी प्रकारका दुःख नहीं है वे दुःखादिसे पृथक् रहते हैं और सबको इसी

* भास्करप्रकाशमें इनपर कुछ लिखतेभी न बना ।

तरहसे मानै तौ सबको तौ दुःख रहताहै मुक्तजीवको दुःख नहीं होता यही मुक्तमें विशेषता है चारोंप्रकारके मुक्तजीवोंकी पुनः आवृत्ति नहीं होती और ज्ञानी लोगोंको तौ–

मोक्षस्यनहिनिवासोस्तिग्रामान्तरमेववा
अज्ञानहृदयग्रंथिमुक्तोमोक्षइतिस्मृतः

मोक्षको कोई स्थान नहीं है अथवा कोई ग्राम नहीं है जब अज्ञानकी ग्रंथि हृदयकी टूटगई तभी मोक्ष है और सांख्यशास्त्र कर्ताके सूत्रका आशयभी यह नहीं है अर्थ यह है –

इदानीमिवसर्वत्रनात्यन्तोच्छेदः–सां० अ० १ सू० १५९

यदि सर्वकालमें बंधका अत्यन्त नाश नहीं होता वर्तमानकालवत् तौ यह अनुमान फलित हुआ (सर्वकालः मोक्षशून्यः कालत्वात् वर्तमानकालवत्) सो यह वार्ता मोक्षवादीको अनिष्ट है क्योंकि जबतक जो मोक्षाभाव मानता है तबतक शास्त्रका फलही क्या है मुक्ति तौ शास्त्रोंमें प्रतिपादन ही करी है क्यों कि, कपिलदेवजीने वामदेवकी मुक्ति सां० अ० १ सू० १५७ में मानी है तौ इस सूत्रसे मुक्ति न होनी चाहिये सो कपिलदेवजीका यह तात्पर्य नहीं कि,मुक्तिमें बंध रहता है यह अनुमान सूत्र लिखा है सिद्धान्त नहीं क्यों कि, वोह पहलेही लिख चुके हैं॥

अथत्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः–सां०अ०१सू०१

तीन प्रकारके दुःखकी जो अत्यन्त निवृत्ति नाम स्थूल सूक्ष्मरूपसे सर्वथा निवृत्ति सो अत्यन्त पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष है सो देखना चाहिये कौनसे दुःखकी निवृत्ति होनी चाहिये वर्तमान तौ थोडी देर पीछे अपने आपही निवृत्त हो जायगा अतीत कालका निवृत्त हो गयाहै परिशेषसे-भावी दुःखकी निवृत्ति ही मोक्ष है सो इससे भी मुक्तिसे लौटना सिद्ध नहीं होता ॥

स० पृ० २५४ पं० २० जो मध्यम रजोगुणी होते हैं वे राजा क्षत्रिय वर्णस्थ राजाओंके पुरोहित वादविवाद करनेवाले प्राड्विवाक वकील बैरिष्टर युद्ध विभागके अध्यक्षके जन्म पावते हैं ॥ २७१ । २४

समीक्षा–खूब स्वामीजीने वकीलोंकी तारीफ करी है अंगरेजी विद्या अंग्रेजी शब्द शास्त्रोंमें मिलाये विना स्वामीजीकी तृप्ति नहीं हुई, मनुजीके ग्रंथमें भी बैरिष्टर घुसपडे जो विलायत पास करनेसे होते हैं ॥

राजानःक्षत्रियाश्चैवराज्ञांचैवपुरोहिताः
वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमाराजसीगतिः मनु० अ० १२। ४६

अभिषेकको प्राप्तहुए राजा क्षत्रिय राजपुरोहित वाणीके युद्धमें प्रधान इनकी राजसी गतिहै स्वामीजीने वकील बैरिस्टर लगादिये ॥

इति श्रीमद्दयानंदतिमिरभास्करे मिश्रज्वालाप्रसादविरचिते सत्यार्थप्रकाशान्तर्गत-
नवमसमुल्लासस्य खंडनं समाप्तम् । १२ सि० १८९०

पं०ज्वालाप्रसाद मिश्र.

श्रीगणेशायनमः ।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतदशमसमुल्लासस्य खण्डनंप्रारभ्यते ।

भक्ष्याभक्ष्यप्रकरणम् ।

इस समुल्लासमें दयानंदजीने भक्ष्याभक्ष्य आचार अनाचारका वर्णन किया है परन्तु कुछ विशेष प्रमाण न देकर केवल बुद्धिकेही घोडे दौडाये हैं इस कारण उनका खंडन करना अवश्य है और मनुजीने जो कुछ शास्त्रमें लिखा है सो प्रमाणही है वे लिखते हैं ॥ स० २५७ ।१(२७५) ३

वेदःस्मृतिःसदाचारः स्वस्यचप्रियमात्मनः
एतच्चतुर्विधंप्राहुःसाक्षाद्धर्मस्यलक्षणम् ॥ अ० २। १२ मनु०

वेद स्मृति और सत्पुरुषोंका आचरण और जो अपनी आत्माका प्रिय अर्थात् स्वर्गलोकका ले जानेवाला हो यही साक्षात् धर्मके लक्षण है इस कारण आचारादिकी व्यवस्था मनुजीने की है वोह वहां देखलेनी परन्तु अब सत्यार्थ प्रकाशका लेख दिखलाते हैं ॥

स० पृ० २५८ पं० १३ जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखासहित छेदन करा देना चाहिये क्योंकि शिरमें बाल रहनेसे उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है डाढी मूछ रखनेसे भोजन पान अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्टभी बालोंमें रह जाता है ॥ २७६ । १६

समीक्षा–वाह स्वामीजी अब आपको कोई वेदनिन्दक कहै तो उसका कहा अनुचित नहीं होगा अथवा आप संन्यासी होकर शिखा डाढी

मूंछ नहीं रखते वैसेही आप चाहते हैं कि, सब घोटमघोट हो जायँ और इस आर्य्यावर्त देशमें भी छः महीने अधिक उष्णता होती है प्रत्यक्ष लिख दिया होता कि, छः महीनेको चुटियातक मुंडवा देनी चाहिये विशेष करके अपने शिष्योंको तौ आप यही आज्ञा देते कि, तुम लोग तौ शिखा सहित शिरके बाल मुंडवा दो, क्योंकि गरमीसे बुद्धि कम हो जायगी परन्तु स्वामीजीने सत्यार्थप्रकाश शिरमें ऊनी वस्त्र बांधकर लिखी होगी तभी बुद्धिहीनताकी बहुत बातें लिखी हैं, भला डाढी मूंछवालोंका तौ खानपान अच्छीतरह नहीं हो सक्ता, इस कारण डाढी मूंछ न रक्खैं परन्तु शिखासे क्या बिगड़ता है वोह तौ भोजन पानमें बाधा नहीं डालती कदाचित् एक बातका भय है कि, लड़ाईमें कोई चुटिया पकड़लेगा इस कारण चुटिया कतरवानेकी आज्ञा दी परन्तु इतना औरभी लिख देते कि लडाईमें कानभी पकडेजाते हैं तौ कानभी करतरवा देनेकी आज्ञा लिख देते फिर शिखा सूत्रका संस्कारविधिमें धारण करना वृथाही लिखा है फिर यज्ञोपवीतभी धारण करना वृथा है तौ यह संस्कार उड़ाकर वेदपरभी हरताल फेरदी होती यह न सूझा कि यदि डाढी मूछमें जूठन लगजायगी तो क्या पानीसे नहीं धुलसक्ती बस यह मनुष्योंको भ्रष्ट करनेको स्वामीजीने ढंग निकाला था क्योंकि आर्योंके यह दोही विशेष चिह्न हैं शिखा और सूत्र सो स्वामीजीने यही दूर करनेका विज्ञापन कर दिया इसकारण इनकी बात माननी ठीक नहीं संन्यासको छोडकर और किसी समयभी शिखाका त्याग करना नहीं चाहिये यही वेदकी आज्ञा है और स्त्रियोंके बाल मुँडवाने चाहिये या नहीं गरमियोंमें उनकी बुरी दशा होगी नियोगियोंको मुंडा खूबरहैंगी ॥

पृ० २६४ पं० ३

आर्याअधिष्ठितावाशूद्राःसंस्कर्तारःस्युः।प्र०२पटल०२खं०२सूत्र ४

यह आपस्तंबका सूत्र है आर्योंके घरमें शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्रीपुरुष पाकादि सेवाको करैं ॥

समीक्षा--स्वामीजीकी बुद्धि जानै कौन उडाकर लेगया मूर्ख स्त्रीपुरुष भला रसोई क्या करसकैगा, जब कि सूपशास्त्रभी ग्रंथ संस्कृतमें विद्यमान हैं तथा औरभी भोजन बनानेके कितनेही ग्रंथ हैं विना उनके जाने धनीपुरुषोंके घरोंमें विविध प्रकारके व्यंजन बनाये जाते हैं यह किसप्रकार बनासकैंगे और भोजन बनानाभी एक बड़ी चतुरताका काम

है बहुधा अब तो यह कर्म स्त्रियां करती हैं और पूर्वकालमेंभी स्त्री बहुधा रसोई बनातीथीं पढी भी होतीथीं और व्यंजन विविध प्रकारके बनातीथीं और बनाती हैं केवल बडे २ राजाओं और धनियोंके यहां रसोईये होते हैं, आगेभी होतेथे सो यह कर्म शूद्र नहीं करतेथे जो ब्राह्मण वेदादि शास्त्र नहीं जान्तेथे और सूपशास्त्रही जान्तेथे वे रसोईका कार्य करतेथे और सूत्रार्थ तुह्मारे प्रकारसेही करै तौ यह अर्थ होगा कि, आर्योंके यहां शूद्र संस्कार करनेवाले अर्थात् बुहारी देना चौका वर्तन मांजना टहल सेवा आदि संशोधनके कार्य शूद्र करतेथे और अबभी यह काम कहारादि करतेही हैं परन्तु भोजन बनवाकर खाना ऐसा तौ इस सूत्रमें कोई शब्द नहीं है ॥

पृ० २६४ पं० १० जिन्होंने गुड चीनी घृत दूध पिशान शाक फल फूल खाया उन्होंने जानो सब जगत्के हाथका खाया और उच्छिष्ट खाया ॥ २८३।१३

समीक्षा--स्वामीजीके इस वचनसे क्या प्रतीत होता है यही कि, सब जातिके हाथका भोजन करले सब जगत् एक जात होजाय पहले चुटिया कटवाई अब सब जात एक बनाई यह तो गुप्त अभिप्राय ही था कि, सब जाति एक करदेनी स्वामीजी भी रोज बूरा खातेही थे इससे एक बबरची नौकर रखलेते तो बडा सुभीता होजाता क्योंकि आप तो यवन चमार कुम्हार सबको एकही बनाना विचारते हैं क्योंकि गुड चीनी तौ प्रायः सभी खाते हैं तो सबही भ्रष्ट हुए और आपहीने यहभी लिखाहै पृ० २६४ पं० २ कि शूद्रके पात्र और उसके घरका पका हुआ अन्न आपत्कालके विना न खावै जब सबही एक होगये बूरा घी आदि खानेसे तौ शूद्रके यहांका फिर क्या दोष रहा और हुक्का पीनेकी बात न लिखी ॥

स० पृ० २६५ पं० २० और मद्यमांसाहारी म्लेच्छ जिनका शरीर मद्यमांसादिकोंके परमाणुओंसे पूरित है उनके हाथका न खावै ॥२८५।१

समीक्षा-पीछे लिख आये हैं कि, घी आदि खानेवालेने सबके हाथका खाया अब म्लेच्छके हाथका खानेका निषेध करते हैं म्लेच्छोंका शरीर मांसके परमाणुओंसे पूर्ण है और शूद्र भी तौ मांसही खाते हैं उनके हाथका भोजन करनेसे वोह बात जो म्लेच्छोंके हाथके भोजन करनेमें होतीहै क्या नहीं होगी शोच है ऐसी बुद्धिपर कहीं कुछ कहीं कुछ लिखते हैं इसीसे तौ कहते हैं स्वामीजीकी बुद्धि भी इसीकारण विपरीत होगई है शूद्रके हाथका बनाया भोजन कभी करना न चाहिये ॥

स० पृ० २६६ पं० २६ यह राजपुरुषोंका काम है कि, जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हो उनको दंड देवै और प्राणभी वियुक्त करदे(प्रश्न) क्या उनका मांस फेंकदें (उत्तर) चाहें फेंकदें चाहें कुत्ते आदि मांसाहारियोंको खिला देवैं वा जला देवै अथवा कोई मांसाहारी खावै तौभी संसारकी कुछ हानि नहीं होसक्ती किन्तु उस मनुष्यका स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक होसक्ता है ॥ २८६।८

समीक्षा—क्या स्वामीजीने मनुष्योंके खानेकीभी परिपाटी निकाली? क्या मनुष्यभी खाये जाते हैं? हिंसक जीव, शेर,भेडिया चीता आदिका मारना राजाओंका काम है परन्तु इनका मांस तौ कोई मनुष्य नहीं खाता फिर मनुष्यका मांसभी मनुष्य नहीं खाते यह दोनों बातें बुद्धि विरुद्ध हैं और जब मांस खानेसे मनुष्यका स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है तो देशकी हानि कैसे नहीं बहुत बडी हानि है यह मांस विधि स्वामीजीने अलौकिक लिखी है ॥

स० पृ० २६७ पं० ८ (प्रश्न) एकसाथ खानेमें कुछ दोष है वा नहीं (उत्तर) दोष है क्योंकि एकके साथ दूसरेका स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती जैसे कुष्ठी आदिके साथ खानेसे मनुष्यका रुधिर बिगड़ता है वैसे दूसरेके साथ खानेसेभी कुछ बिगाड होही जाता है ॥ २८६।१९

समीक्षा—जब कि साथ भोजन करनेसे स्वभाव प्रकृति आदिमें अन्तर पडताहै तौ भला जो भोजन बनावैगा तौ उसके हाथसे आटा मीडना आदि होनेसे क्या स्वभावमें विकृति नहीं होगी बेशक होगी इसकारण शूद्रादिकोंके हाथका भोजन न करना चाहिये अब और देखिये—

स० प्र० पृ० २६८ पं ६ मनुष्यमात्रके हाथकी पकीहुई रसोई खानेमें क्या दोष है (उत्तर) दोष है क्योंकि जिन उत्तम पदार्थोंके खाने पीनेसे ब्राह्मण और ब्राह्मणीके शरीरमें दुर्गन्धादि दोषरहित रजवीर्य उत्पन्न होता है वैसा चांडाल और चांडालीके शरीरमें नहीं क्योंकि चांडालका शरीर दुर्गन्धयुक्त परमाणुओंसे भरा हुआ होता है वैसा ब्राह्मणादि वर्णोंका नहीं इसलिये ब्राह्मणादि उत्तम वर्णोंके हाथका खाना और चांडालादि नीचके हाथका नहीं खाना २८७।१८

समीक्षा—कदाचित् स्वामीजीने यह समुल्लास शूद्रके हाथका भोजन करके ही लिखा हो तो कुछ आश्चर्य नहीं परस्पर विरुद्धतासे यह समुल्लास पूरित है पूर्व तौ शूद्रके हाथका भोजन करना लिखा कहीं एक जाति होनेका आशय झलकाया कहीं मनुष्यादिकोंका मांसही भक्षण

करना लिखा, अन्तमें सब बातोंका निचोड़ सत्य बातही मुखसे निकली सिद्धान्त यह हुआ कि, नीचके हाथका भोजन करना नहीं चाहिये क्यों कि, नीचके हाथका भोजन करनेसे उनके शरीरकी दुर्गन्धी आदिसे भोजन हानि और रोगकारक होकर स्वभावको बिगाड़ता है इसीकारण ब्राह्मणादि वर्णोंको शूद्रके हाथका बनाया भोजन करना नहीं चाहिये और यही कारण है कि, धान्यकुधान्य आदिसे अबभी संतान बुद्धिहीन दरिद्री और मूर्ख होती है, मनुजीने लिखा है-

राजान्नंतेजआदत्ते शूद्रान्नंब्रह्मवर्चसम्
आयुःसुवर्णकारान्नंयशश्चर्मावकर्तिनः १ अ०४।२१८
कारुकान्नंप्रजांहन्तिबलंनिर्णेजकस्यच
गणान्नंगणिकान्नंचलोकेभ्यःपरिकृंतति २१९
नाद्याच्छूद्रस्यपक्वान्नंविद्वानश्राद्धिनोद्विजः
आददीताममेवास्मादवृत्तावेकरात्रिकम् २२३

अर्थात् राजाका अन्न तेजका नाश करता है शूद्रका अन्न ब्रह्मसंबन्धी तेजका नाश करता है सुनारका अन्न आयुका और चमारका अन्न यश का नाश करता है १ बढईका अन्न संततिका नाश करता है धोबीका बलको गणिकाका अन्न स्वर्गादिलोकोंके फलोंको नाश करता है २ विद्वान् ब्राह्मणादि शूद्रके हाथका बनाया हुआ पक्वान्न भोजन न करै और जब कहीं आपदा आन पडे और भोजन न मिलता होय तौ एक दिनके निर्वाहमात्र (कच्चा सीधा दाल आटादि)ले लेवैं यहांभी यही विदित है कि, शूद्रके हाथका बना भोजन नहीं करना. जब उनका अन्न भी वर्जित है तौ हाथका बना कैसे खाय॥

स० प्र० पृ० २८८ पं० १ पांचवीवारका

प्रश्न-जो गायके गोबरसे चौका लगाते हो तो अपने गोबरसे चौका नहीं लगाते (उत्तर) गायके गोबरसे वैसा दुर्गन्ध नहीं होता जैसा कि मनुष्यके मलसे, गोमय चिकना होनेसे शीघ्र नहीं उखडता न कपडा बिगडता न मलीन होता है ॥

समीक्षा-छिः छिः कैसे घिनोंने प्रश्नोत्तर हैं मनुष्योंके मलमें दुर्गन्ध न होती तौ दयानन्दजी इसीसे चेलोंके घरका चौकालगवाते धन्य है ऐसे प्रश्नोत्तरके विना सत्यार्थ प्रकाश अधूरा रहजाता ॥

इसप्रकार इस दशमसमुल्लासके साथ सत्यार्थप्रकाशके पूर्वार्द्धका खंडन किया गया क्यों कि, इन्ही दशमसमुल्लासोंमें स्वामीजीने अपना मत स्थापन किया है इसको जो कोई मनलगाकर पक्षपातरहित हो विचार करैगा वोह दयानंदीलीलासे बचकर परमपदका अधिकारी होगा क्यों कि, इसमें यथाऽस्थानपर वेदवेदान्तोंके व्याख्यानभी किये गये हैं जिससे ज्ञानकी प्राप्ति होगी मेरा परिश्रम इसकारण है कि, लोग सत्यासत्यका निर्णय करैं मैंने इस ग्रंथमें जो कुछभी लिखा है बहुत निर्णय और विचारसे लिखा है और वेदादि वोही शास्त्र जो दयानंदसरस्वतीने माने हैं सिवाय उनके प्रमाणोंके और कोई अक्षरभी अपनी तरफसे नहीं लिखा अब इसके आगे ११ समुल्लासमें जो आर्य्यावर्तके मतोंका स्वामीजीने खंडन किया है उसमें स्मार्तमतका मंडन किया जायगा क्योंकि, श्रुति स्मृति प्रतिपादित धर्मही सनातन धर्म है उसीका अनुष्ठानकरना योग्य है उसीका मंडन किया जायगा और धर्मवाले अपना उत्तर आप दे लैंगे ॥

इति श्रीदयानन्दतिमिरभास्करे मिश्रज्वालाप्रसादविरचिते सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतदशमसमुल्लासखण्डनम् ॥ १४ सि० १८९० रविः

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ दयानंदतिमिरभास्करस्योत्तरार्द्धप्रारम्भः ।

भूमिका.

यह वार्ता सब पर विदित है कि, महाभारतसे पूर्व इस देशमें वेदमतसे भिन्न और कोई मत नहींथा जब महाभारतके पश्चात् अविद्या फैली तब जहां तहां अनेक मत दृष्टिगोचर होने लगे और जिसके मनमें जो आया सो मत चलाया इसीकारण इस देशकी एकता नष्ट होगई और विविधक्लेशोंसे भारतवर्ष व्याप्त होकर धनहीन हो अधोगतिको प्राप्त हुआ और जब बहुतसे मत प्रचलित हुए तौ इस अन्धाधुन्धमें स्वामी दयानंदजीनेभी एक मत अपना नवीन खडा किया जिसमें सम्पूर्णतः वेदविरुद्धही वार्ता प्रचलित की है और वेदमंत्रोंके अर्थ बदलकर अपने प्रयोजनानुसार कल्पना कर लिये हैं तथा पुराण मूर्तिपूजन तीर्थ श्राद्धादिक सबहीको वृथा कथन किया है इस मतका मुख्य ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश है जिसके दश समुल्लासोंका खंडन इस ग्रंथके पूर्वार्धमें करचुके हैं यह एकादश समुल्लासका खंडन इस ग्रंथके उत्तरार्द्धमें लिखते हैं ग्यारहवें समुल्लासमें स्वामीजीने पुराण तीर्थ मूर्तिपूजनका खंडन कियाहै तथा अन्यमतोंकाभी खंडन किया है जो इस समय प्रचलित हो रहे हैं परन्तु मेरा तात्पर्य उन मतोंको अच्छा बुरा कहनेका नहीं है इस बातको सम्पूर्ण आर्यगण मानते हैं और मुझेभी निर्भ्रान्त स्वीकार है कि, जो कुछ वेदादि शास्त्रोंमें आज्ञा है उसे मानना परम धर्म है और जो उन ग्रंथोंके विपरीत हैं वोह अधर्महै इस कारण मैं इस स्थानमें केवल उन्ही बातोंकी चर्चा करूंगा जिनका वेदसे संबन्ध है औरमतवालोंको यदि अपना मत सत्य सिद्ध करना हो तौ वोह अपना जवाब देलेंगे मैं उनकी ओरसे उत्तरदाता नहीं क्योंकि मैं तौ सनातन वैदिक मतकोही श्रेष्ठ मानताहूं और वास्तवमें यही मत श्रेष्ठभी है इस पुस्तकके लिखनेसे मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि, किसीका चित्त दुःखीहो किन्तु मेरा आशय यह है कि,इस ग्रंथको विचारकर सत्यासत्यका निर्णय करकै सत्यका ग्रहण और असत्यका त्याग करैं यही इस संसारमें मनुष्यजन्मका फल है कि श्रेष्ठकर्मोंका अनुष्ठान कर मोक्षके भागी बनैं ॥

पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतैकादशसमुल्लासस्य खंडनं प्रारभ्यते ।

मंत्रप्रकरणम् ।

स० पृ० २७५ पं० ३ यह सब बातें जिनसे अस्त्रशस्त्रोंको सिद्ध करतेथे वे मंत्र अर्थात् विचारसे सिद्ध करतेथे और चलातेथे और जो मंत्र अर्थात् शब्दमय होताहै उससे कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं होता और जो कोई कहै कि मंत्रसे अग्नि उत्पन्न होती है तौ वोह मंत्र जप करनेवालेकें हृदय और जिह्वाको भस्मकर देवै मारने जाय शत्रुको और मररहै आप मंत्र नाम है विचारका ॥ २९५ ॥ ९

समीक्षा–धन्य है स्वामीजी खूब मंत्रोंकी रेढ लगाई भला यह तौ कहिये महाभारतमें लिखा है जब अश्वत्थामाने नारायणास्त्रका प्रयोग कियाथा तौ उस समय जिसने अस्त्र नहीं खोले वोह अस्त्र उसीके ऊपर टूटकर गिरने लगा अब विचारिये कि विना मंत्रके जड़वस्तुमें क्या सामर्थ्य है कि कुछ समझसकै और अश्वत्थामाने जो पाण्डववंश निर्वंश करनेको अस्त्र त्यागन कियाथा तौ वोह उत्तराके गर्भमेंभी मारनेको प्रविष्ट हुआ तौ क्या वहां उत्तराके गर्भमें विचार वा सलाहसे बाण छोड़ाथा जो परीक्षित् गर्भहीमें मृतक होगया पीछे कृष्णने जिवाया यह मंत्रहीका तौ प्रभाव था सर्प अबतक मंत्रोंको मान्ते हैं मंत्र पढनेसे बीछू उतरजाता है यदि मंत्रका प्रभाव न होता तौ एक बाण छोडनेसे पत्थर वा पानी वरसने लगै और जन्मेजयके यज्ञमें ब्राह्मणोंने मंत्र पढकै सर्पोंका आह्वान कियाथा और इन्द्रसहित तक्षकका सिंहासन उड आया और जिस मंत्रमें अग्नि उत्पादन करनेकी शक्ति होगी वोह उसी स्थानमें अग्नि उत्पन्न करैगा ज़हां कि प्रेरककी इच्छा होगी प्राचीनऋषि मंत्रद्वारा देवताओंको बुलालेतेथे और यह जो स्वामीजीने कहा है कि शब्दमय मंत्र होता है उससे द्रव्य उत्पन्न नहीं होता यहभी असत्य है फिर वेदवाक्य तौ कहते हैं ' स्वर्गकामो यजेत , यदि केवल मंत्र शब्दमय है तौ स्वर्ग कैसे होसक्ता है यदि कुछ शब्दसे नहीं होता तौ परीक्षित, वेन, सगरपुत्रोंको वाणीमात्रसेही तौ शाप दियाथा और वोह सत्य हुआ तथा कश्यपजीके भेजेहुए वैद्यने तक्ष-

कके भस्म कियेहुए वृक्षको दो घड़ीमें पूर्ववत् करदिया इससे मंत्रकी सामर्थ्य न मान्ना स्वामीजीकी अविद्या है एक जर्मनी कईसहस्रको इस देशके अस्त्रविद्याकी पुस्तक खरीद कर ले गया है मंत्रका वर्णन मंत्र-शास्त्रोंमें विशेष है तथा पहले लिखचुके हैं ॥

स० पृ० २७७ पं० २७ "ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः" पाण्डवगीता

अर्थात् जो कुछ ब्राह्मणोंके मुखसे वचन निकलता है वोह जानों साक्षात् भगवान्‌के मुखसे निकला ॥ २९८ । ९

समीक्षा—स्वामीजीने इसका अर्थ नहीं जाना तभी तौ उलटा लिखदिया इसका अर्थ यह है कि ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः—यह प्रयाण मुहूर्तके विषयमें एक कोई श्लोक है. "उषःप्रशंसते गर्गः शकुनं च बृहस्पतिः ॥ अङ्गिरा मनउत्साहं ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः" ॥ इससे गर्ग, बृहस्पति और अंगिरा इन्होंके अभिप्राय जैसे भिन्न २ कहे वैसे जनार्दन नामक ज्योतिर्वित्ताका अभिप्राय यह है कि, ब्राह्मणका वचन लेकर प्रयाण करना—इससे जिसको जो इष्ट मालूम हुआ उसने अपना २ सिद्धान्त कहा. इसमें स्वामीजीका कहा अर्थ कहां सिद्ध होता है. अशुद्ध अर्थ करके "स्वयं नष्टः परान्नाशयति" यह स्वामीजीकी लीला उनकोही सोहती है कारण, बाबावाक्यं प्रमाणंका गपोडा तौ तुम्हाराही है आपकी लकीर पर चेले फकीर हुयें फिरते हैं और महात्मा ब्राह्मणोंका वाक्य जनार्दनका वाक्य इसकारण होसकताहै कि वे अपनी ओर से कुछ नहीं कहते जो वेद आज्ञा देता है सोई कहते हैं जैसे आपके अग्नि आदिके मुखसे निकले वेद ब्रह्मवाणी ही कहाये ॥

स० प्र० पृ० २७८ पं० १३ तौ हम कौन हैं (उत्तर) तुम पोप हो (पुनः पं० १४ में) छल कपटसे दूसरोंको ठगकर अपना प्रयोजन साधनेवालेको पोप कहते हैं ॥ २९८ । २१

समीक्षा—यह स्वामीजीने संस्कृत छोड अब रूमनभाषाका आश्रय लिया यह पोप शब्दही रूमनभाषाका स्वामीजीके मतका नाशक है क्यों कि, आपही १४ पंक्तिमें पोपके अर्थ बड़ा और पिता लिखते हैं जब रूमनभाषामें तौ इसके अर्थ पिताके लिखे हैं तौ छली कपटीके अर्थ कौनसी भाषामें है किसीमें नहीं तौ स्वयं कल्पना करना धूर्तता है या नहीं और फिर कहते हैं कि हमने कोई शब्द अपनी ओरसे नहीं लिखा क्या स्वामीजीको कोई संस्कृतका शब्द नहीं मिला और वास्तवमें यह पोप शब्दका कल्पित अर्थ तुह्मीमें घट सक्ता है कि, (अन्यमि-

च्छस्व सुभगे पतिं मत्) इत्यादि वेदमंत्रोंका जहां तहां अर्थ बदल दिया है, अपना मत चलानेके लिये वेदभाष्यके नामसे चंदा बटोरना तथा पुस्तकोंकी कीमत चौगुनी करकै रजिस्टरी कराना इत्यादि यह ठगाई नहीं तौ और क्या है तथाच तुह्मारे मतके एक आनन्द रुपया गडाप गये, एकआनंदने जाटनीकी कन्या हरण की गूजर गौओंका रुपया गड़ाप गये इससे तुम चेलोंसहित पोप हो जिस मतके आचार्यही पोप हैं तौ चेलोंकी क्या ठीक वे तौ महापोप कहे जांय तौ ठीक है ॥

स० प्र० पृ० २८७ पं० १३ शंकराचार्यके पूर्व शैवमतभी थोड़ासा प्रचलित था उसकाभी खंडन किया पुनः पं०१९ उन दोनों जैनियोंने अवसर पाकर शंकराचार्यको ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि, उनकी क्षुधा मन्द होगई पश्चात् शरीरमें फोड़े फुनसी होकर छः महीनेके भीतर शरीर छूट गया ॥ ३०८ । २२

समीक्षा--शंकराचार्य ने शैवमतका खंडन नहीं किया वे स्वयं शिवके उपासक थे उनके बनाये हुए बहुत स्तोत्र विद्यमान हैं शिवापराधभंजन स्तोत्र उन्हीका बनाया हुआ है फिर यहभी कहना असत्य है कि, शंकराचार्यको विषैली वस्तु दीगई विषैली वस्तुसे क्षुधा मन्द हो गई यह कहांका लेख है यह सब कुछ असत्य है और यदि विचारा जाय तौ यह सब कुछ आपहीके ऊपर हुआ है आपको विष दिया गया शरीरमें फलक पडगये अतीसार संग्रहणीनेभी दुःख दिया स्वामीजीकी ही यह दशा हुई जो उनके लिये किसी स्वार्थीने ऐसा किया जिसका हमको भी दुःख है ॥

स० प्र० पृ० २८७ पं० २९ जो जीव ब्रह्मकी एकता जगत् मिथ्या शंकराचार्यका निजमत था तौ वोह अच्छा नहीं और जो जैनियोंके खंडनके लिये उसमतका स्वीकार कियाहो तौ कुछ अच्छा हो [३०९ । १०] और पृ० २८७ पं० १० अन्तमें युक्ति और प्रमाणसे जैनियोंका मत खंडित और शंकराचार्यका मत अखंडित रहा ॥ [३०८ । १२]

समीक्षा--स्वामीजीकी बुद्धिकी कहांतक ठीक लगाई जाय पहले लिखा कि युक्ति और प्रमाणोंसे शंकराचार्यका मत अखंडित रहा अब कहते हैं कि जो शंकराचार्यका निजमत था तौ अच्छा नहीं भलाजी जो वोह सप्रमाण और युक्तियुक्त था तौ निज मत कैसा और अच्छा क्यों नहीं और जब कि शंकराचार्यने जैनियोंके जीतनेको यह मत स्वीकार

किया तौ वोह तौ छल किया और वैदिक मतमें हीनता आगई कारण कि, सत्मतसे तौ न जीतसके बनावटसे जीता तौ यह सिद्ध हुआ कि, स्वामी शंकराचार्यने छलसे जीता तौ वैदिकमत कच्चा प्रतीत होता है फिर शंकराचार्यको आप विद्वान् भी बतलाते हैं जब्र विद्वान् थे तौ सत्य शास्त्रानुसारही जय पाई बनावट नहीं किन्तु यह बात स्वामीजीने ही कीहै कि, ईसाई यवनोंके शास्त्रार्थको अर्थही बदल दिये तथा जब श्राद्धतर्पण मूर्तिपूजनमें यवनादिकोंका आग्रह देखा तौ इसे छोडकर वेदमें रेलतारबिजलीही भरदी इससे यह बात दयानंदजीमेंही प्रतीत होतीहै शंकराचार्यने कुछ बनावट नहीं की फिर आगे इसके स्वामीजीने अद्वैतवाद् लिखा है जो अटकल पच्चू है उत्तर उसका पूर्व लिख चुके हैं ॥

स० पृ० २९४ पं० २०

१ नेतरोनुपपत्तेः अ० १ । पा० १ सू० १६
२ भेदव्यपदेशाच्च अ० १ । १ । १७
३ विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यांनेतरौ अ० १ । १ । २२
४ अस्मिन्नस्यचतद्योगंशास्ति अ० १ । १ । १९
५ अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् अ० १ । १ । २०
६ भेदव्यपदेशाच्चान्यः अ० १ । १ । २१
७ गुहांप्रविष्टावात्मानौहितद्दर्शनात् १ । २ । ११
८ अनुपपत्तेस्तुनशारीरः १ । २ । ३
९ अन्तर्याम्यधिदैव्यादिषुतद्धर्मव्यपदेशात् १ । २ । १८
१०शारीरश्चोभयेपिहिभेदेनैनमधीयते १।२।२०व्याससूत्राणि

ब्रह्मसे इतर जीव सृष्टिकर्ता नहीं है क्योंकि इस अल्पज्ञ अल्प सामर्थ्यवाले जीवमें सृष्टिकर्तृत्व नही घटसक्ता इससे जीव ब्रह्म नही १ "रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति" यह उपनिषदका वचन है जीव और ब्रह्म भिन्न हैं क्योंकि इन दोनोंका भेद प्रतिपादन किया है जो ऐसा न होता तौ रस अर्थात् आनन्द स्वरूप ब्रह्मको प्राप्त होकर जीव आनन्दस्वरूप होता है यह प्राप्ति विषय ब्रह्म और प्राप्त होनेवाले जीवका निरूपण नहीं घटसक्ता इस कारण जीव ब्रह्म एक नहीं २ "दिव्योह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरोह्यजः । अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रोअक्षरात्परतः परः"

मुं०२खं०१मं०२दिव्यशुद्ध मूर्तिमत्त्वरहित सबमें पूर्ण बाहर भीतर निरन्तरव्यापक जन्म मरण शरीर धारणादि रहित श्वासप्रश्वास शरीर मनके सम्बन्धसे रहित प्रकाशरूप इत्यादि परमात्मामें विशेषण और अक्षर नाशरहित प्रकृतिसे परे अर्थात् सूक्ष्म जीव उससे भी परमेश्वर परे अर्थात् ब्रह्म सूक्ष्म है प्रकृति और जीवसे ब्रह्मको भेद प्रतिपादनरूप हेतुओंसे प्रकृति और जीवोंसे ब्रह्म भिन्न है (यह लेख क्याही स्वामीजीके पांडित्यका बोधक है) ३ इसी सर्व व्यापक ब्रह्ममें जीवका योग वा जीवमें ब्रह्मका योग प्रतिपादन करनेसे जीव और ब्रह्म भिन्न है क्यों कि, योग भिन्न पदार्थोंका हुआ करता है ४ इस ब्रह्मके अन्तर्यामी आदि धर्म कथन किये हैं और जीवके भीतर व्यापक होनेसे व्याप्य जीव व्यापक ब्रह्मसे भिन्न है क्योंकि व्याप्य व्यापक संबंधभी भेदसे संघटित होता है ५ जैसे परमात्मा जीवसे भिन्न स्वरूप वैसे इन्द्रिय अन्तः करण पृथ्वी आदि भूत दिशा वायु सूर्यादि दिव्य गुणोंके भोगसे देवतावाच्य विद्वानोंसेभी परमात्मा भिन्न है (यहां तौ खूबही विद्याका परिचय दिया) ६ "गुहां प्रविष्टौ सुकृतस्य लोके" इत्यादि उपनिषदके वचनोंसे जीव और परमात्मा भिन्न है वैसाही उपनिषदोंमें बहुत ठिकाने दिखलाया है ७ शरीरे भवः शारीरः शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है (अशरीरधारी होगा) क्योंकि ब्रह्मके गुणकर्म स्वभाव जीवमें नहीं आते ८ (अधिदैव) सब दिव्य मन आदि इन्द्रियां पदार्थों (अधिभूत) पृथिव्यादिभूत (अध्यातम) सब जीवोंमें परमात्मा अन्तर्यामी रूपसे स्थित है क्योंकि उसी परमात्माके व्यापकत्वादि धर्म सर्वत्र उपनिषदोंमें व्याख्यात हैं ९ शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है क्योंकि ब्रह्मसे जीवका भेद स्वरूपसिद्ध है १०इत्यादि शारीरक सूत्रोंसेभी स्वरूपसे ब्रह्म और जीवका भेद सिद्ध है और उपसंहार और आरम्भभी अशुद्ध है क्यों कि जब कोई दूसरी वस्तुही नहीं उत्पत्तिप्रलयभी ब्रह्मके धर्म होजाते हैं ॥

समीक्षा–यह बात तौ प्रगट है कि, स्वामीजीका वेदान्तमें कैसा कुछ अभ्यासहै और जीवब्रह्मकी एकता पूर्व प्रतिपादन कर चुके हैं अब इन सूत्रोंके यथार्थ अर्थ दिखलाते हैं कि, यह सूत्र कौनसे प्रकरणके हैं और कौनसे स्थलके हैं ॥

आनन्दमयाधिकरण.

नेतरोनुपपत्तेः अ० १ पा० १ सू० १६

आनन्दमयके प्रकरणसे सुना है कि, एकने बहुतकी इच्छा की इच्छासे विश्व सृजा है सो यह काम जीवका नहीं है तिससे जीव आनंदमय नहीं है अथवा आनंदमयका मुख्य वर्णन नहीं है क्योंकि ब्रह्मका जाननेवाला ब्रह्मको प्राप्त होता है और जो ब्रह्म असत् जानता सो असत् ऐसे आगे पछिके संदर्भके विरोधसे संसारी जीव या प्रधान आनन्दमय नहीं है किन्तु ईश्वरही है "सोकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति सतपोऽतप्यत सतपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत यदिदंकिंचेति" जो कुछ कार्य है सो सब ईश्वर ने देखके रचा है ॥

भेदव्यपदेशाच्च १७

रसो वै सः रसंह्येवायं लब्ध्वानंदी भवतीति(अर्थ) जीव ब्रह्मके लाभसे आनन्द होता है यहां प्राप्य ब्रह्म और प्रापक जीव है यह भेदका कहना है अविद्याकल्पित देह कर्ता भोक्ता विज्ञानात्मासे ईश्वर अन्यहै जैसे खड्गधारी मायावी सूत्रपर चढकर आकाशको जाता सा दिखाई देता है और वास्तवमें वोह मायावी भूमिपरही खडा है जैसे व्योम घटादि उपाधिसे भिन्न अनुपाधिक है तैसेही जीव ब्रह्मका भेद है वास्तव नहीं ॥

अस्मिन्नस्यचतद्योगंशास्ति १९

इस आनन्दमयके प्रकरणमें जीवका योग आनन्दमय ब्रह्मके साथ वेद उपदेश करता है उससे उपचारका इच्छासेभी आनंदमय वाक्यका अर्थ प्रधान या जीव नहीं है (यथा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येनात्म्येऽनिरुक्ते निलयेऽभयं प्रतिष्ठां विंदतेऽथ सोऽभयङ्गतो भवति तदाह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुतेऽथ तस्य भयं भवतीति) अर्थ-तादात्म्यसे ईश्वरको देखै सो देखना परमात्माके ग्रहणसे बनता है न जीव या प्रधानके ग्रहणमें तिससे आनन्दमय परमात्मा है न कि विज्ञानात्मा श्रुति-सवाएव पुरुषोन्नरसमयस्तस्माद्वा एतस्मादन्नरसमयादन्योन्तर आत्मा प्राणमयस्तस्मादन्योन्तर आत्मा विज्ञानमय इति अर्थ यहां परभी विकारार्थकी परम्परासे आत्मा अर्द्धजरतीय है च हेतुमें है जिससे आनन्दमयको आनन्दमयका सम्बन्ध वेदने उपदेश किया है तिससे उपासनाके लियेभी आनन्दमय प्राधान्य नहीं है और आनन्द प्रचुर कहनेसे दुःख अल्पभी मत समझो अद्वितीय से "श्रुति" रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवतीति ॥

हिरण्यमयाधिकरण.

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् २०

परमेश्वरस्य धर्मा इहोपदिश्यन्त इति सौत्रोनुवादः छान्दोग्यके प्रथम प्रपाठकमें उद्गीथ उपासनाओंके बीच गौण उपास्योंका उपदेश किया है वोह यह कि सूर्यके बीचमें हिरण्यमय पुरुष है और ऋक् साम उक्थ यजुः जो ब्रह्म धर्म है और ब्रह्म सब पापोंसे मुक्त अद्वितीय ईश्वर कहाहै यह अर्थ इन श्रुतियोंसे लिया है "सैवर्क्तत्सामतदुक्थन्तद्यजुस्तद्ब्रह्मेति १ उदेति हवै सर्वेभ्यःपाप्मभ्य इति अथ यएषोन्तरादित्ये हिरण्मयःपुरुषो दृश्यते" इत्यादिमें (साइति) संशय है कि विद्या कर्मकी अतिशयसे बडा होके सूर्यादि प्राप्त उपास्य कहा है या नित्य सिद्ध ईश्वर है फिर रूपी सुननेसे संसारी है न कि ईश्वर नीरूपसे निरूपका रूप उपासनाके लिये मान लियाहै "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्" इस श्रुतिसे और ईश्वर अपनी सत्तासेही निराधार ठहरा है "सभगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वेमहिम्नीति" इस वाकोवाक्यरूप श्रुतिसे निर्विकार अनन्त है "आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः" इस श्रुतिसे कभी २ विकारोंसे भी कहा है सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरस इत्यादि श्रुतिसे, तात्पर्य यह है कि जो बाहर गंध रसादि देखते हैं सो सब ईश्वरकी सत्ताही है और न कि मृदु द्रुत कठिनादि वस्तु कुछही है तिससे ईश्वरही सूर्य और नेत्रके बीच उपदिष्ट है "सोसावहम्" वोह मैं हूं ॥

भेदव्यपदेशाच्चान्यः २१

जो सूर्यमें है इससे ईश्वर अन्य है इस भेदसे सूर्य आधार और ईश्वर आधेय जानपडता है यह अर्थ इस श्रुतिसे लिया है "य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरोयमादित्यो न वेदयस्यादित्यः शरीरं यआदित्यमन्तरोयमयत्येषत आत्मान्तर्याम्यमृतः" इति इससे यह सिद्ध हुआ कि; हिरण्मय ईश्वरही है न कि, देवतादि इसका अर्थ भी स्वामीजीने गडबडमें लिखा है ॥

मनोमयाधिकरण.

अनुपपत्तेस्तुनशारीरः--अ १ पा० २ सू० ३

मनोमय ब्रह्म है और जीवमें सत्यसंकल्पादि गुणोंका असंभव है तिससे मनोमयादि धर्मोंसे उपास्य नहीं हैं यहां कईएक शंका सूत्र देकर पीछे सिद्धान्तसूत्र लिखा है कि:-

अर्भकौकस्त्वात्तद्व्यपदेशाच्चनेतिचेन्ननिचाय्यत्वादेवंव्योमवच्च ७

अर्भकं बाल्यम् अल्पंवा ओको नीडं हृत्स्थानं निचाय्यत्वादेव हृत्पुण्डरीके द्रष्टव्यः वा उपास्यः व्योमवत् यथा सर्वगतमपिसत् व्योम सूचीपाशाद्यपेक्षया अर्भकौके अणीयश्च व्यपदिश्यते इति एवमेव ब्रह्मापि। धानयवसे भी छोटा कहा है अणीयान्व्रीहेर्वायवाद्वेति आराग्रमात्र इति ईश्वरही जीव यहां कहा है जैसे सब पृथ्वीका पति अधिपति कहाता है बालकके हृदयसा और धान जैसे छोटा इत्यादि उपाधियोंके भेदसे ब्रह्म उपासनाके लिये कहा है न कि, स्वरूपसे जैसा अनन्त व्योम घटाकाश मठाकाशादिकोंसे छोटा कहा है इसीसे एषमआत्मान्तर्हृदय इति ॥ इसप्रकार श्रुतिमें कहा है ॥

संभोगप्राप्तिरितिचेन्नवैशेष्यात् ८

सर्वगत ब्रह्मका सब प्राणियोंके हृदयमें सम्बन्धसे और चेतनरूपसे और एकत्वसे और शरीरके अभेदसे सुखदुःखादिकी प्राप्ति सम्यक्हो अन्य संसारीके न होनेसे "नान्यतोस्ति विशतीति" इससे फिर सोपाधिक माननेसे उपाधिधर्म दुःखादिकी प्राप्ति न होगी क्यों कि, उपाधिबिम्बमें नहीं होती है इससे ब्रह्ममें भोगकी गन्धिभी नहीं है जीव ब्रह्मका भेद मिथ्या ज्ञानसे है और ज्ञानसे अभेदहै इससे "अनश्नन्नन्योअभिचाकशीति" कर्ताभोक्ता धर्माधर्म साधन सुख दुःखादि मान एकहै और दूसरा अपहतपाप्मादि माना है इस विशेष अर्थात् भेदसे जो सम्बन्धमात्रही कार्य होता है तो व्योमादिकोभी दाहादि होना चाहिये, सर्वगतानेकात्मवादीको भी उक्त चोद्यपरिहार समान है और जो शास्त्र जीवपरकी एकता कहते हैं वे एकताके द्वारा संयोगकी निवृत्ति भी कहते हैं जैसे "तत्त्वमसि" "अहं ब्रह्मास्मीति" इत्यादि जैसे किसीने व्योमको मलिन कहा तो क्या वोह मलिन हो सक्ता है तिससे वेदमें जीव उपास्य नहीं कहा किन्तु ब्रह्म ही, तैसे मिथ्या ज्ञानसे योग और सम्यक् ज्ञानसे ऐक्य है यही विशेष है तिससे ईश्वरमें भोगगन्धभी नहीं कल्प सक्ते हैं इत्यादि यहां मनोमयादिप्रकरण है जीव ईश्वर भिन्न अधिकरण नहीं है ॥

गुहाधिकरण.

गुहांप्रविष्टावात्मानौहितद्दर्शनात् ११

कठवल्लीसे सुना है कि सुकृतका फल नरदेह है और वही परब्रह्मकी प्राप्तिका स्थान है विद्याशमादिके सम्भवसे फिर देहमें या हृदयमें ब्रह्म

जीव ठहरे हैं और कर्मफलको पाता है और न कि, बुद्धि जीव है जड़ और अजडके विरोधसे जड बुद्धि सुकृतपान नहीं करसक्ती है चेतना क्षेत्रज्ञ करसक्ता है एक छत्री अन्य अच्छत्री इनको देख कह सक्ते हैं कि, छत्री चलते हैं उपचारसे जैसे, तैसे जीव पाता और ईश अपाता दोनों संगसे पाता कहेहैं तिससे जीव ईश है, या जीव पीता ईश पिवाता है छाया और आतपकी नाईं जीव हृदयमें प्रत्यक्षमें और ब्रह्म श्रुतिसे दिखाता है "गुहा हितङ्गह्वरेष्ठं पुराणं यो वेद निहितं गुहायां परमेव्यो-मन् आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टमिति" जैसे लोकमें इस गौको दूसरा लाओ यह कहनेसे न घोडा न भैंसा लाता है किन्तु गौही लाता है तैसे चेतन जीव ब्रह्मसम स्वभाववाले हैं और न कि, विषम स्वभाववाले जड चेतन बुद्धि जीव हैं और समान धर्म होनेसे एक हैं केवल उपाधिसे पृथ-क् भासते हैं (ऋतं पिबन्तौ) इस श्रुतिकी व्याख्या पूर्व कर चुके हैं ॥

अन्तर्याम्यधिकरण.

अन्तर्याम्यधिदेवादिषुतद्धर्मव्यपदेशात् १८

अन्तर्यामी परमात्मा अधिदेवादिषु पृथिव्यादिषु भवितुमर्हति कुतः तत् तस्य परमात्मनः धर्माणां गुणानां व्यपदेशनात् ।। भाषार्थः बृहदार-ण्यकके पांचवें अध्यायमें याज्ञवल्क्यने उद्दालकसे कहा कि, पृथिव्यादिमें अन्तर्यामी ईश्वरहै क्योंकि पृथिवीमें रहताहै पर उसको पृथ्वी नहीं जान्तीहै फिर ज्ञान और अमृतादि गुणोंका उसीमें संभव है इस्से "यइ-मंचलोकं परंचलोकं सर्वाणि भूतानि योन्तरोयमिति" फिर कहा कि "यःपृथिव्यांतिष्ठन् पृथिव्यां अन्तरः यं पृथिवी न वेद यस्य पृथ्वीशरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः" इत्यादि ऐसा वा-क्योंमेंहै न कि अधिदैवादिका अभिमानी देवता या योगी या अपूर्व संज्ञा है किन्तु परमात्मा है अन्तर्यामी अमृतत्वगुणसे ॥

शारीरश्चोभयेपिहिभेदेनैनमधीयते २०

कण्व और माध्यन्दिन ये दोनों जीवसे अलग ईश्वरको पढते हैं तिस-से जीवभी अन्तर्यामी नहीं है और न प्रधान है किन्तु अन्तर्यामी ईश्वर है काण्वः " यो विज्ञाने तिष्ठन् " इति ॥ माध्यन्दिनः "यआत्मनि ति-ष्ठन्नात्मानमन्तरो भवति" अणुसे अणु और महानसे महान् पृथ्वीव्यो-मादि सब वस्तुमें अन्तर्यामीको कहनेसे परमात्माही सर्वव्यापक है अ-न्तर्यामी है और विज्ञानमय शारीर है इत्यादि सब कुछ ब्रह्महो है यह

अधिकरण ब्रह्महीको कहते जाते हैं जीव अज्ञानतक है जब यथार्थ अनुभव हुआ तौ सब कुछ वोही है अब आगेका सूत्र भूतयोनिप्रकरणका है॥

अदृश्यत्वादिगुणकोधर्मोक्तेः २१

इस सूत्रमें मुण्डकमें जो भूतोंका कारण सुना है सो ब्रह्म है सर्वज्ञादिगुणके कहनेसे यहां योनिनिमित्तोपादानकारणका नाम है भूतयोनि प्रधान और जीव है जैसे मकरीसे जाला पृथ्वीसे औषधी और देहसे केशलोमादि होते हैं तैसेही प्रधानसे भूतोंका जन्म है सो यह ठीक नहीं क्योंकि ईश्वरही भूतयोनिधर्मयुक्त सुना है ॥

"यःसर्वज्ञःसर्वविद्यस्यज्ञानमयंतपस्तस्मादेतद्
ब्रह्मनामरूपमन्नंचजायते इति"

यह नाम रूप अन्न उसीसे होता है तिससे अदृश्यादिगुणी ईश्वरही भूतयोनि है ॥

विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यांचनेतरौ २२

इतश्चपरेशएवभूतयोनिर्नशारीरःप्रधानंचेति ।

जीव भूतोंका कारण नहीं होसकताहै क्योंकि अमूर्तपुरुष बाहर-भीतर इत्यादि विशेषणोंसे व्यापक ब्रह्मही कहाहै न कि,परिच्छिन्न जीव इससे "दिव्यो ह्यमूर्तयः" इत्यादि और प्रधानभी भूतोंका कारण नहीं होसकताहै क्योंकि प्रधानसे भूतोंका कारण अलग कहाहै, इससे अक्षरात्परतः पर इति अक्षरम् अव्याकृतं नामरूपबीजशक्तिरूपं भूतसूक्ष्ममीश्वराश्रयंतस्यैवोपाधिभूतं सर्वस्मात् विकारात्परोय अविकारस्तस्मात्परतः पर इति भेदेन व्यपदेशात्परमिह विवक्षितं दर्शयतीति ॥ इससे ब्रह्मही भूतयोनि है ॥

रूपोपन्यासाच्च ॥ २२ ॥

इसका सिद्धान्तसूत्र भूतयोनिका रूप सब विश्व कहाहै तिससे भूतयोनि ईश्वरही है इनसे पुरुष एवेदंविश्वङ्कर्मेति अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्र सूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्वीवृताश्चवेदा वायुः प्राणो हृदयंविश्वमस्यपद्भ्यां पृथिवीह्येषसर्वभूतान्तरात्मेति अग्नि उसका शिर नेत्र चन्द्र सूर्य दिशा कान वाणी वेद वायु प्राण हृदय विश्व पाद पृथिवी सोही सब भूतोंका अन्तरात्मा है हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे इत्यादि वाक्योंसे यही निश्चित है कि, यह सब कुछ ब्रह्मही है ब्रह्मसे उत्पन्न होनेसे ॥

वेदान्तसूत्रोंका अर्थ स्वामीजीने उलटदियाहै वास्तवमें वे इस ग्रंथको समझेही नहीं कि, कौनसा उत्सर्ग शंका सिद्धान्तसूत्र है सो कुछ नहीं लिखा इसमें वेदान्तके विषयमें स्वामीजीने जो कुछभी लिखाहै वोह सब असत्य है विशेष देखना हो सो शारीरकमें देखलो ॥ समाप्तं चेदं वेदान्तप्रकरणम् ॥

कालिदासप्रकरणम्.

स० पृ० २९६ पं० २० जिसके राज्यमें कालिदास बकरी चरानेवालाभी रघुवंशकाव्यका कर्ता हुआ ॥ ३१८। २७

समीक्षा–यही तो दयानंदजीने निधडकही लेखनी चलाई है भला कौनसी पुस्तक इतिहास भोजप्रबन्धआदिमें यह लिखाहै कि, कालिदास गडरिया था स्वामीजीने शत्रुतासे. कालिदासको गडरिया बतायाहै क्योंकि इन महाकविके ग्रंथोंको "जिसका नाम इंग्लैंडीय मान्यपुरुषभी गौरवके साथ लेतेहैं" पढनेका निषेध कियाहै और भोजनप्रबन्धमें कहीं भी कालिदासको गडरिया नहीं लिखा है, किन्तु राजाकी सभामें नवरत्नोंमें यह भी था, और स्वामीजी तो जाति कर्मसे मानतेहैं तो उनके मतानुसार पण्डित होनेसे वोह गडरिया नहीं रहा, और जो पण्डित होकर भी गडरिया जाति रही तो स्वामीजीकेही ग्रंथोंसे स्वामीजीका खण्डन होगया ॥ तिब्बतसे मिले बहुत पुराने रघुवंशमें मिश्रकालिदासकृतो पाठ देखनेसे यह ब्राह्मण विदित होतेहैं ॥

स० पृ० २९७ पं० १

रुद्राक्षप्रकरणम्.

धिक्धिक्कपालंभस्मरुद्राक्षविहीनम् ॥
रुद्राक्षान्कण्ठदेशेदशनपरिमितान्मस्तकेविंशतीद्वे ॥
षट्षट्कर्णप्रदेशेकरयुगलगतान्द्वादशद्वादशैव ॥
बाह्वोरिन्दोःकलाभिःपृथगितिगदितमेकमेवंशिखायाम् ॥
वक्षस्यष्टाधिकंयःकलयतिशतकंसस्वयंनीलकण्ठः ॥ १ ॥

जिसके कपालमें भस्म और कण्ठमें रुद्राक्ष नहीं हैं उसको धिक्कार है॥ जो कण्ठमें ३२, शिरमें ४०,छः छः कानोंमें, १२–१२ करोंमें, सोलह सोलह भुजाओंमें, १ शिखामें और हृदयमें १०८ रुद्राक्ष धारण करता है वोह साक्षात् महादेवके सदृश है ॥ ३१९। ११

समीक्षा–स्वामीजीसे पूछै कि भस्म लगानेमें कौनसी बुराईहै यह शिवके भक्तोंका चिह्न है कि, भस्म धारण करना, रुद्राक्ष पहरना, जिस प्रकार आप संन्यासी रँगेहुए वस्त्र पहरते हैं इसी प्रकार यह शिवके भक्तोंका चिह्न है जो संन्यासी होकर संन्यासके धर्म और चिह्न धारण नहीं करता उसे नामका संन्यासी जैसे शास्त्रोंने लिखा है वैसेही शिवका धर्म धारणकरनेवाला जो उन चिह्नोंका धारण नहीं करता उसे धिक्कार है क्योंकि रुद्राध्यायमें शिवजीकी महिमा अधिक वर्णन की है

स० पृ० २९८ पं० ३ राजा भोजके राज्यमें व्यासजीके नामसे किसीने मार्कण्डेय और शिवपुराण बनाकर खड़ा कियाथा उसका समाचार राजाको विदित होनेसे उन पंडितोंको हस्तच्छेदनादि दण्ड दिया और उनसे कहा कि, जो कोई नया ग्रंथ बनावै वोह अपने नामसे बनावै यह बात राजा भोजके बनाये संजीवनी नामक इतिहासमें लिखी है कि जो ग्वालियरके राज्य भिण्डनामक नगरमें तिवारी ब्राह्मणोंके घरमें है जिसको लखुनाके रावसाहब और उनके गुमास्ते रामदयाल चौबेजीने अपनी आंखसे देखाहै उसमें लिखा है कि, व्यासजीने चारसहस्र चारसौ और उनके शिष्योंने पांचसहस्र छःसौ श्लोक युक्त अर्थात् सब दशसहस्र श्लोकोंके प्रमाण भारत बनाया था वोह महाराजा विक्रमादित्यके समयमें वीससहस्र.महाराजा भोज कहते हैं कि मेरे पिताके समयमें पच्चीस अब मेरी आधी उमरमें तीस सहस्र श्लोकयुक्त महाभारतका पुस्तक मिलता है जो ऐसेही बढता चला तौ भारतका पुस्तक एक ऊंटका बोझा होजायगा ॥ ३२० । १९

समीक्षा–राजा भोजके बनाये संजीवक ग्रंथका पता और उन मनुष्योंका वृत्तान्त कहांतक लिखैं हमने कई रजिस्टरी चिट्ठी भिण्डस्थानको ब्राह्मणोंके पास भेजीथी जिसमें ऊपर लिखा ब्यौरा स्पष्ट लिख दिया था उसमेंसे दोस्थानोंसे उत्तर आया है कि यह बात सब मिथ्या है यहां कोई ऐसी पुस्तक हमारे पास नहीं जिसमें ऐसी बातें लिखी हों इस कारण स्वामीजीका कहना और चौबेजीके कहना दोनों अप्रमाण हैं भोजके समय जितने ग्रंथ बने हैं वोह अद्यावधि उन्हीके नामसे विख्यात हैं जो उनके कर्ता हैं सहस्रों श्लोकोंको व्यासजीके नामसे रचनेसे उन्हें क्या लाभ था पहले स्वयं दयानंदजी कहतेथे व्यासजीने २४,००० सहस्र श्लोकका महाभारत बनाया अब चार सहस्रहीका वर्णन किया है फिर व्यासजीने प्रतिज्ञा की है कि मैं इस ग्रंथमें ८८००

कूट श्लोक कहूंगा " अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि चेति " जिन्हैं मैं और शुकदेव जान्ता हूं संजय अर्थ करसक्ताहै या नहीं जिसके अर्थमें क्षणमात्र गणेशजी विचार करते थे इस अवसरमें व्यासजी बहुत श्लोक बना लेते थे वैशंपायनने इसकी प्रशंसा की है जो इसमें है वोह अन्यस्थानमें मिलसक्ता है जो इसमें नहीं है वोह और कहीं नहीं मिलैगा यह ग्रंथ लक्षश्लोकसे पूर्ण है स्वर्गारोहणपर्वके अन्तमें लेख है कि इसके पाठसे अष्टादश पुराणके श्रवणका फल होता है तथा अनुक्रमणिकामें प्रत्येक पर्वका वृत्तान्त और उसके अध्याय श्लोकोंकी संख्या लिखी है चार सहस्रमें तौ इसका युद्धभी नहीं समासक्ता और इसके विना इतिहास कहांसे आवेंगे क्या सत्यार्थप्रकाशमेंसे निकलैंगे और देखिये प्रत्येक पुराणोंमें अष्टादश पुराणोंका वर्णन है और उनके श्लोकोंकी संख्या है इससे स्पष्ट विदित है कि, यह सब एक समयके बने हैं राजा भोजके समय पुराण बनना किसी प्रकारसे सम्भव नहीं ॥

स० पृ० २९९ पं० २ इन लोगोंने जैनियोंके सदृश अवतार और मूर्तियां बनाईं ३२१। १६

समीक्षा-मूर्तिपूजन इस देशमें क्या सनातनसे समस्त भूमण्डलमें चला आता है और हमारे यहांके अवतारोंको देख जैनियोंने २४ सिद्ध माने जैसे आपने तर्कसंग्रहके स्थानमें सत्यार्थप्रकाशमें एक सूत्रावलि बनाई है यवनोंकी पुस्तकोंमें " दीवायचा " देखकर वेदभाष्यभूमिका गढी इससे स्वयं तुम्ही नकल बनानेहारे हो ॥

स० पृ० २९९ पं० १७ देवीभागवतमें देवीने सब जगत् बनाया यह लिखा है॥ ३२२। २

समीक्षा-देवीभागवतमें जो देवीसे जगत्की उत्पत्ति मानी है सो यथार्थ है क्योंकि देवी परमेश्वरकी माया अर्थात् शक्ति है जिसे सामर्थ्य भी कहते हैं और यह सब संसार उसकी सामर्थ्यसेही हुआ है वोह मायाही प्रकृतिको प्रगट करके संसारकू सूक्ष्मसे स्थूलरूप करदेती है इसीसे देवीसे जगत्की उत्पत्ति हुई है ऐसा लिखा है जिस पुराणमें ईश्वरके जौनसे नामके गुणोंका वर्णन किया है वोह उसी नामसे प्रसिद्ध है और जिस नामसे जिसको विश्वास है वोह उसी देवताका ध्यान उसी पुराणद्वारा करै अन्तमें सब ईश्वरहीको प्राप्त होगा जैसे समुद्रमें नदी और आपभी इसे मानचुके हैं कि यह सब नाम परमात्माके हैं तौभी फिर क्या दोष है यथा-

स० पृ० ३०१ पं० १३

"शिवस्यपरमेश्वरस्यायंभक्तः शैवः,
विष्णोः परमात्मनोयंभक्तःवैष्णवः,
गणपतेः सकलजगत्स्वामिनोयंभक्तःसेवकोगाणपतः,
भगवत्यावाण्याअयंसेवकःभागवतः,
सूर्यस्यचराचरात्मनोयंसेवकः सौरः"

यह सब रुद्र शिव गणपति सूर्यादि परमेश्वरके और भगवती सत्य भाषणयुक्त वाणीका नाम है ॥ ३३४ । २

इन्हीं बातोंमें यह सिद्ध है कि यह सब ईश्वरके नाम हैं तौ इन्ही नामोंकी महिमा पुराणोंमें कथन कीहै और उसी नामसे वोह पुराण विख्यात है तौ इनमें भेद मानना भूलकी बात है ॥*

नाममाहात्म्यप्रकरणम् ।

स० प्र० पृ० ३०६ पं० २१ नामस्मरणमात्रसे कुछभी फल नहीं होता जैसे मिशरी मिशरी कहनेसे मुँह मीठा और नीम २ कहनेसे कडुवा नहीं होता ॥ ३२९ । २२

समीक्षा—धन्य है स्वामीजी एक नामहीकी महिमा शेष थी सो वोहभी मेट दी एक नामही पतितपावन तारनतरन है सो अपने इसेभी साफ करदिया क्या ईश्वरका नामस्मरणभी निरर्थक है जब नामग्रहण करनेसे भी कुछ लाभ नहीं तौ क्या सत्यार्थप्रकाश रटनेसे सद्गति होगी ! यजुर्वेदमें नामका माहात्म्य यों लिखा है ॥

यस्य नाम महद्यशः—यजुर्वेद । अ० ३२ मं० ३

कि जिसके नामका बहुत बडा यश है बस यही वाक्य ऐसा बडा है जो प्रगट करता है कि, उस परमात्माके नामका ऐसा माहात्म्य है कि बडे २ पातक उस नामके लेनेसे जाते रहते हैं इसीसे उसका बडा यश विख्यात है ॥

पुनः ऋग्वेदे—

कस्यनूनंकतमस्यामृतानांमनामहेचारुदेवस्यनाम मं० १सू० २४मं१

यह वेदमें लेख है कि, हम किसका नाम ग्रहण करैं और हम किसके द्वारा पितामाताका दर्शन करैं इत्यादि इस मंत्रकी व्याख्या पूर्व भी

* विशेष विवरण हमारे बनाये अष्टादश पुराण दर्पणमें देखो।

लिखचुके हैं मुक्तिप्रकरणमें देख लेना इससे यही सिद्ध होता है कि, नाम से सब कार्य बनता है और ऐसेही शुनःशेपको हुआ था ॥

गीतामेंभी लिखा है ।

ओमित्येकाक्षरंब्रह्मव्याहरन्मामनुस्मरन् ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो० ८। १३

श्रीकृष्णजी कहते हैं जो "ओम्" इस मंत्रका जप ध्यान करता है वोह सब पापोंसे छूट जाता है ॥

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत—छान्दो० प्र० १ मं० १

ओम् जिसका नाम है जो अविनाशी है उसकी उपासना जप करना चाहिये ॥

"यन्मनसानमनुतेयेनाहुर्मनोमतंतदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदं यदिदमुपासते" केन उ० खं० १ मं०५

जो मनसे इयत्ता करके मनमें नहीं आता जो मनको जानता है उसी ब्रह्मको तू जान, उसीकी पूजा उपासना नामस्मरण तू कर ॥

फिर मनुस्मृतिमें गायत्रीका जप करनेसे पाप दूर होना लिखाहै सो पूर्व लिखआये हैं जैसे विद्यामें अभ्यास करनेसे वोह कण्ठस्थ होजाती है और वोह विद्याके गुणोंसे भूषित होता है उसी रीतिसे परमेश्वरके नामोंको स्मरण करता हुआ मनुष्य पवित्र होता है और पवित्र होनेसे पापरहित होकर सुख भोगते हैं जैसे कुसंगतमें बैठने या बुरीबातोंके ध्यान करनेसे मनुष्य विषयासक्तिमें फसकर नष्ट होजाते हैं अथवा जैसे बुरीबातोंका ध्यान करनेसे मनमें दुर्वासना उत्पन्न होजाती है कडवी या घृणायुक्त वस्तुके नामसेही मनमें ग्लानि उत्पन्न होकर थूक भरिआता है. खट्टी चीजके ध्यानसे जीभपर स्वाद विदित होने लगता है और वोह मुखमें नहीं आता पर उसका गुण होजाता है मिष्टान्नादि सुंदर पदार्थोंसे चित्त प्रसन्न हो जाताहै दुःखके समाचार सुननेसे दुःख, मंगलके समाचार सुननेसे प्रसन्नता होती है. इसीप्रकार परमेश्वरके पवित्र नामस्मरण करनेसे चित्त निर्मल हो जाता है जैसे दुर्गन्धित पवन सुगन्धित स्थानमें जाकर सुगन्धित हो जाती है, और उसमें दुर्गन्ध नहीं रहती इसीप्रकार परमेश्वरके नामस्मरणमात्रसे मनुष्य पवित्र हो जाता है, और परमेश्वरके नामोंका असर अन्तःकरणमें पड़कर पवित्र हो जाता है,

इत्यादि परमेश्वरके नामकी महिमा शास्त्रोंमें विस्तारपूर्वक लिखी है मनुजीने कई मंत्र प्रायश्चित्तके उद्धारमें लिखे हैं जिसमें जप लिखा है अघमर्षण सूक्तका जप, गायत्रीका जप इत्यादि जप करनेका बहुत बडा विस्तार है जब परमेश्वरके नाम लेनेहीसे कुछ लाभ नहीं तौ परमेश्वर किस अर्थका है यह बात आपकी यहीं सिद्ध करती है कि, परमेश्वरका नामग्रहण करना वृथा है. अब इसके आगे मूर्तिपूजनके विषयमें लिखा जायगा ॥

अथ मूर्तिपूजनमहाप्रकरणम् ।

प्रथमतः उन युक्ति और प्रमाणोंको लिखेंगे जिसको स्वामीजीने आश्रयकर लिखा है कि, मूर्त्तिपूजन नहीं करना चाहिये फिर क्रमानुसार उनके उत्तर लिखे जायंगे ॥

स०पृ०३०९पं०१मूर्तिपूजा कहांसे चली (उत्तर) जैनियोंसे और जैनियोंने अपनी मूर्खतासे चलाई ॥३२८।१

स० पृ ३०६ पं ४ जब परमेश्वर निराकार सर्वव्यापक है तो उसकी मूर्तिही नहीं बनसक्ती और जो परमेश्वरके दर्शनमात्रसे परमेश्वरका स्मरण होवै तौ परमेश्वरके बनाये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि अनेक पदार्थ जिनमें ईश्वरने अद्भुत रचना की है क्या ऐसी रचनायुक्त पृथ्वी पहाडादि परमेश्वररचित मूर्तियां कि जिन पहाड़ आदिसे मनुष्यकृत मूर्तियां बनती हैं उसको देखकर परमेश्वरका स्मरण नहीं होसक्ता और जब वोह मूर्ति सामने न होगी तौ परमेश्वरके स्मरण न होनेसे मनुष्य एकान्त पाकर चोरी जारी आदि कुकर्म करनेमें प्रवृत्तभी हो सक्ता है, क्योंकि वोह यह जानताहै कि, इससमय यहां मुझको कोई नहीं देखता इससे अनर्थ करेविना नहीं चूकता ॥ ३२९ ॥ ६

स० पृ० ३०७ पं० १७ जो परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तौ किसी एक वस्तुमें परमेश्वरकी भावना करना; अन्यत्र न करना. यह ऐसी बात है कि जैसे चक्रवर्ती राजाको सब राज्यकी सत्तासे छुडाकर एक छोटीसी झोपडीका स्वामी बनाना और जब व्यापकहै तौ वाटिकासे पुष्प पत्र तोडके क्यों चढाते चंदन पीसके क्यों लगाते क्योंकि उनमेंभी तौ व्यापक है हम परमेश्वरकी पूजा करतेहैं ऐसा झूंठ क्यों बोलतेहो हम पाषाणादिके पुजारी हैं ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते, अब कहिये भाव सच्चा है या झूठा जो कहो सच्चा है तुम्हारे भावके आधीनहै परमेश्वर बद्ध

होजायगा और तुम मृत्तिकामें सुवर्ण रजतादि पाषाणमें हीरा पन्ना आदि समुद्रफेनमें मोती जलमें घृत दधि आदि और धूलिमें मैदा शक्कर आदिकी भावना कर वैसा क्यों नहीं बनातेहो, तुम लोग दुःखकी भावना कभी नहीं करते वोह क्यों होता अंधा पुरुष नेत्रकी भावना करके क्यों नहीं देखता, मरनेकी भावना नहीं करते क्यों मरजातेहो इसलिये तुम्हारी भावना सच्ची नहीं क्योंकि जैसेमें वैसी करनेका नाम भावनाहै जैसे अग्निमें अग्नि, जलमें जल जानना, और जलमें अग्नि अग्निमें जल समझना अभावना है ॥ ३३०। १९

समीक्षा—यह मूर्तिपूजन बड़ी सूक्ष्मबुद्धिसे ध्यानमें आता है जैसा ईश्वरका सूक्ष्म विचार है ऐसाही इसका सूक्ष्म व्यवहार है यह ज्ञानचक्षुसे ध्यानमें आती है. स्वामीजीने जो कुछ इसके खंडनमें युक्ति और प्रमाण लिखे हैं उनका उत्तर क्रमसे दिया जाता है ॥

१ यह बात कहना सर्वथा विरुद्ध है कि, मूर्तिपूजा जैनियोंसे चली जब कि वेदोंमें मूर्तिपूजन पाया जाताहै तो कैसे होसक्ता है कि यह जैनियोंने चलाई है वोह वेदोंके प्रमाण आगे लिखेंगे मूर्तिपूजा सनातन नित्य है जैसा कि, कृष्णयजुर्वेदके तैत्तिरीयारण्यकके ४ प्रपाठके ९ अनुवाकमें लिखाहै ॥

मा॑ऽसि प्र॒मा॑ऽसि प्रति॒मा॑ऽसि तैत्ति०प्र०४अनु०९

हे महावीर तुम ईश्वरकी प्रतिमा हो इत्यादि और—

सहस्य प्रतिमा असि यजु० अ० १५।६५

हे परमेश्वर ! आप सहस्रोंकी प्रतिमा है।

स॒म्व॒त्स॒रस्य॑प्रति॒मायां॒त्वा॑रा॒त्र्यु॒पास्म॑हे ॥ सान॒आयु॑ष्म॒

तीं॒प्र॒जारा॒यस्पोषे॑ण संसृज—अथर्व ३। सू० १० मं० ३

हे राज्याभिमानी देव ईश्वर सम्वत्सरकी प्रतिमा जिस तुझको हम उपासना करते हैं वोह तुम आयुष्मती संतानको धनपुष्टिसहित दीजिये और ब्राह्मणवाक्यभी देखिये—

स॒ ऐक्षत प्र॒जाप॑तिः इमं वा॒ऽआत्म॒नः प्रति॒मा॒मसृक्षि॒यत्सम्व॒

त्स॒रमि॒तित॒स्मादा॒हुः प्र॒जाप॑तिःसम्वत्सर इ॒त्यात्म॒नोह्ये॒तं

प्रतिमामसृजत यद्वेवचतुरक्षरःसम्वत्सरश्चतुरक्षरः प्रजापति

स्तेनो हैवास्यैषप्रतिमा श० ११।१।६। १३

भाषार्थः ।

ईश्वरने अपनी प्रतिमा सम्वत्सर नामको उत्पन्न किया इसीकारण कहते हैं कि, ईश्वर सम्वत्सरहै देखो सम्वत्सरमें चार अक्षरहैं और प्रजापतिमेंभी चार अक्षर हैं इसीकारण सम्वत्सर ईश्वरकी प्रतिमा है यह शतपथब्राह्मणका लेख हुआ ॥

अब यह तो सिद्ध हो चुका कि, वेदमें प्रतिमा शब्द है और जब वेदमें प्रतिमा और उसकी विधि है तो जैनियोंसे मूर्तिपूजा चली यह कहना असंगतहै अब दूसरा समाधान करते हैं ॥

२ जब कि आप निराकारकी मूर्ति नहीं मानते तो निराकारसे साकार जगत् कैसे बन गया यदि कहो कि, प्रकृतिसे जगत् हुआ तौ प्रकृति जड़ है कुछ नहीं करसक्ती, जब ईश्वरने इच्छा करी तौ मनबुद्धि चित्तादि हो गये तो ईश्वर साकार होगया साकार होनेसे इसमें मूर्तिभी सिद्ध होगई और यदि ईश्वरका कुछभी आकार न हो और आकाशसेभी सूक्ष्म बताते हो तौ ईश्वरमें शून्यापत्ति दोष आजायगा क्योंकि जब आकाशही शून्य है तौ ईश्वरमें शून्यापत्ति दोष आजायगा क्योंकि जब आकाशही कुछ पदार्थ नहीं तौ ईश्वर आकाशसेभी सूक्ष्म होनेसे कब कोई पदार्थ ठहर सक्ता है वोह तो शून्य हो जायगा इससे ईश्वरको केवल निराकार मानना और निराकारभी कैसा शून्य अर्थात् कुछ नहीं बड़ी भूल है क्योंकि वोह कैसाही सूक्ष्म क्यों न हो पर कुछ तौ हैही बस वोही होना ईश्वरका साकारता युक्त है यदि वोह कुछ नहीं है तौ तुम्हारे कथनानुसार यह प्रगट होता कि, ईश्वर हैही नहीं (शून्य) होनेसे.सुनिये ईश्वर कोई आकारवालाभी अवश्य है जिससे संसार प्रगट होता है वेद प्रादुर्भाव होते हैं वोह शास्त्रकारोंने दो प्रकारसे कहा है सगुण और निर्गुण जब प्रलयकाल होता है तब उसे कोई नहीं जानता बस वोही शेष रहजाता है उस कालमें वेदवचनसे उसको निर्गुण कहते हैं निराकार कहते हैं और जब वोह यह सृष्टिरचना करना चाहता है तब आपही अनेक रूप धारण कर साकारसंज्ञक होता है यथाहि–

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः

तदेवशुक्रन्तद्ब्रह्मताआपःसप्रजापतिः यजुः–अ०३२मं० १

वोही ईश्वर अग्नि है वोही आदित्यरूप है वायु चन्द्र संसारका बीज प्रसिद्ध जल प्रजापति आदिरूप उसीका है अब निराकाको वेदही कहता

है कि, वोही ईश्वर अग्न्यादिरूपवाला है और आदित्यका आकारभी दीखता है "योसावादित्येपुरुषः" "हिरण्यगर्भ इत्येषः" जो सूर्यमंडल में पुरुष है जो कि, हिरण्यगर्भ है वोह यही ब्रह्मकी मूर्ति है यही उपनिषदोंमें भी लिखा है "द्वावेव ब्रह्मणो रूपे मूर्तश्चामूर्तश्चेति" ईश्वरके दो रूप हैं, एक निराकर और एक मूर्तिमान् और देखिये—

तंयज्ञम्बर्हिषिप्रौक्षन्पुरुषञ्जातमग्रतः

तेनदेवाअयजन्तसाध्याऋषयश्चये--यजु० अ० ३१ मं० ९

जो साध्य देवता और ऋषि हैं उन्होंने सृष्टिके पूर्व उत्पन्न उस यज्ञसाधनभूत यज्ञपुरुष ईश्वरको इस लोकमें प्रोक्षण किया तिसी करके यज्ञ करतेहुए इसपर शतपथ—

अथैतमात्मनःप्रतिमामसृजत यद्यज्ञं तस्मादाहुःप्रजापतिर्यज्ञ इत्यात्मनो ह्येतंपतिमामसृजत--श० ११।१।८।३

ईश्वरने अपनी प्रतिमा यज्ञनामको उत्पन्न किया इसकारण कहते हैं कि, ईश्वर यज्ञस्वरूप है (यज्ञोवैविष्णुः) अब वेदसे यह बात निश्चय हुई कि, यज्ञरूप ईश्वर है तो जो कुछ यज्ञकी मूर्ति हुई वोह ईश्वरकी मूर्ति हुई अब वेदसे ईश्वरकी प्रतिमा निश्चित हो गई अब यह विचार कर्तव्य है कि, यज्ञपुरूषकी मूर्ति कसी होतीहै ॥

ॐदेवाहवै सत्रंनिषेदुः अग्निरिन्द्रः सोमोमखो विष्णुर्विश्वेदेवा अन्यत्रैवाश्विभ्याम्॥१॥तेषांकुरुक्षेत्रंदेवयजनमासतस्मादाहुःकुरुक्षेत्रंदेवानांदेवयजनमितितस्माद्यत्रक्वचकुरुक्षेत्रस्यनिगच्छतितदेवमन्यतऽइदंदेवयजनमितितद्धिदेवानांदेवयजनम् ॥ २ ॥ तआसताश्रियंगच्छेमयशः स्यामान्नादाः स्यामेति तथोऽएवेमेसत्रमासतेश्रियंगच्छेमयशः स्यामान्नादाः स्यामेति ॥ ३ ॥ तेहोचुः योनः श्रमणे तपसा श्रद्धयायज्ञेनाहुतिनाहुतिभिर्यज्ञस्योदृचं पूर्वोऽवगच्छात्सनः श्रेष्ठोऽसतदुनः सर्वेषांसहेतितथेति ॥ ४ ॥ तद्विष्णुः प्रथमः प्रापसदेवानां श्रेष्ठोऽभवत्तस्मादाहुर्विष्णुर्दे

वाना॰ श्रेष्ठइति ५ सयःसविष्णुर्यज्ञःसः सयः सयज्ञोसौसआदित्यस्तद्धेदंयशोविष्णुर्नशशाक संयन्तुंतदिदमप्येतर्हिंनैवसर्व इवयशः शक्नोतिसंयन्तुम् ६ सतिसृधन्वमादायापचक्रामसधनुरात्न्यांशिरउपस्तभ्यतस्थौतंदेवाअनभिधृष्णुवन्तः समन्तं परिण्यविशन्त ७ ताहवम्र्य ऊचुः इमावैवम्र्योयदुपदीकायोऽस्यज्यामप्यद्यात्किमस्मैप्रयच्छेतेत्यन्नाद्यमस्मै प्रयच्छेमापि धन्वन्नपोधिगच्छेत्तथास्मैसर्वमन्नाद्यं प्रयच्छेमेति तथेति ८ तस्योपपरासृत्यज्यामपिजक्षुस्तस्यांछिन्नायांधनुरात्न्यौविस्फुरन्त्यौविष्णोः शिरः प्रचिक्षिदतुः ९ तद्धृङ्ङितिपपात तत्पतित्वा सावादित्योभवदिति । ब्राह्मणं श॰ १४।१।१-१०

भाषार्थः ।

अश्विनीकुमारके विना अग्नि इन्द्र सोम विश्वेदेवादिक देवता विष्णुके संग यज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए १ उनका देवयजनस्थान कर्मभूमिकुरुक्षेत्र था जहांपर देवयजनस्थान निर्मित हो वोही कुरुक्षेत्राख्य कर्मभूमि कहाता है २ उन्होंने बैठकर कहा कि, हम श्री और यशको प्राप्त करैं अन्नके भोक्ता होवैं और जो मनुष्य यज्ञ करते हैं वे भी ऐसी ही इच्छा रखते हैं ३ उन्होंने कहा कि, हम सबमेंसे जो कोई श्रम तप श्रद्धा यज्ञ आहुतिके द्वारा यज्ञसिद्धिको प्राप्त करै वोही सबमें श्रेष्ठ और हमारा सखा हो इसको सबने अंगीकार किया ४ विष्णुजीनेही सबमें मुख्य उस सबको प्राप्त किया वही सबमें श्रेष्ठ हुए इसीकारण कहते हैं कि, विष्णु सब देवताओंमें श्रेष्ठ है ५ जो विष्णु है वोही यज्ञपुरुष है जो यज्ञपुरुष है वोही सूर्य है विष्णु यज्ञाभिमानी देवता इस यज्ञरूप तेजके रोकनेमें समर्थ न हुए इसीप्रकार दूसरे भी समर्थ नहीं होते हुये ६ वोह यज्ञाभिमानी देव संकल्पमात्रसे धनुष धारणकर स्थितहुए और उसकी अरत्नी नोकपर शिरको धर स्थिर हुए तब देवता उनके चारोंतरफ स्थिर होकै उनका कुछ नहीं कर सके (किन्तु कलेश माना) ७ उन्होंने उपजिह्वका अर्थात् दीमकसे कहा कि, इस धनुषकी ज्याको काटो उन्होंने कहा कि, हमको क्या लाभ उत्तर दिया कि, जहां तुम मट्टी निकालोगे वहां जल स्वयं प्रगट हो जायगा ८ यहां यज्ञाभिमानी देवने

विचारा कि, हमको देवता धर्षणा नहीं करसक्ते यह विचार हंसी आई तौ तेज प्रादुर्भूत हुआ वोह देवताओंने औषधियोंमें नियुक्त किया और हास्यके तेजसे श्यामाक अन्न जिसे समा कहते हैं प्रगट किया उसका वाक्य नीचे लिखा है ॥

(तस्यसिष्मियाणस्यपाक्रामततद्देवाऔषधीषुन्यमृजुः तेश्यामाकाअभवन् स्मयाकावैनामैते–तैत्तिरीय०)

यह बात उपजिह्वकाओंने अंगीकार करली और धनुषके नीचेकी कोटीको काटलिया उसके कटजानेसे दोनों कोने खुल यज्ञपुरुषाभिमानी देवका तेजरूपी शिर उडगया और वोह सूर्यहुआ वो सूर्य यही है–

सवै यत्रयत्रयज्ञस्यन्यक्तंततस्ततःसम्भराति । श० १४ । १।२।१

यज्ञका शिर छिन्न होजानेसे वैष्णवीतेज मायामें गिरा उसका रस जहां जहां गिरा वहांसे लेकर उसी रससे मूर्ति व्यापक ईश्वरको समृद्ध और परिपूर्ण करता है श० आगे ऐसा लेख है जब शिर नहीं रहा तौ यजमान स्वर्ग फल और आशिष नहीं प्राप्त करसके तब सब देवताओंने अश्विनीकुमारोंको यज्ञमें भाग देना निश्चित करके यज्ञपुरुषके शरीरपर शिर जोड ज्योंका त्यों करदिया और यजमानोंने फल पाये इसीको प्रवर्ग्य कहते हैं और शिर कटनेमें धनुषसे जो "घ्रां" यह शब्द हुआ इसीको घर्म कहते हैं महान् यज्ञपुरुषका सारभूत शिर पतित हुआ इसीकारण महावीर नाम है इन्हीकी मूर्ति यज्ञमें बनाते हैं ॥

"प्रश्न" देवताओंके आकार कैसे होते हैं (उत्तर) निरुक्तमें लिखाहै पुरुषोंकेसे आकार होते हैं देखिये–

अथाकारचिन्तनंदेवतानांपुरुषविधाःस्युरित्येकंचेतनावद्धि स्तुतयोभवन्तितथाभिधानान्यथापिपौरुषविधिकैरङ्गैःसंस्तूयन्ते–निरु० ऋष्वातइन्द्र स्थविरस्य बाहू यत्सङ्गृभ्णामघवन्काशिरित्ते (अथापिपौरुषविधिकैर्द्रव्यसंयोगैः–) आद्वाभ्यांहरिभ्यामिन्द्रयाहिकल्याणीर्जायासुरणंगृहेते ।(अथापिपौरुषविधिकैःकर्मभिः) ऋद्धीन्द्रापिर्बचप्रास्थितस्याश्रुकर्णश्रुधीहवम् निरु० उत्तरषट्क अ० १ । ६

महाभाग्यवाले होनेसे देवताओंके आकारमें नियम नहीं है नियममें ऐश्वर्यका व्याघात होनेसे देवताओंका महाभाग्यपन जाता है इस कारणसे अवश्य देवताओंका आकार है और कृत्रिमताको विना देखे विकरण नाम कोई देवताधर्म नहीं है इसकारण देवताओंकी प्रकृति और स्वभावका चिन्तन करना अवश्य है क्यों कि, ईश्वर और देवता उभय भावी हैं इसकारण उनका स्वभाव आकार जाननेकी इच्छा है ॥

जो आत्मवित् हैं वोह सृष्टिके पूर्व परमेश्वरको आकाररहित मानते हैं और जब सृष्टिकी उत्पत्ति पालन करता है तब आकृतिवाला है संहार उपरान्त अनाकृतिही होता है इसकारण निराकार कहते हैं ॥

नैरुक्त कहते हैं कि, यही ईश्वर सदैव अग्नि वायु सूर्यादि नाम धारण करता है तौ भी प्रत्यक्ष विषय होनेसे इस पक्षमें "आकार" चिन्ता विषयके अभावसे होती है ॥

याज्ञिकपक्षवाले कहते हैं यह सब देवतापक्षवादी अग्नि सूर्य इन्द्रादि यह सब प्रत्यक्ष अर्थसे सम्बन्ध रखते हैं क्योंकि, लोकमें नाम देखे हुए पदार्थोंके होते हैं इसकारण यह रुद्रादि शब्द मनुष्यादिवत् आकारवाले होनेसे अर्थवाले हैं ॥

उन देवताओंका कैसा आकार है अथवा है या नहीं जो है तौ कैसा है आकारके अर्थ यहां दो हैं, अचेतन चेतन, चेतन मनुष्यादि अचेतन पाषाणादि अब यह विचार हुआ कि, इनमें मनुष्यादिवत् चेतना है या पाषाणादिवत् अचेतना है द्रव्यमात्रहै इसपर लिखतेहैं कि "पुरुषविधाः स्युः" इति एक मंत्रोंसे देवताओंका होना पाया जाता है. (यत्काम इत्युपक्रम्य तद्दैवतः समंत्रो भवतीति) जिस कामनावाला देवता हो उसका वैसाही मंत्र होता है अर्थात् वोही विषययुक्त होता और वोह उसीके नामसे प्रसिद्ध होता है जो विषय मंत्रका वोही उसका देवताहै तौ जब मंत्रोंके साथ देवता देखे जाते हैं तौ मंत्रोंमें देवत्व होना निश्चयहै यदि ऐसा ही आकार हो तौ उसका प्रत्यय (विधान) होना चाहिये और इसीप्रकार पुरुषभावसे युक्त मंत्रोंमें देवताओंका संबंध है इसीसे निरुक्तकार कहते हैं कि, पुरुषके आकारवाले हैं वा पुरुषोंकेसे शरीरवाले हैं इसी हेतुसे " चेतनावद्भिस्तुतयो भवन्ति " जिससे कि, चेतनोंके अर्थ स्तुतियें होती हैं वा चेतनोंकोही स्तुतिमंत्र कहते हैं इससे पुरुषविग्रह कहा. यदि कहो कि, चैतन्यता तौ गौ आदि पशुओंमेंभी होती है तौ उसका उत्तर यही है कि, उन्हें ज्ञान नहीं होता

संसारमेंभी जिसे हिताहित जाननेकी सामर्थ्य नहीं होती उसको कहते हैं कि, यह अचेतन है इसीप्रकार यह पशु है चैतन्यता होनेमेंभी लोक अलोक आदिका ज्ञान नहीं होता इससे इनकी अचेतनकी नाईं उपेक्षा करी है क्योंकि पशु भविष्यत्की चिन्ता नहीं करते मनुष्य सब कुछ समझते हैं लोक अलोक जानते हैं मर्त्यधर्मसे अमृततत्त्वकी इच्छा करते हैं इसकारण हिताहित जाननेसे (सिषाधयिषितत्वादनपेक्ष्य सामान्यं विशिष्टश्चैतन्यः पुरुषो नियम्यते) पुरुष ही नियोजन किया जाताहै जैसे विद्वान् पुरुष अर्थयुक्त वाणियोंको सुनते हैं तैसे ही देवताभी इसकारण देवताओंके आकार पुरुषोंकेसे हैं और इसीप्रकार पुरुषोंकी नाईं परस्पर संवादसूक्तोंमें देखा जाता है ॥

कयाशुभासवयसः (और) कुतस्त्वमिन्द्रेत्येवमादीनि
ऋ० मं० १ अ० २३ मं० १ ।३

इन सब मंत्रोंमें इन्द्र और मरुत्का संवाद है इससेभी देवता पुरुषाकारवाले सिद्ध हैं और पुरुषसम्बन्धी अंगोंसे स्तुति किये जाते हैं देखिये-

उरुंनो लोकमनुनेषि विद्वान्त्सर्वर्ज्योतिरभयंस्वस्ति
ऋष्वाते इन्द्र स्थविरस्य बाहू उपस्थेयाम शरणा बृहन्ता
ऋ० मं० ४ । ७ । ३२ । ८

(उरुं) विस्तीर्णं (लोकं) यः त्वम् (नः) अस्मान् (अनुनेषि)अनुनयसि स्वेन सुकृतेन कर्मणा गच्छतां गमनानुग्रहे वर्तसे (सर्वर्ज्योतिः) आदित्यसमानं प्रकाशेन लोकं (अभयम्) (स्वस्ति) स्वस्त्ययनाय तस्य (ते) तव वयम् (इन्द्र) (ऋष्वा) ऋष्वौ एतौ रेषणौ शत्रूणाम् (स्थविरस्य) महतः (बाहू) हस्तौ (बृहन्ता) बृहन्तौ महान्तौ (शरणा) शरणौ आश्रयणीयौ नित्यम् (उपस्थेयाम्) उपतिष्ठेमेत्येतदाशास्महे

भाषार्थः

बड़े लोक जो तू हमारे अर्थ प्राप्त कराताहै अपने कर्मसे जाननेवालोंपर अनुग्रहसे वर्तताहै सूर्यसमान प्रकाश संसारके अभय और कल्याण

के वास्ते हे इन्द्र ! तेरी शत्रुओंकी मारनेवाली बड़ी दोनों बाहू हमें नित्य आश्रयमें रक्खें शरण दें यही हम चाहते हैं (यत् सङ्गृभ्णाइत्यादि) इन दोनों मंत्रमें बाहु और मुष्टि सम्बन्ध दर्शनसे इन्द्रपुरुष विधिसे स्तुति कियागया है नहीं तो मंत्रोंका अभिधान झूठा हो जायगा औरभी प्रमाण सुनिये-

आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः
अष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः

ऋ० मं० २। ६। २२। ४

हेभगवन् (इन्द्र) यदि तावत् तव द्वौ हरी सन्निहितौ स्ततस्तावेवरथेयुक्त्वा ताभ्याम् (हरिभ्याम्) आयाहि अथ चत्वारःततस्तैः (चतुर्भिः) अथषट्ततस्तैः (षड्भिः) अथाष्टौ ततस्तैः (अष्टाभिः) अथदश ततस्तैः (दशाभिः) आयाहि इदं (सोमपेयं) सोमपानकर्म प्रतिकिम् इति एवं ब्रूमहे (अयंसुतः) सोमोभिषुतः त्वदर्थम् सत्वं हे (सुमुख) सुधन (मा) केनचित् (मृधः) संग्रामं (कः) कार्षी अविलम्बितमागच्छेत्यभिप्रायः॥

भाषार्थः।

हे भगवन्! इन्द्र यदि आपके रथमें दो घोडे जुते हों वा चार अथवा छः वा आठ वा दश हैं तो उसमें सवार होकर आओ इस सोमपान कर्मके निमित्त और यहभी हम कहते हैं कि यह सोमरस तुह्मारे वास्ते है सो हे सुधन ! तुम आओ और किसीसे संग्राम मत करो शीघ्र आओ॥

अपाः सोममस्तमिन्द्र प्रयाहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते
यत्रा रथस्य बृहतो विधानं विमोचनं वाचिनो दक्षिणावत्

ऋ० मं० ३। ३। २०। ६

हे भगवन् इन्द्र (अपाः) पीतवानासि (सोमम्) एतस्मिन् कर्मणि (सत्वं पुनः) (अस्तं) गृहं (प्रयाहि) यस्मात् तव (कल्याणीः जाया) (तत्रबृहतः) च रथस्य (निधानं) रथ-

शाला (विमोचनं) च (वाजिनः) जित्वा संग्राममागतस्य (दक्षिणावत्) अन्यदपि (सुरणं) यद्यद्रमणीयं तत्सर्वं ते तव गृहे वर्तते तस्मात् पुनरस्तं प्रयाहि ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र ! आपने इस कर्ममें सोमपान कर लिया है अब गृहको जाओ जिससे तुह्मारी सुन्दर कल्याणी जाया और बडे रथके रखनेवाली रथ शाला और घुड़शाला संग्रामसे जीत पाकर आयेहुए प्रयोजनकी जो जो रमणीय वस्तु होती हैं वोह सब तेरे यहां हैं इन मंत्रोंसे पुरुषाकारवाले देवता होते हैं इत्यादि और भी मंत्र हैं जिनसे इन्द्रको अपने वचन सुनाने और पुरोडाश भोजन करनेको बुलाया है विशेष इस पर निरुक्तमें विचार हुआ है अपेक्षा हो देख लीजिये–

अब दूसरा पक्ष कहते हैं कि, देवताओंके आकार अपुरुष विधिकेभी होतेहैं ॥

अपुरुषविधाः स्युरित्यपरमपितुयद्दृश्यतेऽपुरुषविधं तद्यथाग्निर्वायुरादित्यः पृथिवीचन्द्रमा इति उभयविधाः स्युरपिवापुरुषविधानामेवसतां कर्मात्मान एतेस्युर्यथायज्ञोयजमानस्यैषचाख्यानसमयः--निरु० उत्तरष० १।७

देवताओंका विधान अपुरुष विधिकाभी कहते हैं यह देखा जाता है कि अपुरुषाकारभी देवता हैं जैसे अग्नि वायु आदित्य पृथ्वी चंद्रमा यह अपुरुषाकारवाले हैं निरुक्तकार कहते हैं "उभयविधाः स्युः" दोनों प्रकारके होते हैं क्यों कि, दोनोंमें वेदोंका प्रमाण है यह तीसरा पक्षहै पृथ्वीजलादिके अभिमानी देवता होते हैं अथवा जैसा यजमानका यज्ञ हो वैसाही आकार देवताओंका चिंतन करना क्यों कि आख्यानोंमें ऐसा है कि, पृथ्वी गौरूपधर ब्रह्मलोकको गई इत्यादि अग्नि ब्राह्मणरूप धर अर्जुन और श्रीकृष्णके निकट आया था यह देवता महाभाग्यवान् होनेसे मूर्तिमान् पुरुषाकार अपुरुषाकार एकधा द्विधा बहुधा हो जाते हैं देवताओंकी परमशक्तिका वर्णन अवतारविषयमें करचुकेहैं इत्यादि विशेष देखना हो तौ निरुक्तमें देखिये यहांतक मंत्रों और युक्तियोंसे

आकार सिद्ध हो चुका, अब सुनिये पृथ्वीके देखनेसे ईश्वरका ऐसा स्मरण नहीं होता जैसा कि, एक विशेष चिह्न माननेसे होता है और तुम तो आकाशादिकोंको नित्य मानते हो जब यह ईश्वरकी रचना नहीं तौ इनसे ईश्वरका क्या संबन्ध फिर उनके देखनेसे ईश्वरका स्मरण कैसे हो सक्ता है सनातन धर्मानुसार यह ईश्वरके बनाये हैं पर इनमें वैसा स्तुतिप्रार्थनाका विधान नहीं है कपड़ेको देखकर यह बोध होता है कि, कोई इसका बनानेवाला है कुछ कपडेसे प्रार्थना स्तुति नहीं होती और न कोई यों कहता है कि, हे पत्थर! तू हमें अमुक सुख धन पुत्र दे किन्तु मूर्ति परमेश्वरकी उपासनाका एक प्रधान चिह्न है, जैसे कि, ओंकार प्रधान नाम है जैसे मुमुक्षु संन्यासियोंको ओंकार उपास्य है इसी प्रकार गृहस्थोंको प्रतिमामें ईश्वराराधन कर्तव्य है यह एक ऐसा चिह्न है कि, जिसके दर्शनमात्रसे ही यह स्मरण हो जाता है कि ईश्वरकी उपासना करणीय है और तुरतही ईश्वरका नाम दर्शन करनेवाले उच्चारण करते हैं और जब नामस्मरण और प्रार्थना करैगा तौ प्रेम होनेसें ईश्वरका ध्यान सदा बना रहैगा और वोह एकांत पाकर चोरी आदिभी नहीं करसक्ता क्यों कि मूर्तिविधान होनेसे कुछ यह नहीं कहा है कि, ईश्वर सर्वव्यापी नहीं किन्तु एक विशेष स्मरण प्रतीक शास्त्रकथित है जिससे कि, सम्पूर्ण गुण ईश्वरके विदित हो जाते हैं जैसे किसीकी तसबीर देखनेसे यदि उसके गुण पूर्व श्रवणकरेहों तौ वोह सब स्मरण हो आतेहैं इसीप्रकार ईश्वरकी मूर्ति हैं परन्तु यह एक ऐसी वस्तु है कि एक अनिर्वचनीय भक्ति ईश्वरमें उत्पन्न करदेती है जैसे ऋषि मुनियोंके चित्र देखनेसे उनके गुण स्मरण हो आते हैं और उनका चरित्र चित्तमें कईदिनतक उपस्थित रहता है इसी प्रकारसे जो तीनोंकाल ईश्वरका अर्चन वंदन करते हैं और स्तोत्र पाठ करकै उसके गुणोंका कीर्तन करते हैं तौ उनके मनमें कभीभी दुष्कर्मोंका प्रादुर्भाव नहीं होता जो व दुष्कर्म करैं जो उसका पूजन स्मरण प्रतिदिन करता है वोह सम्पूर्ण बुराइयोंसे बच जाता है और दयानंदानुयायियोंमें यह स्वयंही देखा है कि, ईश्वरका नाम निष्प्रयोजन समझ कर नहीं लेते रातदिन निन्दा झूंठ मिथ्या वितंडा करते हैं यह स्वामीजीके उपदेश और निर्भक्तिका फल है ॥

अब तीसरे भावका उत्तर सुनिये परमेश्वरकी भावना कोई ऐसी नहीं करता है कि, मूर्तिमें है अन्यत्र नहीं है किन्तु मूर्तिमें भावना करते

हुएभी यही कहते हैं कि, परमेश्वर सर्वज्ञ, सर्वव्यापक होनेसे इस मूर्ति-में व्यापक है और विकाररहित होनेसे उसमें विशेष स्मरण होता है जैसें आज दिन महारानीकी बीसियों मूर्तियाँ बनी हैं और सबमें उन-की भावना है कुछ मूर्ति बनजानेसे उनका राज्य नहीं घटगया किन्तु प्रजाभक्ति अधिक बढ जातीहै और यह कहना तौ स्वामीजीका प्रलापहै कि, जब व्यापक है तौ फूल पत्ते चंदन क्यों चढाते हो पुष्पादि निवेदन करना विधान और आदरका सूचक है व्यापक होनेसे पुष्पादि न चढाये जायँ तौ आपभी तौ व्यापक मानते हैं क्या रोटी दाल भात भोजनमें व्यापक नहीं है यदि कहो कि, है तौ आप भोजन करते समय ईश्वरको भी रोटी वा पूरीके साथ भक्षण करनेवाले हुए हम पत्थरकी पूजा नहीं करते यदि करते तौ पत्थर २ जपते और पुष्पादि चढाने व्यर्थ होजाते हम लोग तौ उस मूर्तिको विधानसे प्राणादिप्रतिष्ठा करकै उनमें देवता वा ईश्वरकी भावनासे पूजा करते हैं स्तुतिपाठादि सब ईश्वरका नाम ग्रहणकर करते हैं, धूपदीपादि सब ईश्वरहीके उद्देश्यसे करते हैं और स्तुति प्रार्थना करते हैं आपको वोह पत्थरही दीखता होगा क्योंकि, ईश्वरको उसमें व्यापक कदाचित् तुम न मानते होगे भला भावसे ईश्वर कैसे बंध जायगा क्या ईश्वर मूर्तिके सिवाय अन्यत्र नहीं वोह सब स्थानमें है यदि एकही स्थानमें हो तो लक्षों करोडों मूर्त्तिमें क्यों उसका भाव होसक्ता व्यापक होनेसे वोह सब स्थानमें है परन्तु भाष्यभूमिका-के नियमोंमें तौ ईश्वरको आपहीने बांधा है, कि, अवतार नहीं लेता सृष्टि-क्रमके प्रतिकूल कुछ नहीं करसक्ता शक्तिहीन ईश्वर तुम्हाराही है जो भक्तोंकी प्रार्थना सुनकर तनक पापभी नहीं क्षमा करता अन्य धातुमें अन्यधातुकी भावना नहीं होसक्ती भावना ईश्वरकी है जो सर्वशक्तिमान् चेतन व्यापक है (भावे हि विद्यते देवः) सर्वज्ञ होनेसे वोह भावमें विद्यमान है यदि इसकी समान कोई दूसरा हो तौ उसकी भावना हो सक्ती है दुःखसुखकी भावना नही होसक्ती भावना ईश्वरहीकी होती है सुखदुःख कर्मोंका फल है इनमें भाव नहीं घटसक्ता ईश्वरका भाव सर्व-व्यापी होनेसे जिसमें चाहैं बनसक्ता है जड़पदार्थकी भावना जडमें नहीं बनसक्ती रागादिकी निवृत्ति अंधे आदिकी नेत्र लाभकी संभावना नहीं होसक्ती क्योंकि वोह कर्मानुसार प्राप्त हुए हैं और समयान्तरमें जाते रहेंगे ईश्वरकी भावना सर्वज्ञ होनेसे सब स्थानमें करसक्ते हैं और वोह सर्वशक्तिमानादि गुण जैसा है वैसा ही जानते हैं इसकारण हमारी भावना ठीक है ॥

सत्या० प्र० पृ० ३०० पं० २८

रुद्राक्ष भस्म तुलसी कमलाक्ष घास चंदनादिको कंठमें धारण करनाहै वह सब जंगली पशुवत् मनुष्यका काम है ॥ ३२३ । १४

समीक्षा—जब चंदनादिके धारण करनेसे जंगली होते हैं तौ यह तौ कहिये कि, वार्षिकोत्सवमें जो समाजी माथेपर चित्तकबरा चन्दनलगातेहैं वह कौन हुए और आप जो वर्षों गंगारजमें लोटतेरहे और वही शरीरमें लगायेरहे तौ आप कौन हुए, कालाग्निरुद्रोपनिषद्में यह सब प्रमाण लिखेहैं, आप उसे रखोडियेका बनाया कहतेहैं नहीं मानते इसमें प्रमाण क्या जब कि, वह भस्म चंदनादिके विधान कहनेसे अप्रमाण है तौ आपकी पुस्तक उसकी विरोधिनी होनेसे अप्रमाण क्यों नहीं, रामचंद्र लाल चंदन लगातेथे कुब्जाने श्रीकृष्णको चंदनसे चर्चित किया इत्यादि चंदनके इतिहासादिभी अनेक प्रसिद्ध हैं "त्र्यायुषंजमदग्नेः" यह विभूतिधारणका मंत्रहै ॥

स० पृ० ३०८ पं० ११ जो मंत्र पढकर आवाहन करनेसे देवता आजाती है तौ मूर्ति चेतन क्यों नहीं होजाती और विसर्जन करनेसे चली क्यों नहीं जाती और वोह कहांसे आता कहां जाता है परमात्मा न आता है न जाता है जो तुम मंत्रबलसे परमेश्वरको बुलालेतेहो तौ उन्ही मंत्रोंसे अपने मरेहुए पुत्रके शरीरमें जीवको क्यों नहीं बुलालेते हो और शत्रुके शरीरमें जीवात्माका विसर्जन करकै क्यों नहीं मारसक्ते यह पोपजीकी ठगई है ॥ ३३१ । १७

समीक्षा—देवता और ईश्वरका मंत्रोंसे सम्बंध है वेदविधान होनेसे और देवता सामर्थ्ययुक्त होनेसे सहस्रोंशरीर धारणकरलेते हैं जो कि, हमारे नेत्रपथसे अतीत हैं देवता मंत्रोंके प्रभावसे उस स्थानमें प्राप्त होजाते हैं परंतु अलक्ष्य रहते हैं देवता परोक्षप्रिय हैं देवता क्या पितरोंकाभी आवाहन है यथा "आयन्तुनः पितरः" और "अग्नआयाहि" इत्यादि अनेक मंत्र देवतापितरोंके आवाहनके हैं और शुद्धान्तःकरण मुनिगणोंको यह सामर्थ्य है जैसा कि, जन्मेजयके यज्ञमें तक्षकादि सर्प और इन्द्र आवाहन करतेही उपस्थित होने लगे थे और मंत्रबलसे सहस्रों सर्प आन २ कर अग्निकुंडमें भस्म होगये थे महाभारतका आदिपर्व देखो ऋग्वेदके बहुतसे मंत्रोंमें देवताओंका आवाहन है जो उस विधानको जानते थे बुलालेतेथे और जाननेवाले अबभी बुलासक्ते हैं मूर्तिमें देवताओंका आवाहन विसर्जन नहीं करते हां प्राणप्रतिष्ठा करते

है और इसका विधानभी है अबभी जिस मूर्तिकी प्रतिष्ठा अच्छे प्रकार हो उसमें चमत्कार होता है और लोगोंको इष्टप्राप्ति होती है उनके चमत्कारकी विधि सामवेदके षड्विंश ब्राह्मणमें लिखी है ॥

यदादेवतायतनानिकम्पन्तेदैवतप्रतिमा हसन्ति रुदन्ति नृत्यन्तिस्फुटंतिस्विद्यन्त्युन्मीलन्ति निमीलन्तितदाप्रायश्चित्तं भवतीदंविष्णुर्विचक्रम इति स्थालीपाकꣳहुत्वापंचभिराहुतिभिरभिजुहोति विष्णवेस्वाहा सर्वभूताधिपतयेस्वाहा चक्रपाणयेस्वाहेश्वरायस्वाहा सर्वपापशमनायस्वाहेति व्याहृतिभिर्हुत्वाथ सामगायेत ॥

जब देवताओंके स्थान काँपते हैं देवताओंकी प्रतिमा रोती हैं, हँसतीहैं नाचती हैं एकदेशसे स्फुटनको प्राप्त होती हैं पसीनेयुक्त होती हैं नेत्र खोलतीहैं मीचतीहैं तब प्रायश्चित्त होता है "इदंविष्णुर्विचक्रमेइति" इस मंत्रसे हवनकर पांच व्यहृतियोंसे होम करै इसमें चक्रपाणि आदि-शब्दसे ईश्वर साकार सिद्ध होता है इससे यही सिद्ध है कि, जबतक यह मूर्ति स्थिर रहती है तभीतक शान्तिहै चलायमान होतेही वैका-रिकगुणयुक्त होती है ईश्वरके अवतारोंकी मूर्ति वेदानुसार प्रतिष्ठा करके पूजनकरते हैं परन्तु ईश्वरको आने जानेवाला किसीने नहीं कहा ईश्वर सर्वव्यापक होनेसे आताजाता नहीं और मूर्तिप्रतिष्ठा करनेसे क्यों चलायमानहो प्रतिष्ठाके अर्थ है सदा स्थित रहनेवाली प्रतिष्ठा होतेही निरन्तर पूजनीय हो जाती है जैसे कोई मनुष्य घरमें बैठाहै तो क्या वोह घर चलने लगैगा कभी नहीं और स्था गतिनिवृत्तौ धा-तुसे प्रतिष्ठा शब्द सिद्ध होता है जो चलायमान न हो अचल रहे वोही प्रतिष्ठा की जाती है और जो चले तो हाला चाला होजाय यह तो एक देवताओंके विग्रह हैं उनमें देवता आनकर प्रविष्ट होजाते हैं जैसे एकस्थान टूटजानेसें मनुष्य और स्थानमें चले जाते हैं इसीप्रकार जब मूर्ति अशुद्ध होजाती है या टूटजाती है तो देवता और मूर्तिमें प्रवेश करजाते हैं महाभाग्य होनेसे एक अनेक होजातेहैं, यवनादिकोंके स्पर्शसे देवता नहीं रहते उनका निवास बड़े पवित्रस्थानमें होताहै जैसे घर हलनेसे बडा उत्पात होताहै उसीप्रकार मूर्ति आदिमेंभी विकार होनेसे प्रायश्चित्त है पुत्रादिकोंमें प्राण डालनेका विधान नहीं है उनका आत्मा सर्वज्ञ नहीं एक अनेक नहीं होसक्ता मृतक होनेपर कर्मानुसार

दूसरे तनुको प्राप्त होताहै जो पितर आदि किसी योनिको प्राप्त होता ही है फिर कैसे प्राण आवैं और वोह कैसे रहैं पिता पुत्रकी आत्माको बुलावै और उसको और बुलावै तौ जगत्की व्यवस्था नष्ट होजावै यह सामर्थ्य देवताओंकोही है प्रत्येक मूर्तिमें अपना आत्मा प्रवेश करसक्तेहैं॥

स० प्र० पृ० ३०८ पं० १८ प्रश्न

प्राणाइहागाच्छन्तु सुखंचिरंतिष्ठन्तुस्वाहा आत्मेहागच्छतु सुखं चिरंतिष्ठतुस्वाहा इन्द्रियाणीहागच्छन्तु सुखंचिरंतिष्ठन्तुस्वाहा

इत्यादि वेदमंत्र हैं क्यों कहतेहो नहीं हैं (उत्तर) भाई बुद्धिको थोडीसी काममें लाओ यह वाममार्गियोंकी वेदविरुद्ध तंत्रग्रंथोंकी पोपरचित पंक्तियांहैं(प्रश्न)क्या तंत्र झूंठा है (उत्तर) हाँ सर्वथा झूंठा है जैसे आवाहन प्राणप्रतिष्ठादि पाषाणादि मूर्तिविषयक वेदोंमें एक मंत्रभी नहीं वैसे " स्नानं समर्पयामि " इत्यादि वचनभी नहीं अर्थात् इतना भी नहीं है कि " पाषाणादिमूर्तिं रचयित्वा मंदिरेषु स्थाप्यं गंधादिभिरर्चयेत् " अर्थात् पाषाणादिकी मूर्ति बना मंदिरोंमें स्थापनकर चंदन अक्षतादिसे पूजै ऐसा लेशमात्रभी नहीं ॥ ३३१ । २९

समीक्षा-यहां स्वामीजीने प्राणप्रतिष्ठाके मंत्र स्वयं ही लिखकर कहदिया कि, यह वेदवाक्य नहीं मतहो हम आगे मंत्रभागहीके वचन प्राणप्रतिष्ठामें लिखैंगे और क्रमानुसार मूर्तिका बनाना लिखा जायगा वहीं प्राणप्रतिष्ठामें लिखैंगे और तंत्र सब सच्चाहै करनेवालाहो विधानसे करै तौ निश्चय सिद्ध होगा जिसे पूछनाहो हम बतासक्ते हैं श्रद्धासे करैगा तौ बेशक सिद्ध होगा ।

स० प्र० पृ० ३०९ पं० १ जो वेदोंमें विधि नहीं तौ खंडनभी नहीं और जो खंडन है तौ "प्राप्तौ सत्यां निषेधः" मूर्तिके होनेहीसे खंडन होसक्ता है (उत्तर) विधि तौ नहीं परन्तु परमेश्वरके स्थानमें किसी अन्यपदार्थको पूजनीय न मानना और सर्वथा निषेध कियाहै क्या अपूर्वविधि नहीं होती सुनो यह है ॥

अन्धन्तमःप्रविशन्तियेऽसम्भूतिमुपासते ततोभूयइवतेतमोय उसंभूत्याᳬरताः-यजु० अ० ४० मंत्र ९

न तस्यप्रतिमा अस्ति यजु० अ ३४ मंत्र ४३

यद्वाचानभ्युदितं येनवागभ्युद्यते ॥

तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥ १ ॥
यन्मनसा न मनुतेयेनाहुर्मनोमतम् ॥
तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥ २ ॥
यच्चक्षुषानपश्यतियेनचक्षूंषिपश्यन्ति ॥
तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥ ३ ॥
यच्छ्रोत्रेणनशृणोतियेनश्रोत्रमिदंश्रुतम् ॥
तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥ ४ ॥
यत्प्राणेननप्राणितियेनप्राणः प्रणीयते ॥
तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥ ५ ॥ केनोपनि०

भाषार्थः ।

जो असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारणको ब्रह्मके स्थानमें उपासना करते हैं वे अंधकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागरमें डूबते हैं और संभूति जो कारणसे उत्पन्नहुए कार्यरूप पृथ्वी आदिभूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादिके शरीरकी उपासना ब्रह्मके स्थानमें करते हैं वे उस अंधकारसेभी अधिक अंधकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोरदुःखरूप नरकमें गिरके महाक्लेश भोगते हैं ॥ १ ॥ जो सब जगत्‌में व्यापक है उस निराकार परमात्माकी प्रतिमा परिमाणसादृश्य वा मूर्ति नहीं है ॥ २ ॥ जो वाणीका इयत्ता अर्थात् यह जल है लीजिये वैसा विषय नहीं और जिसके धारण और सत्तासे वाणीकी प्रवृत्ति होती है उसको ब्रह्मज्ञान और उपासना कर और जो उससे भिन्न है वे उपासनीय नहीं १ जो मनसे इयत्ता करके मनमेंभी नहीं आता जो मनको जानता है उसी ब्रह्मको तू जान और उसीकी उपासनाकर और जो उससे भिन्न जीव और अंतःकरण है उसकी उपासना ब्रह्मके स्थानमें मतकर २ जो आंखसे नहीं दीखपडता और जिससे सब आँखे देखती हैं उसीको तू ब्रह्म जान और उसीकी उपासना कर और जो उससे भिन्न सूर्य विद्युत् और अग्नि आदि जड़ पदार्थ हैं उनकी उपासना मतकर ॥ ३ ॥ जो श्रोत्रोंसे नहीं सुना जाता और जिससे श्रोत्र सुनताहै उसीको तू ब्रह्म जान और उसीकी उपासनाकर उससे भिन्न शब्दादिकी उपासना उसके स्थानमें मतकर ॥ ४ ॥ जो प्राणोंसे चलायमान नहीं

होता जिससे प्राण गमनको प्राप्त होताहै (फिर मूर्ति उसके आगमनसे क्यों कर चलायमान होगी क्यों कि मूर्ति उसकी है और वोह प्राणोंसे चलायमान नहीं होता इससे मूर्ति भी नहीं चलती) उसी ब्रह्मको तू जान उसीकी उपासनाकर जो यह उससे भिन्न वायु है उसकी उपासना मतकर ॥ ९ ॥ ३३२।८

समीक्षा–यह संपूर्ण स्वामीजीका लेख असंगत है यहां यह विचार कर्तव्य है कि, इस यजुर्वेदके मंत्रोंकी किसी पूर्व अथवा उत्तर मंत्रसे संगति है अथवा नहीं जो यह कहैं कि, विना संगतही कार्यकारण उपासनाका निषेध किया है तौ यह कहना चाहिये कि, " ब्रह्मके स्थानमें " यह अर्थ किसपदका है मंत्रके अक्षरोंसे तौ असंभूति–उत्पत्तिरहित और संभूति उत्पत्तिमत् वस्तुकी जो उपासना करता है सो नरकमें पडता है यही अर्थ प्रतीत होता है तौ यह निर्णय करना चाहिये कि, ब्रह्म असंभूति पदार्थ है अथवा नहीं जो उत्पत्तिरहित होनेसे ब्रह्मभी असंभूति पदार्थ है तौ उसकी उपासना करनेसेभी नरक होगा और जो असंभूति पदार्थ ब्रह्म नहीं तौ संभूति शब्दका अर्थ होगा इसमें दो दोष हैं ब्रह्मको कार्यत्वापत्ति और ब्रह्मकी उपासनासे नरकभी होगा क्योंकि संभूतिकी उपासनामें नरकरूप फल मंत्रप्रतिपाद्य है जब पूर्व उत्तर संगति विना मंत्रके अक्षरोंके यह अर्थ कैसे करेंगे सो "ईशावास्य"इस मंत्रसे लेकर "अन्धंतमः" इस मंत्रतक कोई ऐसा पद नहीं कि जिसका अर्थ यह है कि, ब्रह्मके स्थानमें इसकी संस्कृत ब्रह्मणःस्थाने अथवा ईश्वरस्य स्थाने यह कहींभी नहीं सज्जन पुरुष यजुर्वेदका ४० वां अध्याय देख कर विचारलेंगे कि, क्या प्रकरण है कुछ मंत्र पूर्वभी लिख आये हैं इस कारण उनका दुवारा लिखना ठीक नहीं ब्रह्मके स्थानमें कारण प्रकृति और कार्य पाषाणादिकी उपासना करता है सो नरकमें गिरता है यह अर्थ प्रकरणविरुद्ध है और यहभी विचारना चाहिये कि, ब्रह्मके स्थानमें इसका भावार्थ क्या है ब्रह्मका स्थान कौन है ब्रह्मकी उपासनाका स्थान वा ब्रह्मका निवास स्थान वा ब्रह्मरूपस्थान यह अर्थ है प्रथम पक्षमें तौ ब्रह्मकी उपासना स्थान कोई दूसरा पदार्थ स्वामीजीके मतमें नहीं है क्यों कि यदि ब्रह्मकी उपासनाका स्थान कोई पदार्थ मानेंगे तौ प्रतीकउपासना सिद्ध होगी क्यों कि ब्रह्मबुद्धिसे किसी पदार्थकी उपानाही प्रतीकोपासना है और यदि ब्रह्मके निवासस्थानको ब्रह्मस्थान माने तौ ब्रह्मको व्यापक होनेसे सर्व

ही वस्तुमात्र ब्रह्मका निवासस्थान है तिस स्थानमें कारण कार्य उपासना करताही कौन है जो नरकको प्राप्त होगा क्योंकि, कारण प्रकृति और कार्य पृथिवी आदिभी तो ब्रह्मका निवासस्थान है तिससे कार्य कारण दृष्टि सबको प्राप्त है क्योंकि कारणको कारण और कार्य्यको कार्य्य सबही जानते हैं परिशेषते ब्रह्मरूप स्थानमें जो कारण प्रकृतिकी और कार्य्य पृथिवी पाषाणादिकी उपासना करता है सो नरकमें पड़ता है यह अर्थ दयानंदजीको विवक्षित होगा आशय यह है जो कारण प्रकृतिबुद्धिसे और कार्य पाषाणादि मूर्तिबुद्धिसे ईश्वरकी उपासना करता है सो नरकमें पडता है जब यह अर्थ इष्ट हुआ तो विचारिये कि, मूर्तिपूजक आचार्य ब्रह्ममें मूर्तिबुद्धि करके पूजन उपासना करते हैं अथवा मूर्तिमें ब्रह्मबुद्धि करकै पूजनादि करते हैं प्रथम पक्ष तौ कोई विचारशून्यभी ग्रहण न करैगा दूसरा पूर्व आचार्य मार्गारूढ पुरुष सर्वव्यापक ब्रह्मको वा भक्तवात्सल्यादि गुणविशिष्ट कैलासवासी वैकुंठवासी देवको केवल मूर्तिरूप कैसे मानेगा इसकारण मूर्तिमेंही ब्रह्मबुद्धि दृढ करके पूजन करते हैं. स्वामीजीका यह विपरीत ज्ञान है जो कहते हैं कि, ब्रह्मके स्थानमें कारण कार्यबुद्धि कर्ताको नरक होता है ऐसी बुद्धि तौ इन्हीकी है प्रतिमापूजकोंकी नहीं प्रतिमा पूजक तौ प्रतिरूप अधिष्ठानमें ब्रह्मबुद्धिकरकै ब्रह्मका पूजन करते हैं इसी अर्थको व्यासजी सूत्रसे कथन करतेहैं ॥

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात्–शा० अ० ४ पा० १ सू० ५

इस सूत्रमें प्रतीकोपासनाबोधक वाक्य उदाहरण है प्रतीककी दृष्टि ब्रह्ममें कर्तव्य है अथवा ब्रह्मदृष्टि अधिष्ठानमें करनी योग्य है इस संशयकी निवृत्तिके वास्ते व्यासजी कहते हैं ब्रह्मदृष्टिही प्रतीकमें कर्तव्य है ब्रह्मको उत्कर्ष होनेसे ऐसे उत्कृष्ट ब्रह्मदृष्टि करनेसे उत्कृष्ट ब्रह्मही पूज्य होगा इस सूत्रसेभी स्वामीजीका मत निर्मूल प्रतीत होता है अब इस नवम मंत्रका अर्थ लिखते हैं इसकी संगति दशम और एकादश मंत्रके साथ है ॥

अन्धंतमःप्रविशन्तीति–

प्रथम तौ कारण कार्य्य उपासनाके समुच्चयकी इच्छाकर एक एक उपासनाकी निन्दा करते हैं जो कारण जड़ प्रकृतिकी उपासना करते हैं वे अन्धतममें प्रवेश करते हैं और जो कार्यकी उपासना करते हैं वे तिससेभी अधिक अन्धकारमें प्रवेश करते हैं ॥

अन्यदेवाहुःसंभवादन्यदाहुरसंभवात्

इति शुश्रुमधीराणांयेनस्तद्विचचक्षिरे यजुः अ० ४० मं० १०

संभवात् अर्थात् ब्रह्मदृष्टिसे कार्य मृन्मयमूर्ति उपासनासे अन्यही विद्युल्लोक प्राप्तिरूप फल आचार्य्य कहते हैं और अन्यही फल असंभवात् अर्थात् कारणरूप प्रकृति उपासनासे प्रकृतिलयरूप फल कहते हैं ऐसे धीराणाम् वेदार्थ उपदेशके आचार्योंका वचन हम लोग सुनतेहुए जो आचार्य्य हमारे प्रति कार्य्य कारण उपासनाका व्याख्यान करते भये हैं॥

संभूतिञ्चविनाशंचयस्तद्वेदोभयं ७ सह

विनाशेनमृत्युंतीर्त्वासंभूत्यामृतमश्नुते-यजु० अ० ४० मं० ११

इस मंत्रमें संभूति शब्दकी आदिमें अकारका लुप्त उच्चारण जानना क्योंकि, विनाश शब्द कार्यका वाचक है और संभूति शब्द भी कार्य्यका वाचक होनेसे पुनरुक्ति होगी और नवम दशम मंत्रमें अकारका उच्चारण है इससे इस स्थानमें अकार है तब यह वाक्यार्थ हुआ जो पुरुष असंभूति कारणकी और विनाश धर्मवत् कार्यकी एककालमें उपासना करताहै सो पुरुष कार्य उपासनासे मृत्युको तरकर कारण उपासनासे अमृतको प्राप्त होता है आशय यह है कि, प्रतिमाका ब्रह्मदृष्टि पूजन ध्यान करता हुआ स्वभाव प्राप्त निषिद्ध कर्मोंको उत्तीर्ण होकर कारण उपासनासे ब्रह्मलोकप्राप्तिद्वारा क्रममुक्तिको प्राप्त होता है यह तीन मंत्रोंका एक महावाक्य है निन्दा कुछ निन्दा करनेको नहीं प्रवृत्त भई किन्तु विधानयोग्य अर्थकी स्तुतिकरनेके वास्ते प्रवृत्त हुई है इस न्यायसे नवम मंत्रसे कारण कार्य उपासनाकी निन्दा समुच्चयके अर्थ करी है और दशम मंत्रसे एक एकका फलभी बोधन किया है, क्योंकि निष्फलका समुच्चय नहीं होता जैसे कृषिकर्म और वाणिज्य प्रत्येक सफल होवैं तौ उन दोनोंका समुच्चय करके एकपुरुष सेवन करता है इससे दशम मंत्रमें एक एक सफल कहा और एकादशमें समुच्चय कहा है इस रीतिसे तीन मंत्रोंकी एक वाक्यता होनेसे प्रतीकोपासना स्पष्ट सिद्ध है ॥ १ ॥

अब दूसरे "न तस्य प्रतिमा अस्ति" यह वेदवचन पूरा मंत्र क्यों नहीं लिखा इसका अर्थ तौ इतनाही है कि, उसकी प्रतिमा नही सो

यहां यह विचार कर्तव्य है कि, तत् शब्दार्थ क्या है निराकार है वा साकार सर्व जगत्में व्यापक है वा परिच्छिन्न और प्रतिमाशब्दार्थ क्या है सो बात विना प्रकरणके और पूरे मंत्रके निश्चित नहीं होसक्ती और विना प्रकरणके विचारे जो स्वामीजी व्यापक निराकारका वाचक तत्-शब्द कहते हैं तो हम कहते हैं साकारही तत्शब्दका अर्थ क्यों नहीं और प्रतिमा शब्दका अर्थ सादृश्य मानकर उस साकार विश्वरूप परमात्माका सादृश्य किसीमें नही ऐसा अर्थ करनेमें क्या हानि इसकारण प्रकरण और पूरे मंत्रका जानना अत्यावश्यक है इससे पहले (तदेवाग्नि०) इस ३२। १ मंत्रमें अग्न्यादिरूपसे परमात्माकी स्थिति कही है दूसरा मंत्र ॥

सर्वे॑ निमेषा ज॑ज्ञिरे विद्युतः पुरु॑षादधि॑ ॥ नैन॑मूर्ध्वं न ति॒र्य॑ञ्चं॒ न मध्ये परि॑जग्रभत् २

स्वयंज्योतिःस्वरूप पुरुषमें सबही निमेषादिरूप खण्डकाल उत्पन्न होता हुआ और इस पूर्ण पुरुषको "ऊर्ध्ववातिर्यञ्चं" चारोंदिशाओंमें वा मध्यमें कोई ग्रहण नहीं करसक्ता सर्वका कारण होनेसे आशय यह है कि, पूर्वमंत्रमें अग्निआदिभाव कहनेसे ग्राह्यता प्रसक्तिका निवारण करदिया अवास्तव स्वशक्ति निर्मित अग्निआदिभावसे वास्तव ग्राह्यत्व कारणात्मामें नहीं होसक्ता ॥

न तस्य॑ प्रति॒मा अ॑स्ति॒ यस्य॒ नाम॑ म॒हद्यशः॑ ॥ हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भ इत्ये॒षः मा॑ मा हिꣳसी॒दित्ये॒षा यस्मा॒न्न जा॒त इत्ये॒षः-यजु०अ०३२मंत्र० ३

प्रतिमा शब्दके अर्थ दो हैं एक तौ तुलयरूपान्तरप्रातिमाशब्दार्थ तिसको तो निषेध करते हैं जिस परमात्माका नाम महत् है तथा यश कीर्ति महत् बडी है तिसका तुल्यरूपान्तर नहीं है और द्वितीय जो प्रतिमाशब्दार्थ है सो स्वयं मंत्र अंगीकार करते हैं "हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे" इन चारमंत्रोंका जो अनुवाक है सो भी इसीका रूपान्तर न्यूनरूप है तथा "मामाहिंसीः" इत्यादि मंत्रबोध्यभी इसीका रूप है इसी रीतिसे हिरण्यगर्भादि परमेश्वर कार्य होनेसे सूर्यप्रतिबिम्बको सूर्य्यप्रतिमावत् न्यून मणिको अधिकमणिकी प्रतिमावत् उत्तमसुवर्ण मुद्रिकाकी निकृष्ट सुवर्णमुद्रिकाको प्रतिमावत् प्रतिमाहै और हिरण्यगर्भसे जो स्वामीजीने

निराकारके अर्थ लिये हैं सो प्रसंगविरुद्ध हैं और यहां यह अर्थ नहीं है कि, उस परमेश्वरकी मूर्ति नहीं है क्योंकि, परमेश्वरको प्रतिमारूप ऋग्वेद कहता है ॥

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यंकिमासीत्परिधिः
कआसीच्छन्दः किमासीत प्रउगंकिमुक्थंयद्देवादेवमय
जन्तविश्वे ऋ० अ० ८ अ० ७ व० १८ मं० ३

अर्थ–सबकी यथार्थ ज्ञानबुद्धि कौन है और प्रतिमा मूर्ति कौन है और जगत्का कारण कौन है और घृतके समान सार जाननेयोग्य कौन है और सब दुःखोंका निवृत्तिकारक और आनंदयुक्त प्रीतिका पात्र परिधि (सीमा) कौन है और इस जगत्का पृष्ठावरण कौन है और स्वतंत्र वस्तु और स्तुति करने योग्य कौन है यहांतक तो इसमें प्रश्न हैं अन्तमें सबका उत्तर इसमें है कि, जिस परमेश्वरको इंद्रादिकोंने पूजा पूजते हैं और पूजेंगे वोह परमेश्वर प्रतिमादिसर्व रूपसे जगत्में स्थित है और वो ही सारभूत घृतवत् स्तुतिकरनेके योग्य है तो ऊपर लिखे मंत्रका यह अर्थ नहीं होसक्ता कि, उसकी मूर्ति नहीं क्योंकि यह ऋग्वेदका मंत्रही कहता है कि वोह प्रतिमारूप है बस यही अर्थ है कि, उस परमेश्वरकी समान कोई नहीं है इससे आगले मंत्रमें भी प्रजापतिको सर्व रूप कहा है ॥

मामाहिꣳसीज्जनितायः पृथिव्यायोवादिवꣳसत्यधर्माव्यानट्
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमोजजानकस्मैदेवायहविषाविधेम
य० अ० १२ मं० १०२

(यः) जो प्रजापति (पृथिव्याः) पृथिवीका (जनिता) उत्पन्न करनेवाला (यः) जो (सत्यधर्मा) सत्यधारण करनेवाला (दिवम्) द्युलोकको (व्यानट्) सृजनकर व्याप्तहै (च) और (यः) जो (प्रथमः) आदिपुरुष प्रथमशरीर (आपश्चन्द्राः) जगत्के आल्हाद और तृप्तिसाधक जलको (जजान) उत्पन्न करता हुआ वा मनुष्योंका रचनेवालाहै वह प्रजापति (मा) मुझे (माहिंसीत्) मत मारो (कस्मै) उस प्रजापतिके निमित्त (हविषा विधेम) हवि देतेहैं ।

यस्मान्नजातः परो अन्यो अस्ति य आविवेशभुवनानिविश्वा
प्रजापतिः प्रजयासꣳरराणस्त्रीणिज्योतीꣳषि सचतेसषोडशी ।
य० अ० ८ मं० ३६

पदार्थः (यस्मात्) जिस पुरुषसे (अन्यः) दूसरा कोई उत्कृष्ट (न) नहीं (जातः) प्रादुर्भूत हुआ (अस्ति) है (यः) जो (विश्वा) संपूर्ण (भुवनानि) लोकोंमें (आविवेश) अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्टहै (सः) वह (षोडशी) षोडशकलात्मक सब भूतोंका आश्रय (प्रजापतिः) जगत्का स्वामी (प्रजया) प्रजारूपसे (संरराण) सम्यक् रमण करता हुआ प्रजापालनके निमित्त (त्रीणि) अग्नि वायु सूर्य लक्षणवाली तीन (ज्योतींषि) ज्योतियोंको अपने तेजसे (सचते) उज्जीवन करताहै ।

(न तस्य प्रतिमा०)

वादी इसी मंत्रपर बड़ा बल रखतेहैं परन्तु यह नहीं विचारते कि न तो कल्पने इस मंत्रको मूर्तिखण्डनमें विनियुक्त करा और न इसके ब्राह्मणसे यह अर्थ सिद्ध होताहै प्रत्युत यह मंत्र मूर्तिमंडनमें,युक्तहै कारण कि, इस स्थलमें प्रतिमा शब्द उपमा वाचकहै मूर्तिवाचक नहीं कारण कि उत्तरार्धमें मूर्ति विधेयहै जिस स्थानमें उद्देश्य और विधेयकी एकार्थतामें विरोध प्रतीत हो उस स्थानमें विधेयके अनुसारी उद्देश्यका अर्थ होताहै, जैसे किसी पुरुषने कहा इसे दक्षिणा दीजिये और उसके नियोज्य पुरुषने उसको प्रहार किया तो अवश्य प्रतीत होताहै कि नियोक्ताका दक्षिणा उद्देश्य अंगसे प्रहार काही सूचक है यथा " उद्देश्यविधेययोर्विरोधे सति विधेयाविरोधेनोद्देश्यं नेयमिति न्यायात् शा० भा० "अर्थात् उद्देश्य और विधेयकी विरोधता प्रतीतिमें विधेयका अविरोधी अर्थ उद्देश्यका होताहै इससे यहां प्रतिमा शब्द मूर्तिका निषेधक नहीं किन्तु उपमाका वाचक है इसी मंत्रके उत्तरार्धमें । हिरण्यगर्भ इत्येषोमामाहिꣳसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः इसमें तीन मंत्रोकी प्रतीकहैं हिरण्यगर्भः १३।४ इसमें प्रजापतिकी सोनेकी मूर्तिका विधानहै, " मामाहिꣳसीः"यजु० १२।१०२ इसमें प्रजापतिको प्रथम शरीरी कहकर मूर्तिपन दिखायाहै और यस्मान्न जात ८।३६ यजुमें प्रजापतिको अग्निवायु सूर्यरूप कहाहै इसमें विधेय तो मूर्ति है और उद्देश्य प्रतिमाहै तो यह मंत्रके पूर्वार्धगत प्रतिमा शब्द उ-

त्तरार्धगत विधेयमूर्तिका निषेधसूचक कैसे हो सकताहै इससे यहां प्रतिमाका अर्थ उपमाही है शंकराचार्यनेभी शा० २।३।७ के भाष्यमें न तस्य प्रतिमास्तीति ब्रह्मणोनुपमानत्वं दर्शयति अर्थात् न तस्य० इस मंत्रमें प्रतिमासे परमात्माको अनुपमेयत्व कहाहै निरुक्त० उत्तरष०अ०७ खं० २ त इन्द्रशतं दिवः शतं भूमयः प्रतिमानानि स्युर्न । अर्थात् हे देव यदि अनन्त भूमियें और सूर्य तुम्हारे उपमानार्थ दिखाये जाँय तोभी तुम्हारी उपमा नहीं होसकती, अब हिरण्यगर्भ० इस मंत्रका कल्प विनियोग और ब्राह्मण देखिये ब्रह्मजज्ञानम् यजु० १३।३ इस मंत्रसे कमल पत्रक ऊपर वर्तुलाकार और एकविंशति उत्तान बिन्दुयुक्त सुवर्ण फलक धरै । अथ रुक्ममुपदधाति श० ७।४।१।१०। तस्मिन् रुक्ममधः पिण्ड ब्रह्मजज्ञानमिति कात्या० श्रौ० सू० १७।४।२ इसके अनन्तर ॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्
सदाधार पथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम १३।४

अर्थ–यह कि हिरण्य पुरुषरूप ब्रह्माण्डमें गर्भरूपसे जो प्रजापति स्थितहै वह हिरण्यगर्भ कहलाताहै वह प्रजापति सर्व प्राणिजातिकी उत्पत्तिसे प्रथम स्वयं ब्रह्माण्डशरीरी हुआ और उत्पन्न होनेवाले जगत् का स्वामी हुआ वह प्रजापति अन्तरिक्ष द्युलोक और भूमिको धारण किये हुएहै, उस प्रजापतिकी हम हविसे परिचर्या करते हैं.

तात्पर्य यहहै कि पृथिवीकी प्रतीक तो पुष्कर पत्रहै आदित्यकी प्रतीक सुवर्णफलकहै, और आदित्य अन्तर्गत पुरुषकी प्रतीक सुवर्ण पुरुषहै इसीका नाम प्रतीकोपासनाहै यह सुवर्णका पुरुष स्थापन शतपथ कां० ७।४।१।१९से चलताहै.

अथ पुरुषमुपदधाति स प्रजापतिः सोग्निः स यजमानः
स हिरण्मयो भवति, ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरग्निरमृत ७ँ
हिरण्यममृतमग्निःपुरुषो भवति पुरुषोहि प्रजापतिः १
उत्तानम्प्राञ्च ७ँ हिरण्यपुरुषं तस्मिन् हिरण्यगर्भ इति कात्या
यनकल्पसू० १७।४।३

रुक्मके ऊपर हिरण्मय पुरुषको स्थापन करै अर्थात् पूर्वाभिमुख उत्तिष्ठमान हिरण्यपुरुषको हिरण्यगर्भः इसमंत्रसे सुवर्णफलकके ऊपर स्थापन करै कात्या०का अर्थ हुआ.

स्थूल प्रपंचाभिमानी विराट् पुरुषही अग्निरूपहै और सूक्ष्म प्रपंचाभिमानी हिरण्यगर्भ है वह हिरण्यगर्भरूपही यजमानहै, और चयनको प्राप्त अग्नि पुरुषरूपसे संस्कृत होती है उसीका प्रतिकृतिरूप हिरण्य पुरुष है इसकारण वह पुरुषाकृतिके योग्य है उभय प्रतीकमें एकध्येयको प्रातिकृति कहते हैं इसका व्याख्यान स्वयंही ब्राह्मण करता है जो ज्योति हिरण्य है ज्योति अग्नि है वही अमृत है, वही आग्नि पुरुष विधि होती है और पुरुषही प्रजापति है "हिरण्यं कस्माद्धियते आयम्यमानमिति वा ह्रियते जनाज्जनमिति वा हितरमणं भवतीति वा हृदयरमणं भवतीति निरु० २ । १० ।" शिल्पियोंसे विस्तारित होनेसे हिरण्य कहा जाता है दुर्भिक्षादिमें हित है तथा सदा सबको रमण करानेसें हिरण्य सोनेका नामहै ऋ० २। सू० ३५ मंत्र १० हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृक् । सुवर्णमय शरीरी और सुवर्णमय इन्द्रियवाला है, इस से इस मंत्रमें प्रतिमामें पूजाका निषेध नही किन्तु विधान है आगें प्राणप्रतिष्ठामें–

नमोस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः १३ । ६

जो लोक पृथिवी और अन्तरिक्षमेंहैं जो द्युस्थानमेंहैं तिनको नमस्कारहै यह प्राणप्रतिष्ठाके मंत्रहैं प्राणप्रतिष्ठासे मूर्तिमें शक्ति उत्पन्न होतीहै इस अर्थको ब्राह्मणभाग कहताहै ॥

अथ साम गायाति एतद्वै देवा एतं पुरुषमुपधाय तमेतादृश मेवापश्यन्यथैतच्छुष्कं फलकम् २२ ते अब्रुवन् उपतज्जानीत यथास्मिन् पुरुषे वीर्यं दधामेति ते अब्रुवंश्च तयध्वामिति चितिमिच्छतोति वा च तदब्रुवंस्तदिच्छत यथास्मिन्पुरुषे वीर्यं दधामीति २३ ते चेतयमानाः एतत् सामापश्यँस्तदगायँस्तदस्मिन्वीर्यमदधुस्तथैवास्मिन्नयमेतद्दधाति पुरुषे गायाति पुरुषे तद्वीर्यं दधाति चित्रे गायाति सर्वाणि हि चित्राण्यग्निस्तमुपधाय न पुरस्तात्परीयान्नेनमायमग्निर्हि न सादिति २४ । अथ सर्पनामैरुपातिष्ठते इमे वै लोकाः सर्पाः

श० ७ । ४ । १ । २२-२४

जब देवताओंने हिरण्मय पुरुषको सुवर्ण फलकके ऊपर स्थापन किया तब यह परामर्श किया कि वह सुवर्ण पुरुष चेतनासे रहित शुष्क फलककी समानहै ॥२२॥तब फिर सब बोले कि इस हिरण्मयपुरुषमें श-क्तिप्रादुर्भावके निमित्त परामर्शकरो सब देवताओंने इस बातको अनु-मोदन किया कि इसमें वीर्य स्थापन करें वह देवता मीमांसा करते हुए तब (नमोस्तु सर्पेभ्यो० या इषवो यातु० ये वामी रोचने०) इन तीन मंत्र-रूप सामकी उपलब्धिको प्राप्तहुए और इस तीन मंत्ररूप सामको गाया तब उस हिरण्मय पुरुषमें वीर्य अर्थात् फलप्रदायक शक्तिको स्थापन किया इसी प्रकार यह यजमानभी इसी सामके बलसे इस पुरुषमें सामर्थ्यका विधान करताहै, तात्पर्य यह ऊपरके तीनमंत्र पढनेसे पुरु-षमें सामार्थ्य प्रगट होतीहै चित्रं देवानाम् इत्यादि यजु० ७। ४२ काहै वहां जो धर्मरूप तामें सूर्य और अग्निकी एकता प्रतिपादनकीहै वह चित्ररूपहै और हिरण्यगर्भ चित्ररूप होताहीहै, इससे वही हिरण्यपुरु-षका शरीरहै इससे हिरण्यपुरुषका विधान करके यजमान् उनके आगे गमन न करै ऐसा करनेसे अनिष्ट होताहै सर्प नाम तीन मंत्रोंसे यज-मान हिरण्य पुरुषका उपतिष्ठमान करै आवाहनके मंत्र वेदोंमें अने-कहै यथा-

तान्पूर्वया निविदाहूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।
अर्य्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगामयस्करत्
ऋग्वे० भा० १ अ०६ व० १९ मं० ३

हम पूर्वकालीन नित्या वाणीसे भग मित्र आदिति दक्ष अर्यमा वरुण सोम अश्विनीकुमार सरस्वतीको आवाहन करतेहैं हमको सुखका-रकहों (आह्वानं च निविदाम्) आश्व० श्रौ० सू० १९ अ० ९ कं० ९ वेदमंत्रोंकी देवता आवाहनमें सामर्थ्यताहै. और इसी हिरण्मय पुरु-षके नैवेद्यार्थ पांचमंत्रोंसे अग्निमें पांच आहुति दीजातीहैं, वे मंत्र कृणु-ष्वपाज० यजु० अ० १३ मं० ९।१०।११।१२।१३ तकहैं उनका अर्थ हमारे यजुर्वेद भाष्यमें देखो इनका ब्राह्मण-

अथैनमुपविश्याभिजुहोति आज्येन पंचगृहीतेन तस्योक्तो बंधुः सर्वतः परिसर्व ७ँ सर्वाभ्य एवैनमेतद्दिग्भ्योऽन्नेन प्रीणा-ति श० ७।४।१।३२

इसीका कात्याय० श्रौ० सू० अ० १७ कं० ४ । सू० ७

उपविश्य पंचगृहीतं जुहोति पुरुषे कृणुष्वपाज
इति प्रत्यृचं प्रतिदिशमपरिसर्पम् ।

कृणुष्वपाज इत्यादि पांच मंत्रोंसे पंचधा गृहीत घृतसे होमकरे चार मंत्रोंसे चार दिशामें पंचम मंत्रसे अग्निमें आहुतिदे जिस दिशामें अग्निमें आहुतिदे स्वयंभी उसी दिशामें चले इन मंत्रोंसे हिरण्मय पुरुषको नैवेद्य लगाया जाता है कारण कि पूर्वमें हिरण्यगर्भ० इसमें 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' ऐसा कहाहै कि हम प्रजापतिके आहुतिसे हविसे उपासना करतेहैं इससे नैवेद्य प्रदान है प्रतीकमें अर्चनका मंत्र लिखते हैं ऋ० अष्ट० ६ अ० ५ स० ५८ मं० ८

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत
अर्चन्तु पुत्रका उतपुरं न धृष्ण्वर्चत ८

हे अध्वर्यादि तुम परमात्मा इन्द्रका (अर्चत) पूजनकरो (प्रार्चत) स्तुति विशेषसे पूजनकरो (प्रियमेधासः) प्रियमेधस सम्बन्धी वा प्रियमेधाके गोत्रवाले तुम (अर्चत) पूजनकरो (उत) और (पुत्रकाः) पुत्रभी (अर्चन्तु) विशेषकर इन्द्रको पूजें (उत) और (पुरं न) जैसे पुरुषको (धृष्णु) धर्षणशीलको (अर्चत)अर्थात् जैसे धर्षणशील पुरुषको पूजते हैं तैसे तुम पूजो । इससे पूजा सिद्ध है ॥

इसीके अनुसार शाकल शाखामें कहाहै (प्रियव्रताः पूजयन्तु प्रार्चयंत्विति वीप्सितम् । बालकाः पूजयंत्विन्द्रं धीराः सन्त इति श्रुतिः)अर्थ पूर्व कथनानुसारहै रही यह बात कि देवताओंके लिये मन्दिर बनाये जाते थे इसकाभी अनुमान प्रमाण दोनो मौजूद हैं ॥

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते स ७ सृजेथामयञ्च
यजु० अ० १५ मं० ५४

हे अग्ने! तुम 'उद्बुध्यस्व' सावधानहो जागृतहो इस यजमानको सावधानकरो (इष्टापूर्ते) श्रौत स्मार्त मन्दिर कूपादि कर्ममें (अयंच) इस यजमानसेभी (संसृजेथाम्) संगति प्राप्त करो । इष्टापूर्त किसको कहतेहैं इसमें स्मृति ॥

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानामुपलम्भनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते १

वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च
अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते २

अग्निहोत्र तप सत्य वेदपाठ आतिथ्य वैश्वदेवकर्म इष्ट कहाताहै १ बावडी कूप सरोवर देवमन्दिरनिर्माण अन्नदान बगीचा लगाना यह कर्म पूर्त कहाताहै २. जब वेदमें इष्टापूर्त शब्द आताहै तब उसीसे यह सब बातें स्वतः सिद्ध होगई फिर और आवश्यकता क्याहै फिर बारहवर्ष सहस्रों वर्षोंके देवयजन होतेथे तब बराबर मन्दिरथे इसमें कहनाही क्याहै यह सुवर्णादिमूर्तिके प्रमाण कहे अब दूसरी काष्ठमयी मूर्तिके प्रमाण देखिये ।

अदो यद्दारु प्लवते सिंधोः पारे अपूरुषम्
तदा रभस्व दुर्हणोनैनगच्छपरस्तरम् ऋ०८।८।१३।३

(अदः) विप्रकृष्टदेशमें वर्तमान (अपूरुषम्) पुरुषनिर्माणरहित (यत्) जो (दारु) दारुमय पुरुषोत्तम शरीर (सिन्धोः पारे) समुद्रके तटमें (प्लवते) वर्तमानहै (तत्) सो (दारु) शरीरको (आरभस्व) अवलम्ब वा उपासना करो जो (दुर्हणः) किसीसेभी हनन नहीं होता (तेन) उस दारुमय देवकी उपासना करनेसे (परस्तरम्) अतिशय उत्कृष्ट वैष्णवलोकको (गच्छ) प्राप्तहो ! यही सायनाचार्यकाभी आशयहै ॥

इसीमंत्रमें शाकल शाखाका प्रमाणहै (यद्दार्वमानुषं सिन्धोस्तीरे तीर्णं प्रदृश्यते। तदालभ्याथ परं पदं प्राप्नोति दुर्लभम्) शाकलशाखा ८।८।१३।३

जो यह अमानुष दारुमय पुरुषोत्तममूर्ति समुद्रके तटमें जगन्नाथ नामसे दृश्यमानहै उसकी उपासनासे दुर्लभ परंपद अर्थात् क्रममुक्ति प्राप्त होतीहै। यहप्रमाण बहुतहै जिसे अधिक देखना हो वह वेद शास्त्रोंमें अवलोकन करले. और देखो यदि कोई किसीके मस्तकका पूजन करै तौ वह यह नहीं मानता कि इसनें मेरा मस्तक पूजा किन्तु यह मान्ताहै कि इसने मेरा पूजन किया इसीप्रकार परमात्मा सर्वत्र है जहां उसका विग्रह कल्पनाकर पूजोगे वहां वह अपना पूजन मानेगा. और मंत्रार्थतो कर्माधिष्ठातृ देवताके स्वरूपका प्रकाश होताहै कर्तव्य अर्थको स्वयं नहीं कहता कर्तव्य अर्थका बोधक कल्प और नियोजक ब्राह्मण होताहै और मंत्रार्थरूप लिंगसे नियोजक ब्राह्मणभाग श्रुतिको

बलिष्ठताहै यथा—श्रुतिलिंगवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानां समवाये पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षादिति पूर्वमीमांसाअ० ३ । ३ । १४ इसमें श्रुतिको लिंगसे बलिष्ठता कथन करी है जैसे संध्यामें प्राणायामके निमित्त नियुक्त मंत्र लिंगसे पूरक कुंभक रेचक वाले कैसे सिद्ध होते हैं इसी प्रकार सोलह संस्कार वाली क्रिया भी कल्पानुसारही सिद्ध होतीहैं इससे मंत्र ब्राह्मण और कल्पके असाधारण कार्यमें मंत्र ब्राह्मण कल्पही प्रमाणहैं दूसरेका कार्य दूसरेसे लिया जाय तो वही निदर्शन होगा यथा मुखका श्रोत्रसे यद्यपि पुरुषके शरीरमें नव छिद्रोंकी छिद्रता समानहीहै तथापि कार्यानुसारी क्रियाकी निष्पत्तिके अर्थ अपने २ कार्यमें वह परोक्ष नहींहै इससे विधि कल्पानुसारही होतीहै यथा बौधायनकल्प परिचर्य्या प्रक० सू० २ (स्नात्वा शुचौ गौमयेनोपालिप्य प्रतिकृतिं कृत्वा अक्षतपुष्पैर्यथालाभमर्चयेत्) अर्थात् स्नानकर पवित्रदेशमें गोबरस लिपी भूमिमें देवताकी प्रतिकृति (मूर्ति) स्थापनकर गंधाक्षतसे पूजे इससेभी मूर्तिका अर्चन सिद्धहै इससे कल्पादिके अनुसार मंत्रनियोजन करनाही सत्यफल देनेवाला होताहै अन्यथा अर्थमें गडबड होगी कर्म बिगडैगा शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द ज्योतिष यह वेदांगहैं प्रकरण अनुसारही मंत्रोंका कहना (प्रकरणतो हि प्रबलो विषयी स्यादिति गोपथपू० भा० १ । ३।१६) इसकारण वेदमंत्रोंके अर्थमें प्रकरणका भी विचार करना चाहिये।

अब सज्जन पुरुष देखें जो इसप्रकरणमें केवल निराकार प्रतिपाद्य नहीं किन्तु सर्व प्रपंचगत यावत् रूपवाला और वास्तवसे स्वसदृश रूपान्तरवर्जित ब्रह्म प्रतिपाद्य है और स्वामीजीने इसी अध्यायके दो मंत्र पूर्व छोडकर और तीसरे मंत्रमें एक टूक काटकर प्रतिमापूजनका निषेध किया है परन्तु इससे क्या उनका मनोरथ सिद्ध हो सक्ता है अब केन उपनिषद्के वाक्योंका अर्थ देखिये ॥

(यद्वाचा०) यहांभी यह विचार है कि, यह जल है लीजिये वैसा विषय नहीं यह कौनसे पदका अर्थहै इस अर्थका वाचक इस श्रुतिमें कोई पद नहीं और उपासनाकर उससे भिन्न उपासनीय नहीं यहभी किसी पदका अर्थ नहीं इस प्रकरणमें तो उपासनाकी विधि वा किसीकी उपासनाका निषेध नहीं किन्तु जो सर्व प्रमाणोंका अविषय स्वप्रकाश जो सर्व प्रमाणोंका प्रकाशक है तिसको ब्रह्मरूपता कही है यह तो ज्ञेय वस्तुका विवेचन है सो अक्षरार्थको देखिये ॥

जो वाक्करके प्रकाशित नहीं होता वाणीका अविषय वस्तु है आशय यह कि, जो वस्तु शब्दजन्य वृत्तिज्ञानसे प्रकाशित होता है सो वाचाभ्युदितं ऐसे कहा जाता है और ज्ञेय वस्तु ब्रह्म शब्द और शब्दजन्य अन्तःकरणकी वृत्ति और वृत्तिविषय जड़ पदार्थ इन सर्वको प्रकाशता है, जिससे वाणी प्रकाशित होती है हे शिष्य ! तिसेही तू ब्रह्म जान जिसे उपासक इदंरूपसे उपासना करते हैं सो ब्रह्म नहीं आशय यह है जिसको वृत्तिविषय करके पश्चात् ध्यान करतेहैं सो ब्रह्म नहीं किन्तु वोह दृश्य कोटिमें प्रविष्ट है ऐसे सर्व प्रकाशकको ब्रह्मता कहकर उपास्य मात्रको मुख्य ब्रह्मताका निषेध किया है एक वस्तुको उपासनीयत्व और दूसरीको अनुपासनीयत्व कहना प्रकरण अनुकूल और श्रुतिके अक्षर अनुकूल श्रुत्यर्थ नहीं हो सक्ता और वेदसिद्धान्तमें दो पदार्थ हैं दृक् और दृश्य तिसमें यह विचारणीय है कि, दयानंदजीने जो यह जल है लीजिये वैसा विषय नहीं यह कहकर उसको उपासनीय कहा सो दृक् पदार्थके अन्तर्गत है वा दृश्यके यदि दृक् है तौ उपासनीय नहीं अविषय होनेसे यदि उपासनीय है तौ दृश्य है तिसको ब्रह्मत्व नहीं ऐसे ध्येय विलक्षण दृक् वस्तुके प्रकरणकी यह श्रुति किसीको उपासनीयत्व और किसीको अनुपासनीयत्व नहीं बोधन करती किन्तु उपास्यमात्रको ब्रह्मत्वके निषेधद्वारा दृक्वस्तुको ब्रह्मत्व जनातीहै सो यह अर्थ इस श्रुतिके पूर्व तीन मंत्रोंमें संपादन किया है विषय भिन्न होताहै ॥ १ ॥

(यन्मनसा०) इस मंत्रकाभी अर्थ दयानंदजीने अशुद्धही लिखा है यह जानिये कि, जिस अधिष्ठानमें दूसरी वस्तुकी उपासना करी जाती है सो अधिष्ठान प्रत्यक्ष होताहै जैसे विष्णुकी मूर्तिमें वैकुण्ठवासी विष्णुकी उपासना होती है इस स्थानमें अधिष्ठान प्रत्यक्ष है और आरोप्य करने योग्य विष्णु अप्रत्यक्ष है और स्वामीजी कहते हैं कि, ब्रह्मके स्थानमें जीव और अन्तःकरणकी उपासना मतकर और ब्रह्मको कैसा कहा जो मनमें नहीं आता जब मनमेंभी ब्रह्म न आया तौ अप्रत्यक्ष हुआ तौ अप्रत्यक्ष अधिष्ठानमें उपासना कैसे होगी, जीव और अन्तःकरणकी और यहभी विचार करना कि, ब्रह्मके स्थानमें अन्तःकरण और जीवकी उपासनाका फलही क्याहै और करताही कौन है क्योंकि, उपासनाका फल तौ उपास्य साक्षात्कार है (सो तौ अन्तःकरण और जीवका साक्षात्कार पूर्वसिद्ध है) और जो उपासना है तौ

जीवके स्थानमें प्रत्यक्ष ब्रह्मकी उपासना होती है ब्रह्मभी किंचित् उपाधिविशिष्ट हो अथवा साक्षी आत्मामें अब्रह्म वासना निवृत्तिके अर्थ स्वतःसिद्ध ब्रह्मकी उपासना होती है अप्रत्यक्ष ब्रह्मरूप अधिष्ठानमें प्रत्यक्ष सिद्ध किसी पदार्थकी उपासना लोक वेदमें अप्रसिद्धका निषेध करना केवल विद्याहीनताका कारण है अर्थ यह है कि-

मनका अविषय हुआही जो मनका प्रकाशक है तिसको ब्रह्म जान और इदं उपासना करा जाता है सो ब्रह्म नहीं २

(यच्चक्षुषा०) एक तौ इस श्रुतिका पाठही अशुद्ध है क्यों कि येन चक्षूंषि पश्यति ऐसा शुद्ध पाठ है और स्वामीजीने (पश्यन्ति) लिखा है इससे उनका अर्थ ही क्या ठीक होगा, अर्थ यह है चक्षुजन्य वृत्तिकरके जिस चैतन्य ज्योतिको विषय नहीं करता लोक और अन्तःकरण वृत्तिसंयुक्त जिस चैतन्य ज्योतिसे अन्तःकरणवृत्तियोंके भेदसे भिन्न चक्षुवृत्तियोंको देखता है तिस चैतन्य ज्योतिको तू ब्रह्म जान और इदंरूपसे उपासना किया जाता है सो ब्रह्म नहीं और इस मंत्रमें सूर्य अग्नि विद्युत् जड कहा है सोभी बुद्धिहीनता है क्यों कि, इसी उपनिषद्के तृतीय खण्डमें अग्नि वायु इंद्रको ब्रह्मके साथ संवाद निरूपणसे देवत्व कहा है और अग्नि आदित्य वायुको धर्मस्वरूप मार्ग निरूपणके प्रसंगमें उपास्यता निरूपित है और गायत्री अर्थ निरूपणके प्रसंगमें आदित्यको ब्रह्मरूपता निर्णीत है और विद्युतभी ब्रह्म है ॥

विद्युद्ब्रह्मेत्याहुर्विदानात्-बृ० उप० अ० ७ वा० ७

विद्युत् ब्रह्म है ऐसे वेदविद्या उपदेशक आचार्य कहते हैं ॥

अब स्वामीजीका इस मंत्रमेंभी अज्ञान प्रगट हो गया जो आदित्यादिको जड़ कहते हैं ॥ ३ ॥ दिग्देवतानुगृहीत आकाश कार्य्य मनोवृत्तिसंयुक्त श्रोत्र करके जिस चैतन्य ज्योतिको लोक नहीं जान सकता जिस चैतन्य ज्योतिसे मनोवृत्ति सहित श्रोत्रजन्य वृत्तिको विषय करा जाता है तिसको तू ब्रह्म जान और जो इदंकर उपासनीय वस्तु है सो मुख्य ज्ञेयकोटिप्रविष्ट ब्रह्म नहीं ॥ ४ ॥

पंचममंत्रमें प्राणशब्दार्थ घ्राण है क्योंकि प्राणमें क्रियाशक्ति है ज्ञानशक्ति नहीं तब यह अर्थ हुआकि, पृथ्वी देवतानुगृहीत मनोवृत्ति सहित घ्राण जन्यवृत्ति करके जिस चैतन्य ज्योतिको लोक नहीं जानता और जिस चैतन्य ज्योतिसे मनोवृत्तिसहित घ्राणजन्य वृत्ति जानी जातीहै

तिसको तू ब्रह्म जान जो कि इदं करके उपास्य वस्तु है सो मुख्य ब्रह्म नहीं ॥ ९ ॥ अब इसप्रकारसे प्रतीकोपासना तौ सिद्ध होगई और "नतस्य प्रतिमा अस्ति" इसका अर्थभी निर्णीत होगया ॥

स० प्र० पृ० ३११ पं० ४ नास्तिको वेदनिन्दकः

मनुजी कहते हैं जो वेदोंकी निन्दा अर्थात् अपमान त्याग बिरुद्धाचरण करता है वोह नास्तिक कहाता है ॥ ३३४ । १७

समीक्षा–यह स्वामीजी मानचुके जो वेदविरुद्धाचरण करता है वोह नास्तिक कहाता है सो यह बात स्वामीजीपरही लगी क्योंकि मूर्तिपूजन वेदमें विद्यमान है और यह उसके विपरीत हैं कि, मूर्तिपूजा मत करो तौ यह शब्द उन्हींपर लगताहै यदि कहो कि वेदमें तौ मूर्तिका निषेध है "न तस्य प्रतिमा अस्ति" यद्यपि इसका अर्थ पूर्व लिखचुके हैं परन्तु अभी कुछ और कहना है जब वेदमें हम इसमंत्रका स्वामीजीका कियाही अर्थ मानलें तौ यह स्पष्ट होता है कि पहले मूर्तिपूजा थी तभी तो इसकी मनाई लिखी "प्राप्तौ सत्यां निषेधः" प्राप्ति होनेसे निषेध होता है तौ मूर्तिपूजन वेदसेभी पूर्वका सिद्ध हुआ यदि कहो कि कहीं विना प्राप्तिकेभी निषेध कियाजाता है जैसे कि, पिता पुत्रको समझाता है पुत्र चोरी मतकरना, जुआ मतखेलना तौ अभी बालक चोर नहीं हुआ जुआ नहीं खेला परन्तु पिता उसे निषेध करता है इससे विना प्राप्ति केभी निषेध होताहै यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं यद्यपि बालक अभी चोर जुवारी नहीं हुआ है परन्तु चोरी जुआ यह दोनों विद्यमान हैं पह लेहीसे उनका ग्रहणकरना बुरा जान पिताने उसे निषेध किया है विना कोई बात हुए उसका निषेध नहीं होसक्ता इसकारण जो इस मंत्रमें प्रतिमाशब्द मूर्तिवाचक मानो तौ वेदसे पूर्वभी मूर्ति पाई जाती है तौ वेदभी पीछेका हुआ सो ऐसा है नहीं वेद सबसे पूर्वका है इसकारण यहां "प्रतिमा" शब्द मूर्तिका वाचक नहीं किन्तु प्रतिमान उपमानका अर्थ है तौ अब वेदप्रतिपाद्य वस्तुको न मानना नास्तिकता है या नहीं ॥

१ स० प्र० ३११ पं० २१ मूर्तिपूजा सीढी नहीं किन्तु एक गहरी खाई है जिसमें गिरकर चकनाचूर होजाता है पुनः उस खाईसे निकल नहीं सक्ता किन्तु उसीमें मरजाताहै मूर्तिपूजा करते २ कोई ज्ञानी तौ नहीं हुआ किन्तु मूर्ख होगये ॥ ३३५ । ८

पृ० ३१२ पं० ६ साकारमें मन स्थिर कभी नहीं होसक्ता क्योंकि उसको मन झट ग्रहणकरकै उसीके एकएक अवयवमें घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है और निराकार परमात्माके ग्रहणमें यावत्सामर्थ्य मन अत्यन्त दौडता है तौभी अन्त नहीं पाता निरवयव होनेसे चंचलभी नहीं रहता किन्तु उसीके गुण कर्म स्वभावका विचार करता आनंदमें मग्न होकर स्थित होजाता है और जो साकारमें स्थिर हो तो सब जगत्का मन स्थिर होजाता क्योंकि जगत्में मनुष्य स्त्री पुत्र धन मित्र आदि साकारमें फँसा रहता है परन्तु किसीका मन स्थिर नहीं होता जबतक निराकारमें न लगावे क्योंकि, निरवयव होनेसे उसमें मन स्थिर होजाता है इसलिये मूर्तिपूजन करना अधर्म है ॥ ३३९ । २०

२ दूसरे उसमें करोड़ों रुपये व्ययकरकै दरिद्र होते हैं और उसमें प्रमाद होता है ॥

३ तीसरे स्त्रीपुरुषोंका मंदिरोंमें मेला होनेसे व्यभिचार लडाई बखेडा और रोगादि उत्पन्न होते हैं ॥

४ चौथे उसीको धर्म अर्थ काम और मुक्तिका साधन मानकै पुरुषार्थरहित होकर मनुष्य जन्म व्यर्थ गमाता है ॥

५ पाँचवाँ नानाप्रकारकी विरुद्धस्वरूप नाम चरित्रयुक्त मूर्तियोंके पुजारियोंका ऐक्यमत नष्ट होके विरुद्ध मतमें चलकर आपसमें फूट बढा के देशका नाश करते हैं ॥

६ उसीके भरोसे शत्रुका पराजय और अपना विजय मानकै बैठे रहते हैं उनका पराजय होकर राज्य स्वातंत्र्य और धनका सुख उनके शत्रुओं के स्वाधीन होताहै और आप पराधीन भठियारेके टट्टू और कुम्हारेके गदहेके समान शत्रुओंके वशमें होकर अनेक विधि दुःख पाते हैं ॥

७ सातवाँ जब कोई कहै कि, हम तेरे बैठनेके आसन वा नामपर पत्थर धरैं तौ जैसे वोह उसपर क्रोधित होकर मारता वा गाली देताहै वैसेही जो परमेश्वरके उपासनाके स्थान हृदय और नामपर पाषाणादि मूर्तियां धरते हैं उन दुष्टबुद्धिवालेंका सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करै॥

८ आठवाँ भ्रांत होकर मंदिर २ देशान्तरोंमें घूमते २ दुःख पाते हैं धर्म संसार और परमार्थ काम नष्टकरते चोरादिकोंसे पीडित हो ठगोंसे ठगाते रहतेहैं ॥

९ नवमा दुष्ट पुजारियोंको धन देतेहैं वे उस धनको वेश्या परस्त्रीगमन मद्यमांसाहार लडाई बखेडोंमें व्यय करतेहैं जिससे दाताके सुखका मूल नष्ट होकर दुःख होताहै ॥

१० माता पिता आदि माननीयोंका अपमानकर पाषाणादिमूर्तियोंका मान करतेहैं ॥

११ ग्यारहवाँ उन मूर्तियोंको कोई तोड डालता वा चोर ले जाता है तब हाहाकर रोते रहतेहैं ॥

१२ बारहवाँ पुजारी परस्त्रियोंके संग और पुजारीन परपुरुषोंके संगसे प्रायः दुःखित होकर स्त्री पुरुषके प्रेमके आनन्दको हाथसे खो बैठतेहैं ॥

१३ स्वामीसेवककी आज्ञाका पालन यथावत् न होनेसे परस्पर विरुद्धभाव होकर नष्ट भ्रष्ट होजातेहैं ॥

१४ जड़के ध्यान करनेवालोंका आत्माभी जड़बुद्धि होजाताहै क्योंकि, ध्येयका जड़त्व धर्म आत्मामें अन्तःकरणद्वारा अवश्य आताहै ॥

१५ पन्द्रहवाँ परमेश्वरने सुगन्धि युक्त पुष्पादि पदार्थ वायु जलके दुर्गन्धि निवारण और आरोग्यताके लिये बनायेहैं उनको पुजारीजी तोड तोड कर न जाने उन पुष्पोंकी कितने दिनोंतक सुगन्धि आकाशमें चढकर वायु जलकी शुद्धि पूर्ण सुगंधके समयतक उसका सुगन्ध होता उसका नाश मध्यहीमें करदेतेहैं पुष्पादि कीचके साथ मिल सडकर उलटी दुर्गन्धि उत्पन्न करतेहैं क्या परमात्माने पत्थरपर चढानेके लिये पुष्पादि सुगंधियुक्त पदार्थ रचेहैं ॥

१६ सोलहवां पत्थरपर चढे हुए पुष्प चंदन और अक्षत आदि सबका जल और मृत्तिकाके संयोग होनेसे मोरी वा कुंडमें आकर सडकै इतना उससे दुर्गन्ध आकाशमें चढताहै कि,जितना मनुष्यके मलका और सहस्र जीव उसमें पडते उसीमें मरते सडते हैं ऐसे ऐसे अनेक मूर्तिपूजाके करनेमें दोष आतेहैं इस लिये सर्वथा पाषाणादि मूर्तिपूजा सज्जन लोगोंको त्यक्तव्यहै और जिन्होंने पाषाणमय मूर्तिकी पूजा की है और करतेहैं वा करेंगे वे पूर्वोक्त दोषोंसे न बचे बचते न हैं न बचेंगे ॥

समीक्षा—यह सोलह अंक स्वामीजीने मूर्तिपूजाके विरुद्ध बडे बल और क्रूर वचनयुक्त लिखेहैं और गालिप्रदानकरनेमें भी बडी सेखी बघारी है जिसका वर्णन इसीमें है परन्तु यह सोलह वाक्य उन्मत्त पुरु-

षकेसे वचन हैं जिसे थोडी भी बुद्धि होगी वोह ऐसी बातें न लिखैगा बस यही स्वामीजीकी सभ्यता है अब क्रमानुसार इनके उत्तर लिखते हैं॥

१ विना स्थूलके देखे सूक्ष्मका ज्ञान नहीं होता विना सीढीके महलपर नहीं चढ सक्ता विना अक्षराभ्यास किये कोई ग्रंथ नहीं पढसक्ता इसीसे विना साकारकी उपासनाके निराकारकी प्राप्ति नहीं हो सक्ती जैसे हमको पृथ्वीका स्थूलरूप देखकर इसके परमाणुरूप सूक्ष्म शरीरका ज्ञान होताहै ऐसीही साकारको देखकर निराकारका ज्ञान होता है, इसीकारण पहले विराटादि रूपकी उपासना कही है, विना आधारके आधेय नहीं ठहरता इसीकारण विना साकारमें लगाये मन स्थिर नहीं हो सक्ता क्यों कि, साकारके किसीएक अंगकी शोभा देखकर मन उसमें लग जाता है और अपना चञ्चलपना भूल जाता है, वोही ध्यान रहनेसे वही प्रतीत होने लगता है, उसीके आकारमें मग्न रहता उसीके गुणकर्म स्वभावको विचारता है, क्यों कि साकार होनेसे अवतारोंकी भी अनिर्वचनीय शोभा है, जैसे श्रीरामचंद्र श्रीकृष्णचन्द्रादि इनके गुण कर्म स्वभाव और प्रत्येक अंगमें मनका दौडना तो क्या एकही अंगमें निश्चल होजाताहै, जब सगुण उपासनामें मन निश्चल हुआ तो अभ्यास होते होते निराकारमेंभी मन ठहर सकता है,क्योंकि मनदौडे,कहां देखे क्या ? कौन निशाना है, शून्यमें क्या टटोलें इसकारण साकारमेंही पहले मन दृढ होकर पीछे निराकारमें स्थिर होसकता है, पहले थोडे जलमें पैरना सीखै तो गहेरमेंभी पैर सकता है, जो थोड़े जलमें स्थिर नहीं रह सकता वोह गहेरे जलमें कूदनेसे डूब जायगा और पताभी न लगैगा, ऐसेही साकार निराकारमें मनकी वृत्ति जानलीजिये, ऐसेही कुटुम्बादिमें मनुष्योंके मन लगे हैं और स्थिरहो रहे हैं यदि जगत्में कुटुम्बादिकोंमें मन न लगै तो सबही विरक्त हो जायँ और फकीर हो जंगलमें जा रहैं, यह आकारकाही प्रताप है जिसके द्वारा मनुष्य प्रेममें मनको स्थिर किये हैं, ऐसेही प्रथम साकाररूप परमात्मामें मन लगजाय तब निराकारमें पहुंचकर स्थिर होता है, मूर्तिपूजा बड़ी उपयोगीहै इसके करनेसे बड़े बड़े ऋषि मुनि मुक्तिपदवीके अधिकारी हुए हैं, यह मूर्तिही परमेश्वरमें मनको आकर्षण करती है, युधिष्ठिरादिने मूर्तिपूजन करकेही सिद्धि पाई है यही परमेश्वरमें प्रीति कराती है और यही निराकारतक पहुंचाती है नामही नामीको मिला देता है इसकारण मूर्तिपूजन वेदविधान होनेसे धर्म है॥

२ दूसरे मन्दिरोंमें जो रुपया लगता है उसमें बड़ा लाभ होता है हानि नहीं होती परदेशी महात्मा लोग आनकर ठहरते हैं और भक्त-जन उसमें आनकर बैठते और प्रातःसन्ध्या और भगवान्‌का नामस्मरण करते हैं, तथा उनके गुणकथनसे चित्तमें सत्वगुण प्रगट होताहै, और जो कोई उस ओरको निकलते हैं वे नारायणका नाम लेकर दंडवत् करते हैं, बहुत मंदिरोंमें बिचारे परदेशी सदावर्त भी पाते हैं, बनवाने-वालेका धर्मके सिवाय नाम भी चिरस्मरणीय होताहै ॥

३ तीसरे मंदिरोंमें मेला नहीं होता केवल मंदिरके भीतर वोही स्त्रीपुरुष जाते हैं जो कि, व्रत धारणकर पूजन करते हैं, जो सारेदिन व्रत धारणकर भक्तिपूर्वक नामस्मरण करते हैं वे व्यभिचारमें क्योंकर प्रवृत्त होसक्ते हैं उनका चित्त तौ सत्वगुणमें प्रवृत्त होताहै और पूजन करनेवालोंको रोग भी बहुत नहीं होते, दोनों समय स्नान करते धूप कपूर घृत बालते हैं तथा व्यभिचार एकान्तमें होताहै देवालयमें दो चार महात्मा प्रतिक्षण विद्यमान रहते हैं, मेलेवाले बाहरसे खडे होकर देखते हैं, इससे व्यभिचार उत्पन्न नहीं होता और जिनके मन व्यभि-चारमें लगे हैं न वे भक्ति करते हैं और निराकार साकारका उन्हें विवेक नहीं रहता, वे तौ दोनों पक्षमें एकसे हैं और मंदिरमें दो चार लोग रहतेही हैं और मंदिरमें ईश्वरकी विशेष सान्निध्यता होनेसे पापाचर-णका भय रहताहै इसकारण मंदिर अवश्यं बनवावै ॥

४ चौथे मूर्तिपूजनसे धर्मादिपदार्थोंकी प्राप्ति होती है और पुरुषार्थ बढताहै जब कि, पूजामें भक्ति होगी तौ सत्यभाषणादि शुभकर्म करैगा, और ईश्वरके चरित्रोंके स्मरणसे ज्ञानकी प्राप्ति होगी, और ज्ञान होनेसे मुक्तिका अधिकारी होताहै क्योंकि ईश्वरके नामसे और ज्ञानसे संबंध है और यही मनुष्यजन्म लेनेका फल है कि, ईश्वरके चरित्र हृदयमें दृढ होजायँ, सो प्रतिदिन मूर्तिमें अर्चन वंदनसे दृढ-ता आजातीहै ॥

५ पुजारीलोग तौ मंदिरमें सेवाकरनेको नौकर होते हैं वे कभी नहीं लडते न आजतक कहीं पुजारियोंकी लड़ाई होती सुनी बहुधा मंदि-रोंमें श्रीकृष्ण वा रघुनाथजीकी मूर्ति होती हैं, सो उनके स्वरूपभी ऐसे मनोहरहैं कि, देखतेही मन निश्चल होजाताहै, शिवमूर्तिभी सब मंदिरोंमें एकसीही होती है कोई यह नहीं कहताकि, इस मंदिरके

अतिरिक्त सब मंदिर निकम्मेहैं, जिससे लड़ाई द्रोह बढ़े, किन्तु सब मंदिरोंके पुजारी परस्पर मेल रखते हैं और उत्सवोंमें एक दूसरेके मंदिरमें आतेजाते रहते हैं और उत्सवोंमें भगवान्‌की मूर्तिका विशेष शृंगार करनेसे यह लाभ होताहै कि, ईश्वरमें मनुष्योंकी भावभक्ति अधिक हो जाती है, ईश्वरके भयसे वे कुकर्मके साहसी नहीं होते इससे देशकी भलाई होती है ॥

६ छठे मूर्तिमें ईश्वर पूजन करनेके वास्तेहै न कि हमारे संग टहलुओंकी भांति डंडा लिये फिरे, इसकारण जयपराजयके निमित्त बैठ रहना बुद्धिमत्ता नहीं ईश्वरने यह शरीर उद्योग करनेको दिया है इसे पाकर आलसी हो बैठ रहना उचित नहीं है यदि तुम्हारी पूर्ण भक्ति है और सामर्थ्य नहीं है तौ वोह इच्छानुसार बहुत सहायता करताहै और आगेभी करैहीगा परन्तु हस्तपादादि पुरुषार्थ ही करनेको दिये हैं और जो भजनानंदी हैं उन्हें शत्रु मित्रसे क्या काम वे तौ जो कुछ करतेहैं उसे ईश्वरकी इच्छा और प्रेरणा मानते हैं फिर कौनसा उनका राज्य बिगड़गया है ईश्वरने यह नहीं कहा है कि, तुम अजगरसे एक स्थानपर पड़े रहो किन्तु पुरुषार्थ करनेको कहता है जितनी सहायता निराकार उपासनामें करता है उतनीही सगुणउपासनामें करताहै और जो विशेष ज्ञानी हैं उनके कोई शत्रु मित्र नहीं हैं उनकी समान दृष्टि होती है इसकारण वे मुक्तिके अधिकारी होते हैं ॥

७ सातवें यह बात तौ लोकमेंभी प्रसिद्धहै कि, जब कोई किसीके नामपर कोई स्थान बनवावै और उसकी मूर्ति बनाकर उसकी मान बड़ाई प्रतिष्ठा करै तौ वोह जिसकी वोह मूर्ति वा मंदिरहै अधिक प्रसन्न होताहै, क्योंकि जब उसके नाम और मूर्तिकी इतनी प्रतिष्ठा करते हैं यदि वोह स्वयं उपस्थितहो तौ कितनी प्रतिष्ठा हो " यदि उसके नाम वा मूर्तिका तिरस्कार करैं तौ चाहैं बुरा माने परन्तु मूर्तिमें परमेश्वरकी उपासना करनेहारे कभी मूर्तिका तिरस्कार नहीं करते " देखनेमें आताहै कि, आजदिन विक्टोरियामहारानीकी मूर्ति शतशः स्थानोंमें विद्यमानहैं बड़े बड़े मंदिर (हॉल) बने हैं तथा जब कोई गवर्नरजनरल वा प्रिन्स (राजकुमार) आते हैं तौ उनके स्मरणीय चिह्न अबतक बनाते हैं, कहीं२मूर्तिभी स्थापित करते हैं, उसको आदरसे देखते हैं, परन्तु वोह मनुष्यकी मूर्ति है, इसकारण उसका पूजन नहीं होता कहिये

क्या इन मूर्तियोंसे महारानी और लाट प्रिन्सादि कुछ बुरा मान्ते हैं प्रत्युत प्रसन्न होते हैं क्या कुछ उनका प्रताप घटता है नहीं घटता किन्तु अधिक बढ ता है सब लोग देखते हैं मनमें अधिक ध्यान करते हैं कि, यह हमारा राजा है बुरा काम मतकरो दंड देगा इसीकारण सिक्कोंतकमें मूर्ति रहती है इससे क्या कुछ तिरस्कार होता है इसीसे पहले राजा बादशाह आदि अबतक सिक्कोंमें नाम मूर्ति आदि रखते हैं, जिसे देखतेही उनका झट स्मरण होजाता है, इसीप्रकार यदि कोई किसीकी मूर्ति बनाकर उसकी बडी भक्तिकर पूजा प्रार्थना करै यदि वोह मूर्तिका प्रतिनिधि जीवितहो तो निश्चय अधिक प्रसन्न होता है और जाकर पूछताहै कि, कहो क्या चाहतेहो मैं प्रसन्नहूं इसीप्रकार व्यापक ईश्वरकी प्रार्थना करै तो क्या वोह प्रसन्न न होगा निश्चय प्रसन्नहो अपने भक्तोंका भला करैगा इस कारण मूर्तिपूजनसे ईश्वर प्रसन्न होता है फिर समाजोंमें आपकी फोटो लटकाई जाती घडीके साथ बिकतीहै जीतेजी आपकी तस्वीर खिची उससमय आपने क्रोध क्यों न किया आपकी गाली आपहीपर पडी ॥

८ आठवाँ जब लोग दूरदेशमें दर्शनोंकी इच्छासे जाते हैं, उनके मनमें ईश्वरकी भक्ति अधिक उत्पन्न होती है, और देशदेशान्तरोंके चरित्र मनुष्यादिकोंकी भेंटसे मनकी यह इच्छाभी निवृत्त होजाती है कि, हमने अमुक स्थान नहीं देखा इससेभी मनमें निश्चलता प्राप्त होतीहै और वोह पुरुष जो दूर देश दर्शनोंकी इच्छासे जाते हैं वे कोई कार्य धर्मविरुद्ध नहीं करते, क्योंकि वे जानते हैं कि, यदि हम कुछ पाप करैंगे तो यह यात्रा दर्शनोंका फल द्रव्यादि सब वृथा होजायगा, इससे उनके सब कार्य सधर्म होते हैं और धर्मसे परमार्थ बनता है. यात्री लोग देशान्तरमें इकट्ठे होकर जाते हैं, इसकारण चोरोंका भी विशेष डर नहीं होता, यदि विदेश जानेमें दुःखहै तो स्वामीजीके कथनानुसार व्यापारभी बंद होना चाहिये क्योंकि व्यापारमेंभी चोरादिकका भय है और व्यापार क्या प्रत्येकही यात्रीको चोरादिकका भय होता है और जहाजकी यात्रामें प्राणजानेका भय और रेलकी यात्रामें गाडी लड जानेसे प्राणोंका दान पैदल जानेमें चोरोंका भय तो बस स्वामीजी एक नोटिस देकर रेल जहाजमार्ग इन सबका सत्या नाशकर देते, तौभी देशका उनकी दृष्टिमें उपकारही होता, परन्तु स्वामीजीने पूर्वमें दूरदेशमें व्याह करनेकी क्यों अनुमति देदी, उसमें

भी तौ चोरादिकका भय है और भला जब किसीके घरमेंसेही कोई चोरी कर लेजाय तो क्या तुह्मारे सत्यार्थप्रकाशके पात्रोंमें अपना घर बनाकर बैठजाय इसीभरोंसे परदेशके हितकारी बनने चले, जब परदेशमें जायँगे तो ठगोंको पहचानकर उनसे सब प्रकारकी चतुरता जान जाँयगे और जो कोई घर बैठेही रसायन बना लेजाय तो क्या करो ॥

९ नवमें बहुधा पुजारी ब्राह्मण होते हैं केवल दोचार रुपयेके नौकर होते हैं कुटुम्बी होते है, उन लोगोंका इतनेमें गुजारा नहीं होता जैसे तैसे गुजरान करते हैं, जो कुछ चढावा चढता है वोहभी कुछ ऐसा बहुत नहीं होता, और रोज नहीं चढता केवल त्योंहारोंमेंही आताहै, ऐसे समयमें द्रव्यकी उनकोभी आवश्यकता रहती है, जब कि उदरसे अधिक उनको प्राप्तिही नहीं होती तौ मांसमदिरा वेश्यादिकमें दोरुपये रोज कहांसे आवैं, क्या कोई समाजका कोषाध्यक्ष उनको द्रव्य दे देता होगा और जहां बड़े २ मंदिर हैं अधिक चढावा चढताहै वोह मंदिरके कोषमें जमा होता है और वोह ठाकुरजीके भोग वस्त्रादिमें व्यय होता है, पुजारीजीको केवल वेतन मिलताहै और कुछ नहीं यदि साधु पुजारी हुए तो तीसरे छठे महीनेमें भंडारा करते रहते हैं, आये गयेका सन्मान करतेहैं, तुम्हारे यहां तौ एक रात ठहरनेकीभी जुगत नहीं है कोरी बातें हैं पुजारियोंपर दोष देना वृथा है और यदि कोई किसीको कुछ वस्तु प्रदान करै तौ दाताका तौ फल हो चुका वोह उस द्रव्यका जो चाहै सो करै और यदि यही है तौ गरीबखाने मोहताजोंको दान कोढीखाना शफाखाना आदि सबमें द्रव्य दिया हुआ वृथा होजाय, क्योंकि विषयी समझतेहैं कि, कुकर्म करनेसे यदि रोग होजाय तौ शफाखाना मौजूदहै आराम होजायगा, पास नहीं रहैगा तो मोहताजखानेमें जा पडेंगे, इत्यादि इन स्थानोंमें दियाहुआ द्रव्यभी वृथाही होजायगा और आप इन स्थानोंकी बडाई करतेहैं इससे यह कथन वृथा है यदि ऐसा हो तो कोई कौडीभी नदे, देनेवाला ईश्वरके नामपर देता है कुछ उसे नहीं देता जैसे कर्ज लेकर द्रव्यका जो चाहे सो करै वोह द्रव्य उसको देनाही पडैगा ऐसेही दानकी व्यवस्था है इससे मूर्तिपूजनका निषेध और पुजारियोंपर दोष नहीं होसक्ता ॥

१० दशवाँ जो मूर्तिका मानकरते ईश्वरकी आज्ञा मानतेहैं वे अपने बडोंकाभी मान करतेहैं माता पिताकी विशेष प्रतिष्ठा करते क्योंकि यह किसी धर्मग्रंथमें नहीं लिखा कि, मूर्तिमें पूजन करनेवाले अपने माता

पिताकी आज्ञा मतमानो, किन्तु जो मूर्तिमें ईश्वरको पूजन करतेहैं वे धर्मके भयसे अपने माता पिताकी विशेष प्रतिष्ठा करतेहैं यह स्वामी-जीकी भूल है जो कहतेहैं मान नहीं करते रामचंद्रकी मूर्ति वा चरित्र श्रवण करतेही माता पिताकी आज्ञा पालन भाई भक्तिका चमत्कार कैसा कुछ हृदयमें छा जाता है ॥

११ पुजारियोंपर तौ परस्त्रियोंके संगका दोषारोप करतेहो और आप प्रगट एक स्त्रीको ग्यारह पति बनानेकी आज्ञा देते हो जो कर्म ठीक वेश्याकी नाई है और मंदिरमें पुजारी व्यभिचार नहीं करसक्ता क्योंकि स्त्रीपुरुष सायंप्रातः मंदिरमें दर्शन करनेको आतेहैं और दो चार साथ-ही आते हैं इससे व्यभिचार नहीं होसक्ता और जिनके मनमें ईश्वरका प्रेमहै वोह दर्शन करनेसे अधिक बढताहै और भक्ति तीव्र होतीहै कुमार्गसे बचते हैं और जिनके मन बुरेहैं उन्हैं पुजारी पुजारन क्या चाहैं जहां जो चाहैं सो करसकतेहैं, जिन्हैं परमेश्वरका भय नहीं वे चाहैं सो करैं, और पुजारन परपुरुषोंका संग क्योंकर करसकतीहैं, क्या पुजारी उनके पास नहीं जातेहैं दिनमें भोजन करने घरको जाते, रात्रि-में संध्याके उपरान्त जो ग्रहस्थीहैं वे घर चले आतेहैं. यदि इतनेहीमें वे परपुरुषगामिनी होजायँ तौ यह दूकानदार और व्यापारी लोग अपने रोजगार छोड स्त्रियोंकी रखवाली करैं और क्या सब स्त्री अकेली रहतीहैं तौ बस सबही स्त्री व्यभिचारिणी होजाँय तौ चाहिये कि, सब लोग स्त्रियोंको गांठमें बांधे फिरा करैं, यह तौ स्वामीजीने बडी कठिनताईसे बिचारी होगी ॥

१२ बारहवाँ मूर्तिको कोई चुराले जाय या तोडे तौ रोवें नहीं तौ क्या हँसे जिसका जब कुछ खो जाताहै या टूट जाताहै तौ वोह क्या? हानि हो जानेवाले सबही दुःखी होते हैं, फिर वोह वस्तु जिससे अपने इष्ट देवका स्मरण करतेहैं खो जाय तौ क्यों न दुःखीहों, क्योंकि और स्थापन करनेसे द्रव्यका खर्च होहीगा यदि मूर्ति लेजानेके दुःखसे मूर्तिपूजन करना बुरा है तौ जिस वस्तुके चुरा ले जाने वा टूटजानेका भयहो वोह कुछभी पास न रखनी चाहिये तौ यह सारी धनदौलत जो आपके अनुयायियोंके पासहैं वोह सब फिकवा देना चाहिये मकानोंके टूटनेका डर है द्रव्यके चुराये जानेका, कपडेके गल जानेका, तौ इस आपके वचनके विश्वासियोंपर फर्ज है कि घरबार छोड वस्त्र त्याग दें,

नंगे फिरैं और आपसे तौ स्थिरताकी कहां आशा मुंशी इन्द्रमणिके मुकदमेंमें क्या आपने थोडी हाय २ मचाई थी ॥

१३ स्वामी सेवककी आज्ञा नहीं पालन होनेमें स्वामीजीने कौनसा हेतु निकालाहै पूजन करनेमें स्वामी सेवकमें क्या विरुद्धता होगी जो विदेशीय जनोंके नौकर हैं वे पूजा ऐसे समयमें करतेहैं कि, जिससे अपने स्वामीके काममें बाधा न पडै, क्योंकि जानते हैं आज्ञा उल्लंघन करनेसे नौकरी जायगी और जो पूजारियों पर आक्षेपहै तो उनके स्वामीकी आज्ञा तौ मंदिरके स्वच्छ रखने और भगवन्मूर्तिके शृंगार करने की होती है, सो वोह करतेही हैं, यदि न करैं तौ नौकरी कहां, इससेभी स्वामिसेवकका विरोध नहीं होसक्ता, पूजन करनेवालोंको यह आज्ञा नहीं कि, स्वामीसे लडपडो, यदि ईश्वरके स्वामिभावमें न्यूनता आवे सोभी नहीं क्यों कि, उसमें तौ ईश्वरको स्वामी मानना भक्ति स्तुति करना विधानहै.हां एक बात है कि,यदि कोई यवन अपने यहांके सनातन धर्मावलम्बी नोकरसे यह कहै कि, तुम पूजन करना छोडदो इससे तौ विरोध होसक्ताहैं परन्तु यह बात इसीमें नहीं वोह यह भी कहसक्ता है कि, वेदको मतमानौ, तौ इसमेंभी वोह दोष आसक्ताहै, अंग्रेजोंमें यह बात नहीं मुसलमान इन लोगोंको नौकर नहीं रखते हां यह बात आपहीमें है कि जो दयानंदी न हो:उसे अपने यहां जगह मतदो ईश्वरके पूजनमें तौ यह शिक्षा होतीहै कि जैसे मेरी भक्ति करतेहो वैसेही अपने स्वामी सेवकसे वरतो ॥

१४ मूर्तिमें ईश्वरका पूजन करनेवाले कभी जडका ध्यान नहीं करते जो स्तोत्र पढे जातेहैं किसीमें यह नहीं लिखाहै हे परमेश्वर तुम जडहो अशक्तहो पत्थरहो परन्तु उन स्तुतियोंमें तो परमेश्वरके सर्वज्ञादि गुण वर्णन कियेहैं, इस कारण मनमें कभी जडत्व धर्म नहीं आता परन्तु जैसे शून्यवादी आप हैं ऐसेका ध्यान करनेसे मनमें शून्यता धर्म प्रगट होताहै, नाम तुम्हारे कल्पितहैं नामी कोई नहीं उपासनाके अर्थही समीपमें पूजन करनेके हैं फिर शून्यमें क्यों पूजन करै बस शून्यही अन्तःकरण होगा ॥

१५ पहले तौ आपने हवन विषयमें हवनसे वायुशुद्धि मानीहै अब फूलोंसे वायु शुद्धि मानी है (पहले तेल फुले का निषेध किया था) यदि पुष्पोंकी सुगन्धिसेही परमात्माको वायुशुद्धिकरनी इष्टथी तो विला-

यतादि देशोंके पुष्प सुगन्धिहीन क्यों बनाये वहां हवनभी नहीं होता तौ बस प्रजा घोर रोगोंसे पीडित होना चाहिये पानी नहीं बरसना चाहिये सो ऐसा नहीं होता, मृतकदाहसे भी वायुमें दुर्गन्धि फैलती है इसका भी निषेध करते जैसे और देशोंमें रोग होते तैसे यहां भी होते हैं यहां हवन और सुगन्धि युक्त पुष्प रहनेसे भी रोग शान्त नहीं होता, इस भारतवर्षके बागोंमे सहस्रों मन पुष्प उत्पन्न होते हैं उनमेंसे थोड़ेसे पूजनको आते हैं प्रायः माली लोग पुष्पादिकोंको बेचते हैं उनकी आजीविका भी चलती है, और फिर भी जो फूल खिलते हैं वे ही पूजनमें काम आते हैं जो कि, एक दिनमेंही वृक्षपर रहनेसे सूखकर गिरजाते हैं कुछ मंदिरोंमें आनेसे उनकी सुगन्धि कमती नहीं हो जाती सुगन्धियुक्तही चढाये जाते हैं इस्से सुगन्धि ज्योंकी त्यों फैलती रहती है दूसरे दिन वे अलगकर दिये जाते हैं यदि उनका तोड़नाही मने है तौ यह इतर फुलेल हारादि सब वृथाही है जिनका प्रचार प्राचीन कालसे चलाआता है, और इनके तोड़नेसे हानिभी नहीं होती किन्तु लाभ होता है बाग बहुधा नगरसे बाहर होते हैं उनकी सुगन्धिसे बाहरकी ही वायु पवित्र रहती है यदि वोह प्रत्येक मंदिर वा पुरुषोंके स्थानमें आवैं तौ घरघरकी वायु शुद्ध होजातीहै आर्य्यावर्तदेश तौ बन उपवनके पुष्पोंसे परिपूर्ण है जिन्हें कोई तोड़नेको नहीं जाता वे सब वायुको शुद्ध कर सक्ते हैं चंदनके वृक्ष केशर कर्पूरादि यह सब सुगन्धित द्रव्य हैं, इस कारण पुष्पोंसे परमेश्वरकी पूजा करनी श्रेष्ठ है जहां मूर्तिपूजन नहीं होता उस देशकी पृथ्वीमें अधिक सुगन्धित पुष्प नहीं होते यह इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥

१६ सोलहवां मंदिर सब पक्के बने हुए होते हैं बडी मूर्तियोंको स्नान नहीं कराया जाता छोटी मूर्तियोंको कटोरोंमें स्नान कराते हैं उसमें चंदन तुलसीदल आदिक होता है उसीका चरणामृत लेते हैं वोह जल पुण्यदायक और तुलसीदल पड़ जानेसे हाजिमभी हो जाता है परन्तु दयानंदजीका यह आक्षेप शिवजीके मंदिरपर है क्योंकि शिवालयके पीछेही जलहरी होती है सब पूजन करनेहारे जानते हैं कि, जलहरीमें जलही जाता है बेलपत्र पुष्पादिक नहीं जाते एकाध चले जानेकी कोई बात नहीं वोह बेलपत्र वा पुष्प जो शिवजीपर चढाये जाते हैं वे पुजारी दूसरेदिन उन्हें लेजाते हैं कहीं नदीमें बहाआते वा और कहीं

डाल आते हैं जलहरी रोज भरजाती हैं कुछ कुआ तो है ही नहीं जो मुद्दतोंमें भरे और सडे यदि दूसरेदिन पुजारी जलहरीका पानी न निकालै तो पानी सब स्थानमें फैलनेलगे और लोग उस पुजारीकी निन्दा करैं इसकारण वोह नित्यप्रति जल निकालडालता है मंदिरोंमें यह बात होती ही नहीं विदित होता है कि, स्वामीजी इस प्रसंगके लिखनेमें या तो किसी सड़े हुए चौबच्चेके धोरे बैठे थे या कहीं चौबच्चेका स्वप्न देखा होगा सोलह दोष जो उन्होंने मूर्तिपूजनपर किये हैं इसमें एक भी नहीं घटसकता ॥

स० पृ० ३१४ पं २६ इस मूर्तिपूजाको लोगोंने इस वास्ते स्वीकार किया है कि जो माता पिताके सामने नैवेद्य भेंट पूजा धरैंगे तौ वे स्वयं खालेंगे हमारे मुख वा हाथमें कुछ न लैगा। ३३९। १ *

समीक्षा–जाने स्वामीजीकी बुद्धिपर क्या परदा पड़गया है जो मनमानी गाते हैं जो भोग ईश्वरको लगाया जाता है वोह सबको बांटा-जाता है और पूजन करनेहारे गृहस्थी ईश्वरको भोग लगाने उपरान्त भोजन करते हैं एक यहभी लाभ है कि, भोग लगीहुई सुंदरवस्तु सबको बांटते हैं और ऐसे तो मातापिता बहुत कम होंगे जो अपने पुत्रोंके खाने पीनेसे दुःखी होते हों और जो अपने मातापिताके पालनमें असमर्थ और मातापिताके द्रोही हैं उन्हें पूजामें कब भक्ति होगी क्योंकि, वोह जानते हैं कि, यदि हमने भोग लगाया तौ प्रत्येक मनुष्य इसके लेनेके अधिकारी हो जायँगे, इसकारण वे कहीं एकान्तमें वस्तु खालेतेहैं और जो भक्तिमान् हैं वे भोग लगाते अपने माता पिताको देते हैं

अब मृन्मयमूर्तिपूजनप्रतिष्ठादि वेदमंत्रोंसे लिखते हैं ॥

यज्ञस्यशीर्षच्छिन्नस्यरसोव्यक्षरत्सइमेद्यावापृथिवीऽअगच्छद्यन्मृदियंतद्यदापोऽसौतन्मृदश्चापांचमहावीराःकृताभवन्ति तेनैवैनमेतद्रसेनसमर्द्धयतिकृत्स्नंकरोतीति–ब्राह्मणम् श० १४।१।२।९

अथ मृत्पिण्डं परिगृह्णाति श० १४।१।२।८

मृदमादत्ते पिण्डवद्देवी द्यावापृथिवीति का० २६।१।४

* और आपने जो आर्याभिविनयमें ईश्वरके लिये सोमरसपीनेकी तयार किया है उसकीभी सुधहै।

भाषार्थः ।

वैष्णवी तेज मायामें गिरा उस समय कुछ दीप्तिरूपी रस पृथ्वीस्वर्गमें व्याप्त हुआ जिसको जल और मिट्टी कहतेहैं और इन्हीं दोनों वस्तुसे महावीर परमेश्वरकी मूर्ति बनाते हैं इस कारण मूर्ति बनानेके लिये मृत्पिण्डको ग्रहण करता है मानो उस पूर्वोक्त ज्योतिरससे ही इसको समृद्धियुक्त और पूर्ण करता है १४।१।२।९

तस्यमंत्रः ।

देवींद्यावापृथिवीमखस्यवामद्यशिरोराध्यासंदेवयजने पृथिव्याः मखायत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे--यजु०अ० ३७मं० ३

हे (देवी) दिव्यगुणयुक्तदेव्यौ (द्यावापृथिवी) मृज्जले (अद्य) अस्मिन् समये (पृथिव्याः) वसुधायाः देवयजने (देवयजन स्थाने (वां) युवां मृज्जलेऽआदाय (मखस्य) (शिरः) यज्ञस्यशिरोभूतंमहावीरस्यमूर्तिं (राध्यासं) साधयेयं (मखाय) यज्ञाय (त्वा) त्वांगृह्णामि (मखस्यशीर्ष्णे) महावीराय (त्वा) त्वांगृह्णामि ॥

भाषार्थः ।

हे मृद् जलरूप देवियो ! अब देवयजनस्थानमें तुम दोनोंको लेकर महावीरकी मूर्तिको साधन करूं मैं यज्ञके हेतु तुझे ग्रहण करता हूं और महावीरके हेतु तुझे ग्रहण करताहूं ॥

अथ वल्मीकवपाम् देव्योवम्र्यइत्येतावाऽएतदकुर्वतयथायथैतद्यज्ञस्यशिरोऽच्छिद्यतताभिरेवैनमेतत्समर्धयतिकृत्स्नंकरोतीति--ब्राह्मणम् श० १४।१।२।१०

यज्ञपुरुषका तेज पतित होनेसे वल्मीकवपा अर्थात् बमईकी मट्टी हुई इस कारण उसको लेता है और उससे महावीरकी मूर्तिको परिपूर्ण करताहै उसका मंत्र ॥

तस्यमंत्रः ।

देव्यो वम्र्यो भूतस्य प्रथमजा मखस्यवोऽद्यशिरोराध्यासन्देव यजनेपृथिव्याः मखायत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे--यजुः अ० ३७ मं० ४

पदार्थः ।

हे (भूतस्य) प्राणिजातस्य (प्रथमजाः) प्रथमोत्पन्नाः (देव्यः) (वम्र्यः) उपजिह्विकाः (वः) युष्मानादाय (पृथिव्याः)(भूम्यः)(देवयजने) (मखस्य)यज्ञस्य (शिरः) महावीरम् (अद्य)(राध्यासम्) सम्पादयेयम् शेषंपूर्ववत् ।

भाषार्थः ।

हे प्राणीओंसे प्रथम उत्पन्न उपजिह्विकाओ तुमको लेकर देवयजन स्थानमें अब महावीरकी मूर्त्तिको सम्पादन करूं मैं यज्ञके लिये तुझे ग्रहण करताहूं महावीरके हेतु तुझे ग्रहण करताहूं ॥

अथवराहविहितम् इयतीहवाऽइयमग्रेपृथिव्यासप्रादेशमात्रीता मेमूषइतिवराहउज्जघानसोऽस्याः पतिः प्रजापति स्तेनैवैनमेतन्मिथुनेनाप्रियेणधाम्ना समर्धयति कृत्स्नंकरोतीति--ब्राह्मणम् श० १४ । १ । २ । ११

सृष्टिके आरंभकालमें यह पृथ्वी प्रादेशमात्र थी उसको श्री वाराहजीने ऊंचा उठाया वोह वाराहजी इस पृथ्वीके पति और प्रजाके स्वामी हैं इसकारण उस प्रियधाम मिथुनके द्वारा महावीरको समृद्ध और परिपूर्ण करता है अर्थात् मूर्ति बनानेको वाराह विहित मृत्तिका लेता है॥

तस्यमंत्रः ।

इयत्यग्रआसीन्मखस्यतेऽद्यशिरोराध्यासन्देवयजनेपृथिव्याः मखायत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे--यजु० अ० ३७ मं० ५

पदार्थः ।

(अग्रे) आदौवराहोद्धरणसमये पृथिवी (इयती) एतत्प्रमाण प्रादेशमात्री (आसीत्) हे पृथिवि (अद्य ते पृथिव्याः देवयज

ने मखस्य) (शिरः) महावीरं (राध्यासम्)(मखाय त्वा) त्वांगृह्णामि (मखस्यशीर्ष्णे) महावीरायत्वांगृह्णामि ९

भाषार्थः ।

आदिमें अर्थात् वाराहअवतारके समय यह पृथ्वी प्रादेशमात्री थी हे पृथिवी ! अब तेरे देवयजनस्थानमें महावीरकी मूर्तिको संपादन करूं, हे वराह विहित मृत्! यज्ञके लिये तुझे लेताहूं महावीरकी मूर्तिके लिये तुझे लेताहूं, वाराहकी खोदी मट्टी ग्रहण करै ।

अथ यत्पूयन्निवाशेत तस्मात्पूतीकास्तस्माद्ग्नावाहुतिरिवाभ्याहिताज्वलन्ति तस्मात् सुरभयो यज्ञस्य रसात्संभूता अथ यदेनं तदिन्द्रओजसापर्यगृह्णात् ब्रा०श० १४।१।२।१२

तस्यमंत्रः ।

इन्द्रस्योर्जस्थमखस्यवोशिरोराध्यासन्देवयजनेपृथिव्याः मखायत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे यजु० अ० ३७ मं० ६

पदार्थः ।

हेपूतीकायूयं (इन्द्रस्य) परमेश्वरस्य (ओजः) तेजोरूपाः (स्थ)(वः) युष्मानादाय(पृथिव्याःदेवयजनेमखस्यशिरः) महावीरं (राध्यासम्) (मखाय) यज्ञाय (त्वा) त्वां गृह्णामि (मखस्यशीर्ष्णे) महावीराय (त्वा) त्वां गृह्णामि ॥

भाषार्थः ।

सुगन्धित पूतीका वैष्णवतेज (यज्ञरस) से उत्पन्न हुई इसकारण मूर्तिनिर्माणके लिये उनको लेता है श० १४ । २ । १ । १२

मंत्रार्थः ।

हे पूतिकाओ ! तुम परमेश्वरके तेजरूपहो तुमको लेकर देवयजनस्थानमें महावीरको संपादन करताहूं यज्ञके लिये तुझे लेताहूं महावीरके लिये तुझे लेताहूं ॥

एक समय जब इन्द्र वृत्रासुरके मारनेको जहां जहां वज्र स्थापन करता था वहींसे वोह स्खलित होजाता था और इसीकारण भागते

हुए वृत्रासुरको ग्रहण नहीं कर सके तब इन्द्रने विचारकर पूतीकास्तम्भके निकट वृत्रासुरके पकड़नेको वज्रसे चेष्टाकी तब वोह वृत्र पूतीकास्तम्भसे मार्ग रुकजानेके कारण न भागसका तब इन्द्रने उसको पकड़ वज्रसे मारा और प्रसन्न हो बोला हे पूतीकास्तंभ तुमने मेरी (ऊति) पराक्रम रक्षा (धाः) धारण करी है इसीसे तुम्हारे पराक्रम धारण करनेसे उन पूतीकोंका पूतीका नाम हुआ इनके ग्रहणसे यज्ञरक्षा होती है तैत्तिरीय०

यज्ञस्यशीर्षच्छिन्नस्यशुगुदक्रामत्ततोऽजासमभवत
तयैवैनमेतच्छुचासमर्धयति कृत्स्नं करोतीति
ब्रा० श० १४।१।२।१३

तस्यमंत्रः।

मुखायत्वामखस्य त्वाशीर्ष्णे-यजु० अ०३७मं०७काअंत०

भाषार्थः।

जब वैष्णवी तेज मायामें गिरा तब उसकी दीप्तिसे अजा उत्पन्न हुई इसकारण अजाके दुग्धको लेताहै और उस दीप्तिसे महावीरको समृद्ध और पूर्ण करताहै श. १४।१।२।१३

मंत्रार्थः।

हे अजाके दुग्ध ! यज्ञके लिये तुझे ग्रहण करताहूं महावीरके हेतु तुझे ग्रहण करताहूं ॥

सर्वानेवास्साऽएतद्देवानभिगोप्तॄन्करोतीति ब्रा०
श० १४।१।२।१९

तस्यमंत्रः।

प्रैतुब्रह्मणस्पतिःप्रदेव्येतुसूनृताअच्छावीरन्नर्यम्पङ्क्तिराधसन्देवायज्ञन्नयन्तुनः-यजु०अ०३७मं७इसका शेष ऊपर लिखा है

पदार्थः।

(ब्रह्मणस्पतिः) मंत्रस्यपालकः(अ) ईश्वरः (प्रैतु)प्रथमतोंगच्छतु (सूनृता) यज्ञसंम्बधिनीमंत्रगतप्रियवाक्यरूपा(देवी)प्रक

षेण (एतु) गच्छतु किमर्थं तदुच्यते (नर्यं) नृभ्योयजमानेभ्यो हितं (पंक्तिराधसं) पांक्तस्ययज्ञस्यसाधकं (वीरं) महावीराख्यं (अच्छ) प्राप्तुं (देवाः) सर्वे (नः) अस्मदीयंयज्ञं "नयन्तु" सब देवताओंको मूर्तिका रक्षक करता है ब्राह्म० १४ । १ । २ । १९

भाषार्थः ।

(ब्रह्मणस्पतिः) वेदके रक्षक परमात्मा (नः) हमारे (अअच्छ) यज्ञके सन्मुख (प्रैतु) आगमन करो (सूनृता) त्रयीलक्षणवाली (दैवी) दिव्य उनकी वाणी (प्रैतु) आगमन करैं (देवाः) देवगण (वीरम्) शत्रुओंको विशेष उन्मूलन करनेवाले महावीर (नर्यम्) मनुष्योंके हितकारी (पंक्तिराधसम्) यज्ञके साधक महावीरको (यज्ञं) यज्ञको (नयन्तु) प्राप्त करैं ।

पयआदिसम्भारसमूहं गृह्णाति ॥ तस्यमंत्रः

दुग्धादि सम्भार समूहको ग्रहण करता है उसका मंत्र ॥

मुखायत्वामुखस्यत्वाशीर्ष्णे–यजु० अ० ३७ मं० ८

यज्ञके लिये तुझे लेताहूं महावीरके लिये तुझे लेताहूं ॥

अथमृत्पिण्डमुपादायमहावीरंकरोतिप्रादेशमात्रंहिशिरोमध्येसं ग्रहीतमथास्योपरिष्टात्त्र्यङ्गुलंमुखमुन्नयतिनासिकामेवास्मिन्ने तद्दधातीति–ब्रा० श० १४ । १ । २ । १७ तस्यमंत्रः

मुखायत्वामुखस्यत्वाशीर्ष्णे यजु० अ० ३७ मं० ८

मृत्पिण्ड लेकर महावीरकी तीन मूर्ति बनाता है जो कि प्रादेशमात्र अर्थात् तर्जनीतकका अंतर और मध्यमें संग्रहीत हों फिर उसमें मुख और नासिकाको धारण करता है ब्रा० १४ । १ । २ । १७ ॥

मं०–हे मूर्तियो यज्ञके लिये तुझे निर्माण करताहूं, महावीरके लिये तुझे ग्रहण करताहूं ॥

यज्ञस्यशीर्षच्छिन्नस्यरसोव्यक्षरत्ततएताओषधयोजज्ञिरे तेनैवमेतद्रसेनसमर्धयतिकृत्स्नंकरोतीति–

ब्रा० श० १४ । १ । २ । १८

तस्यमंत्रः ।

मखायत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे ८

जब वैष्णवी तेज मायामें गिरा तब कुछ रसरूप तेज फैला उससे औषधियां उत्पन्न हुई उसको ग्रहण करता है और उसी रससे महावीरको समृद्ध और परिपूर्ण करता है १४ । १ । २ । १९

हे औषधे ! यज्ञके लिये तुझे लेताहूं महावीरके लिये तुझे ग्रहण करताहूं

अथैनान्धूपयतीति–ब्रा० १४ । १ । २ । २०

अश्वस्यत्वा वृष्णः शक्ना धूपयामिदेवयजनेपृथिव्याः–अ० ३७मं० ९

हेमहावीर (पृथिव्याः देवयजने वृष्णः) धर्मार्थकाममोक्षैः सेक्तुः (अश्वस्य) परमेश्वरस्य असौ वा आदित्य एषोऽश्वः श० ६।३।१।२९ सूर्यो वै सर्वे देवाः १३।७।१।६ शक्नाभोगो च्छिष्टेन यथाहाथर्वः ॥

शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा । अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रितायच्च प्राणितिं प्राणेनयच्च पश्यतिचक्षुषा । उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वेदिविदेवादिविश्रितः ११ ७ । २१ । २३ (त्वा) त्वां धूपयामि

महावीरोंको धूप देता है ब्राह्म० अब मंत्रार्थ लिखते हैं हे महावीर ! देवयजन स्थानमें चारों पदार्थके दाता ईश्वरके उच्छिष्टसे तुझे धूप देताहूं अथर्ववेदमें लिखा है कि शर्करा वालू पाषाण औषधि तृण बादल बिजली वर्षा यह सबही उच्छिष्टमें आश्रित हैं जो श्वास लेता है जो नेत्रसे देखता है और जो स्वर्गवासी देवता है वे सब उच्छिष्टरूपदेवसे उत्पन्न हुए हैं इत्यादि ॥

अथैनाञ्छ्रपयतीति–ब्रा० श० १४ । १ । २ । २१

तस्यमंत्रः ।

मखायत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे ९

महावीरोंकी मूर्तिको अग्निमें पक्व करता है यह ब्राह्मण वाक्य हुआ ॥

मंत्रार्थः ।

हे मूर्त्ति ! (मखायत्वा) तुझे यज्ञके लिये पक्क करताहूं महावीरके लिये तुझे पकाताहूं ॥

उद्वपतीति-ब्रा० १४।१।२।२२

तस्यमंत्रः ।

ऋजवैत्वासाधवैत्वासुक्षित्यैत्वा य० अ० ३७ मं० १०

पदार्थः ।

(ऋजवे) स्वर्गायआदित्याय (त्वा) त्वामुद्वपामि (साधवे) वायवे अन्तरिक्षलोकाय च (त्वा) त्वामुद्वपामि (सुक्षित्यै) पृथिवीलोकायाग्नये च (त्वा) त्वामुद्वपामि त्रैलोक्यप्राप्तयेत्वा मुद्वपामीत्यर्थः ॥

भाषार्थः ।

फिर मूर्तिको अग्निमेंसे निकालता है ब्रा० १४।१।२।२२

हे मूर्ति!स्वर्ग और सूर्यके लिये तुझे निकालताहूं वायु और अन्तारिक्षके हेतु तुझे निकालताहूं, पृथ्वी और अग्निके लिये तुझे निकालताहूं ॥

अथैनानाच्छृणत्तिअजायैपयसेति-ब्राह्म० १४।१।२।२८

तस्यमंत्रः ।

मखायत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे १०

मंत्रार्थः ।

फिर महावीरकी मूर्तियोंको अजाके दुग्धसे सिंचताहै ब्राह्मणम् ॥

हे मूर्ति ! यज्ञके लिये तुझे सींचताहूं महावीरके लिये तुझे सींचताहूं॥

प्रोक्षतीति-ब्रा० श० १४।१।३।४

तस्यमंत्रः ।

यमायत्वा मखायत्वा सूर्यस्य त्वा तपसे-य० अ० ३९मं० ११

पदार्थः।

(यमाय) यमयति नियच्छति सर्वमिति यमः सूर्यः तस्मै (त्वा) त्वां प्रोक्षामि (मखाय) सर्वप्रेरक ईश्वरस्य (तपसे) सूर्याय (त्वा) त्वां प्रोक्षामि ११

प्रोक्षणकरताहै ब्राह्मणम् १४।१।३।४

मंत्रार्थः।

हे मूर्ति! सूर्यके हेतु तुझे प्रोक्षण करताहूं यज्ञपुरुष विष्णुके लिये तुझे प्रोक्षण करताहूं, सबके प्रेरक परमेश्वरके तपरूप सूर्यके लिये तुझे प्रोक्षण करताहूं॥

महावीरमाज्येनसमनक्तीति--ब्राह्मणम् १४।१।३।१२

तस्यमंत्रः।

देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु--यजु० अ० ३७ मं० ११

पदार्थः (सविता) (देवः) (मध्वा) मधुना मधुरूपेण सर्वजगद्रूपेणाज्येन (त्वा) त्वां (अनक्तु) लिम्पतु ११

महावीरको घृतसे लिप्त करताहै ब्राह्मणम् १४।१।३।१२

मंत्रार्थः।

हे महावीर सविता देवता तुझे मधुसे युक्त करो॥ प्रवृणक्तीति श० १४।१।३।१७

अर्चिरसिशोचिरसितपोसि-अ० ३७ मं० ११

पदार्थः।

हेमहावीर (त्वं) (अर्चिः) ज्वालारूपः ब्रह्मरूपः असि (शोचिः) शुचिरूपःअसि (ज्योतिः) प्रकाशरूपः सूर्यतापरूपः (असि)

मंत्रार्थः।

पक्क करनेको स्थापन करताहै॥

हे महावीर! तुम ज्वालारूप ब्रह्मतेजरूप हो पवित्ररूप हो प्रकाशस्वरूप सूर्यतापरूप हो॥

प्राणानेवास्मिन्नेतद्दधातीति--ब्रा० श० १४ । १।३।३०

मधु मधु मधु--यजु०अ० ३७ मं० १३

हेप्राणहेव्यानहेउदानयूयमात्ममग्निंविजयतेति-ब्राह्म० १४।१।३।२६

मूर्तिमें प्राणोंको स्थापन करताहै ब्राह्मण ।

हे प्राण ! हे व्यान ! हे उदान ! तुम आत्माग्निको प्रज्वलितकरो ॥

यज्ञस्यशीर्षच्छिन्नस्यशिरएतद्देवाःप्रत्यदधुर्यदातिथ्यंनहवा स्यापशीर्ष्णाकेनचनयज्ञेनेष्टंभवतियएवमेतद्वेद--श० १४ ।२।२।४९

जो वैष्णवी तेज मायामें गिरा देवताओंने फिर उसको विष्णुहीमें युक्त किया वही आतिथ्य यदि तेजके विना युक्त करनेके यज्ञकरै तो उसमें सिद्धि नहीं होसक्ती जो इसको जान्ताहै वही सिद्धिको पाता है

यज्ञस्यशीर्षच्छिन्नस्यशुगुदक्रामत्सेमांल्लोकानाविशत्तयैवेनमे तच्छुचासमर्धयतिकृत्स्नं करोतीति ब्राह्मणम् ० १४।३।१।२

तस्यमंत्रः ।

यातेघर्मदिव्याशुग्यागायत्र्याᳬहविर्धानेसातआप्यायतान्नि ष्टचायतान्तस्यैते स्वाहा, यातेघर्मान्तरिक्षेशुग्यात्रिष्टुभ्याग्नीध्रे, सातआप्यायतां तान्निष्टचायतान्तस्यैतेस्वाहा, याते घर्मपृ थिव्याᳬशुग्याजगत्याᳬसदस्यासातआप्यायतान्निष्टचायता न्तस्यैते स्वाहा यजुः अ० ३८ मं० १८

हे (घर्म) महावीर (या) (ते) तव (शुक्) दीप्तिः (दिव्या) दिविभवा (या) (गायत्र्या २) समष्टिप्राणे "प्राणोगायत्री श० १३।६।१६ " (हविर्धाने) समष्टिस्थूलशरीरे (सा) (ते) (आप्यायतां) वर्धतां (निष्टचायतां) दृढाभवतु (त) (तस्यै) दीप्तये (स्वाहा) हे (घर्म) महावीर (या ते शुक्) दीप्तिः (अंत-

रिक्षे) (यात्रिष्टुभि) आत्मनि "आत्मावै त्रिष्टुप् श० ६।४।२।६ " (आग्नीध्रे) हार्दान्तरिक्षे (साते आप्यायतां निष्ठ्यायतां ते तस्यै) दीप्तये (स्वाहा) हेघर्म महावीर (याते सदस्या) समष्ट्युदरे स्थिता "उदरमेवास्य सदः श० ३।५।२।५।" (शुक्) दीप्तिः (पृथिव्यां या जगत्यां) समष्ट्यपाने "योऽयमवाङ् प्राणएषजगती शत० १० । ३ । १ । १ । " साते आप्यायतां निष्ठ्यायतां ते तस्यै (दीप्तये स्वाहा)

भाषार्थः ।

जब वैष्णवी तेज मायामें प्राप्त हुआ तब उसकी दीप्ति इन लोकोंमें प्रवेश हुई उस दीप्तिसे इस महावीरको समृद्ध और परिपूर्ण करता है ब्राह्म० श० १४ । ३ । १ । २

मंत्रार्थः ।

हे महावीर ! जो तेरी दिव्य दीप्ति विराट् शरीरमें है और समष्टि प्राणमें है वोह तुझमें वृद्धि पावो, अचलहो, उस दीप्तिके हेतु आहुती दीजाती है, हे महावीर ! जो तेरी दीप्ति अन्तरिक्ष हार्दान्तरिक्ष और आत्मामें है, वोह तुझमें वृद्धि पावो अचलहो उस तेरी दीप्तिके लिये आहुति दी जाती है, हे महावीर ! जो तेरी दीप्ति समष्टि उदर पृथ्वी और समष्टि अपानमें है वोह तुझमें वृद्धि पावो अचलहो उस तेरी दीप्तिके लिये आहुति दीजाती है पक्षान्तरमें गायत्री छन्दादिके गायत्री छन्द आदि अर्थभी जानने । यह आध्यात्मिक अर्थ लिखा है ॥

सउपहवमिष्ट्वाभक्षयतीति–ब्रा० १४ । ३ । १ । ३१ ।

तस्यमंत्रः ।

मयित्यदिन्द्रियंबृहन्मयिदक्षोमयिक्रतुः ॥ घर्मस्त्रिशुग्विराजति विराजाज्योतिषासह ब्रह्मणातेजसासह–यजुः अ०३८मं०२७

पदार्थः ।

(त्रिशुक्) त्रिदीप्तियुक्तः (घर्मः) मूर्तिमयोदेवः (विराजाज्योतिषासह) तथा (ब्रह्मणाज्योतिषासह) (मयि) ममहृदयेविरा

जति (तत्) तस्मात् (यः) समष्टिप्राणः (बृहत्) महत् (इन्द्रियं) बलं (मयि) अस्ति (क्रतुः) संकल्पः(दक्षः)संकल्प सिद्धिः (मयि) वर्तते २७

भाषार्थः।

होम करके उपहवको भक्षण करता है ब्राह्मणम् ॥

तीनों दीप्तिसे युक्त मूर्तिमय देवता विराट्की ज्योतिके साथ युक्त होकर मेरे हृदयमें विराजमानहो इसकारण समष्टि प्राण और महान् बल मुझमें हो संकल्प और संकल्पसिद्धि मुझमें वर्तमान हो अर्थात् इस-कार्यके प्रभावसे ब्रह्मज्योतिके सहित हमारी ज्योति संगतहो ॥

यस्यघर्मोविदीर्यते तत्र प्रायश्चित्तिः श० १४।३।२।१

पूर्णाहुतिं जुहोति सर्वं वै पूर्णं सर्वेणैवैनद्भिषज्यति यत्किंच-विवृढंयज्ञस्येतिब्रा० शत० १४।३।२।२

तस्यमंत्रः ।

स्वाहाप्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः पृथिव्यैस्वाहा अग्नयेस्वाहा अन्तरिक्षायस्वाहा वायवेस्वाहादिवेस्वाहा सूर्यायस्वाहा १ दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्रायस्वाहा नक्षत्रेभ्यःस्वाहा अद्भ्यःस्वाहावरुणायस्वाहा नाभ्यैस्वाहा पूतायस्वाहा—अ० ३९ मं० ।१।२

भाषार्थः ।

जिस यज्ञमें महावीरकी मूर्त्ति फटजाय उसका प्रायश्चित्त कहते हैं ब्रा० आहुतिसे चिकित्सा करताहै जो कुछ मूर्तिका अंगभंग हुआ उसकी ब्रा० प्राण साधिपति, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, दिव्, सूर्य, दिशा, चन्द्रमा, नक्षत्र, जल, वरुण, नाभि पूत नामक देवतोंके निमित्त श्रेष्ठ होम हो ॥

मुखमेवास्मिन्नेतद्दधातीति--ब्रा० १४।३।२।१७

तस्यमंत्रः।

वाचेस्वाहा यजुः अ० ३९ मं० ३

नासिकेऽएवास्मिन्नेतद्दधातीति--ब्रा०श०१७

तस्यमंत्रौ ।

प्राणायस्वाहा २ प्राणायस्वाहा २

अक्षिणीऽएवास्मिन्नेतद्दधातीति--ब्रा० १७

तस्यमंत्रौ ।

चक्षुषेस्वाहा २ चक्षुषेस्वाहा २

कर्णावेवास्मिन्नेतद्दधातीति--ब्रा० १७

तस्यमंत्रौ ।

श्रोत्रायस्वाहा २ श्रोत्रायस्वाहा २

मूर्तिमें मुखको धारण करता है श० १४ । ३ । २ । १७

मंत्रार्थः ।

वागभिमानी देवताके अर्थ श्रेष्ठ होम हो यजुः अ० ३९ मं० ३

घ्राणेंद्रियको मूर्तिमें धारण करताहै श०

मं० प्राणके हेतु होमहो प्राणके अर्थ होमहो यजुः

मूर्तिमें चक्षुइन्द्रियको स्थापन करताहै श०

मं०चक्षुओंके हेतु होमहो चक्षुओंके हेतु होमहो यजुः

मूर्तिमें श्रोत्रइन्द्रियको स्थापन करता है श०

मं० श्रोत्रके हेतु हवन हो श्रोत्रके हेतु हवन हो यजुः

मनसावाइदꣳसर्वमाप्तं तन्मनसैवैतद्भिषज्यतियत्किंच

विवृढं यज्ञस्येति–ब्राह्मणम् १४।३।२।१९

तस्यमंत्रः ।

मनसःकाममाकूतिं वाचस्सत्यमशीयपशूनाꣳरूपमन्नस्यरसो

यशःश्रीःश्रयतांमयिस्वाहा–यजुःअ० ३९ मं० ४

पदार्थः ।

अहं (मनसा कामम्) अभिलाषं (आकूतिं) आकुंचनप्रयत्नं (आशीय) प्राप्नुयाम् (वाचः) (सत्यम्) प्राप्नुयाम् (पशूनां)

इन्द्रियाणाम् (रूपं) गोलकं यद्वा पशूनां शोभा (अन्नस्यरसः) स्वादुत्वं (यशः) कीर्तिः (श्रीः) लक्ष्मीश्च (मयिश्रयताम्) तिष्ठतु (स्वाहा)

भाषार्थः ।

यह सब मनसे प्राप्त होताहै इसकारण मनके द्वाराही चिकित्सा करताहै जो कुछ यज्ञका अंगभंग हुआ श० १४।३।२।१९ मंत्रार्थः—मैं मनके द्वारा अभिलाष और प्रयत्नको प्राप्त करूं वचनकी सत्यताको प्राप्त करूं इन्द्रियोंके गोलक वा पशुओंकी शोभा अन्नका स्वादुत्व कीर्ति और लक्ष्मी मुझमें वास करो प्रार्थनाद्योतक यह आहुति स्वीकृत हो ।

प्रश्न ।

कस्मादेतं मृन्मयेनैवजुहोतीति–श० ब्रा० १४।२।२।५३

यह ब्राह्मणमें प्रश्न है कि, मट्टीकीही मूर्ति क्यों बनाते और संस्कार करते हैं ॥

उत्तरम् ।

यज्ञस्यशीर्षच्छिन्नस्यरसोव्यक्षरत्सइमे द्यावापृथिवीऽअगच्छ द्यन्मृदियंतद्यदापोऽसौतन्मृदश्चापांच महावीराः कृताभवन्ति ५३ सयद्वानस्पत्यःस्यात् प्रदह्येतयद्धिरण्मयः स्यात्प्रलीयेत यल्लोहमयःस्यात्प्रसिच्येत यदयस्ममयः स्यात्प्रदहेत्परीशासावथेषएवैत स्माऽतिष्ठत तस्मादेतंमृन्मयेनैवजुहोतीति-ब्राह्म० १४।२।२।५४

भाषार्थः ।

जब वैष्णवी तेज गिरा तौ यह दीप्तिरूप रस पृथिवी स्वर्गमें प्रवेश हुआ जो कि मिट्टी जलरूपहै इसकारण मिट्टी जलसे महावीरकी मूर्ति बनाते हैं यदि मूर्ति काष्ठकी हो तौ (अग्निसंस्कारके समय) जलजाय सुवर्णकी हो तौ पिघल जाय पाषाणकी हो तौ फटजाय लोहेकी हो तौ परिशासोंको भस्मकरदे इस कारण यज्ञमें मृन्मय मूर्तिही बनाते हैं, क्योंकि उसका अग्निमें रखना एक प्रकारकी यज्ञविधिहै इसकारण

मृन्मय मूर्ति बनाकर होम करतेहैं यह तो यज्ञमें मूर्तिविधान कहा अब मन्दिरमें पूजन विधान कहते हैं देवताका आह्वान ।

ऊध्नोदिव्यस्यनोधातरीशानोविष्याद्दतिम्–१अथर्व० ७।१८।१

हे (ऊध्नः) रात्रेः (दिव्यस्य) दिवसस्य (धातः) ईश्वर (नः) अस्माकम् (ईशानः) ईश्वर त्वं(दृतिम्)दृविदारेवधेआदरेच पाषाणस्यविदारणान्निर्मितां धातूनां ताडनाद्रचितां पूजनीयां च मूर्तिं (विष्याः) प्रविश स्वकीयं देहं कुरु ॥

भाषार्थः ।

हे अहोरात्रके धाता हमारे ईश्वर ! तुम इस मूर्तिमें प्रवेश करो अर्थात् मूर्तिको अपना शरीर कल्पित करो ॥

एह्यश्मानमातिष्ठाश्माभवतुते तनुः ॥ कृण्वन्तु विश्वेदेवा आयुष्टेशरदः शतम्–अथर्व० २।१३।४

हेइष्टदेव (अश्मानम्) अश्ममूर्तिम् (आतिष्ठ) (आश्मा) अश्ममूर्तिः (ते) तव (तनुः) देहः (भवतु)(विश्वे) सर्वे (देवाः) (ते) तव शरीरस्य (आयुः) (शरदःशतं कृण्वन्तु)

हे इष्टदेव ! पाषाणमूर्तिमें विराजमान हूजिये पाषाणमूर्ति आपका शरीरहो सब देवता इस आपके शरीरकी आयु अनन्त वर्षोंकी करो ॥ यह मंत्र ब्रह्मचारीके अश्मारोहणमें भी आताहै और मूर्तिप्रतिष्ठामेंभी है

दृते दृꣳहमामित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् मित्रस्याहञ्चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्यचक्षुषा समीक्षामहे–यजुः० अ० ३६ मं० १८

पदार्थः ।

(दृते) हे मूर्तिव्यापक परमेश्वर महावीर त्वं(मा) मां दृंह(दृढीकुरु) शान्तचित्तंकुरु यथा (सर्वाणि)(भूतानि) ब्रह्मपर्यन्तानि (मा) मां (मित्रस्य) (चक्षुषा समीक्षन्ताम्) मित्रदृष्ट्यापश्यन्तु

(अहम्) अपि (सर्वाणि) भूतानि (मित्रस्य) चक्षुषा (समीक्षे) पश्यामिपरमेश्वरस्य सर्वव्यापकत्वात् (मित्रस्यच क्षुषासमीक्षामहे) वयं पश्यामःपुत्रशिष्याद्यभिप्रायेणबहु-वचनम् ।

भाषार्थः ।

हे मूर्तिव्यापक परमेश्वर ! तुम मुझे एकाग्रचित्त करो जिसप्रकार ब्रह्मा-पर्यन्त सब प्राणी मुझे मित्रदृष्टिसे देखैं मैंभी सब प्राणियोंको मित्रदृष्टिसे देखूं हम सबको मित्रदृष्टिसे देखते हैं ।

दृते दृꣳहमाज्योक्तेसन्दृशिजीव्यासञ्ज्योक्तेसन्दृशिजीव्यासम्

यजु० ३६ । १९ पदार्थः ।

(दृते) हेमूर्तिव्यापकपरमेश्वर त्वं (मा) मां (दृंह) (एकाग्रचित्तं) कुरु (ते) तव (सन्दृशि) संदर्शने(ज्योक्) चिरं (जीव्यासम्) अहं जीवेयम् (ते) सन्दृशि (ज्योक्) जीव्यासम् । पुनरुक्तिरादरार्था ।

भाषार्थः ।

हे मूर्तिव्यापक परमेश्वर ! तुम मुझको एकाग्रचित्त करो आपका दर्शन करता हुआ दीर्घ कालतक जीता रहूं आपका दर्शन करताहुआ दीर्घ कालतक जीतारहूं ॥

नमस्तेहरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे ॥अन्यांस्तेऽअस्मत्तप न्तुहेतयः पावकोऽअस्मिमभ्यं ७ं शिवोभव--मं२०अ०३६यजु०

पदार्थः ।

हेमूर्तिव्यापकपरमेश्वर (ते) तव (हरसे) हरति सर्वार्हणानि भक्तैर्दत्तानि तस्मै हरतेरसुन्प्रत्ययः (शोचिषे) तेजसे (नमः) (अर्चिषे) स्वमूर्तिप्रकाशकायतेजसे (ते) तुभ्यं (नमः) (अस्तु) ते (तव) (हेतयः) चक्रत्रिशूलनारायणपाशुपता द्यस्त्राणि (अस्मत्) (अन्यान्) मूर्तिपूजनविमुखान्नास्ति-

कान् (तपन्तु) (पावकः) पापैः शोधकस्त्वम् (अस्मभ्यम्) (शिवः) कल्याणकर्ता (भव)

भाषार्थः।

हे मूर्तिव्यापक परमेश्वर ! तुम भक्तोंके चंदनादि द्रव्य ग्रहण करते हो तुम्हारे तेजरूपके अर्थ नमस्कारहै तुम्हारे मूर्तिव्यापक रूपके अर्थ नमस्कार तुम्हारे शंखचक्रादि अस्त्रोंके अर्थ नमस्कार और जो पूजनसे विमुख नास्तिक हैं उनको तपाओ और हमको कल्याणकारी हो ॥

अग्निनारयिमश्नवत् पोषमेवदिवेदिवे॥यशसंवीरवत्तमम्–ऋ० अ० १ अ० १ मं० ३

(अग्निना) ईश्वरसे अधिष्ठित (रयिम्) मूर्ति ''तस्मान्मूर्तिरेवरयी–प्रश्नो ०५''को पूजन करनेको(दिवेदिवे)प्रतिदिन(अश्नवत्)प्राप्त होता है प्रतिदिन(पोषंयशसंवीरवत्तमम्) पुष्टधन पुत्रको प्राप्तहो ॥

अग्नेयत्तेशुक्रंयच्चन्द्रंयत्पूतंयच्चयज्ञियंतद्देवेभ्योभरामसि–यजुः अ० १२ मं० १०४

(अग्ने) हे परमात्मन् [तदेवाग्नि यजुः] (यत्तेशुक्रं) जो आपका शुक्र रूप (यच्चंद्रं) मन (यत्पूतं) जो पवित्र गुणकर्म समुदाय आपने (देवेभ्यः) देवताआदि ऋषि मुनि महात्माओंके निमित्त (यज्ञियं) यज्ञसबंधी प्रतिमामें [अथैतमात्मनः प्रतिमामसृजत यद्यज्ञम् श० ११।१। ८।३] अर्पण किया है (तत्) उस तुम्हारी प्रतिमाको हम पूजनके निमित्त (भरामसि) धारण वा ग्रहण करते हैं ॥ १॥

चन्द्रमा मनसोजातः चक्षोः सूर्योऽजायत--यजु० ३१।१२

इसमें परमात्माके मन नेत्रादि वर्णन किये हैं फिर परमात्माकी मूर्ति बनाय पूजन करैं तो क्यों अप्रमाण हो सकता है पूजन वेदप्रतिपाद्य है ॥

यतोयतःसमीहसे ततो नो अभयंकुरु॥शन्नःकुरु प्रजाभ्योऽभयन्नः पशुभ्यः--२२ मं० अ० ३६ यजु०

पदार्थः।

हेपरमेश्वर (यतः) यस्माद्यस्माद्रामकृष्णादिरूपात्त्वं (समीहसे) चेष्टसे (ततः) रूपात् (नः) अस्माकं(अभयंकुरु) किञ्च (नः) अस्माकं (प्रजाभ्यः) (शं) सुखं (कुरु)

भाषार्थः ।

हे परमेश्वर ! तुम जिस जिस अवतारादि रूपसे चेष्टा करतेहो उसउस रूपसे हमको अभय करो और प्रजाको सुख करो ॥ नमस्ते अस्त्वश्मने अथर्व १। १३। १ अश्ममूर्तिमें रहनेवाले आपको नमस्कारहै ।

अश्मवर्ममेंऽसियोमाप्राच्यांदिशोंऽघायुरंभिदासात् एतत्सऋच्छात्-अथर्व० ५।१०। १।७

हेइष्टदेव त्वं (मे) मम (अश्मवर्म) मूर्तिव्यापकपरमेश्वररूपं कवचम् अश्म व्याप्तौ असि (यः) अघायुः (पापपुरुषः) (मा) मां(प्राच्याः) (दिशः) (अभिदासात्) अभिहन्ति दासहिंसने (सः) (एतत्) (हिंसनम्) (ऋच्छात्) प्राप्नुयात् ऋच्छतिगच्छतिकर्मा निघं० १

भाषार्थः ।

हे इष्टदेव! तुम मूर्तिव्यापक परमेश्वर मेरे कवच हो जो पापपुरुष पूर्व दिशासे मुझे मारै वोह इस वधको प्राप्त करै ॥

अश्मवर्ममेंऽसियोमादक्षिणायादिशोंऽघायुरंभिदासात् एतत्सऋच्छात् २ अश्मवर्ममेंऽसियोमाप्रतीच्यादिशोंऽघायुरंभिदासात् एतत्सऋच्छात् ३ अश्मवर्ममेंऽसियोमोदीच्यादिशोरघायुरंभिदासात् एतत्सऋच्छात् ४ अश्मवर्ममेंऽसियोमाध्रुवायादिशोऽघायुरंभिदासात् एतत्सऋच्छात् ५ अश्मवर्ममेंऽसियोमोर्ध्वायादिशोऽघायुरंभिदासात् एतत्सऋच्छात् ६ अश्मवर्ममेंऽसियोमादिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरंभिदासात्एतत्सऋच्छात् ७

अथर्व०

भाषार्थः।

हे इष्टदेव मूर्तिव्यापक परमेश्वररूप तुम मेरे कवच हो जो पापपुरुष दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नीची, ऊंची दिशा और अन्तर्दिशाओंसे मुझे मारै वोह इस वधको प्राप्त करै इत्यादि बहुत प्रार्थना हैं अब मूर्तिपूजनका फल॥

नघ्रंसस्तंतापनहि॒मोजं॑घान॒प्रनं॑भतां॒पृथि॒वीजी॒रदा॑नुः आपं॑श्चिद॒स्मै॑घृ॒तमित्क्षं॑रन्ति॒ यत्र॒सोमः॒सद॒मित्तत्रं॑भ॒द्रम् अथर्व—७।१८।२

पदार्थः।

(यत्र) यस्मिन् स्थाने (सोमः) मूर्तिव्यापकोदेवः "सोमोवै राजायज्ञः प्रजापतिस्तस्यैतास्तन्वोयाएतादेवताः श० १२।६।१।१" "सर्वंहिसोमः श० ५।५।४।१०" (तत्र) (सदमित्) सदैव (भद्रं) कल्याणं (घ्रंसः) दिनकरःसूर्यः (घ्रंस अह इतिनिघं०) (न) (तपाप) (अवृष्टया हिमः) उपलवर्षा (न) (जघान) किन्तु (अस्मै) पूजकाय (आपः) (चित्त) अपि (घृतम्) (इत्) एव (क्षरन्ति) क्षीरस्य बहुलत्वात् (पृथिवी) (जीरदानुः) क्षिप्रमन्नानांदात्री भवति हे मूर्तिव्यापकपरमेश्वर (प्रनभताम्) असुरान् हन्यताम्

भाषार्थः।

जिस स्थानमें मूर्तिव्यापक देवता है वहां सदैव कल्याण है सूर्यका ताप नहीं तपाता है ओलोंकी वर्षा नहीं मारती है किन्तु इस मूर्तिपूजनके लिये जल भी घृतकोही देते हैं घृतकी बहुलतासे घृत बहुत प्राप्त होता है हे मूर्तिव्यापकपरमेश्वर! असुरोंको मारो॥

इत्यादि शतशः मंत्र मूर्तिपूजनादिके हैं इससे जहां कहीं तीर्थादिकोंमें मन्दिरोंमें पूजन होता है वोह सब ठीक है जब वेदमेंही पूजन है तो अब और ग्रंथोंके दिखानेसे क्या है इससे यह पूजन सत्य श्रेष्ठ है॥

जीविकार्थे चापण्ये ५ । ३ । ९९ इस सूत्रपर महाभाष्यमें कन् का लोपविधान करके (वासुदेवः) (शिवः) (स्कन्दः) यह उदाहरण दिये हैं, आशय यह है कि, जो मूर्ति जीविकाके अर्थ हो बेची न जाय उसमें कन्प्रत्ययका लोपहो, जैसे शिव कृष्ण स्कन्दकी मूर्ति यहां कन्-प्रत्ययका लोप हुआ है, अब बुद्धिमान् विचार सकते हैं कि, मन्दिरोंमें इन्हीं देवताओंकी मूर्ति हैं, उनपर द्रव्यादि चढताहै जब कि, मूर्ति देवताओंकी नहीं थीं तौ सूत्र क्यों बना, दयानंदजीने इस सूत्रके मेट-नेका प्रयत्न तौ किया परन्तु अर्थोंका फेरफार करके भी कृतकार्य न होसके ॥

स० पृ० ३१८ पं० २४ रामचंद्रके समय उस लिंगके मंदिरका नाम चिह्न भी न था किन्तु दक्षिण देशस्थ रामनाम राजाने मन्दिर बनवा लिंगका नाम रामेश्वर धर दिया है रामचंद्रजीने तौ आकाश मार्गसे पुष्पक विमानपर बैठे अयोध्याको आते सीतासे कहा है कि ॥

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः ॥

*सेतुबन्ध इति विख्यातम्-वाल्मीकिरामायणे० स० १२५ श्लो० २

हे सीते ! तेरे वियोगसे हम व्याकुल हो घूमते थे और इसी स्थानमें चातुर्मास्य किया था और परमेश्वरकी उपासना ध्यान भी करते थे वोह जो सर्वत्र विभु व्यापक देवोंका देव महादेव परमात्मा है उसकी कृपासे हमको सब सामग्री यहां प्राप्त हुई और देख यह सेतु हमने बांधकर लंका में आके उस रावणको मार तुझको ले आये इसके सिवाय वाल्मीकिने अन्य कुछभी नहीं लिखा ॥ ३४३।२

समीक्षा-धन्य है स्वामीजी वाल्मीकिमेंसे रामेश्वरभी अलग किया रामचंद्रजीने यह जानकीजीसे परमात्माका स्मरण करना कहा भला इसका कौन प्रसंग था वोह तो युद्धभूमि दिखाते थे चातुर्मास्य तौ प्रवर्षण पर्वतपर किष्किन्धामें किया था यहां यह कहां, जो जो विख्यात वार्ताएं थीं सो सो रामचंद्रजीने दिखाई, इसी प्रकार महादेवजीका स्थापन विख्यात समुझके वर्णन किया परमेश्वरके ध्यान स्मरण बतानेकी क्या बात थी वाल्मीकिजीने तौ सब कुछ लिखा है आपने पौन श्लोक क्यों लिखा पूरा लिखते तौ कलई खुलजाती वाल्मीकिजी तौ ऐसा लिखते हैं कि ॥

* सेतुबन्ध इति ख्यातम् पांचवी वारका पाठ है ।

एतत्तुदृश्यतेतीर्थंसागरस्यमहात्मनः ॥
सेतुबन्धइतिख्यातंत्रैलोक्येनचपूजितम् ॥ १ ॥
एतत्पवित्रंपरमंमहापातकनाशनम् ॥
अत्रपूर्वंमहादेवःप्रसादमकरोद्विभुः ॥ २ ॥

युद्धकाण्ड सर्ग १२५ श्लो० २०।२१

हे जानकि, महात्मा सागरका यह सेतुबन्धतीर्थ दीखता है जो त्रिलोकीमें पूजित होगा यह परम पवित्र और महापापका दूरकरनेवाला है पूर्वकालमें इसी तीर्थपर (मेरे स्थापन करनेसे) विभु महादेवजीने मुझपर कृपा कीथी, अब विचारनेकी बात है कि, पवित्र और पापनाशक क्या है रामचंद्र कहते हैं कि, मैंने यहीं महादेवजीका स्थापन कियाथा जिसकारण उन्होंने मेरे ऊपर कृपा कीथी यह मूर्तिही पवित्र और पापनाशक है और फिरभी उत्तर काण्डमें लिखा है ॥

यत्रयत्रसयातिस्मरावणोराक्षसेश्वरः ॥
जाम्बूनदमयंलिंगंतत्रतत्रस्मनीयते ॥ १ ॥
वालुकावेदिमध्येतुतल्लिंगंस्थाप्यरावणः ॥
अर्चयामासगन्धैश्चपुष्पैश्चामृतगन्धिभिः ॥ २ ॥

उत्तर का० सर्ग ३१ श्लो० ४२--४३

रावण राक्षसेश्वर जहां जहां जाताथा वहां वहां जाम्बूनदमय लिंग साथ जाताथा ॥ १ ॥ उस लिंगको वालूकी वेदीके मध्यमें स्थापन करके अमृत गन्धवाले पुष्पोंसे पूजन करताथा ॥ २ ॥

❀ इत्यादि बहुत स्थानोंमें मूर्तिपूजन वेदमें विद्यमान है और पुराण शास्त्रोंमें तो सर्व प्रकारसे वर्णन किया है सो सब जानतेहीं हैं एक भीलने द्रोणाचार्यकी मूर्ति बनाकर अर्जुनसे अधिक विद्या उससे सीखीथी सो भारतमें विद्यमान है सब कोई जानते हैं इसकारण उसके लिखनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ मूर्तिपूजनमें युक्ति-

---

* सन् १८८४ पृ० ५३१ पं० २४ में सन् १८९७ पृ० ५७१ पं० १३ उत्तरपक्षी जिनको तुम बुतपरस्त समझतेहो वेभी उन २ मूर्तोंको ईश्वर नहीं समझते किन्तु उनके सामने परमेश्वरकी भक्ति करतेहैं। समीक्षा जब मुसलमानोंको दयानंदका यह उत्तर है तब मूर्तिमें आराधनाका खंडन क्यों करते हैं।

मूर्तिमें अर्चन करनेमें युक्ति ।

यदि कोई कुशाग्रबुद्धि कहैं कि, मूर्तिमें अर्चन करनेसे भगवान् कैसे सन्तुष्ट होंगे दूसरेके सन्तुष्ट करनेसे दूसरा कैसे सन्तुष्ट होगा यह प्रश्नही नहीं बनसकता कारण कि, हम दूसरे अर्थात् उससे भिन्नका पूजन नहीं करते प्रमाण . " पुरुष एवेदं सर्वम् " यजु० अर्थात् जो होगा वह सब परमात्माही है " स आत्मानं स्वयमकुरुत सर्वं खल्विदं ब्रह्म " यह सब कुछ ब्रह्मही है उसने स्वयं अपनेको किया जब कि, सब वही है तौ हम किसी दूसरेकी पूजा नहीं करते किन्तु मूर्तिआदिमें उसीका पूजन करते हैं उस सर्वव्यापकको निराकार समझकर यदि (न्यायकारिणे नमः) कहैं तौ आप अक्षरपूजक कहैंगे शिरझुकावैं तौ आप दिक्पूजक कहैंगे, हाथ जोडनेसेभी वही गति होगी, इस कारण उसके प्रतिनिधि मानकर पूजन करते हैं, आपभी नामको उसका प्रतिनिधि मानते हैं ईश्वरनामभी प्रतिनिधि है, हम नाम और रूप दोनोंको प्रतिनिधि करके पूजन करते हैं दूसरेके पूजनसे दूसरेको सन्तुष्ट नहीं करते और संसारमें कोईभी इस बातसे खाली नहीं है समाजीभी उसीके प्रतिनिधि रूप गायत्री वेदमंत्रोंको ईश्वरादि शब्दोंको उसका प्रतिनिधि मानतेहैं नहीं तौ अवाङ्मनस गोचरको क्यों ईश्वर २ कर पुकारते हैं और निराकारका प्रतिनिधि अउम् ईश्वर जैसा तुमने प्रतिनिधि किया है यदि हम विश्वासके साथ उसका प्रतिनिधि नियतकर उपासना करते हैं तौ क्या दोषहै ॥

यदि हम पाषाणादिपूजा करते तो यों कहते कि, हे पाषाण तुम पत्थरके टुकडे हो कारीगरने तुमको छैनीसे गढा है इत्यादि हम तुम्हारी स्तुति प्रार्थना करते हैं, परन्तु हम तौ विष्णुके सन्मुख "सहस्रशीर्षा" शिवके सन्मुख " नमः शिवाय " कहकर पूजन करते हैं, इन मंत्रोंमें परमात्माहीका वर्णन है, इस कारण हम परमात्माका ही पूजन करते हैं, जडबुद्धियोंको जड़पूजन दीखता है। और हम तो माला पुस्तक गुरुजन भूमि आदि सबहीका सत्कार करते हैं, पृथ्वीपरभी मंत्र पढकर चरण रखते हैं फिर हम मन्दिरोंका जहां प्रधान पूजनस्थान है क्यों न सत्कार करैं, यदि कहो कि, पूजा होनेपर फिर सत्कारकी क्या आवश्यकता तौ क्या आप दयानंदसे उपदेश ले चुकने पर फिर उनका तिरस्कार करते हो, तनक इतना तो कहिये भिन्न २ जातियोंके

मंदिरोंमे उनके माननीयोंके चित्र सन्मानके साथ हैं वा नहीं आपभी संन्यासी बाबाका चित्र लटकाते हो, भेद इतना है आप थोडे सत्कार करते हो और हम कुछ विशिषता करते हैं, यह सनातन धर्मकी शैलीही है आप नमस्ते आदाब अर्जमेंही अपनेको कृतार्थ मानते हो और यहां तौ साष्टांग दंडवत् कर गुरुचरण शिरपर रखने विना सन्तोषही नहीं होता यदि कहो कि, जिसका पूजन है वही प्रतिनिधिही सन्तुष्ट होगा तौ महारानीकी जुबिलीमें उनकी मूर्तिके सन्मुख बड़े उपहार रखकर ध्वजा पताका फहराईगई, फूल माला लटकाईगई, प्रधान सिंहासन पर उच्च कर्मचारी बैठाये गये, उनके सामने बड़े २ एड्रेस पढकर महारानीकी जय उच्चारण कीगई, गीत गाये गये, रोशनी कीगई, मूर्तिपूजा करनेमें तौ आँतें कुलबुला उठती हैं परन्तु यह सब क्यों कियाजाताहै, क्या यह गीत लन्दन पहुंचे यह रोशनी महारानीके मंदिरमें पहुंची, यह भारतका द्रव्य आपने किस वेदके प्रमाणसे मट्टी और अग्निमें लगादिया, जब कि, आप राजभक्तिका उद्गार नहीं रोकसक्ते तौ उपासक लोग हरिभक्तिका उद्गार कब रोकसक्तेहैं महारानी सुनकर प्रसन्न हों इसीवकारण आपने सब कुछ किया तौ " पश्यत्यचक्षुः सशृणोत्यकर्णः" ' ग्रहीता ' जो प्रार्थना सुनता और देखता पूजादिक ग्रहण करताहै क्या वह हमारे प्रेमभावको जानकर प्रसन्न न होगा क्या उसको वह नहीं जानता कि, मेरेही नामपर राजपाट छोड वनमें जातेहैं मेरेही लिये मेरे भक्त गंगोत्तरीसे सेतुबन्धतक गमन करतेहैं, मेरे ही ध्यानमें मग्न हैं मन्दिर मंदिरमें जय २ कर दण्डवत् करतेहैं क्या वह नहीं जानता कि, आज समाजी कल काजी फिर ईसाई फिर नास्तिक होकर भारतवर्षके बुद्धिसागर अपना जन्म व्यर्थ करतेहैं, हम तौ ईश्वरहीका भजन पूजन करते हैं, परन्तु जो आज कुछ कल कुछ हैं उनको भगवत्प्राप्ति महाकठिन है ॥

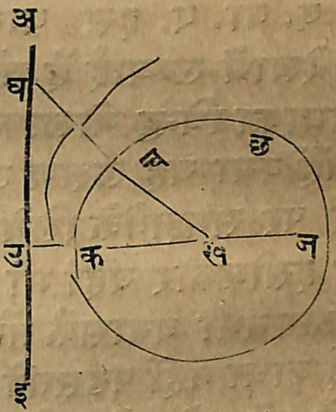
यदि कहो निराकारकी आकारकल्पना कैसे तौ सुनिये कि, यदि ब्रह्म और जगत्में अभेद है तौ साकारसे अभिन्न होनेसे वहभी साकार हुआ यदि कहो कारण स्वरूपमें तौ निराकार है जो यह भी ठीक नहीं कारण कि कार्य अपनी उत्पत्तिके पहले भी किसी न किसी अवस्थामें विद्यमान रहता है और जो है ही नहीं वह प्रगट नहीं होता तिलमें तेल होनेसेही प्रगट होता है वालूमें नहीं ! (सदेव सौम्येदमग्र आसीदिति) श्रुतेः और वेद " सहस्र शीर्षा " इस

सूक्तमें उसकी साकारता प्रगट करता है तथा " याते रुद्र शिवातनूः " बाहुभ्यामुततेनमः " यह सब उसकी साकारताही सिद्ध करते हैं स्वयं कृष्णने कहा है "अवजानंतिमां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्" मूर्ख मानुषी शरीर जानकर मेरा अवहेलन करते " परं भावसे मुझे नहीं जानते यदि आकार पहले न था तौ अब कहांसे आगया एक पत्थरके टुकडेमें चतुर कारीगर गौ हाथी घोडे पेडादि सब कुछ बना सक्ता है वह उसमें हाथी घोडा कहीं बाहरसे नहीं लाता किन्तु वह उसमें पहलेहीसे विद्यमान है जो उन अवयवोंको घेरे हुएथे उन पाषाणखण्डोंको उसने अलग करदिया इसीप्रकार परमात्मामें तिरोभूत आकारोंहीका सृष्टिमें प्रादुर्भाव होताहै जैसे एक फूट लम्बे चौंडे पत्थरके टुकडेमें उससे छोटे सब आकार बनते हैं वैसेही परत्मामें भी उससे छोटे सब आकार हैं बडा कोई नहीं तौ उससे सर्वव्यापक होनेसे सब आकार परमात्मामें हुए, पाषाण जड और अवच्छिन्न है इस कारण उसमें आकारोंका प्रादुर्भाव पराधीन है परन्तु परमात्मा अद्वितीय चेतन है, इस कारण अपनी इच्छासे प्रादुर्भूत होता और सर्वव्यापक होनेसे न उसके खण्ड होते न अंश दूर किये जाते हैं ॥

जैसे कांचके तिकोने शीशेमें कई प्रकारके रंग दीखते हैं, वह काला पीला नहीं है जैसे हलदी चूना मिलाकर लाली होजातीहै चूना हल्दी लाल नहीं इसी प्रकार सगुण साकार माननेसे भी सच्चिदानंद सर्वव्यापकमें कोई त्रुटि नहीं आती अंग्रेजी पढनेसे प्रकाशको सबरंगवाला जानते हैं वैसेही हम परमात्माको सब गुणवाला जानते हैं, जैसे प्रकाशमें सब रंग सर्व साधारणकी शीघ्र बुद्धिमें नहीं आसक्ते उसी प्रकार परमात्माकी साकारता मूर्तिपूजाके आचार्य उपासनाके तत्त्ववेत्ताही जानते हैं, सब विरुद्ध उसमें सम्भव है यथा "अणोरणीयान् महतो महीयान्" " तद्दूरेतदान्तिके " वह छोटेसे छोटा बडेसे बड़ा वह धोरे और दूर है उसमें सब कुछ होसक्ताहै और जब कि, तुम एक तृणके तत्त्वको नहीं जानते तौ, गणित पढके २ दोका ठीक ठीक वर्गमूलतक नहीं निकाल सकते तौ जिसको जाननेमें वेदभी चकराता है उसे हम आपकी बुद्धिके अनुसार दालरोटी कहदें, जो कहो विना समझे कैसे पूजें आपने अनेक कार्य बुद्धि लगा सोचकर पहलेसे नहीं किये, माताका दूध पीना खेलना पढना रेलपर चढना तार देना यह सब काम क्या समझकर ही किये हैं वायुके अंशमें अभीतक कोई पक्का

सिद्धान्त नहीं तौ क्या आप साँस नहीं लेते यदि आप उस ईश्वरका तत्त्व न समझैं तौ क्या उपासना छोड़ दें आप विना समझे सब कुछ करैं और जिससे हृदयको शान्ति और अपूर्व आनंद होता है हम उस पूर्वाचार्य वेद सम्मत पूजनको क्यों न करैं ॥

यदि असम्भव कहो तो जबतक रेल तार न था तसबीरका फोटो न था तबतक इस बातकाभी आप सम्भव मानतेथे, परमाणुको आजतक किसीने देखाहै ? परन्तु इतना कहते हो कि, जिसका खण्ड होते २ फिर न होसके उसे परमाणु कहतेहैं, युक्तिसे यहभी ठीक नहीं रहसक्ता और रेखागणितसेभी यह स्पष्ट है कि, किसी पदार्थकी ऐसी कोई भी अवस्था नहीं जिसकी और एक छोटी अवस्था नहोसके, यदि हम (अई) रेखाके (उ) बिन्दुसे एक (कख) लम्ब उठावैं और इसको (ख) की ओर अनन्त दूरतातक खिचीमानकर (ख) को केन्द्र मान (खक) व्यासार्द्धसे (कचछ) वृत्त बनावैं और (अई) रेखाके (अक) खण्डमें कहीं एक (घ) बिन्दु मानकर (घख) रेखा करदीजिये यह रखा वृत्तकी परिधीको जहां काटै वहां (च) बिन्दु मानलो अब (कख) रेखाके बडे भागमें (ज) बिन्दु मानकर (जक) व्यासार्द्धसे एक और वृत्त करै तौ उसकी भी परिधि अवश्य ही इस (खघ) रेखाके (चघ) खण्डको काटती जायगी क्योंकि दो वृत्त भी एकही बिन्दुपर स्पर्श करते हैं तथा परिधि और सरल रेखाभी एकही बिन्दुपर स्पर्श करती हैं जो (अई) रेखा और पहिले वृत्तको परिधीके बीचही बीच इसको जाना पडा जहां यह (चघ) बिन्दुको काटै वहां ही (च) बिन्दु मानो अब विचारो कि, प्रथमके (चघ) खण्डसे यह (चघ) छोटा होगया यदि योंही (ज) बिन्दुको खिसकाते चलो तौ और (जउ) व्यासार्द्धसे वृत्त बनाते जाओ तौ वह सब काटते काटते इस रेखाखण्डको छोटा करते जायँगे परन्तु यह तो कहिये कि, यह खण्ड कभी ऐसा छोटा होगा कि, फिर जिसका छोटा नहोसकै यह कितनाही छोटा क्यों नहोजाय (ज) बिन्दु खसकाकर वृत्त करनेसे इसके टुकडे होही सकैंगे, तब कहिये रेखागणितकी सत्ताके विरुद्ध परमाणुका खण्ड न



होना इस असम्भव पदार्थको क्या आपने स्वीकार नहीं किया, फिर एक संख्यामें २ आदि संख्याओंसे बढाकर भागदेते चले जानेमें कभी शून्य नहीं होसकता पर छोटा होता चला जायगा इत्यादि सैकडों असम्भव तौ स्वीकार करले परन्तु सर्वशक्तिमान् की महिमामें कोई असंभव बात जान पड़े तौ छातीके टुकड़े होने लगते हैं ॥

यदि कहो कि, अनन्त पदार्थका आकार नहीं तौ रेखागणितके अनुसार कि, आप (अई) एकरेखाको परिमित खैंचकर भी उसे अपरिमित मानते हो, अनन्त कहते हो संख्यामें शून्यसे आप भाग देते हो और लम्बे चौंडे बिन्दु रखदेते हो पर परमात्माका आकार कल्पनासे पेटमें दर्द होता है ॥

यदि कहो कि, सूक्ष्मका आकार नहीं होसकता तौ सुनिये बड़े २ एम्. ए. बी. ए. इस बातको मान चुकेहैं कि, बिन्दुमें लम्बाई चौड़ाई नहीं रेखामें लम्बाई है चौंडाई नहीं परन्तु प्रोफेसर साहेब बोटपर एक खडियाका बिन्दु गोलाकार और चौंडी तुलीसी रेखाकर आपको दिखातेहैं क्या यह लक्षण ठीक है क्या बिन्दु जैसा कहा वैसाही है कभी नहीं पर समझनेके लिये आपको योंही मानना पडेगा नहीं तो घर बैठो इसीप्रकार यहां भी समझलो कि, उस 'अणोरणीयान्' का यथावत आकार नभी बनासकै तौ क्याहै उस बिन्दुकी समान हमारे प्रयोजनमें कोई बाधा नहीं पडसक्ती, यदि अज्ञात पदार्थकी कल्पना नहीं होसकती यों कहो, तो बीजगणितपर हरताल लगाना होगा, उसमें तो अज्ञात पदार्थ मानाभी जाताहै कागजपर लिखा भी जाताहै और शनैः २ अज्ञानसे ज्ञान प्राप्त होता है, इसी प्रकार उस वाणी मनसे परेकी उपासना करते जाओ ज्ञात होजायगा। यदि कहो कि, निराकारका आकार नहीं माना जासकता तो शब्दको सब रूपरहित मानते हैं पर यह तो कहिये यह आपने कखग ए बी सी डी अलिफ बे ते कहीं पेड़ पर लटके देखे हैं या बोलते में आपके दांतोंमें इनके टेढे बेढे आकार खटकते हैं, या बोलते २ मुखसे काली धारा निकलती है ॥

यदि आप यों कहदें कि, जो पदार्थ कुछ है ही नहीं उसका आकार क्या होगा तो किसी महाविद्वान्से पूछिये कि, आपके पास हिमियानीमें सात रुपये हैं एकदिन तीन खर्च किये एक दिन चार तौ आप पूछते हैं क्या रहा, आप कहोगे कुछ नहीं परन्तु आप भूलते हैं उसमें कुछ गोल २ अण्डेसाहै, किसी बडे अंग्रेजीवालेसे पूछिये क्यों साहब

क्या रहा तो वह झट ७-(३+४)-० आपके सामने गोल अण्डसा लिख देगा, बस आपके शून्यका आकार तो गोल हो सक्ता है परन्तु परमात्माके शालग्राम और नर्मदेश्वरादिके आकार नहीं होसक्ते इस कारण आप जैसा ईश्वरको निराकार कहते हैं वैसा नहीं है, जब सभी पदार्थोंका प्रतिनिधि स्वरूप आकार मानतेहो तो जिसके माननेसे मुक्तितक प्राप्तहोती है उसको क्यों न स्वीकार करैंगे, हमारे श्रीनारायणायनमः कहनेसे आपका चित्त दुःखै परन्तु सन्ध्योपासनका लंबा चौंडा नमस्कार आपकी जिह्वातक न दुखावै, यदि आप कहो प्रधानहीकी पूजा क्यों करतेहो तो आपभी मातृदेवो भव पितृदेवो भवमें आपभी मातापिताका सत्कार करतेहो, पर यह तो कहिये आपके पितामें पितृत्व कहांसे कहांतक है, तब आप कहैंगे कि, सब ठौर तब आप उनके सत्कारके निमित्त चन्दन इतरादि सिरपरही क्यों लगाते हो और दूसरे अपवित्र अंगोंमें क्यों नहीं लगाते तब आप शिरको उत्तमाङ्गही मानैंगे इसी प्रकार हमभी परमात्माकी श्रेष्ठही पदार्थोंमें पूजा करते हैं पिताके पूजनमेंभी तो चेतनका पूजन नहीं करसकतेहो पिताका चर्मही सत्कारके समय छू सकतेहो गलेमें मालाभी चर्मकाही स्पर्शहै पर शरीरकी पूजासे शरीरी प्रसन्न होताहै ऐसेही मूर्ति शरीरहै परमात्मा शरीरीहै यथा यस्य पृथिवी शरीरम् यस्य अग्निः शरीरम् यह अन्तर्यामी ब्राह्मणकी श्रुति पीछे लिख चुके हैं जब पृथिवी जल, अग्नि, वायु, आकाश, आत्मा, सब उसका शरीरहै तो पंचभूतोंकी बनी मूर्ति उसका शरीर कैसे नहीं और शरीरकी पूजा करनेसे शरीरीका पूजन क्यों ठीक नहीं जो विना अपने इष्ट देवकी प्रतिमाके आगे धरे ध्यान करतेहैं आंख खोलनेपर दूसरी वस्तु जो नेत्रोंके सन्मुख आवै उसीका चित्र अन्तःकरणपर पडता है और जब भगवान्‌की मूर्ति सन्मुख होतीहै तब जो ध्यान करतेहैं आंख खोलतेही वह वस्तु सन्मुख होनेसे ध्याता और ध्येयकी ऐसी एकता होतीहै साक्षात्कार होजाताहै इस कारण भगवन्मूर्तिके सन्मुखही उपासनाकी रीति सर्वोत्तमहै। जिन लोगोंको भगवन्मूर्ति पाषाणरूप दीखतीहै वे क्या तमाम कुटुम्बियोंको हाड मांस कहकर पुकारतेहैं वस्त्रादिको रुई नामसे बोलतेहैं सब बर्तनोंको क्या पीतल लोहा बोलतेहैं जब सब वस्तु नाम रूप भिन्न २ नाम लेकर पुकारतेहैं तब भगवन्मूर्तिमें पाषाण कैसे दीखताहै वह तो सर्वत्र

ओतप्रोत हो रहाहै भक्तजन उसमें परमात्माका दर्शन करतेहैं अज्ञानी पाषाण देखते हैं ।

निराकारकी पूजा ध्यानादिसे केवल योगी जन कर सक्तेहैं परन्तु उसमें भी मूर्तिपूजन सहायकहै स्वयं परमप्रसिद्ध शंकराचार्य स्वामी वेदान्तके आचार्य होकर भी अनेक स्तव पूजनविषयक कथन कर गये हैं जो दिनरात इस जगतजालमें मग्न रहतेहैं उनसे कब यह ध्यान भूलाजासकताहै भला मैं कहताहूं आप तनक दयानंदकाही ध्यानकर लोकि, नंगे बैठे आखें मीचेहैं, दूसरे लोग एक किसी सरोवर वागीचे का ध्यान कीजिये जिसमें तरहतरहके फूल खिलेहैं, ध्यान करके आप भूल जाईये क्यों कि, आपका ध्यान जमाया हुआ है, परन्तु जब अब इसकोभी आप नहीं भूलसक्ते तौ यह अनन्तकालके जगत्का अध्यास आपको क्या पांच मिनट आंखमीचनेसे जाता रहैगा, हां यदि आप मंदिरमें बैठ नारायणमूर्तिके सन्मुख बैठकर भजन करैं तौ अवश्य चित्त एकाग्र होगा, जैसे सितार सारंगी सुनतेही आप चलते २ खडे होते हैं, तो क्या उनमें यदि भगवान्का स्मरण किया जाय (जाके प्रिय न रामवैदेही) तो कहिये कैसा ध्यान बंधता है, उनके उत्सव आरती स्तोत्र पढनेसे मन तन्मय हो जाताहै, इसपरभी यदि कोई वक्र उठैं कि, मूर्तिपूजासे हानि हुई यहभी उनसे पूछनाहै, क्या मूर्तिपूजाने किसीका गांव नष्ट किया, या स्वतंत्रता हरली या जगत नष्ट कर दिया कुछ तो कहो जिस बातसे ईश्वरके भजनमें प्राणी मग्न हो जाता है तौ आप स्वयं समझ सक्ते हैं कि, उससे कुछ बिगाड नहीं होसक्ता, किन्तु इतना और भी विशेष लाभ है कि, श्रेष्ठस्थान मंदिरो गंगादि तीर्थोंमें विशेषकर भगवत्सम्बन्धी स्मरणहीको जी चाहता है, कुत्सित ओर चित्तकी वृत्ति नहीं जाती, तथा वह स्थान वेदपाठ मंत्र जप कथा वार्तासे युक्त रहतेहैं, जहां जाकर शोकाक्रान्त भी मनुष्य प्रसन्न हो जाय यही एक देश है जहां सहस्रों गज भूमि श्रेष्ठ मंदिरों से व्याप्त है, दूसरे देशोंमें कबरस्तानादिसे बीघों पृथ्वी आच्छादित है, जब कि, भिन्न २ पुरुषोंकी भिन्न प्रकारकी रुचि है इसीप्रकार अनेक सम्प्रदायोंमें भिन्न २ प्रकारसे पूजन होता है, पूजन करनेसे ममत्व भी दूर होताहै यदि कोई प्रश्न करैं तौ कह देते हैं कि, यह सब परमात्माकाही है हमारा क्या है जैसे भारतमें अनेक ऋतु अनेक भाषा हैं इसीप्रकार भिन्न रुचिके कारण अनेक सम्प्रदायें हैं पर-

हां जिस दिनसे यहां कलिका आगमन हुआ भारतका युद्ध हुआ भाईने भाईको विष दिया, युधिष्ठिरको वनवास द्रौपदीका सभामें केशाकर्षण हुआ उसी दिनसे धर्म और राजलक्ष्मी इस देशसे विदा होगई, जिस दिन श्रीकृष्ण और विदुरका उपदेश न माना गया, उसी दिनसे भारत उच्छृंखल होगया, जिस दिन राजा परीक्षितको सर्पने काटा उसी दिनसे भारत मूर्छित होगया है, विद्याकी हीनतासेही देशमें अनेक विघ्न हुए हैं इससे मूर्तिपूजनसे देशकी हानि नहीं हुई ॥

"तं यथायथैवोपासतेतदेवभवति तद्धैनान्भूत्वावति तस्मादेनमेवंवित् सर्वैरेतैरुपासीतसर्वंहैतद्भवतिसर्वंहैनमेतद्भूत्वावति" श०मं० ब्रा० २०

जो जिस प्रकार जिस रूपमें उपासना करताहै वह वही हो जाता है और उसी रूपसे सेवकोंकी रक्षा करताहै, वेदमें अनेक स्थानोंमें भिन्न २ उपासना लिखी है "ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत, वाचंब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत योऽसावादित्ये पुरुषः" 'नमोस्तुनीलग्रीवाय' इत्यादि अनेक आकारसे उपासनाहै यही सम्प्रदाय भेद है जैसे किसी स्थानको कोई जाय वहां जानेके चार मार्ग हों तौ किसीमें चलो सब वहीं पहुंचेंगे भूमि आदिसे 'सोसावहम्' तक उपासनाका विधान लिखा है॥

वेदमें कोई विषय तौ पूर्णोक्त अर्थात् यथावत् लिखा होताहै जैसा अग्निचयनादि दूसरा संक्षेपोक्त होताहै वह पद्धतिआदिद्वारा संसारमें प्रचलित होताहै जैसा उपनयन संस्कारआदि तीसरा अनुक्त जिसके विषय कुछ न कहा हो जैसे मृदंग बजाना बजारको जाना आदि चौथा निषिद्ध जिसे निषेध किया हो जैसे जुआ हिंसा आदि इनमें पहला तौ वेदविरुद्ध हो नहीं सक्ता, और संक्षेपोक्तके विस्तारको वेदविरुद्ध कहैं तौ रात दिनके कार्य पद्धति आदि सब विरुद्ध हो जाँय और ऐसा ही हो तौ वेदमें रेल तार गणित शास्त्र निकालनेवाले बाबाजीकी बहुतेरी मट्टीख्वार हो यदि अनुक्त विषय वेदविरुद्ध हो तो यह आपके कपडे अचकन कोट बूट घडी कारखाने यह सब व्यवहार बन्द होजाँय ४ वह जिसमें वेदने लिखाहो यह कार्य मत करो सो मूर्तिपूजन मत करो यह बात हमें कोई वेदमें लिखी दिखलाओ, वाह रामायण कथा तौ वेदविरुद्ध, पर बाबाजीका तौबाँ हुक्का खडाऊं सब वेदानूकूल है

कोई योंभी कहते हैं 'प्रतिमाः स्वल्पबुद्धीनाम् ' यदि उन्हींका कहा माना जाय तौ योग जीवन्मुक्तिको छोडकर सब स्वल्पबुद्धिही हैं निषेधतौ नहीं आया, बाबाजीको तरुतारके मिलतेही तार विद्या दीखपडी परन्तु सम्वत्सरस्य प्रतिमासिमें प्रतिमा पूजनका विधान न देखा-तथा (सनो बन्धुर्जनिता) में कहीं भक्तिका उद्रेक न मिला, कोई कहेंगे " न तस्य प्रतिमास्ति" यह तौ वेदवाक्य आप छोडेही जाते हैं॥

यद्यपि इसपर हम लिख चुके हैं फिरभी सही क्योंकि प्रसंग आगयाहै अर्थ इसका यहीहै कि, उसकी प्रतिमा नहीं है तौ क्या यह ज्ञेयाशका विशेषण कुछ उपासनाप्रकारमें बाधा डालैगा हम अप्रतिमकी प्रतिमाद्वारा पूजा करते हैं तौ क्या यह श्रुति इसका निषेध करैगी ? हम उसको निराकार कह साकार द्वारा पूजते हैं प्रतिमाके तौ अनेकार्थ हैं आपनेभी वाट तराजूके अर्थ मनुमें लिखे ही हैं, परन्तु प्रतिमा शब्दका अर्थ उपमाहै इसमें विशेष प्रमाणकी आवश्यकता नहीं कारण कि, पहले लिख चुके हैं उपमा अर्थमें वाल्मीकिरामायण महाभारतमें बहुत स्थानपर आताहै यथा " इतो महात्मा वनमेव रामो गतः सुखान्यप्रतिमानि हित्वा" अतुलनीय अनुपम सुखोंको त्याग रामचन्द्र वनको गये, इसका यह अर्थ नहीं कि जिनकी मूर्ति न बनसकै ऐसे सुखोंको छोड वनको गये । महाभारतमें नलको 'रूपेणाप्रतिमो भुवि' इसका यही अर्थ कि, रूपमें नलकी समान कोई भूमिमें नहीं था यह अर्थ नहीं होसकता कि, नलकी मूर्ति नहो उनकी मूर्तिभी थी (इतिस्म सा कारुवरलेखितं नलस्यच स्वस्य च सख्यमैक्षत) तसवीरमें जो अच्छे कारीगरकी बनी थी दमयन्ती उसमें नलके साथ अपना प्रेम देखती थी, और इसी मंत्रके अगले भागमें लिखा है 'यस्यनाममहद्यशः' जिसका नाम और अधम उधारादि यश बहुत बड़ा है आप विचारिये क्या इससे यों अर्थ बनाओगे कि, बड़े यशस्वीकी मूर्ति नहीं हो सक्ती, यह अवश्य होसकताहै कि, उसकी सदृश कोई नहीं यदि मूर्ति यशस्वीके यशकी बाधिका हो तौ बडे २ कर्मचारी तथा आपके दयानंदकीही तस्वीर दुष्कीर्तिका पुतला समझा जायगा, यदि पाषाणमयी देवमूर्ति आपको पत्थर दीखती है तौ दयानंदकी मूर्ति है ऐसा क्यों कहते हो बाबाजीके चित्रको कागद कहाकरो पूर्वसे प्रकरण श्रुतियोंका है उसको हमारे पाठक समझ गये होंगे कि, इसका अर्थ ठीक है इतनेपरभी यह विचारो कि, कौन ऐसा है जो

अपने उपास्यपर विश्वास (ईमान) नहीं रखता जो नहीं रखता वह उसके विरुद्ध है " वेदःस्मृतिःसदाचारः स्वस्यच प्रियमात्मनः १ " इस मनुके वाक्यसे सदाचारकाभी ग्रहण होता है दयानन्दभी सत्या० प्र० में कुछ सदाचार लिख गये हैं ' येनास्यपितरो याताः' तौ वेदमें जो प्रसंग संक्षेपसे हो सदाचारमें हो तौ वह बराबर प्रमाण है और अनुक्त विषयमें सदाचार वेदकी समान प्रमाण है स्वयं कपिलदेवजी अपने सूत्रमें लिख गये हैं "मंगलाचरणं शिष्टाचारात्-" शिष्टाचारसे मंगलाचरण करते हैं वेदोंकी अनेक शाखा हैं वे इस समय सब प्राप्त नहीं हो सकतीं फिर कौन कह सकता है कि उनमें क्या क्या लिखा है और उन्हींके अनुसार अनेक रीति प्रचलित हैं । पदार्थ विद्यासे इन दिनों तत्ववेत्ता सिद्ध करते हैं मनुष्यका मस्तिष्क निर्गुण चिन्तनकी सामर्थ्य नहीं रखता है इसमें बड़े साधनोंसे वह शक्ति उत्पन्न होगी इसी कारण अपने मनके सम्पूर्ण भावोंसे परमात्मा चिन्तन हो शरीरसे उसीकी सेवा करै इस कारण पूर्व कालमें सम्पूर्ण जगतही मूर्तिपूजकथा अबभी सब जातियोंमें किसी २ सम्प्रदायमें विद्यमान है फिर शब्द प्रमाणभी कितना दृढ है कि यदि कहीं कोई आपसे कहउठै सर्प है झट आप चौंकपडेंगे आप्तवाक्यको शब्द कहते हैं इस कारण भारतवर्षके जो आप्तपुरुष इस विषयमें कहगये हैं उसको कौन मेट सकैगा कारण कि हमारे आचार्योंमें मिथ्या भाषणकी शंकाभी नहीं है उन्हीं आप्तोंके शब्दोंको शिरपर रखकर पूर्व कालमें चारोंवर्ण शाप हो वा आशीर्वाद अपनेको कृतार्थ मान्ते थे इस कारण वेदशास्त्र प्रतिपाद्य मूर्तिपूजामें किसी प्रकारका सन्देह करना उचित नहीं है, और जिनके चित्तमें सत्वगुण नहीं जो अपने वृद्धोंको मूर्ख समझते हैं उन मूर्खोंको हॉटेल विस्कुट चुरट रममें निर्गुण ईश्वर दीखता होगा पाठकवर्ग समझनेको थोड़ा ही बहुत है मूर्तिपूजनमें कोई सन्देह नहीं है.

युक्तिप्रकरण समाप्त ।

स० पृ० ३२० पं० २० द्वारकामें जब १८१४ के वर्षमें तोपोंके मारे मंदिरकी मूर्ति अंगरेजोंने उडादीथीं तब मूर्तियां कहां गईथीं ॥३४५।६

समीक्षा-स्वामीजीकी यह वार्ता सर्वथा मिथ्या है कभी अंगरेजोंने ऐसा नहीं किया मूर्ति नहीं तोड़ी ॥

स० प्र० पृ० २०४ पं० २३ में स्वामीजी लिखते हैं कि, ईश्वरके स्वरूपमें समाधिस्थ हुए । स०—समझे अब ईश्वरका स्वरूप होगया ॥

तीर्थप्रकरण ।

स० पृ० ३२३ पं० २८ यह तीर्थभी प्रथम नहीं थे जब जैनियोंने गिरनार आबू आदि तीर्थ बनाये तौ उनके अनुकूल इन लोगोंने भी बनालिये जो कोई इनके आरम्भकी परीक्षा करना चाहै तौ पंडोंकी पुरानीसे पुरानी बही और तांबेके पत्र आदि देखैं तौ निश्चय होजायगा कि, यह सब तीर्थ पांचसौ वर्ष अथवा एक सहस्र वर्षसे इधरही बनेहैं सहस्र वर्षसे ज्यादेका लेख किसीके पास नहीं निकलता इससे आधुनिक हैं ॥ ३४८ । २०

पृष्ठ ३२४ पं० ९ गंगागंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥
हरिर्हरतिपापानि० इत्यादि
यह पोपपुराणके श्लोकहैं

पृ० ३२४ पं० २१ इनके मिथ्या होनेमें क्या शंका क्योंकि गंगा २ वा हरे २ रामकृष्ण नारायण शिव भगवती नामस्मरण करनेसे पाप नहीं छूटता ॥ ३३९ ॥ १४

पं० २४ मूढोंको विश्वास है कि, हम पापकर नामस्मरणकर तीर्थयात्रा करेंगे तौ पापोंकी निवृत्ति होजायगी ॥ ३३९।१७

स० पृ० ३२५ पं० ३ जो जल स्थलमय हैं वे तीर्थ कभी नहीं होसकते । पं० २५

पं० ६ प्रत्युत नौका आदिक तीर्थ होसकताहै कि, उससे समुद्र आदिको तरते हैं ॥

समानतीर्थेवासी १ अ० ४ पा० ४ सू० १०७
नमस्तीर्थ्यायच--यजु०

जो ब्रह्मचारी एक आचार्य और एक शास्त्रको साथ साथ पढतेहों वे सब सतीर्थ्य अर्थात् समान तीर्थसेवी होते हैं जो वेदादि शास्त्र और सत्यभाषणादि धर्म लक्षणोंमें साधु हो उसको अन्नादि पदार्थ और उनसे विद्या लेनी इत्यादि तीर्थ कहाते हैं ३५०।३

समीक्षा-स्वामीजी तीर्थभी उड़ाना चाहते हैं जो लिखाहै कि, ५०० वर्षसे ऊपर १००० वर्षसे नीचेके हैं क्योंकि पंडोंकी सही पुरानीसे पुरानी इतनेही दिनोंकी मिलती है धन्य है तीर्थोंके प्रमाणमें पंडोंकी सही तौ प्रमाण और वेदशास्त्र पुराणादि सब अप्रमाण जब कि, महाभारतमें पूर्णतासे तीर्थोंकी महिमा लिखी है जिसको रचे ५००० वर्ष व्यतीत होगये तौ आपका कथन यह सर्वथा असत्यहै किं तीर्थ पांचसौ वर्षके हैं तीर्थ तौ वेदोंमें विद्यमान हैं ॥

नमः पार्य्यायचावार्य्यायचनमः प्रतरणाय चोत्तरणायचनमः स्तीर्थ्यायचकूल्यायचनमः शष्प्यायचफेन्यायच-यजु०अ१६मं.४२

भावार्थः।

हे शिव आप सब प्रकारसे सबमें श्रेष्ठ सब संसारके तारने पार उतारनेहारे हो क्योंकि आप तीर्थरूपहो जैसे गंगा अथवा आप तीर्थोंमें पर्यटन करतेहो आपके अर्थ नमस्कार और तीर्थोंके घाट किनारेरूप आपके लिये नमस्कार शष्प्य अर्थात् गऊरूपी फेनारूपी सिकतारूपीहो आपको वारंवार नमस्कारहै यहां (नमस्तीर्थ्यायच) यह पद इसी हेतुमें है कि, आप प्रयागादि तीर्थोंमे विचरतेहो इसके अर्थ स्वामीजीने कुछ नहीं लिखे और गंगादिका माहात्म्यभी सुनिये ऋग्वेदमें इस प्रकार लिखाहै॥

इमंमेंगंगेयमुने सरस्वतिशुतुद्रिस्तोमंसचतापरुष्ण्या
असिक्न्यामरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीयेशृणुह्यासुषोमया

ऋ० म० १० अ० ३ सू० ७५ मं० ५

पदार्थः।

हे गंगेहेयमुनेसरस्वतिशुतुद्रि यूयं मे मम स्तोमं सचत आसेवध्वम् परुष्ण्यासहमरुद्वृध आर्जीकीयेत्वमपि असिक्न्या वितस्तया सुषोमयाच सह आ शृणुहि आभिमुख्येन स्थित्वा शृणुहि-

भाषार्थः।

हे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि तुम संपूर्ण मेरे यज्ञको सन्मुखहोकर सेवन करो हे मरुद्वृधे आर्जीकीये परुष्णी असिक्नी वितस्ता सुषोमाके

साथ मेरे यज्ञको सेवन करो मेरी स्तुतियोंको सब प्रकारसे सुनो ९ निरु० उत्तष० अ० ३। २६ में ऊपर लिखे अनुसार व्याख्यानहै।

यहां यह विचार करना है कि, यदि गंगादि नदियोंकी अधिष्ठात्री देवता न हों तौ उनका आह्वान यह किसप्रकार है और स्तुति श्रवणकी प्रार्थना कैसे की है इसकारण गंगादितीर्थोंको अतीर्थ कहना अज्ञान है और देखो-

सरस्वतीसरयुःसिंधुरूर्मिभिर्महोमहीरवसायंतुवक्षणीः
देवीरापोमातरःसूदयित्न्वोघृतवत्पयोमधुमन्नोअर्चत

ऋ० मं० १० अ० ५ सू० ६४ मं० ९

पदार्थः।

(महो) महतोपि (महीः) महत्यः(ऊर्मिभिः) सहिता(सरस्वती) (सरयुः) (सिन्धुःवक्षणीः) नद्यः (अवसा)रक्षणेन हेतुना (आयंतु) अस्मदीयं यज्ञं प्रत्यागच्छन्तु (मातरः) मातृभूताः (सूदयित्न्वः) प्रेरयित्र्यः (देवीः) (आपः घतवत् मधुमत्) पयः (नः अर्चत्) प्रयच्छत.

भाषार्थः।

महान्से भी महान् लहरोंसे युक्त सरस्वती सरयू सिंधुनामा नदी देवियाँ रक्षा करनेके लिये हमारे यज्ञमें आओ माताकी समानप्रेरक जलदेवियां घृत मधु युक्त दुग्धको(वा जलको)हमें दो और देखो-

आपोभूयिष्ठाइत्येकोअब्रवीदग्निर्भूयिष्ठइत्यन्योअब्रवीत्
वर्धयन्तींबहुभ्यःप्रैकोअब्रवीदृतावदंतश्चमसाँअपिंशत

ऋ० मं० १ अ० २२ सू० १६१ मं० ९

हेऋभवः भवतांमध्येएकःकश्चित्तीर्थाश्रयेणैवप्राप्तदेवभावआप एवभूयिष्ठाइत्यब्रवीत्वर्धयन्ती(ते यूयं) (ऋता) ऋतानिसत्यान्येवैतान्यबादीनितीर्थस्नानादीनिदेवताभावप्राप्तिसाधनानिवदन्तउपदिशन्तियज्ञेषुचमसान्सोमयुक्तान् अपिंशत व्यभंजत

भाषार्थः ।

ऋभव देवता स्तुतिद्वारा सद्गतिप्राप्तिसाधनोंका इस मंत्रमें उपदेश दियाहै हे ऋभव ! तुममेंसे कोई एक तीर्थ सेवन कर देवभावको प्राप्त हो तीर्थजलको सर्वोत्तम साधन कहताहै, कोई अग्निहोत्रादि साधन अनुष्ठानसें प्राप्त देवभाव तिसको सर्वोत्तम कहता है, इसी प्रकार कोई प्राणीमात्रपर दयाके अनुष्ठानसे देवभाव प्राप्त होनेसे दयाको सर्वोत्तम मानता है, इस प्रकार यथार्थ साधनका उपदेश करते हुए यज्ञपात्रके विभाग करते हो, अथवा (ऋतावदन्त) इसका यह अर्थ है कि जितेन्द्री सत्यवादीको तीर्थ फल देते हैं, अजितेन्द्री असत्यवादीको नहीं यही बात महाभारतके वनपर्व तीर्थयात्रापर्वाध्यायमें लिखी है, और देखिये वाल्मीकि बालकां० श्लो० २२।२३सर्ग ३५॥

एतेतेशैलराजस्यसुतेलोकनमस्कृते
गंगाचसरितांश्रेष्ठाउमादेवीचराघव ॥ २२ ॥
सुरलोकसमारूढाविपापाजलवाहिनी

विश्वामित्र बोले हे रामजी ! गंगाजी और पार्वती दोनों हिमाचलकी कन्या हैं और दोनों श्रेष्ठ पूजनीय हैं २२ गंगाजी जलरूप हो पापोंका नाशकर स्वर्गलोकमें पहुँचाती है॥

पुनः अयोध्याकांडे श्लो० ८२-८७ तक स० १३९

मध्यंतुसमनुप्राप्यभागीरथ्यास्त्वनिन्दिता ॥
वैदेहीप्रांजलिर्भूत्वातांनदीमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
पुत्रोदशरथस्यायंमहाराजस्यधीमतः ॥
निदेशंपालयत्वेनंगंगेत्वदभिरक्षितः ॥ २ ॥
चतुर्दशहिवर्षाणिसमग्राण्युष्यकानने ॥
भ्रात्रासहमयाचैवपुनः प्रत्यागमिष्यति ॥ ३ ॥
ततस्त्वांदेविसुभगेक्षेमेणपुनरागता ॥
यक्ष्येप्रमुदितागंगेसर्वकामसमृद्धिनि ॥ ४ ॥
त्वंहित्रिपथगेदेविब्रह्मलोकसमक्षमे ॥
सात्वांदेविनमस्यामिप्रशंसामिचशोभने ॥ ५ ॥

प्राप्तराज्येनरव्याग्नेशिवेनपुनरागमे ॥
गवांशतसहस्रंचवस्त्राण्यन्नंचपेशलम् ॥ ६ ॥
ब्राह्मणेभ्यःप्रदास्यामितवप्रियचिकीर्षया ॥ ७ ॥

जिस समय बनको जाते समय नौकामें बैठे रघुनाथजी गंगापारको चले और नौका तब बीचमें पहुँची उस समय जानकीजी हाथ जोड़ इसप्रकारसे प्रार्थना करने लगीं १ हेगंगे ! यह महाराज दशरथके पुत्र वनवास करैंगे तुम इनकी रक्षा करौ २ चौदह वर्ष वनमें अपने भाई और मेरे सहित वास करैंगे फिर वहांसे घरको पधारैंगे ३ हे गंगादेवी ! तुम इनपर प्रसन्नहो और आनन्दमंगलसे फिर लाओ, तुम सकल मनोरथ सिद्ध करतीहो ४ हेगंगे! तुम त्रिलोकीका कार्यसाधन करतीहो ब्रह्मलोकका वास देनेहारी हो तिसकारण हे देवी ! मैं तुम्हारी प्रार्थना करती हूं हाथ जोडकर ५ जब रघुनाथजी वनवाससे निवृत्त होकै अपनी राजधानीमें प्राप्तहोंगे तो तुम्हारे अर्थ हजार गौ वस्त्र और अन्न पतिकी प्रीतिके अर्थ ब्राह्मणोंको दूंगी ॥

अब सज्जन पुरुष विचारलेंगे कि गंगादितीर्थ कबसे हैं इनसे पाप दूर होतेहैं यथाहि—

यमोवैवस्वतोदेवोयस्तवैषहृदिस्थितः
तेनचेदविवादस्तेमागंगांमाकुरून्गमः अ० ८ श्लो० ९२

यदि यमराज वैवस्वत देवतातुम्हारे मनमें विराजमानहैं यदि तुम्हारा विवाद यमके साथ न हो तौ गंगा और कुरुक्षेत्रमें मत जावो अर्थात् जो तुम मिथ्या भाषण करोगे तौ पातक होगा यमराजसे विवाद होगा पापकी शान्तिके अर्थ गंगा और कुरुक्षेत्रमें जाना होगा और यदि सच्चे हो तौ पापरहित होनेसे तीर्थ जानेकी आवश्यकता नहीं यहांभी प्रत्यक्ष तीर्थोंकी महिमाहै और यह श्लोक पुराने सत्यार्थप्रकाशमें भी आपने लिखाथा. और देखिये ऋग्वेद संहितामें ॥

सितासितेसरितेयत्रसंगथेतत्राप्लुतासोदिवमुत्पतन्ति ये
वैतन्वं १ विसृजन्तिधीरास्तेजनासोऽमृतत्वंभजन्ते ऋ० परिशिष्ट.

जहां स्वर्गीय गंगा यमुनाका संगम होता है वहां शरीर त्यागन करनेसे धीर पुरुष मुक्त होते हैं जब कि तीर्थोंकी ऐसी महिमा है तो फिर अन्यथा कैसे हो सक्ताहै वेद पुराण शास्त्रादिकोंमें सर्वथा तीर्थोंकी महिमा लिखीहै इस थोडेहीमें समझ लीजिये ॥

गुरुप्रकरणम्।

स० पृ० ३२६ पं० ७ गुरुमाहात्म्य गुरुगीता एक बड़ी भारी पोपलीला है ३९१।९ पं० ९ जो गुरु लोभी क्रोधी मोही और कामी हो तौ अर्घ्य पाद्य अर्थात् ताडना दंड प्राणहरणतकमें भी कुछ दोष नहीं ॥ ३९१।९

समीक्षा–स्वामीजीने तौ गुरुको बडा भारी दंड लिखा और गुरुमाहात्म्य जिसमें गुरुओंके पास उठने बैठने बोलने चालनेकी विधि है वोह पोपलीला है तो आपने शिक्षा क्यों बनाई और यह दोष तौ आपहीमें घट सक्तेहैं, क्योंकि ये लोभ यहांतक है कि, अपनी पुस्तकोंपर रजिस्टरी कराकर तिगुना मोल रखदिया, जहां तहां चंदा उगाहा जिसके पास गये विना भेंट लिये पीछा न छोडा क्रोध ऐसा था कि, मूर्तिपूजनके विषयमें पुराणप्रकरणमें (ऐसोंका परमेश्वर नाश करै यह मरही क्यों न गये) यह शब्द उच्चारण कियेहैं. मोह यहांतक कि अपने लिखेकी आप ही खबर नहीं. कामना ऐसी थी कि अनेक संकल्प विकल्प आपके ग्रन्थोंसे ही प्रगटहैं तौ फिर अब आपकी किस प्रकार शिष्टाचारी करनी चाहिये गुरुका गुरुत्व यहीहै कि कैसी ही भली या बुरी जो कुछ वोह आज्ञा करै सो माननी। अच्छा बचन तौ बालकसे लेकै बूढेतकका मानना योग्य है फिर गुरुमें औरोंमें अन्तर क्या, आपने गुरुका कुछ मान न रक्खा तभी तौ कहीं अपने गुरुको न नमस्कार किया न कुछ नाम ही लिया (आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया) गुरुकी भली बुरी आज्ञा विना विचारे संपादन करै शुद्ध जानकीजीको रामचंद्रकी आज्ञासे लक्ष्मण वनमें छोड आये पिताकी आज्ञासे परशुरामजीने माता और भाइयोंका वध किया और देखो महाभारतका पौष्यपर्व तृतीय अध्याय आपोद धौम्य नाम मुनिके उपमन्यु शिष्य जो मुनिकी गोचारणमें नियुक्तथा मुनिने उसको पुष्ट देखकर कहा कि जो तुम भिक्षान्न लाया करते हो सो हमें दे दिया करो, वोह भिक्षा देने लगा और यत्किंचित् धेनुके दुग्धसे जीवन धारने लगा जब गुरुने उसका भी निषेध किया तौ फेनाधार रहा उसकेभी निषेध करनेसे क्षुधित हो उपमन्युने अर्कपत्र भक्षण किया तिस्से अन्धा हो कूपमें पतित हुआ फिर गुरुने अन्वेषण कर अश्विनीकुमारकी स्तुति कराई ओर नेत्र प्राप्त होगये पश्चात् गुरुने आशीर्वाद दे सब विद्या

१ पांचवीं वारमें गुरुमाहात्म्य गुरुगीता आदिभी इन्हीं कुकर्मी लोगोंने बनाई है पृ० ३५१ पं० २३

दानकरदी और वोह सबशास्त्रविशारद हो अपने घर गया और इसी प्रकार उनके दो शिष्य और भी थे ऐसेही कार्य उनसे लिये पश्चात् वेभी परीक्षोत्तीर्ण हो विद्या पाय अपने घर गये मनुजी गुरुमहिमा लिखतेहैं कि–

गुरोर्यत्रपरीवादो निन्दावापि प्रवर्तते ॥
कर्णौतत्रपिधातव्यौगन्तव्यंवाततोन्यतः॥ २०० ॥
परीवादात्खरोभवतिश्वावैभवति निन्दकः ॥
परिभोक्ताकृमिर्भवतिकीटोभवतिमत्सरी ॥ २०१ अ० २ मनु०

जहां गुरुका परिवाद अर्थात् दोषकथन करा जाता है और जहां निन्दा अर्थात् झूंठ ही दोष लगाकर कोई कहता हो तौ वहांसे कान मूँदकर चला जाना उचित है॥२००॥जो कोई गुरुके दोष कथन करता है वोह गधा होता है जो झूंठी निन्दा करता है वोह कुत्ता होता है और जो अनुचित रीतिसे गुरुका अन्न खाताहै वोह छोटा कीडा होता है और जो ईर्ष्या करता है वोह स्थूलकीट होताहै अब विचारनेकी बात है जब गुरुका सत्यदोष कथन करनाभी पाप है तौ गुरुको दंड देनेसे तौ फिर उद्धार है ही नहीं ॥

पुराणप्रकरणम् ।

पुराणोंका वर्णन तीसरे समुल्लासमें कर चुके हैं परन्तु यहां संक्षेपसे विवरण लिखैंगे यह बात सबही जान्ते है कि, अनादिकालसे यह सृष्टिचक्र चला आता है अनन्तवार प्रलय और सृष्टि हो चुकी है जब अनेकवार उत्पत्ति हुई तौ प्रत्येक समय एकही समान उत्पत्ति नहीं हो सक्ती कुछ भेद होही जाता है. हाँ सबका आदि कारण परमेश्वर माना है इसमें कभी कुछ विरुद्धता नहीं है परमेश्वरसे प्रकृति उत्पन्नहोकर उनसे विविध प्रकारकी प्रजा उत्पन्न होती है इसी कारण पुराणोंमें सृष्टि कभी किसीसे कभी किसीसे उत्पन्न हुई लिखी है कभी आदिमें कोई हुआ कभी कोई हुआ जिस कल्पमें जो आदिमें हुआ है वोही उसका कर्ता कहा है यह सृष्टि त्रिगुणात्मक है सतरजतमयुक्त तीनही इसके देव हैं विष्णु ब्रह्मा महेश जब जो प्रधान होता है उसी देवतासे उसकी सृष्टि चलती है कहीं प्रकृतिको प्रधान मानके देवी नामसे संसारकी उत्पत्ति लिखी है जैसा कि वेदसे प्रगट है ॥

अहमेववातइवप्रवाम्यारभमाणाभुवनानिविश्वा॥पुरोदिवापरए
नापृथिव्यैतावतीमहिनासंबभूव--ऋ०मं०१०सू०१२५मं०१२

लक्ष्मीमायाका वाक्य है कि, मैंही सब भुवनोंको उत्पन्न करती वायुके समान चलती हूं स्वर्ग और इस पृथ्वीसे परे जो पुरुषहै उतनीही और उस्से युक्त मैं महिमासें नानारूपवाली हुईहूं ॥

इत्यादि वाक्योंसे सृष्टिकी रचना अनेकप्रकारकी है ईश्वरहीकी मायारूप देवी देवता हैं चाहैं जिस देवके गुण गाओ सब ईश्वरकोही पहुँचतेहैं जैसे नदी समुद्रमें जातीहैं किसीएक रूपमें विश्वासयुक्त मन लगानेसे सिद्धि प्राप्त होजायगी अनेकोंमें लगानेसे शान्ति सिद्धि नहीं होती। इसीसे पुराणोंका यह आशयहै कि जिस देवताका वर्णन किया है वा ईश्वरका नाम वर्णन कियाहै तौ उसमें उसीकी उत्कृष्टता सबसे अधिक वर्णनकीहै जो जिसका उपासकहै वो उसेही सर्वश्रेष्ठ जाने और उसका चित्त भटकता न फिरे ब्रह्मादिदेव दशअवतार भगवती गणेशादि देवताओंके सिवाय और किसीका पूजन किसी पुराणमें है नहीं व्यासजीने पुराण नवीन कल्पना नहीं करेहैं उन कथाओंका जो लक्षों वर्षसे हैं संग्रह करदियाहै इस कारण वे नवीन नहींहैं कथा पूर्वकालीनकी है व्यासजीने उन्हें श्लोकबद्ध करदियाहै बस इसी कारण जो पुराण जिसदेवताकी महिमाका है उसमें सर्वोत्कृष्टतासे उसी देवताके गुण लिखेहैं सबकी रुचि एकसी नहीं होती जिस देवतामें जिसकी प्रीतिहो वोह उसीके पुराणको ग्रहण करै मन लगावै तौ पार होजाता है और जिस कल्पमें जहांतक प्रलय हुई है वहींसे फिर रचना आरम्भ होती है इस कारण सृष्टिके भिन्न २ प्रकारसे उत्पन्न होनेमें कोई विरोध नहीं अब शिवपुराणकी कथा जो दयानंदजीने लिखीहै उसे संक्षेपतः प्रकाश करते हैं ॥

स० पृ० ३२८ पं० २९ से० पृ० ३३० पं० ८ तक

शिवजीने इच्छा की कि, मैं सृष्टि करूं तो एक नारायण जलाशयको उत्पन्न किया उसकी नाभि कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ उसने देखा कि, सब जलमय है जलकी अंजली उठा देखकर जलमें पटकदी उससे एक बुद्बुदा उठा उस बुद्बुदेमेंसे एक पुरुष उत्पन्न हुआ उसने ब्रह्मासे कहा हे पुत्र! सृष्टि उत्पन्न कर ब्रह्माने उससे कहा तू मेरा पुत्र है और दिव्यसहस्र वर्ष जलपर लड़तेरहे उन दोनोंके बीचमें एक तेजोमय लिंग प्रगट हुआ

और आकशमें चला गया उसकी थाह लेआनेका प्रण करकै कूर्मका रूप धारकै विष्णु नीचेको और ब्रह्माजी हंसका रूप धार ऊपर गये जो पहले आवै वोह पिता जो पीछे आवै वोह पुत्र यह प्रण करैं दिव्यसहस्र वर्ष बीते पर भी अन्त न मिला उस समय एक गाय और केतकीका वृक्ष ऊपरसे उतर आया और ब्रह्मासे कहा हम सहस्रों वर्षसे लिंगके आधार चले आते हैं थाह नहीं मिली ब्रह्माने कहा तुम हमारे साथ चलो यह साक्षीदो कि मैं इस लिंगके ऊपर दूध और फूल वरसाताथा वे ब्रह्माके शापके भयसे भीत हो कि, यह भस्म करने कहता है झूठी साक्षी देनेको संमत हुए और नीचेको चले विष्णुजी पहलेहीसे बैठे थे ब्रह्माजीके कहनेपर बोले कि, मुझे लिंगकी थाह नहीं मिली ब्रह्माजीने कहा हम लिंगका अन्त देख आये ॥

गौ वृक्षकी गवाही दिवाई उनकी गवाही होतेही लिंगमेंसे शब्द निकला और यों शाप दिया कि, तेरा फूल किसी देवतापर न चढैगा और गाय तू झूंठ बोली इससे विष्ठा खाया करैगी ब्रह्मासे कहा तेरी पूजा कहीं न होगी विष्णुजीसे कहा तुम सर्वत्र पूजोगे पुनः दोनोंने स्तुतिकरी तो लिंगमेंसे एक जटाजूट मूर्ति निकली और कहा कि मैंने सृष्टिकरनेको भेजा तुम झगडेमें पडगये और अपनी जटामेंसे एक भस्मका गोला निकालकर दिया और कहा इससे सब सृष्टिकी रचना करो।

भला कोई इन पुराणोंके बनानेवालोंसे पूछे कि, जब सृष्टितत्व और पंचमहाभूत भी नहींथे तौ ब्रह्माविष्णुमहादेवके शरीर जल कमल लिंग गाय और केतकीका वृक्ष भस्मका गोला क्या तुम्हारे घरमेंसे आ गिरे ॥ ३९४ । ६ स.

समीक्षा–यह कथा स्वामीजीने अपनी मिलावट और गडबडीसे लिखीहै विदित होताहै कि, स्वामीजीने कभी शिवपुराणका दर्शनभी नहीं किया जो कुछ शिवपुराणमें चौथेसे आठवें अध्यायतक लिखाहै सो संक्षेपतः कहते हैं ॥

सूतजी बोले कि, हे शौनक! जिसके अनन्तनाम और जो सबका स्वामीहै उसको वैष्णव मत रखनेवाला विष्णु, शाक्त शक्ति, सूर्योपासक रवि, गाणपत्य उसीको विनायक जान्तेहैं इस निर्गुणपरमात्माकी इच्छा हुई कि, हम एकहैं अनेक हो जाँय तब आप शिवरूप होकर प्रगट हुये और शक्तिकोभी अपने आनंदके हेतु उपजाया जिसको महामाया भगवती कहतेहैं यही संसारकी आदि कारणहै इन्हीं शिवको पुरुष महा

माया प्रकृतिको कहतेहैं शिवजीने विहारके निमित्त एक लोक बनाया जिसको अविमुक्त कहते हैं जो सब जीवोंको आनंददायक परम मनोहरहै फिर शिवजीकी इच्छा हुई कि एक संसारका पालक पुरुष उत्पन्न करैं ॥ इति४अध्यायः ॥ यह सुन्तेही शक्तिने अवलोकनमात्रसे सुंदर स्वरूप विष्णुजीको उत्पन्न किया और शिवजी बोले तुम्हारा नाम विष्णु होगा तुम सृष्टिमें श्रेष्ठ देवता पालकहो अब तप करो विष्णुजीके महातप करनेसे ऐसा जल उत्पन्न हुआ कि, विष्णुजी उसके अन्तर्गत हो योगविद्या जो शिवजीने बताईथी उसके आश्रितहो शयन करने लगे उस समय नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ उसमें शिवजीने ब्रह्माको उत्पन्न किया अब ब्रह्माजी सोचने लगे कि, मुझे किसने उत्पन्न किया यह विचार कमलकी नीचे थाह लेने चले गये और बहुत दिनोंतक उस कमलकोभी न देखा तब आकाशवाणी हुई और दो अक्षर प्रगट हुए और एक स्थानके रहनेके हेतु उनमें प्रतिष्ठितहैं फिर विष्णुजी योगनिद्रा त्याग ब्रह्माजीके पास आनकर बोले कि, हम सृष्टिके कर्ता सतचितआनंद हैं वेद हमारे उत्पन्न कियेहैं तुम हमारे नाभिकमलसे उत्पन्नहो इस कारण हमारे पुत्र हो ब्रह्माजी बोले तुम हमें गुरुकी समान उपदेश देतेहो तुम नहीं जानते कि, वेद क्याहै इस वचनको सुन विष्णुजी विवादकरनेलगे ॥ इति पंचमोऽध्यायः ॥

उन दोनोंका विवाद देख शिवजी अन्तकालकी जलतीहुई वड़वाग्निके सदृश प्रगट हुए यह देख ब्रह्मा विष्णुजी विवाद त्याग परस्पर विस्मितहो पूछने लगे कि, यह क्याहै जो कोई इसका आदि अन्त देखले वोही सृष्टिका मालिक हो ब्रह्माजी ऊपर और विष्णुजी श्वेतवाराह हो नीचे चले वोही यह श्वेतवाराहकल्प कहाता है दिव्यसहस्र वर्षतक दोनों ढूंढते रहे परन्तु भेद न मिला और दोनों लौटि आये और जब वोह अपना पूर्वस्थानभी न पाया तो जाना कि, कोई तीसरा हमसेभी अधिक है यह विचार दोनोंने प्रीति करली तब आकाशवाणी हुई कि तुम योग करो यह सुन दोनों योगधार स्तुतिकर कहने लगे महाराज आप दर्शन दीजिये तब ओंकार प्रगट हुआ जिसको उन दोनोंने सम्यक् नहीं जाना परन्तु फिर उसके चार भाग हुए अ, उ, म, बिन्दु, पहलालिंगकी ज्योति दूसरा मध्यभाग आधी मात्रा उस लिंगकी ज्योतिका शिरहै बिन्दु सर्व लिंग ज्योति है इसीमें चारों वेद प्रतिष्ठितहैं कोई

भी उस प्राणरूप लिंगका अन्त नहीं पाते ब्रह्मासे तृणपर्यन्त सब उसी में मिलतेहैं प्राण वही शिवजीका स्वरूपहै इस प्राणरूप शिवजीकी मूर्ति देख दोनोंने बडी स्तुतिकी ॥ इतिषष्ठोऽध्यायः ॥

तब शिवजीने शरीरधार दर्शनादिया ॥ इतिसप्तमोऽध्यायः ॥

शिवजी बोले तुम्हारा विवाद देखकर यह प्रणवरूपी लिंग हमने उत्पन्न कियाहै और फिर कहने लगे हमारा कहना मानो. यह कह श्वासके द्वारा वेदोपदेश किया प्रणवकी शिक्षादी विष्णुजीको पालन, ब्रह्माजीको उत्पन्न करनेमें नियुक्त किया और कहा कि, जिस क्षेत्रमें सब संसार लीन हुआ है उसे लिंग कहतेहैं इस लिंगके पूजनसे लोक परलोक बनैगा और हमभी रुद्र नामसे अवतार ले तुम्हारे नगरमें आवैंगे हम चारोंका एकही स्वरूपहै जो पृथक् विचारैगा वोह दुःखी होगा और कभी हम कभी ब्रह्मा कभी विष्णुजी सृष्टिकी आदिमें होते हैं मैं सबमें सब मुझमें हैं, मैं तुम सब एकहैं यह कह दोनोंको अपनी शक्तिसे शक्तिदे सृष्टिरचनाकी आज्ञाकर शिवजी अन्तर्धानहुए विष्णुजीभी शक्तिसहित अन्तर्द्धान हुए तब ब्रह्माजीने प्रकृतिसे सृष्टिकी रचना आरम्भ की ॥ इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

अब सज्जन पुरुष कथाको विचार लेंगे कि कहीं कोई द्रोह या वेद-विरुद्धता की इसमें बातहै किन्तु वेद ओंकार ईश्वरहीके तीनों देवता स्वरूपहैं इत्यादि वस्तुओंका वर्णन कियाहै ॥

स्वामीजीने जो अपनी बनावट सत्यार्थप्रकाशमें लिखी है उसमें गौकी साक्षी. वृक्षका उतरना भस्मका गोला यह सब स्वामीजीके मुखरूपी घरमेंसे निकलकर सत्यार्थप्रकाशमें आनपडे या अपने बाबाके घरसे लाये होंगे यह कथा शिवपुराणमें नहीं बस ऐसेही औरभी जान-लेनी कि यह स्वामीजीने बनावट कीहै तथा बडे शिवपुराणमेंभी गौकी साक्षी भस्मका गोला नहीं है और देवादिकी सृष्टि पहले हो चुकीथी पीछे कर्ताकी वार्ता हुई यह कथा बड़े अध्यात्मविषयवाली है देखना हो तो हमारे किये शिवपुराणकी भाषाटीका देखो ॥

भागवतप्रकरणम् ।

स० प्र० पृ० ३३० पं० १२

कश्यपसे दितिसे दैत्य दनुसे दानव अदितिसे आदित्य विनतासे पक्षी कद्रूसे सर्प सरमासे कुत्ते स्याल आदि और अन्य स्त्रियोंसे हाथी घोडे

ऊंट गधा भैंसा घास फूस बबूर आदि वृक्ष कांटेसहित उत्पन्न होगये वाहरे वाह ! भागवतके बनानेवाले लाल बुझक्कड तुझे ऐसी बातें लिखते लाज और शर्म न आई निपटही अंधा बनगया स्त्रीपुरुषके रजवीर्यके संयोगसे मनुष्य तौ बन्तेही हैं परन्तु परमेश्वरकी सृष्टि क्रमके विरुद्ध पशु पक्षी सर्प आदि कभी उत्पन्न नहीं होसक्ते सिंहादि उत्पन्न होकर अपने माबापको क्यों न खागये इनही झूंठी बातोंको ने अंधे पोप बाहर भीतरकी फूटी आंखोंवाले सुनते३५५।२०आर पं० २७ इन भागवतादि पुराणोंके बनानेहारे जन्मतेही गर्भहीमें क्यों न नष्ट होगये वा जन्मते समयही क्यों न मरगये ।। ३५६।५

समीक्षा–स्वामीजीने सब सृष्टि कश्यपसे उत्पन्न होनेमें बडा आश्चर्य माना है और कहा कि सृष्टि क्रमके विरुद्ध नहीं होसक्ती यद्यपि हम यह विषय पहले लिख चुके हैं कि प्रथम तौ सब जीवोंकी उत्पत्ति कैसे हुई वेदमें लिखा है कि उससे घोडे चौपाये ढोर ग्रामके पशु आरण्यपशु उत्पन्न हुए (यजुर्वेद पुरुषसूक्त) तौ क्या यह सब सृष्टिभी परमेश्वरके रजवीर्यसे हुई है प्रथम ऋषियोंको तप करनेसे बड़ी सामर्थ्य थी कर्मानुसार जो जिस योग्य थे वैसीही योनिमें उनका जन्म हुआ निरुक्तमें लिखाहै "कश्यपः कस्मात् पश्यको भवतीति" जो भ्रान्तिरहित होकर संसारके जीवोंके कर्म यथावत् देखे उसे कश्यप कहते हैं ब्रह्माजीने कश्यपजीको सब प्रकारकी सृष्टि रचनेकी आज्ञा दी जो जैसे शरीरमें उत्पन्न होने योग्य थे कश्यपजीने उन्हें वैसाही ज्ञानसे बनाया और जो जिस योनिसे उत्पन्न हुए वोही उनकी माता कहलाई यह बनानेसे पिता कहाये (वे अपने माबापोंको क्यों न खांय) यहभी कथन स्वामीजीका असत्यहै क्योंकि सिंहादि अपने मातापिताओंको नहीं खाते दूसरा वचन स्वामीजीकी सभ्यता प्रगट करताहै उसमें हम कुछ नहीं कहते क्योंकि "तुलसी बुरा न मानिये जो गँवार कहजाय" यदि स्वामीजीका जन्म न होता तौ यह नवीन भ्रष्ट नियोगादि पंथ क्यों चलते और मुझे यह कष्ट उठाना क्यों पडता. जैसे ईश्वरसे पुरुषसूक्तमें घोडे गौओंकी उत्पत्ति हुई इसी प्रकार कश्यपसे उत्पन्न हुई ॥

स० पृ० ३३२ पं० ५

ज्ञानंपरमगुह्यंमेयद्विज्ञानसमन्वितम् ।
सरहस्यंतदंगंचगृहाणगदितंमया ॥ १ ॥

स्कन्द० २ अ० ९० श्लो० ३०

हे ब्रह्माजी ! तू मेरा परमगुह्य ज्ञान जो विज्ञान और रहस्ययुक्त और अर्थ धर्म काम मोक्षका अंगहै उसको मुझसे ग्रहणकर जब विज्ञानयुक्त ज्ञान कहा तौ परम अर्थात् ज्ञानका विशेषण रखना व्यर्थ है और गुह्य विशेषणसे रहस्यकाभी पुनरुक्त है जब मूल श्लोकही अनर्थक है तौ ग्रंथ अनर्थक क्यों नहीं ॥ ३९७।१७

समीक्षा-यहभी स्वामीजीका विवाद निरर्थक है यह श्लोक स्वामीजी समझे नहीं जो आस्तिक बुद्धि होती तौ समझमें आता इसमें पुनरुक्ति दोष नहीं श्रीधरजी लिखते हैं कि-

ज्ञानं शास्त्रोक्तं विज्ञानमनुभवः रहस्यंभक्तिः सुगोप्यमपि वक्ष्यामीत्यादिनिर्देशात् तस्यांगं साधनम् ॥

हे ब्रह्मा ! मेरा शास्त्रोक्त ज्ञान अति गोप्यहै अनुभव भक्ति और सब साधनसहित है सो सुन। अब स्वामी बतावैं इसमें पुनरुक्तिदोष किधर है

स० पृ० ३३२ पं० १२

भवान्कल्पविकल्पेषुनविमुह्यतिकर्हिचित् ॥

आप कल्प सृष्टि और विकल्प प्रलयमेंभी कभी मोहको प्राप्त नहीं होगे ऐसा लिखकै पुनः दशमस्कंधमें मोहित होकै वत्सहरण किया इन दोनोंमेंसे एक बात सच्ची दूसरी झूंठी ऐसा होकर दोनों बातें झूंठी ॥

समीक्षा-जब स्वामीजीने भागवतके अर्थोंहीमें गडबडी की है तौ वेदोंमें जितनी गडबडी की हो उतनीही थोडी इसका अर्थही अशुद्ध कियाहै सुनिये इसका अर्थ-

एतन्मतंसम्यगनुतिष्ठसमाधिनाचित्तैकाग्र्येणकल्पेषुयेविकल्पाविविधाः सृष्टयस्तेषुविमोहंकर्तृत्वाभिनिवेशंनयास्यतीति

परम समाधिसे इस मतमें तुम स्थित रहोगे तौ कल्पोंके विकल्पोंमें जो अनेक प्रकारकी सृष्टि है इसके हम कर्त्ता हैं ऐसे मोहकोप्राप्त नहीं होगे॥

भगवान्ने यह वर दिया कि, कल्पोंकी अनेक सृष्टिमें हम कर्ता हैं ऐसे मोहको प्राप्त नहीं होगे जो समाधिमें स्थित रहोगे सो वत्सहरणमें कोई सृष्टिका विकल्प नहींथा, होता तौ उसमें मोह होना शंकाका स्थान था किन्तु यहां तौ ब्रह्माजीको भगवान्के चरित्रोंमें मोह होगया था इसकारण यह कहना ठीक नहीं कि, ब्रह्माजी क्यों मोहे और विकल्पके अर्थ यहा प्रलयकेभी नहा हैं ॥

स० पृ० ३३२ पं० १९ से जब वैकुंठमें राग द्वेष ईर्ष्या क्रोध दुःख नहीं है तौ सनकादिकोंको वैकुंठके द्वारमें क्रोध क्यों हुआ जय विजय तौ द्वारपाल थे उन्हें स्वामीकी आज्ञा पालन करनी अवश्यथी उन्होंने सनकादिकोंको रोका तौ क्या अपराध हुआ, जो कहा कि, तुम पृथ्वीमें गिरपड़ो इसके कहनेसे यह सिद्ध होता है कि, वहाँ पृथ्वी न होगी आकाश वायु अग्नि और जल होगा तौ ऐसा द्वार मंदिर और जल किसके आधार थे पुनः जय विजयके विनय करनेपर उन्होंने कहा जो प्रेमसे नारायणकी भक्ति करोगे तौ सातवें जन्म और विरोधसे भक्ति करोगे तौ तीसरे जन्ममें वैकुण्ठ मिलैगा । इसपर विचार है जय विजय नारायणके नौकरथे उनकी रक्षा करना नारायणका काम था नारायणको उचितथा कि, जय विजयकी सहायताकर सनकादिकोंको दंड देते उन्होंने भीतर आनेमें क्यों हठ किया और नौकरोंसे क्यों लडे ॥ ३५८।३

समीक्षा–विदित होताहै कि, स्वामीजीने भागवतका दर्शनभी नहीं किया जय विजयकी क्या बातहै यह कथा यों है कि, जय विजय द्वारपाल थे जब सनकादिक वैकुण्ठमें नारायणके दर्शनको गये तौ जयविजयने हँसकर भीतर जानेसे रोका इसपर सनकादिकोंने कहा कि, हमारे आनेजानेकी कहीं रोकटोक नहीं और था भी नहीं, तुमको यह अनर्थ कहाँसे उत्पन्न हुआ जो स्वर्गमें होनेके योग्य नहीं इसकारण जैसा तुम्हारे चित्तमें भाव हुआ है ऐसेही लोकमें तुम जन्म लो ॥

लोकानितोव्रजतमेतरभावदृष्ट्यापापीयसस्त्रयइमेरिपवोऽस्ययत्र ।

उन लोकोंमें तुम जाओ जहाँ भेदभाव दृष्टिसे काम क्रोध लोभ यह पापी हैं यही इस जीवके तीनों रिपु हैं ॥

पश्चात् नारायणने दर्शन देकर कहा कि, इन्होंने निश्चय अपराध किया जो मेरी विनाआज्ञा तुमको रोका मेरा किसीसमय यह वचन नहीं कि, ब्राह्मणोंको रोको इसकारण यह कुछ दिन इसका फल भोग फिर मेरे पास आवेंगे ॥

विचारनेकी बात है कि, स्वर्गमें क्रोधादियुक्त पुरुष कैसे रह सक्ताहै सनकादिक कहते हैं ॥

तद्धामसुष्यपरमस्यविकुण्ठभर्तुःकर्तुम्प्रकृष्टमिहधीमहिमंदधीभ्याम्

इसकारण इन वैकुण्ठनाथ परमश्रेष्ठ ईश्वरके, मंदभागी तुमसरीखे सेवकोंका जिसमें कल्याण होय वोह हमने करनेका विचार कियाहै ॥

यह विचार सनाकादिकोंने शापदिया कि, वैकुण्ठमें ईर्ष्यावाला नहीं रहसक्ता इसीकारण जय विजय मनुष्यलोकमें आये जैसे यह लोक निराधारहै उसी प्रकार वैकुण्ठभी निराधारहै वहाँभी सब कुछ पृथ्वी आदिहै और "तुम पृथ्वीमें गिरो वैरसे भक्ति करो सातजन्ममें तरो" यह बातें स्वामीजीने इस कथामें अपनी ओरसे मिलाई हैं स० प्र० पृ० ३३२ पं० २४ सनकादिकोंने जय विजयसे कहा जो प्रेमसे भक्ति करोगे तौ सातवें जन्म और विरोध भक्ति करोगे तौ तीसरे जन्ममें वैकुण्ठको प्राप्त होगे ॥ ३९८।१०

समीक्षा-यह प्रेमभक्ति और विरोधादि करनेकी बातभी भागवतमें सनकादिकोंने नहीं कही स्वामीजीकी गप्पलीला है ॥

स० पृ० ३३३ पं० ९ उनमेंसे हिरण्याक्षको वाराहने मारा उसकी कथा इस प्रकार है कि, वोह पृथ्वीको चटाईकी समान लपेट शिरहानेधर सोगया विष्णुने वाराहका रूप धारण करके उसके शिरके नीचेसे पृथ्वीको मुखमें धर लिया वोह उठा दोनोंकी लडाई हुई वाराहने हिरण्याक्षको मारडाला इनसे कोई बूझै पृथ्वी गोलहै वा चटाईके समान तौ कुछ न कहसकैंगे क्योंकि, पौराणिक लोग तौ भूगोलविद्याके शत्रुहैं भला जब लपेटकरही शिरहाने धरली आप किसपर सोया और वाराहजी किसपर पगधरकै दौडआये पृथ्वी तौ वाराहजीके शिरपरथी दोनों लडे किसके ऊपर वहाँ कोई ठहरनेको जगह नहींथी किन्तु भागवतादि पुराण बनानेवाले पोपजीकी छातीपर खडे होकर लडे होंगे ॥ ३९८ । १९

समीक्षा-विदित होताहै कि, स्वामीजीने कभी भागवतको तौ अवलोकन नहीं किया पर कभी बालकोंमें बैठकर कहानी सुना करतेहोंगे वोही यहाँ ऊटपटांग लिखदी "यह तौ है ही परमहंस, भागवतसे विचारको कामही कब पडाथा" धन्यहै इसीभरोसे भागवतका खंडन करने लगे यह कथा यों है कि, जब पृथ्वी थोडी होनेके कारण भगवान् (वाराह) "पृथिवींवरतीतिवराहः" "जो पृथ्वीको उद्धारकरै वोह वराह" पृथ्वीको उद्धार करनेको जलमें कूदे थोडी पृथ्वी थी शेष महाप्रलयके जलमें मग्नथी पृथ्वीको वाराहजी उठाते आरहेथे कि, उसी समय-

हरेर्विदित्वाहरिमंगनारदात् रसातलंनिर्विविशेत्वरान्वितः ।
दर्दर्शतत्राभिजितंधराधरंप्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया ॥
श्लो० २ स्कं० ३ अ० १८

हिरण्याक्षने नारदजीसे पूछा कि, मेरी समान कोई युद्ध करनेहारा बताओ नारदजीने कहा वाराहजी पृथ्वी लेनेगये हैं वोह तुमसे युद्ध करैंगे यह सुनकर वोह पातालमें प्रवेश करगया और भगवान्‌को पृथ्वी लेआते देख कठोर वचन कहनेलगा भगवान् उससमय जलसे पृथ्वी निकाल ॥

सगामुदस्तात्सलिलस्यगोचरे विन्यस्यतस्यामुदधात्ससत्वरम् ॥
अभिष्टुतोविश्वसृजाप्रसूनैरापूर्यमाणोविबुधैःपश्यतोऽरेः ८

ब्रह्माजीसे स्तुतिको प्राप्त सब देवताओंसे फूलोंकी वरसा स्वीकार करते श्रीवाराहजी पृथ्वीको जलपर धरकर अपनी आधार शक्तिसे स्थित करते हुए और पश्चात् ॥

मर्माण्यभीक्ष्णंप्रतुदंतंदुरुक्तैःप्रचंडमन्युःप्रहसंस्तंबभाषे० ९ भाग०

कठिन वाक्योंसे वारंवार मर्मस्थानमें पीडा देते हिरण्याक्षसे वाराहजी हँसकर बोले और फिर युद्धकर मारडाला यह युद्ध पृथ्वीके स्थापित होने उपरान्त पृथ्वीपर हुआथा तीसरे स्कंधमें यह कथा विस्तारपूर्वक है अब स्वामीजीके छल प्रपंचको देखना चाहिये कि, क्या तौ कथा है और क्या लिखदी है यह भागवतसे विश्वास उठानेको स्वामीजीने गपोडा लिखदिया है यह चटाईकी तरहका लपेटना शिरके नीचेसे निकाल लेजाना इत्यादि स्वामीजीने बनावट लिखी है पौराणिक लोग तौ भूगोल विद्याके शत्रु नहीं हैं किन्तु सब सत्य विद्याओंके आपही शत्रुहो ॥

स० पृ० ३३३ पं० १७ हिरण्यकश्यपका लडका प्रह्लाद अपने अध्यापकसे बोला मेरी पट्टीमें रामराम लिखदो उसके पिताने इस बातको मना किया उसने न माना तब उसे बांधके पहाडसे गिराया कूपमें डाला परन्तु उससे कुछ न हुआ तौ एक लोहेका खंभा अग्निमें तपाकै उससे बोला जो तेरा इष्ट देव राम सच्चाहै तौ तू इसे पकडनेसे नजलैगा प्रह्लाद पकडनेको चला मनमें शंका हुई कि, जलनेसे बचूंगा या नहीं नारायणने उस खंभेपर छोटी छोटी चैंटियोंकी पंक्ति चलाई उसको निश्चय हुआ झट खंभेको जापकडा, वोह फटगया और उसमेंसे नृसिंहने निकल उसके बापको मारडाला, प्रह्लादको प्यारसे चाटने लगा उससे कहा वर मांग उसने पिताकी सद्गति मांगी नृसिंहने कहा तेरे इक्कीस पुरुष सद्गतिको

गये, अब यह देखो भागवतके बांचनेवालेको कोई पकड पहाडसे गिरावै तौ कोई न बचावै चकनाचूर होकर मरही जावे प्रह्लादको उसका पिता पढनेको भेजताथा क्या बुरा काम कियाथा, प्रह्लाद ऐसा मूर्ख था किं पढना छोड़ बैरागी होना चाहताथा, जो खंभेकी बात सच्ची माने उसे गरम खंभेके साथ लगादेना चाहिये जब वोह न जलै तौ जाने और नृसिंहभी न जला तीसरे जन्ममें वैकुंठके आनेका वर सनकादिकका था क्या उसे नारायण भूलगया, भागवतकी रीतिसे ब्रह्मा प्रजापति कश्यप हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु चौथी पीढीमें होताहै, इक्कीस पीढी प्रह्लादकी हुईभी नहीं इक्कीस पुरुष सद्गतिको गये यह कहना प्रमादहै और फिर वे रावण कुंभकर्ण शिशुपालदंतवक्र हुए तौ नृसिंहका वर कहां उडगया ॥ ३९९।४

समीक्षा—यह कथाभी स्वामीजीने गपोडसहित लिखीहै, जब भागवत देखी नहींथी तौ क्यों बिनासमझे लिखबैठे जब प्रह्लादको ईश्वरकी कृपासे पूर्ण ज्ञान होगयाथा तौ उसे क्या आवश्यकताथी कि, और अधिक पढै, क्या पढके स्वामीजीकी नौकरी करनीथी, अधिक ज्ञानी ऐसे हुए कि पाठशालाके सब विद्यार्थी उनके संगसे ज्ञानी होगये, पिताने सब प्रकारके दुःखदिये और यह कहताथा कि, मेरे सिवाय कोई दूसरा ईश्वर नहीं है, प्रह्लाद कहताथा यह बात नहीं वोह सर्वव्यापक है यह सुन हिरण्यकशिपु क्रोध करकै बोला

सप्तमस्कंध अ० ८ श्लो० १३, १५

यस्त्वयामन्दभाग्योक्तोमदन्योजगदीश्वरः। क्वासौयदिस सर्वत्रकस्मात्स्तंभेनदृश्यते १ एवं दुरुक्तैर्मुहुरर्दयन्रुषा सुतं महाभागवतंमहासुरः। खड्गंप्रगृह्योत्पतितोवरासनात्स्तंभं तताडातिबलःस्वमुष्टिभिः २

जो तू कहताहै कि, तुम ईश्वर नहीं हो वोह सर्वज्ञ और तुमसे पृथक्है तौ वोह कहां है और सर्वत्रहै तौ इस स्तंभमें क्यों नहीं दीखता १ ऐसे पुत्रसे कठोर वचन कह वोह राक्षस खड्ग ग्रहणकर आसनसे उठा और एक घूंसा स्तंभमें मारा कहां है इसमें होय तौ बोले नहीं तो तुझे मार डालूंगा. इतना कहतेही उसमेंसे नृसिंहजी निकले और उस राक्षसको पकड अपने नखोंसे उसका पेट चीर मारडाला और प्रह्लादके वर मां-

गनेके समय कहा (त्रिःसप्तभिः पितापूतः पितृभिःसह तेनघ) हे पाप-रहित ! पिता पितृ आदि पव और आगेके इक्कीस पुरुषाओंके सहित तेरे पिताकी सद्गति होगी यह बात कुलके ऊपर कहीहै और सद्गति कहनेका प्रयोजन यह है कि, नीचयोनिमें जन्म नहीं होगा किन्तु जहां होगा बड़े ऐश्वर्यसहित होगा इसी कारण ब्राह्मणोंके वचनानुसार तीनों जन्ममें रावण शिशुपालादि बडे ऐश्वर्यवान् हुए जिनकी दुर्गति नहीं हुई तीसरे जन्ममें उद्धार होगया चौथी पीढी लिखीहै सोभी असत्य है क्योंकि ब्रह्मा-प्रजापति मरीचि कश्यप हिरण्याक्षादि, इसकथामें गरम खंभके ऊपर चींटियोंका फिरना प्रह्लादका डरना आदि यह बातें स्वामीजीने गपोडेकी लिखीहैं जिसकी ईश्वर रक्षा करनी चाहताहै उसे सबप्रकार बचाताहै भक्तोंकी बडी महिमा है भक्ति करकै कोई देखले तौ मालूम होजायगी कि भक्तोंकी क्या महिमा है भक्तजन तौ उसीके आश्रित रहतेहैं स्वामीजीके ग्रंथोमें तौ भक्ति और विश्वासका लेशभी नहीं

स० प्र० पृ० ३३४ पं० १२

रथेनवायुवेगेनजगाम गोकुलंप्रति

कि अक्रूरजी कंसके भेजनेसे वायुवेगके समान दौडनेवाले घोडोंपर बैठकर सूर्योदयसे चले और चारमील गोकुलमें सूर्यास्तसमय पहुंचे अथवा घोडे भागवत बनानेवालेकी परिक्रमा करते रहे होंगे वा मार्ग भूलकर भागवत बनानेवालेके घरमें घोडे हांकनेवाले और अक्रूरजी आ-कर सोगये होंगे ॥

समीक्षा-यह तीसरा वाक्यभी यही सूचन करताहै कि, स्वामीजीने भागवत २ नहीं देखी भंगकी तरंग या हुक्केकी गुडगुडाहटमें यह बातें सूझी होंगी भागवतमें कहीं यह श्लोकही नहीं है स्वामीजी तौ अपनी चाल चले कि, इस ग्रंथपरसे लोगोंका विश्वास उठजाय परन्तु औंधे-मुहँगिरे यह घोडे स्वामीजीके सत्यार्थप्रकाश और बुद्धिमें घूमते होंगे सुनिये वहां यों लिखाहै ॥

---

१ रथेन वायुवेगेन भाग० स्कं० १० अ० ३९ श्लो० ३८

जगाम गोकुलं प्रति भा० स्कं० १० अ० ३८ श्लो० २४

२ समीक्ष-यह जगाम गोकुलं प्रति० भी मिथ्याही लिखाहैं कही भागवतमें ऐसा नहीं धन्य मिथ्यावादियों धन्य यही सत्यताहै अब तुलसीराम क्याकहैंगे।

अक्रूरोपिचतां रात्रिंमधुपुर्यांमहातिः ॥ उषित्वारथमास्थाय प्रययौ नंदगोकुलम् १ भा० द० अ० ३८ श्लो० १

उस रात्रिमें अक्रूरजी मथुरामें रह प्रातःकाल रथमें बैठ नंदरायके गोकुलको चले इसके सिवाय और कुछ नहीं है और जब अक्रूरजी कृष्णको लेकर चले तौ यह श्लोकहै ॥

भगवानपिसंप्राप्तोरामाक्रूरयुतोनृप
रथेनवायुवेगेनकालिन्दीमघनाशिनीम् २
भा० अ० ३९ श्लो० ३८

अर्थात् अक्रूरसहित श्रीकृष्ण बलराम वायुवेगयुक्त रथकी चालसें यमुनाजीपर आये बस देखनेकी बातहै कि, ऊपरके श्लोकका आशय स्वामीजीके श्लोकसे नहीं खुलता अब बुद्धिमान् विचारैं कितनी बडी जाल साजी कीहै चेलोंने एक पद ३८ आध्यायके नामसे नया बनाया एक पद ३९ का इन दो पदोंका आधा श्लोक बनाया अर्थ एक निकाला क्या यह कहींकी ईंट कहींका रोडा भानमतीने कुनवा जोडा की कहावत चरितार्थ नहीं हुई, अबके छपे सत्यार्थप्रकाशमें पदोंके खण्ड के अध्याय श्लोक लिख दियेहैं, परन्तु अर्थ वही रक्खाहै, तौ क्या कोई अर्थसिद्धि हो सक्तीहै यदि योंही पद निकाले जाय तौ सत्यार्थप्रकाशमेंसे कहींसे दयानंद कहींसे महा कहींसे मूर्ख कहींसे धोखेबाज पद निकालकर उनकी बड़ाई करसक्तेहैं, बुद्धिमान् विचार लेंगे स्वामीका कैसा ज्ञान था । और अक्रूरजी गोकुलको चले गोकुल मथुरासे कितनी दूरहै और प्रेममें मग्न होनेके कारण उनको घोडे चलानेकी सुरत न रही इस कारण देरमें पहुंचे और वहांसे शीघ्र चलकर यमुनाके किनारे आये, स्वामीजी सडक कच्चीथी या पक्की बारह मीलका हिसाब लगाओ ॥

स० पृ० ३३४ पं० १८ पूतनाका शरीर छः कोस चौडा और बहुत लम्बा लिखाहै मथुरा और गोकुल दबकर पोपजीका घरभी दबगया होता ॥ ३६० । ८

समीक्षा–यहभी कहना असत्यहै कि, पूतनाका शरीर छः कोस चौडा और उससे अधिक लम्बा था भागवतमें तौ यों लिखा है ॥

निशाचरीत्थंव्यथितस्तनाव्यसुर्व्यादायकेशांश्चरणौभुजावपि
प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थितावज्राहतो वृत्रइवापतन्नृप ॥
पतमानोपितदेहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान्
चूर्णयामासराजेन्द्रमहदासीत्तदद्भुतम्–भाग०

जब श्रीकृष्ण उसके प्राण निकालने लगे तब वोह गांवके बाहर आई तब वोह बडी व्याकुल होके हाथपैर फैलाये हुए अपना रूप बढाकर ऐसे गिरी जैसे वज्र लगके वृत्रासुर गिराथा १ उसका देह छः कोसके भीतरी वृक्षोंको चूर्ण करता हुआ गिरा पूतनाविषयमेंभी आप कुछ नहीं समझेहैं श्लोकके अर्थ लगानेतक नहीं आते इसमें तौ लिखाहै कि, हे राजन् ! गिरते हुए उसके देहने छः कोशके वृक्षोंको चूर्ण करदिया इसका तौ यही अर्थ है कि, वह मरते समय अपना बडारूप धारणकर इतनी तडपी कि, उसके छटपटानेसे छः कोसके वृक्ष चूर्ण होगये, आशय यह कि, जैसे मतवाला हाथी वनका नाश कर देताहै कुछ हाथीका शरीर उतना बड़ा नहीं होता, इसीप्रकार पूतना ऐसी तडपती फिरी कि, छः कोसके वृक्ष चूर्ण होगये, मरनेपर भी शरीरमें धनंजय वायु रहताहै, अकस्मात् प्राण जानेसे तडफडाताहै, जैसे छपकलीकी पूंछ तडपती रहतीहै, इसीप्रकार पूतना बनमें तडपती फिरी उसके आघातसे वृक्ष चूर्ण होगये और यही आश्चर्य हुआ ॥

स० पृ० ३३४ पं० २१

अजामिलकी कथा उटपटांग लिखीहै उसने नारदके कहनेसे पुत्रका नाम नारायण रक्खा मरते समय अपने पुत्रको पुकारा नारायण बीचमें कूदपडे, जिन्होंने उसके मनका भाव न जाना कि, मुझे पुकारताहै या अपनें पुत्रको, ज्योतिश्शास्त्रके विरुद्ध सुमेरुका परिमाण लिखाहै प्रियव्रत राजाके रथकी लीकसे समुद्र होगये उनचास कोटि योजन पृथ्वी है अब कोई नारायणका नाम लेकर कैदसे क्यों न छूट जाता, इत्यादि मिथ्याबातोंका गपोडा भागवतमें लिखाहै ॥ ३६० । ११

समीक्षा –अजामिलकी कथाभी असत्य लिखी है नारदजी कभी अजामिलके घर नहीं आये न पुत्रके नाम लेनेसे नारायण आये, यह स्वामीजीने अनपढ लोगोंको धोखा दिया है वहाँ तो ऐसा लिखाहै ॥

निशम्यांम्रियमाणस्यब्रुवतोहरिकीर्तनम्
भर्तुर्नाममहाराजपार्षदाः सहसापतन् ३० स्कं० ६ अ० १

मरते समय नारायणका कीर्तन सुनकर भगवान्के पार्षद उसके स-
प आये नाम तौ नारायणका मुखसे निकला उसका पुत्र नारायण तौ
हीं था स्वामीजीको विदित नहीं(यस्यनाम महद्यशः)जिसके नामही
डा यश है, नामके कारण अनेक तरगये भागवत स्वामीजीने देखी
हीं, नारायण आये नारदके कहनेसे नाम रक्खा यह सब झूंठ है । जो
रायणका नाम लेताहै कैदसे छूंटना क्या संसारबंधनमें भी नहीं पडता,
मृत जाने अनजाने पीनेसे अपना गुण करताही है, सुमेरु और पृथ्वी-
ा परिमाण जो भागवतमें लिखाहै सत्यहै दूर न जाइये अपने स्वीकार
कये योगपर व्यासभाष्यको देखिये जो इस पुस्तकमें ब्रह्माण्डप्रकरण
र हमने लिखाहै उसमें आप सब लोक और भूमि मण्डलको जानजांयगे
ागवतमें चन्द्रसूर्यादि नक्षत्र पर्यन्त स्थूल प्रतिबिम्ब भूमिका परिमाण
लिखा है यह हमारी भागवत भूमिकामें अच्छी प्रकार देखिये जो १९५४
ी छपीहै जैसी पृथ्वी अब आप मानतेहैं यह कदाचित् अंग्रेजोंकी
ताई मानतेहोंगे परन्तु जबतक अमेरीका देश विदितनहीं हुआ था
बतक पृथ्वी उतनीही समझीथी और यदि और देश नये इसीप्रकार
लेंगे तौ क्या उन्हें जलमेंही मग्नकर दोगे, ब्रह्माण्डका विस्तार भाग-
में व्यासजीने अपने भाष्यकेही अनुसार लिखाहै प्रियव्र-
 रथकी लीकसे समुद्र नहीं हुए किन्तु उस समय वह आकाशगामी
पर बैठ सागर देखनेगया और उसने सब सागर देखकर लोगोंको
टकर बताये और पुरवासी जनोंने इसपर राजाको सागरका प्रगट
नेवाला कहा जैसे अंग्रेजोंने अमेरीका प्रगटकी सातौ सागरोंका रस
 आदि सब प्रगट होताहै (Red-Sea) लाल सागर नाम जैसेअंग्रेजीमें
सीप्रकार यहां नामहै ॥

स० पृ० ३३९ पं० १ से ॥

यह भागवत बोपदेवका बनाया है जिसके भाई जयदेवने गीतगो-
द बनाया उसने यह श्लोक अपने बनाये हिमाद्रि नाम ग्रन्थमें लिखे
क श्रीमद्भागवत पुराण मैंने बनाया है उस लेखके तीनपत्र हमारे पास
समेंसे एकपत्र खोगयाहै उस पत्रमें श्लोकोंका जो आशय था उस
ायके हमने दो श्लोक बनाके नीचे लिखेहैं जिसको देखना हो वह
ाद्रि ग्रंथ देखले ॥

हिमाद्रेःसचिवस्यार्थेसूचनाक्रियतेऽधुना
स्कंधाध्यायकथानांचयत्प्रमाणंसमासतः १
श्रीमद्भागवतंनामपुराणंचमयेरितम्
विदुषाबोपदेवेनश्रीकृष्णस्ययशोन्वितम् २

इसी प्रकारके नष्ट पत्रोंमें श्लोक थे अर्थात् राजाके सचिव हेमाद्रिने बोपदेव पंडितसे कहा मुझे तुम्हारे बनाये सम्पूर्ण भागवतके सुननेका अवकाश नहीं है इस कारण तुम संक्षेपसे श्लोकबद्ध सूचीपत्र बनावो जिसको देख संक्षेपसे श्रीमद्भागवतकी कथा जानलूं नीचे लिखा सूचीपत्र बोपदेवने बनाया. ३६०।२४

"इसके उपरान्त प्रथम स्कंधके पांच श्लोक सूचीवत् लिखेहैं" समीक्षा भागवतको मिथ्या करनेको तौ पं० दयानंदने खूबही कमर कसीहै इतिहास वेत्ताओंमें भी दम भरतेहैं इस गपोडेकी भी पोल खोली जाती है, पहले तौ यही देखिये कि बोपदेव जयदेव भाई नहीं थे जयदेव बंगालेके ब्राह्मण तिंदुबिल्व ग्राममें रहते थे उनके पिमाका नाम भोजदेव था जैसा उन्होंने गीतगोविन्दकी समाप्तिपर लिखाहै ॥

श्रीभोजदेवप्रभवस्यरामादेवीसुतस्यास्यसदाकवित्वम् ॥
पराशरादिप्रियवर्गकंठे सुप्रीतपीताम्बरमेतदस्तु १

इसमें रामादेवी इनकी माता भोजदेव पिताहै बोपदेव द्रविडके ब्राह्मण हेमाद्रिके आश्रित थे ॥

विद्वद्धनेशाशिष्येण भिषक्केशवसूनुना
तेन वेदपदस्थेन बोपदेवद्विजेन यः

बोपदेवका बनाया धातुपाठ प्रसिद्ध ग्रन्थमें लिखाहै धनेश्वरके शिष्य वैद्यराज केशवजीके पुत्र बोपदेव उपनाम वेदशब्दने धातुपाठ बनाया है अब कहिये कहां बंगाली कहां द्रावडी दोनोंके पिताका नाम भिन्न होनेसे यह भाई नहीं हैं यह तौ सिद्ध होगया ॥

१२६३ विक्रममें कुतबुद्दीन दिल्लीका राजा था उसके समय बख्तियार खिलजीके उपद्रवसे नदियाशान्तिपुरके राजा लक्ष्मणसेन जगन्नाथ पुरीको चले गये उनकी सभामें जयदेव थे (तारीख फरिस्ता) यह राजा पंडितभी था गीतगोविन्दमें प्रथम सर्गका चौथा श्लोक

ाचः पल्लवयति) इसी राजाका है यह वृत्तान्त गीतगोविन्दकी
ा मानाकी तथा नारायण भट्टीमें है ॥

गीतापर जो विज्ञानेश्वरी टीका है वह दक्षिणदेशस्थ अलंदी ग्राम-
सी ज्ञानेश्वर महात्माकी है १३४७ संवत्में वह टीका बनी उनसे
ाद्रि लेगये हैं इनके पास बोपदेव रहते थे यह समय बोपदेवका है
नोंमें लग भग १०० वर्षका अन्तर है ॥

अब इस विवादको इतनेमेंही मिटातेहैं कि, श्रीस्वामी शंकराचार्यको
पने सत्यार्थ प्र० २८६ में बाईस सौ वर्ष लिखेहैं उन्होंने वासुदेवसहस्र
मके भाष्य 'सआश्रयः परब्रह्म' पचपनकी व्याख्या पश्यत्यदोरूप
३७ नामकी व्याख्यामें 'सत्वंरजस्तमः इतिप्रकृतेर्गुणाः' २१९ नामकी
ाख्यामें 'छन्दोमयेनगरुडेन' तथा चतुर्दशमतविवेकमें 'परमहंसधर्मो
ागवते पुराणे कृष्णेन ऊद्धवायोपदिष्ट इति' यह भागवतका प्रमाण
दियाहै तथा रामानुजीय सारसंग्रहमें तथा शंकरस्वामीके पूज्यगौड-
ादाचार्यने पंचीकरण व्याख्यामें 'जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः'
ह भागवतका प्रमाण ग्रहण कियाहै तथा ऋग्विधिमें लिखाहै ॥७।९।३१

अस्ययामा ऋचंजप्त्वा त्रिवारं विष्णुमंदिरे
फलं भागवतं तस्य लभते नात्र संशयः १

जब कि बहुत पहलेसे भागवतपर अनेक टीका विद्यमानहैं तब
पदेवकी बनाई कैसे और स्वयं बोपदेवने श्रीमद्भागवतपर परमहंस-
या टीका लिखीहै उनके बनाये मुक्ताफलकी टीका हेमाद्रीने की है
तमें इनके ग्रंथोंकी गणनाभी लिखीहै ॥

यस्यव्याकरणे वरेण्यघटनाः स्फीताःप्रबन्धा दश
प्रख्याता नववैद्यकेथ तिथिनिर्धारार्थमेकोद्भुतः ।
साहित्ये त्रय एव भागवततत्त्वोक्तौ त्रयस्तस्य भु-
व्यन्तर्वाणिशिरोमणेरिह गुणाःके के न लोकोत्तराः ॥

अर्थात् बोपदेवके व्याकरणमें दश वैद्यकमें तीन तिथिनिर्णयमें एक
हित्यमें तीन भागवततत्त्वनिर्णयमें परमहंसप्रिया मुक्ताफल हरिलीला
तीन ग्रन्थ बनाये हैं यदि भागवत बनाते तौ इस ग्रन्थमें भागवत

बनाया ऐसा लिखनेमें क्या कष्ट पड़ता परमहंसप्रिया टीकामें भागवतको आर्ष लिखा है इससे व्यासरचित स्पष्ट है उसने हरिलीलामृतमें लिखा है ॥

विदुषा बोपदेवेन मंत्रिहेमाद्रितुष्टये
श्रीमद्भागवतस्कंधाध्यायार्थादिनिरूप्यते ॥ तथा
हेमाद्रिर्बोपदेवेनमुक्ताफलमचीकरत्

बोपदेवने हेमाद्रिकी प्रसन्नताके निमित्त भागवतके स्कंध अध्यायोंकी अनुक्रमणिका निरूपणकरी है वह हमारे मुरादाबादमें छपी मिलतीहै तथा हेमाद्रिने मुक्ताफल ग्रंथ बनवायाहै अब इस बातका विचार करना चाहिये कि बहुधा टीकाकार जिस ग्रंथपर टीका करते हैं उसके अध्याय श्लोक और संक्षेप विषय निरूपण करते हैं हेमाद्रिके कथनसे भागवतका सूचीपत्र बनादिया तो क्या भागवत बोपदेवकी बनाई होगई एकश्लोकी रामायण श्लोक किसीने बनाया तो क्या वाल्मीकि रामायण उस पुरुषका हो गया यह आपहीके मुखसे शोभा पाती है ॥

फिर वह पहले श्लोकही खोगये, वाह हेमाद्रिमें भागवतकी अनुक्रमणिकाका क्या प्रसंग वहा तो धर्मशास्त्रका निबंध दानखण्ड व्रतखण्ड वर्णित है, विदित होताहै कि स्वामीने हेमाद्रि देखाभी नहीं भागवतके प्रमाण प्रसंग पर मिलेंगे हरिलीला ग्रन्थमें भागवतकी अनुक्रमणिका लिखीहै, जिसका प्रथम श्लोक लिखचुके हैं धन्य पहले श्लोक खोगये दोका आशय याद रहा शेष आठ श्लोक क्यों न याद रहे इस महा अनर्थका क्या ठिकाना है ।

जो वह श्लोक खोगये और नये श्लोक बनाकर धोखादेनेके लिये लिखा कि, यह श्रीमद्भागवत मैंने बनायाहै ऐसा वहां नहीं है वहां तो अनुक्रमणिका लिखीहै हरिलीलाकी टीका हेमाद्रिने बनाई है इसकारण आपका यह कथनहै कि उसको अवकाश नहींथा सर्वथा अशुद्ध है टीकाकारोंकी शैली होती है कि अध्यायके प्रथम कोई श्लोक उसके विषयका लिखतेहैं तथा उसके पर्व स्कन्ध या भागवतमें अध्यायोंकी सूचीभी लिखा करतेहैं देखो श्रीमद्भागवतके टीके पर श्रीधरनेभी ऐसाही किया है, इससे इस विषयमें स्वामीजीने जो कुछ लिखाहै वह सब मिथ्या धोखादेनेके कारण लिखाहै वह किसीप्रकार प्रमाण नहीं है ॥

पुराणोंमें इसका माहात्म्यभी लिखा है जिसमें भागवतके सब चरित्र वर्णन होगये हैं सो माहात्म्य भागवतके साथ लगा हुआ रहता है जो और पुराणोंसे संग्रह कियागयाहै यदि यह बोपदेवकी बनाई होती तो और पुराणोंमें इसका वर्णन क्यों होता यहभी भागवत व्यासजीका बनाया है इसमें प्रमाण यह है ॥

मत्स्यपुराणमें लिखा है ॥

यत्राधिकृत्यगायत्रींवर्ण्यतेधर्मविस्तरः
वृत्रासुरवधोपेतंतद्भागवतमिष्यते १
लिखित्वातच्चयोदद्याद्धेमसिंहसमन्वितम्
प्रोष्ठपद्यांपौर्णमास्यांसयातिपरमंपदम् २
अष्टादशसहस्राणिपुराणंतत्प्रकीर्तितम्
मत्स्यपुराणे । पुराणान्तरेच–
ग्रंथोष्टादशसाहस्रोद्वादशस्कंधसंमितः
हयग्रीवब्रह्मविद्यायत्रवृत्रवधस्तथा १
गायत्र्याचसमारम्भस्तद्वैभागवतंविदुः ॥
पद्मपुराणे अम्बरीषं प्रति गौतमोक्तिः
अम्बरीषशुकप्रोक्तंनित्यंभागवतंशृणु
पठस्वस्वमुखेनापियदीच्छसिभवक्षयम् १ पाद्मे

भाषार्थः ।

जिसमें गायत्रीको आगे लेकर धर्म वर्णन कियाजाताहै और वृत्रासुर का वध है उसीका नाम भागवतहै १ जो कोई इसे लिखाकर सुवर्णके सिंहसाहित भादोंकी पूर्णमासीको दान करताहै वोह परमगतिको जाता है २ इस ग्रंथमें अष्टादश सहस्र श्लोक हैं और पुराणोंमें लिखाहै जिस ग्रन्थमें अठारहसहस्र श्लोक बारह स्कंध हयग्रीव ब्रह्मविद्या वृत्रासुर वध १ गायत्रीसे प्रारम्भ है उसीको भागवत कहते हैं पद्मपुराणमें लिखा है गौतमजी कहते हैं अम्बरीष जो संसारसे पार होनेकी इच्छा करता है तो शुकदेवजीकथित भागवतको सदा सुन और पाठकर ॥

इन श्लोकोंसे यह भलीभांति प्रगट होता है कि, श्रीमद्भागवत अष्टादशपुराणान्तर्गत व्यासकृत यही है और इसमें माखनचोरी दानआदि कुछभी लेख नहीं है और रासलीलामें जो गोपियाँ थीं वोह सब वरदान पाये हुएथीं और श्रीकृष्णसे भिन्न न थीं और शुकदेवजी योगशरीर धारणकिये जीवन्मुक्त यथेच्छाचारीथे ॥

मार्कण्डेयपुराणप्रकरणम् ।

स० पृ० ३३१ पं० २३

मार्कंडेयपुराणमें रक्तबीजके शरीरसे एक बिन्दु भूमिमें पड़नेसे उसके सदृश रक्तबीजके उत्पन्न होनेसे सब जगत्‌में रक्तबीज भरजाना रुधिरकी नदीका वह चलना आदि गपोडे बहुतसे लिखे हैं जब रक्तबीजसे सब जगत् भरगया तो देवी और देवीका सिंह और उसकी सेना कहां रही, जो कहो कि देवीसे दूर थे तो सब जगत् रक्तबीजसे नहीं भरा था भरजाता तो पशुपक्षीमनुष्यादि प्राणी वृक्षादि कहां रहे थे यहां यही निश्चित जानना कि दुर्गापाठ बनानेवालेके घरमें भागकर चलेगये होंगे ॥ ३५७।८

समीक्षा-रक्तबीजसे जगतका भरजाना श्लोकका आशय नहीं है किन्तु यही आशय है कि रक्तबीज बहुतसे उत्पन्न होजानेसे उस संग्राममें जिधर तिधर रक्तबीजही दृष्टि आने लगे थे जैसे जब नदीमें जल अधिक आ जाताहै तो जलके किनारे खड़े होनेवालेंको जलही जल दिखाई देताहै तब वोह यह कहने लगते हैं कि आज यह जगत जलमय होरहा है सिवाय जलके और कुछ दृष्टि नहीं आता यद्यपि सब जगत् जलमग्न नहीं है परन्तु कहनेमें यही आता है ऐसेही रक्तबीजकी जगत् भरजानेकी वार्ता कहकर उसकी अधिकता दिखाई है अतिशयोक्ति अलंकार है ॥ तुम इस बातको क्याजानो व्याहे न बरात गये ।

ज्योतिश्शास्त्रप्रकरणम् ।

स० प्र० पृ० ३३६ पं० २४ देखो ग्रहोंका कैसा चक्र चलाया है जिसने विद्याहीन मनुष्योंको ग्रस लियाहै पुनः पृ० ३३७ पं०७ यजमानो तुम्हारे आज आठवां चंद्रमा है सूर्यादि क्रूर घरमें आये हैं ढाई वर्षको शनैश्चर पगमें आया है बड़ा विघ्न होगा पूजा पाठ करोगे तो बचोगे (यह पोपलीला है) पृ० ३३८ पं० ९ सच तो यह है कि सूर्यादिलोक जड़ हैं न वे किसीको सुख और न वे किसीको दुःख देनेको चेष्टा करते

हैं पृ० ३३९ पं० १ जो धनाढ्य दरिद्र प्रजा राजा रंक होते हैं अपने कर्मोंसे होते हैं ग्रहोंसे नहीं और गणित करके विवाह करनेसे फिर विधवा क्यों होजाती है इस लिये कर्मकी गति सच्ची ग्रहोंको गति दुःख सुख भोगमें कारण नहीं ग्रह आकाशमें और पृथ्वीभी आकाशसे बहुत दूर है इनका संबंध कर्ता और कर्मोंका साथ साक्षात्कार नहीं और जो सच्चे हों तो एक चक्रवर्तीके समान दूसरा क्यों नहीं राजा हो यह उदरभरनेके वास्ते हैं ॥ ३६२ पं– १९ से.। [३६३।९] ३६५। ९

समीक्षा–स्वामीजी ग्रहोंका फल नहीं मानते कि, जड़ पदार्थ किसीको दुःख देते नहीं वेद इस बातको कहता है कि, ग्रहे दुःख देते हैं, यदि ग्रह दुःख नहीं देते तो क्यों उनकी शान्ति वेदमें की है निश्चय यह भेंट पाकर शान्ति करते हैं जैसे छत्रसे सूर्यताप निवारण होताहै ऐसेही शान्तिसे ग्रहदशा निवारण होतीहै ग्रहोंका पृथ्वीसे सम्बन्धहै इससे उनके निवासियोंका भी सम्बन्ध है ॥

शंनोमित्रः शंवरुणः शंविवस्वांछमन्तकः
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाशन्नोदिविचराग्रहाः ॥१९।९।७
नक्षत्रमुल्काभिहतंशमस्तुनः ॥ १९ । ९ । ९
शन्नोगृहाश्चान्द्रमसाःशमादित्यश्चराहुणा
शंनोमृत्युर्धूमकेतुः शंरुद्रास्तिग्मतेजसः ॥ १९ । ९ । १०
आरेवतीचाश्वयुजौभगंम आमेरयिं भरण्या आवहन्तु।१९।७।५
अष्टाविंशानिशिवानिशग्मानिसहयोगंभजन्तुमे
योगंप्रपद्येक्षेमंचक्षेमंप्रपद्येयोगंचनमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ १९।८।२
स्वस्तिंतमेसुप्रातःसुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु ३

अथर्ववेदे १९ । ६ । ७ से० १८ । ९ तक

मित्र वरुण विवस्वान् अन्तक अर्थात् काल पृथ्वी अन्तरिक्षके उत्पात और आकाशमें फिरनेहारे ग्रह हमारा कल्याण करें १ नक्षत्र उल्कापातसे हमको कल्याण रहै २ ग्रह चन्द्रमा आदित्य राहु मृत्यु (धूम्रकेतु)–(केतु) और रुद्र हमारा कल्याण करें ३ रेवती अश्विनी भरणी आदि

हमको ऐश्वर्य और धनदें ४ अठाईस नक्षत्र योग रात दिन हमको सुखकारक हों ५ प्रातःसायं दिन अच्छे शकुन मुझको हों ६

शंदेवीः शंबृहस्पतिः १९।९।११

देवी और बृहस्पति कल्याण करें ॥

देखिये यदि ग्रह दुःख नहीं देते तो उनकी शान्तिके अर्थ प्रार्थना करनी क्यों है क्या यह अनर्थ प्रलाप हैं कभी नहीं। वेदमें प्रार्थना इसी कारण है कि शान्तभी होजाते हैं और जैसे मनुष्योंके कर्म होते हैं तदनुसार ही ग्रह होते हैं ग्रह और कर्म एकसे ही होते है ग्रहोंसे मनुष्यों के कर्म जाने जाते हैं जिनके ग्रह स्पष्ट हैं शुद्ध हैं उसके कर्म प्रत्यक्ष हो जाते हैं उनकी जन्मपत्रकी बात कभी झूठी नहीं होती राशियोंमें ग्रहोंके आनेसे मनुष्योंके नामोंसे सम्बन्ध होता है, क्योंकि (गृह्यन्ते ते ग्रहाः) ग्रहण करते हैं इसीसे उनका नाम ग्रह है यह ज्योतिश्शास्त्रही है कि, जिसके द्वारा भूत भविष्य वर्तमान दशा मनुष्य जानसक्ताहै ज्योतिश्शास्त्रका अपेल सिद्धान्त है इसीसे इस देशकी उन्नति हुई जबसे इसका लोप होता चला तबसे नास्तिकता फैलने लगी जिसमय एक चक्रवर्ती राजा होगा उस समय कोई दूसरा नहीं होसकता क्योंकि, उसके कर्म और ग्रह ऐसेही होते हैं दूसरा उत्पन्नही नहीं होसकता पतिका वियोगभी ग्रहोंके अनुसार होता है ॥

स० पृ० ३३८ पं० २६

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुंभूमिभाः *

यह सिद्धान्तशिरोमणिका वचन और इसीप्रकार सूर्यसिद्धान्तादिमेंभी है जब सूर्य भूमिके मध्यमें चन्द्रमा आताहै तब सूर्यग्रहण और जब सूर्य और चन्द्रके बीचमें भूमि आती है तब चंद्रग्रहण होताहै अर्थात् चन्द्रमाकी छाया भूमिपर भूमिकी छाया चन्द्रमापर पडती है सूर्य प्रकाशरूप होनेसे उसके सन्मुख छाया किसीकी नहीं पडती किन्तु जैसे प्रकाशमान सूर्य वा दीपसे देहादिकी छाया उलटी जाती है वैसेही ग्रहणमेभी समझे ॥

समीक्षा–वाह स्वामीजी धन्यहै ग्रहलाघवका वाक्य लिखकर नाम सूर्य सिद्धान्तका लिखतेहैं क्याही अद्भुत बातहै कि, जब सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें भूमि आवैगी तो चंद्रग्रहण होगा यदि यह बात मानलें तो पृथ्वी वासियोंको कभी चन्द्रग्रहण न दीखना चाहिये क्योंकि

* १८९७ वालेमे ग्रहलाघवके अ० ४ श्लो० ४ लिखाहै।

छायासे चन्द्रग्रहण दृष्टि आवै तौ किसी और लोकवालोंको दिखना चाहिये पृथ्वीवालेको नहीं क्योंकि, जैसे किसी आदमीके सामने कोई और दूसरा आजाय तौ बेशक उपसर उसकी छाया पडैगी परन्तु उसकी ओट तीसरे मनुष्यको मालूम होगी जो ठीक उसके पीछे होगा बीचके मनुष्यको दोनों यथावत् दीखसकैंगे इस कारण चन्द्र सूर्यके पृथ्वीके बीचमें आनेसे कभी कोई ग्रहण नहीं होसक्ता और सूर्य चंद्रमा दोनों पृथ्वीसे ऊंचेपरहैं उनकी छाया पृथ्वीपर पडती है पृथ्वीकी उसपर नहीं पडती हां जो पृथ्वीसे नीचे लोकहैं उनको चन्द्र और सूर्यके बीचमें पृथ्वी आनेसे ग्रहण दीखसक्ताहै परन्तु ऐसा नहीं है यह स्वामीजीने अपना शास्त्र छोड अंग्रेजोंका अनुकरण कियाहै ज्योतिषका मतहै जब केतु सूर्य एक राशिमें हो तौ उनकी छाया पडनेसे तीसरे स्थानके पृथ्वीवासियोंको ग्रहण दीखताहै और ऐसेही राहु चंद्रमा एक राशिपर होनेसे चन्द्रग्रहण सबको दीखताहै ॥

पूर्णिमाप्रतिपत्संधौराहुःसंपूर्णमण्डलम् ।
ग्रसतेचन्द्रमर्कंचपर्वप्रतिपदन्तरे ॥

यदि पृथ्वी चलती होती तौ इसको राशियोंमें आना जाना पूर्व आचार्य मानते और यदि हमारे यहांके सिद्धान्त अशुद्ध होते ग्रहणादिकोंकी यह ठीक विधि कैसे मिलती और किसी २ ने राहुकोही पृथ्वी कहाहै और वेद ब्राह्मणोंमेंही यह राहुकाही आच्छादनकरना लिखाहै ॥

देखिये जिस ग्रहलाघवका यह वाक्यहै उसका प्रसंग यों है ग्रहणाधिकार संख्या ॥

श्लोक २ "एवंपर्वान्ते विराह्वर्कबाहोरिंद्राल्यांशाःसंभवश्चेद्ग्रहस्य ।
तेंशानिघ्नाः शंकरैः शैलभक्ताव्यग्वर्काशः स्यात्पृषत्कोंगुलादिः ॥

अर्थ–इसीप्रकार पर्वान्त अर्थात् तिथ्यन्तमें सूर्यमें राहु कमकर फिर भुजा बनाय देखना १४ अंशसे न्यून हो तौ ग्रहणका होना समझा जाताहै अंश ग्यारहके संग गुण सातका भाग देकर जो प्राप्तहो राहु चढाये हुए सूर्यकी दिशाकी तरफ शर होताहै आगे यह वही श्लोक चतुर्थ है जो कि,स्वामीजी सिद्धान्त शिरोमणिका लिखतेहैं (छादयत्यर्कमिंदुर्विधुं-भूमिभाश्छादकच्छाद्यमानैक्यखंडंकुरु इति ४) इसका अर्थ सूर्यको राहु चन्द्रमाके साथ होकर छादन करताहै और चन्द्रमाको राहु भूमिके साथ मिलकर छादन करताहै पूर्व जो दूसरा श्लोक (एवंपर्वा) है इसका अर्थ पूर्व लिखचुकेहैं राहु सूर्यसे हीन क्यों किया जाताहै यदि

राहु छादक नहीं तौ राहुके स्थानमें चन्द्रमा हीन क्यो नहीं किया जाता प्रत्यक्ष लिखाहै राहु और सूर्यका अंश १४ के बीच अन्तर दोनोंका होगा तौ ग्रहण होगा नहीं तौ क्योंकर राहुका अन्तर १९अंशग्रहण मेंछादक चन्द्र होता तौ चन्द्रका अन्तर १४ से न्यून होगा तौ सूर्यग्रहण होगा यह ग्रंथकारनें क्यों नहीं लिखा और जो चंद्रमाकोही मानो तौ प्रत्येक अमावस्यामें सूर्य चन्द्रका अन्तर १४ से ऊन होताहै किसकारण प्रत्येक अमावस्याको सूर्य ग्रहण नहीं होता इस कारण यावत्काल राहु वा केतु अंतर अंश १४ का सूर्य चन्द्रसे न होगा तौ ग्रहणकाभी न होगा (प्रश्न) फिर छादयत्यर्कमिन्दुः-यह क्योंकर लिखा (उत्तर) राहु तौ पूर्व श्लोकमें कह चुकेहैं चंद्रमा इस श्लोकमें कहा इससे जाना जाताहै कि, दोनों मिलैं तौ ग्रहण होताहै यदि राहु न लिया जाय प्रत्येक अमावस्याको सूर्य चन्द्रतुल्य हौनेसे ग्रहण होना चाहिये पुनरुक्तिदोषके कारण चंद्रमाके साथ राहु फिर दोवार नहीं लिखा स्वामीजीको सिद्धान्तशिरोमणिका प्रमाण देना था ग्रहलाघवका अप्रमाण था इस कारण ग्रहलाघवके श्लोकखण्डको सिद्धान्तशिरोमणिके नामसे लिख दिया शोकहै इस झूंठे जाल और संन्यासपर परन्तु हम सिद्धान्तशिरोमणिके श्लोक लिखतेहैं ग्रहणाध्याय श्लो० ८-१०

दिग्देशकालावरणादिभेदान्नाच्छादकोराहुरितिब्रुवन्ति
जन्मानिनःकेवलगोलविद्यास्तत्संहितावेदपुराणबाह्यम् १
राहुःकुभामंडलगःशशांकःशशांकगश्छादयतीनबिम्बम्
तमोमयःशंभुवरप्रदानात् सर्वागमानामविरुद्धमेतत् २

अर्थ-दिशा देश काल आवरण भेदसे राहुको छादक जो नहीं मानते वो पुरुष केवल गोलविद्या संहिता वेद पुराणोंसे वाह्यहैं राहु पृथ्वीकी छायामें होकर चंद्रमाको छादै है चंद्रमें होकर सूर्यको छादन करताहै राहु अंधेरारूप शिवजीका वर होनेसे अदृश्यहै सम्पूर्ण बेद संमत यह वाक्य है, यह सिद्धान्तशिरोमणिका वचनहै अब गणिताध्यायमें ग्रहणाध्यायका प्रथम श्लोक-

राहुफलंजपदानहुतादिके स्मृतिपुराणविदःप्रवदंतिहि
स्वदुपयोगिजनेसचमत्कृतिर्ग्रहणमिद्धिनयोःकथयाम्यतः १

अर्थ–महाफल है जपदान हवनका ग्रहणके समयमें यह स्मृति पुराण वेदवेत्ता कहतेहैं श्रेष्ठोंके योग्य यह चमत्कार्यरूप सूर्यचन्द्रग्रहण स्फुट कहताहै इस श्लोकके ऊपर स्मृति पुराणवचन भास्कराचार्यने स्वरचित भाष्यमें लिखे हैं सो लिखते हैं ॥

स्नानंस्यादुपरागादौ मध्ये होमसुरार्चने
सर्वस्वेनापिकर्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने १
अकुर्वाणस्तु नास्तिक्यात्पंकेगौरिव सीदति
स्नानंदानंतपःश्राद्धमनंतंराहुदर्शने २
संध्यारात्र्योर्नकर्तव्यंश्राद्धंखलुविचक्षणैः
द्वयोरपिचकर्तव्यं यदिस्याद्राहुदर्शनम् ३
उषस्युषसियत्स्नानं संध्यायामुदितेरवौ
चंद्रसूर्योपरागेचप्राजापत्येन तत्फलम् ४

अर्थ–स्नान ग्रहणादिमें करे होम देवपूजन मध्यमें करे सर्वस्वसेभी राहुदर्शनमें श्राद्धकरै १ जो नास्तिकतासे जपादि न करै तौ कीचडमें फंसी हुई गायकी नाई अत्यंत दुःखित होताह स्नान दान जप श्राद्ध राहुके ग्रासमें अनंत होते हैं २ श्राद्ध संध्या रात्रिमें न करै ग्रहण समयमें सदाकरै ३ प्रातःकाल जो स्नानका फल है संध्याका जो फल है वोह फल प्राजापत्यरूप ग्रहणमें मिलता है ४ इत्यादि यह सतयुगका बना ग्रंथ है और पुराण उस समयभी थे इससे पुराण प्राचीन हैं प्रमाण–

अष्टाविंशाद्युगादस्माद्यातमेतत्कृतंयुगमिति ।

अर्थात् इह अट्ठाइसमां सतयुग व्यतीत होता है ॥ जब कि छायाही पडतीहै तो चन्द्रसूर्यका एक ओरका प्रकाश तो बनाही रहता है तो तारागण न दीखने चाहिये इससे छादन अर्थ ग्रासका है

गरुडपुराणप्रकरणम् ।

स०पृ० ३३९ पं० १४ क्या गरुडपुराण झूंठा है (उत्तर) हां असत्य है (प्रश्न) जो यमराजा चित्रगुप्त मंत्री उनके भयंकर गण पहाड़से शरीरवाले पकड लेजाते हैं पापपुण्यके अनुसार स्वर्ग नरकमें डालते हैं उसके लिये दान पुण्य श्राद्ध तर्पण वैतरणी आदि नदी तरनेके लिये करते हैं क्या यह बात झूंठी है (उत्तर) यह सब पोपलीला है जो यमलोकके जीव

पापकरैं तौ दूसरा यमलोक मानना चाहिये वहांके न्यायाधीश न्याय करैं पर्वतकी समान यमके गणहो तौ दीखते क्यों नहीं और जिस घरमें आवैं वोह टूटता क्यों नहीं इत्यादि और पिंडदानादि कुछ नहीं पहुंचता ॥ ३६५।१७

समीक्षा–स्वामीजीने गरुडपुराणकी वृथा निन्दाकरी वेशक यमराजके गण पापियोंके प्राण निकालते हैं उनका अत्यन्त सूक्ष्म शरीरहै और ऐसी शक्तिहै कि, वे अपने शरीरको घटा बढासक्तेहैं स्वप्नमें अन्तः करणमें हाथी घोंड़े किधरसे घुस पड़तेहैं। वेही प्राण निकालतेहैं और यमलोकमें क्या अपराध करैंगे वहां तौ पराधीन होकर कष्ट भोगते हैं और यदि अपराधभी करैं तौ दूसरे यमलोककी क्या आवश्यकता है यही यमराज दण्ड दे सक्के हैं जैसे जेलखानेमें कैदी कोई अपराध करैं तौ उसकी कैद और बढादी जाती है वेदमें गोदान यमराजा आदि सबका वर्णन है ॥

१ वैवस्वतंसंगमनंजनानांयमंराजानंहविषासपर्यत-अथर्व १८।१।४९

२मृत्युर्यमस्यासीद्दूतःप्रचेताअसून्पितृभ्योगमयांचकार १८।२।२७

३ यातेधेनुंनिपृणामियमुतेक्षीरओदनम्

तेनाजनस्यसोभर्तायोऽत्रासदजीवनः १८।२।३०

४ दण्डंहस्तादाददानोगतासोःसहश्रोत्रेणवर्चसाबलेन

अत्रैवत्वमिहवयंसुवीराविश्वामृधोअभिमातीर्जयेम १८।२।५९

५ धनुर्हस्तादददानोमृतस्यसहक्षत्रेणवर्चसाबलेन

समागृभायवसुभूरिपुष्टमर्वाङ्त्वमेह्युपजीवलोकम् १८।२।६०

६ एतत्तेदेवःसविता वासोददातिभर्तवे

तत्त्वंयमस्यराज्येवसानस्तार्प्यंचर १८ । ४ । ३१

७ धानाधेनुरभवद्वत्सोस्यास्तिलोऽभवत्

तां वैयमस्यराज्येअक्षितामुपजीवति ३२

८ एतास्तेअसौधेनवः कामदुघाभवन्तु

एनीःश्येनीस्वरूपाविरूपास्तिलवत्साउपतिष्ठन्तुत्वात्र ३३

९ एनीर्धानाहरिणीःश्येनीरस्यकृष्णाधानारोहिणीर्धेनवस्ते

तिलवत्साऊर्जमस्मैदुहानाविश्वाहासन्त्वनपस्फुरन्तीः ३४ अथर्ववेदे

भावार्थः ।

वैवस्वत देव जो मनुष्योंको संगमन करनेहारे हैं उन यमराजाको हविसे तृप्त करताहूं १ यमराजाका दूत मृत्युहै प्रचेताहै जो कि प्राणोंको निकालते हैं २ जो तुम्हारे वास्ते धेनुदान करताहूं जो कि दुग्धादिक देंगी इसी गौसे यमलोकमें गये प्राणी सुखीहों ३ हाथमें दंड धारण किये हुए मृतक प्राणियोंको बलपूर्वक ग्रहण करते हैं ४ धनुष हाथमें लिये मृतकको बलपूर्वक ग्रहण करते हैं ५ यह सविता देवताके अर्थ वस्त्र देताहूं सो हे सविता देवता तुम यमलोकमें हमारे पितरोंको वस्त्र दो ६ यह धानधेनुहौं तिल वत्सहैं यही यमराजमें पितरोंके सुखदाताहैं ७ यह गायें कामधेनु सम हों एनी श्येनी स्वरूप विरूप और तिलरूप वत्स पितरोंके अर्थ प्राप्तहों ८ एनी सपेद श्येनी कृष्णगौः तिलवत्सा यमलोकके पितरोंके अर्थ हैं ॥ ९ ॥

देखिये तप दान श्राद्ध 'यमराज गोदान आदि सब विधान अथर्व वेदमेंहैं॥

स० पृ० ३४२ पं० ७ 'यमेनवायुनासत्यराजन्' इत्यादि वेद वचनोंसे निश्चय है कि, यमनाम वायुका है शरीर छोड़के बायुके साथ अन्तरिक्षमें जीव रहते हैं जो सत्यकर्ता पक्षपातरहित परमात्मा धर्मराज है वोह सबका न्याय करता है ३६८ । १९

समीक्षा—धन्य स्वामीजी पञ्चयज्ञ महाविधिमें पृ० ९८ पं० १८ में सानुगाय यमायनमः का अर्थ लिखाहै जो सत्य न्याय करनेवाला ईश्वर और उसकी सृष्टिमें सत्य न्याय करनेवाले सभासद वे (सानुगाय) शब्दार्थसे ग्रहण होते हैं यहां तो ईश्वर और हाकिमोंको यम लिखा है पुनः सत्यार्थ० पृ० ३० पं० २४ भूत प्रेतके निषेधमें लिखाहै देखो जब कोई प्राणी मरताहै तब उसका जीव पापपुण्यके वश होकर परमेश्वरकी व्यवस्थासे सुखदुःखके फल भोगनेके अर्थ जन्मान्तर धारण करता है यहांतक कि दूसरी देहमें होकर जन्मान्तरमें भोग लिखाहै और यहां ऊपर आकाशमें वायुमें रहना लिखते हैं यहां शरीररहित आत्माकी स्थिति वायुमें मानी है अब विचारिये--कहीं ईश्वर और हाकिमोंको यम लिखाहै कहीं तत्काल देह धारण माना कहीं विना देह जीवकी स्थिति नहीं होती यह माना कहीं विना देह जीवोंको वायुमें लटकाया है यह सब ऐसी विरुद्ध बातें हैं जिसे थोडीभी बुद्धि होगी वोह स्वामीजीका बुद्धिभ्रम जानलेगा २१ नरक मनुजीनें अंधतामिस्राहि अध्याय ४ में (नरकानेक विंशातिम् ८७) श्लोक ८७ से ९० तक लिखे हैं इससे गरुड़-

पुराण वेदविरुद्ध नहीं और (यमेनवायुना) इसको स्वामीजीने यह नहीं लिखा कि, यह कौनसे वेदका मंत्र है इसका अर्थ तो यह है कि, " हेराजन् यम वायुकरके सत्य है " यह क्या बात हुई अब चित्रगुप्तकी फलासफी संक्षेपसे लिखते हैं ब्रह्माण्डकी सम्पूर्ण रचनाके संस्कार आकाशमें संचितरहते हैं यह अति सूक्ष्म होनेसे हम नहीं देख सक्ते परन्तु योगीजन इसको ऐसे देखते हैं जैसे हम स्थूल पदार्थ देखते हैं आकाशके चित्र कभी नष्ट नहीं होते यह सदैव गुप्तरूपसे आकाशमें स्थित रहते हैं इसी कारण इन चित्रोंका नाम शास्त्र पुराणोंमें चित्रगुप्त कहाहै यही धर्मराजके लेखकोंका वही खाता है धर्मराजके लेपिक सब प्राणियोंके कर्मोंको आकाशरूपी वहीमें चित्रोंद्वारा लिखते हैं दिव्य चक्षुवाले ही इसको पढ सकते हैं जैसे म्यूजिकलानटैनका चित्र कपडे पर उतरता है इसी प्रकार इसके अधिष्ठात्री देवताके निकट सब वटबीजकी समान अंकित रहतेहैं इनकी चेष्टा नष्ट नहीं होती सदा सचेष्ट रहतेहैं बुद्धिमान् इसका विस्तार करलेंगे वा जैसे फोनोग्राफमें सब शब्दोंके चित्र चित्रित होतेहै इसीप्रकार इसके कर्म आकाशमें चित्रित रहते हैं जैसे हजारों गायोंमें बछड़ा अपनी माको पहचान्ताहै ऐसेही चलते समय सब कर्म इसको चिपटते हैं॥

व्रतप्रकरणम् ।

स० पृ० ३४४ पं०४ ये गरुडपुराणादि और तंत्र वेदसे उलटे चलते हैं तंत्रभी वैसेही हैं जैसे कोई मनुष्य एकका मित्र सब संसारका शत्रु वैसाही पुराण और तंत्रका माननेवाला पुरुष होताहै, क्योंकि एक दूसरेके विरुद्ध करानेवाले यह ग्रन्थहैं इनका मानना किसी विद्वान्का काम नहीं किन्तु इनका मानना अविद्वत्ताहै देखो शिवपुराणमें त्रयोदशीसोमवार आदित्यपुराणमें रवि चंद्रखंडमें सोम ग्रहवाले मंगल बुध बृहस्पति शुक्र शनैश्चर राहु केतु वैष्णव एकादशी द्वादशी नृसिंह वा अनन्तकी चतुर्दशी चंद्रमाकी पौर्णमासी दिक्पालोंकी दशमी दुर्गाकी नवमी वसुओंकी अष्टमी मुनियोंकी सप्तमी कार्तिकस्वामीकी षष्ठी नागकी पंचमी गणेशकी चतुर्थी गौरीकी तृतीया अश्विनीकुमारकी द्वितीया आद्यादेवीकी प्रतिपदा पितरोंकी अमावास्या पुराण रीतिसे यह दिन उपवास करनेकेहैं सर्वत्र यही लिखा है जो मनुष्य इनवार और तिथियोंमें अन्न ग्रहण करैगा वोह नरकगामी होगा निर्णयसिंधु व्रतार्कादि ग्रंथ प्रमादी लोगोंने बनायेहैं ॥ ३७० । १८

पं० २२ एकादश्यामन्ने पापानि वसंति ॥ ३७१ । ९

जितने पापहैं एकादशीके दिन अन्नमें वसतेहैं इन पोपजीसे पूछा जाय कि, किसके पाप उनमें बसतेहैं जो सबके सब पाप एकादशीमें जा बसैं तौ किसीको दुःख न होना चाहिये, ऐसा नहीं होता किन्तु उलटा क्षुधा आदिसे दुःख होताहै दुःख पापका फल है इससे भूंखो मरना पाप है पृ० ३४९ पं० १३ एकपानकी बीडी जो स्वर्गमें नहीं एकादशीके फलसे भेजना चाहतेहैं कोई दे तौ पं० २१ज्येष्ठमहीनेके शुक्लपक्षमें जिस समय घडीभर जल न पीवैं तो मनुष्य व्याकुल होजाता है व्रत करनेवालोंको महादुःख हो- षिशेषकर बंगाले देशमें सब विधवा स्त्रियोंकी व्रतके दिन बडी दुर्दशा होतीहै इस निर्दयी कसाईको लिखते समय कुछ भी दया न आई नहीं तो निर्जलाका नाम सजला और पौष महीनेकी शुक्ल पक्षकी एकादशीका नाम निर्जला रख देता गर्भवती वा सद्यो विवाहिता स्त्री लडके वा युवा पुरुषोंको तौ कभी उपवास न करना चाहिये, किसीको करना होतौ जिस दिन अजीर्णहो क्षुधा न लगै उस दिन शर्करा (शर्बत)पीकर रहना चाहिये भूंखमें नहीं [३७२। १२] पृ० ३ ४४ पं० ३० ब्रह्मलोककी वेश्या एकादशीके पुण्यसे स्वर्गको चलीगई इत्यादि ॥ ३७१ । १६ ॥

समीक्षा-अब स्वामीजी व्रतोंहीको उडानेके निमित्त वाग्जाल विस्तार करतेहैं यद्यपि व्रतोंकी प्रथा सबही मतोंमें प्रचलितहै ईसाई यवनादिभी व्रत करतेहैं परन्तु स्वामीजीको तौ अपना पंथही पृथक् करनाहै वोह क्यों व्रत विधान लिखैंगे वेद पुराणादि सबमें व्रत करनेकी आज्ञा है वैद्यकसे तौ यह स्पष्ट है कि, व्रत करनेवालेको रोग नहीं रहता जो एक मासमें दो भी व्रतकर लेते हैं वे चिरकालतक सुखी रहतेहैं और व्रतकरनेकी जो पुराणोंमें प्रत्येक तिथि लिखी हैं वे इस कारण हैं कि, जो जिस देवताकी भक्ति उपासनाकरै वोह उसकी प्रसन्नताके निमित्त उसीकी तिथिमें व्रतकरै कुछ वे व्रत यह नहीं कहते कि, इस दिनकरो इसदिन मत करो प्रतिपदासे पूर्णिमातक जिस दिन व्रत करना हो करै इसमें यह तौ हो ही नहीं सक्ता कि, सबही देवताओंका उपासक हो, सबहीका व्रतकरै केवल जिसका उपासक हो उसीका व्रत करै, निश्चय पुण्य होगा विष्णुभगवान्‌की पूजामें एकादशीव्रत न करनेसे पाप है उनकी प्रीतिके अर्थ एकादशीव्रत है व्रत रखनेसे ब्रह्मप्राप्ति होती है जैसे एक मनुका श्लोक पूर्व लिख आये हैं (स्वाध्यायेनव्रतैहोमैः) ब्रह्मलोकमें वेश्या थी यह स्वामीजीका

कथन झूंठा है ब्रह्मलोककी वेश्याकी कोई कथा नहीं किन्तु इंद्रलोकी गन्धर्वी तो एकादशीके पुण्यफलसे इन्द्रलोकको गई थी, यदि ऐसे ही कोई देवांगना आजाय तो अब भी जासक्ती है, लोग तो शरीर त्याग वैकुंठको जाते हैं परन्तु विदित होता है स्वामीजी जीवित ही खबर ले आये कि वहां पान नहीं होता, वहां चाबनेको पान न मिलाहोगा यह क्या संन्यासी होकर अहा ? पानहीके लिये लौट आये और यह तो किसी ग्रंथमें नहीं लिखा कि, कुछ खाओ ही मत किन्तु एक समय फलाहार वा दुग्धाहार करना लिखा है दो तीन व्रत निर्जलभी हैं आपने धर्मसिन्धु ग्रंथोंको प्रमाद लिखा है परन्तु यज्ञोपवीतसंस्कारमें तीन दिनका व्रत आपने ही कथन कर दिया है धन्य है इस बुद्धिपर ज्येष्ठके महिनेकी निर्जलासे बडे घबडाये क्या कभी करनी पडी थी बेशक अब तो बुरीही मालूम होती होगी क्योंकि अब तो तोसक तकिये मखमली बिछौनोपर शयन दूध खीर हलुआ भोजन चरण दाबनेको नौकर भला तुमसे व्रत कैसे होसकै इसीकारण व्रत करना बुरा लिखा और जो एकदिनकी निर्जलामें बुराई है तो यह तपस्या संयम नियम सब कुछ बुरे ठहरे विद्या पढनाआदि क्योंकि इन सबही कार्योंमें चित्त और शरीरको कष्ट होता है जाडोंमें जलमें गरमीमें पंचाग्निमें चौमासेमें मैदानमें बैठ तपस्वी तप करतेहैं तो क्या यह सब मिथ्या है नहीं कभी नहीं और देखिये (यह व्रत लिखनेवाले कसाईको दया न आई) यह पुराणकर्ता भगवानव्यासको गालिप्रदान की है मनुजीने बहुत पापियोंको पाप दूर करनेको अतिकृच्छ्रआदि महाकठिन व्रतोंका विधान किया है यथाहि–

एतान्येनांसि सर्वाणि यथोक्तानि पृथक् पृथक्। यैर्यैर्व्रतै रपोह्यंते तानि सम्यङ्‌ निबोधत–अ० ११ श्लो० ७१

यह सब ब्रह्महत्यादिपाप जैसे अलग२कहे गये वे जिन२व्रतों करकै नाशको प्राप्त होतेहैं उनको अच्छीतरहसे सुनो ॥

ब्रह्महा द्वादशसमाः कुटीं कृत्वा वने वसेत्।
भैक्ष्याश्यात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् ॥ ७२ ॥

जो ब्राह्मणको मारे वोह वनमें कुटीको करकै और मुरदेके शिरका चिन्ह करकै भीखमांगके खाता हुआ अपनी शुद्धिके अर्थ बारह बरस वनमें वास करै ७२

कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि ।
सुरापानापनुत्त्यर्थं वालवासा जटी ध्वजी ॥ ९२ ॥

चावलकी खुद्दी वा खली एक समय रातको वर्षदिनतक भक्षणकरै बुरा कपडा और सिरपर बाल रक्खै सुरापात्र चिन्हवाला होवै तौ सुरा पानका पाप दूर हो ॥

चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणंमितम् ।
गोमूत्रेणाचरेत्स्नानंद्वौमासौनियतेन्द्रियः ॥ १०९ ॥

इन्द्रियोंको वश करता हुआ गोमूत्रसे स्नान करै और कृत्रिम लवण-वर्जित हविष्य अन्नको चौथे कालमें भोजनकरै दो मासपर्यन्त ऐसा करै॥

तेभ्योलब्धेन भैक्ष्येण वर्तयन्नेककालिकम् ।
उपस्पृशंस्त्रिषवणंत्वब्देन स विशुध्यति ॥ १२३ ॥

उस प्राप्त हुए भिक्षासे एक काल भोजन करता हुआ त्रिकालस्नानके आचरण करनेवाला एक बरसमें शुद्ध होताहै (इच्छासे शुक्रउत्सर्ग करनेसे)

अतोऽन्यतमयावृत्त्याजीवंस्तु स्नातको द्विजः ।
स्वर्ग्यायुष्ययशस्यानि व्रतानीमानि धारयेत् ॥१३॥ अ०४

किसी प्रकारसे निर्वाह करता हुआ स्नातकद्विज स्वर्ग आयु यशके देनेवाले इन व्रतोंको धारण करै इत्यादि व्रत करनेमें बहुत प्रमाण हैं एकादशीके दिन अन्नमें पाप वसते हैं यह वाक्य भी पुराणोंका नहीं आदित्यपुराण चंद्रखंड स्वामीजीके सत्यार्थप्रकाशमें ही दीखते हैं भूखों मरना यह स्वामीजीने व्रतके अर्थ किये हैं वेदमें देखो "वय ँ सोम व्रतेतव अ० ३ मंत्र ५६ यजु०" तथा अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि यजु० १।५" हे व्रतपते अग्नि मैं व्रत धारण करताहूं इत्यादि इन मंत्रोंमें व्रतका विधान किया है धन्य है व्रतमें ही जब पाप है तौ पुण्य क्या चोरी करना होगा ॥ "व्रतमुपैष्यन्"श०१।१।१।१। शतपथमें पहलेही व्रत करना लिखा है ।

ब्रह्माण्डप्रकरणम् ।

स० पृ० ३४६ पं० २८ देखो जैमिनिने मीमांसामें सब कर्मकाण्ड पतञ्जलि मुनिने योगशास्त्रमें सब उपासनाकाण्ड और व्यास मुनिने शारीरक सूत्रोंमें सब ज्ञानकाण्ड वेदानुकूल लिखा है ॥ ३७३।१९

समीक्षा—इस कथनसे सिद्ध होताहै कि व्यासजीने वेदान्त सब यथार्थ लिखाहै फिर "अनावृत्तिःशब्दात्" इस व्याससूत्रको यह ठीक नहीं ऐसा लिखते स्वामीजीको लज्जा न आई अब वोही पातंजलका व्यासभाष्यसहित एक सूत्र लिखतेहैं जिसमें ५० कोटि योजन पृथ्वी और स्वार्गादिका सविस्तर वर्णनहै ॥

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्—यो० पा० ३ सू० २४

ततः प्रस्तारः सप्तलोकास्तत्रावीचेःप्रभृतिमेरुपृष्ठंयावदित्ये वं भूर्लोको मेरुपृष्ठादारभ्याध्रुवात् ग्रहनक्षत्रताराविचित्रो ऽन्तरिक्षलोकस्ततः परः स्वर्लोकः पंचविधोमाहेन्द्रस्तृती यलोकश्चतुर्थःप्राजापत्यो महर्लोकस्त्रिविधो ब्राह्मः तद्यथाज नलोकस्तपोलोकः सत्यलोक इति । ब्राह्मस्त्रिभूमिकोलोकः प्राजापत्यस्ततो महान् । माहेन्द्रश्चस्वरित्युक्तो दिवितारा भुविप्रजा इति ॥

अर्थ—सूर्यमें सुषुम्नानाडीमें संयम अर्थात् ध्यान धारणासमाधिरूप त्रितयसें योगीको भुवनका ज्ञान होताहै तिस भुवनका विस्तार सप्तलोकहैं अर्वाची नाम अवकाशसे लेकर सुमेरुपर्वतकी पीठतक भूलोकहै तिससे प्रारंभकर ध्रुवपर्यन्त नक्षत्रादि करके विचित्र अन्तरिक्ष लोकहै और तिससे परे स्वर्ग चतुर्थ पंचप्रकारका माहेन्द्रलोकनामक तृतीयलोक है और प्रजापतिका महर्लोकहै और तीन प्रकारका ब्रह्मलोकहै जमलोक तपलोक सत्यलोक ॥

भाष्यम् ।

तत्रावीचेरुपर्य्युपरिनिविष्टाः षण्महानरकभूमयोघनसलि लानलानिलाकाशतमःप्रतिष्ठाः महाकालाम्बरीषरौरवमहा-रौरवकालसूत्रान्धतामिस्राः यत्रस्वकर्मोपार्जितदुःखवेदनाः प्राणिनः कष्टमायुर्दीर्घमाक्षिप्यजायन्ते ॥

भाषार्थः ।

तिन सप्तलोकोंमें अवकाशसे ऊपर २ रचित षट्महानरकस्थान हैं पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश अन्धकारमें प्रतिष्ठित हैं तात्पर्य्य यह है इन षट्महानरक स्थानोंके पृथ्वी आदि परिवार हैं कोटवत् जिस नरक-

स्थानका कोई परिवार नहीं तिसका आकाशही परिवारवत परिवार है इन नरकोंके महाकाल अम्बरीष रौरव महारौरव कालसूत्र अन्धतामिस्र ६ नाम हैं जिन स्थानोंमें अपने कर्मजन्य दुःख वेदनायुक्त प्राणी कष्टरूप दीर्घायुको प्राप्तहोकर जन्मलेते हैं इससे यह विदित है कि नरक एक कोई पृथक् स्थानहै ॥

भाष्यम् ।

ततो महातलरसातलातलसुतलवितलतलातलपाताला ख्यानि सप्त पातालानि भूमिरियमष्टमी सप्तद्वीपावसुमती यस्याः सुमेरुर्मध्ये पर्वतराजः काञ्चनः ॥

तिस नरक स्थानसे ऊपर २ महातल रसातल अतल सुतल वितल तलातल पाताल नामवाले सप्तपाताल हैं और भूमि यह अष्टमी सप्तद्वीपवाली धनवती है जिस भूमिके मध्यमें सुमेरुनाम पर्वतराज सुवर्णका प्रकाशमान उज्ज्वल दीप्तिवाला पृथ्वीरूप पुष्पके मध्यमें कर्णिकावत् शोभायमान अनन्त निवासस्थान युक्त है ॥

भाष्यम् ।

तस्यराजतवैडूर्य्यस्फटिकहेममणिमयानिशृंगाणितत्रवैडूर्य्य प्रभानुरागान्वितोत्पलपत्रश्यामोनभसोदक्षिणभागः श्वेतःपूर्वः स्वच्छः पश्चिमः कुरुण्डकाभउत्तरः दक्षिणपार्श्वेचास्यजम्बूयतोऽ यंजम्बूद्वीपस्तस्यसूर्य्यप्रचाराद्रात्रिंदिवंलग्नमिवविवर्ततेतस्यनील श्वेतशृंगवन्तउदीचीनास्त्रयः पर्वताद्विसहस्रायामास्तदन्तरेषुत्री णिवर्षाणिनवनवयोजनसाहस्राणिरमणकंहिरण्मयमुत्तराःकुरवइति

तिस सुमेरु पर्वतके पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तरकी तरफ क्रमसे राजतमणिमयशृंग वैडूर्य्यमणिमय स्फटिकमणिमय और हेममणिमय शृङ्गहैं तिन चार शृंगोंमेंसे दक्षिणकी ओर वैडूर्य्यमणिमय शृंगहै तिसकी प्रभाके अनुरागयुक्त नील कमलवत् श्याम आकाशका दक्षिण भागहै और ऐसेही राजतमणिमय शृँगकी प्रभानुराग प्रभावसे पूर्वका आकाश भाग श्वेतहै और पश्चिमका स्वच्छहै और उत्तरकुरुण्डकाभ नाम हरेपनसे युक्तहै क्योंकि सुवर्णकी छाया हरेपनके लिये होती है, इससे उत्तरभाग आकाशका सुवर्णमणिमय शृँगकी छायायुक्त होनेसे हराहै, और सुमेरुके दक्षिणकी तरफ जम्बूका वृक्षहै इससे प्रथम सुमेरुके चारों तरफ नवखण्डयुक्त जम्बूद्वीप

है तिस पर्वत सुमेरुके चारों ओर सूर्यप्रचारसे रात्रिदिन लग्नवत् भ्रमण करते हैं और तिस सुमेरुकी उत्तर दिशामें दोदोहजार योजन दीर्घ नीलश्वेत शृंगोंवाले तीन पर्वतहैं तिन पर्वतरूप अन्तरायके होते नौनौ हजार योजन तीन खण्डहैं, रमणक हिरण्यमय उत्तरकुरु नामवाले सु- मेरुके समीप जो प्रथम पर्वतहै, नील शृंगयुक्त होनेसे नील, और श्वेत शृङ्ग पर्वतके मध्यमें रमणकखण्डहै, वर्ष खण्ड दोनों शब्द एकार्थक हैं और श्वेतशृंग पर्वतोंके मध्यमें हिरण्यमय खण्ड है, और श्वेतशृंग पर्वत तथा लवणोदधि उत्तर समुद्रके बीचमें उत्तर कुरुनामक खण्डहै ॥

निषेधहेमकूटहिमशैलाद्दक्षिणतोद्विसाहस्त्रायामास्तदन्तरेषु त्रीणिवर्षाणिनवनवयोजनसाहस्त्राणिहरिवर्षकिंपुरुषंभारतमि तिसुमेरोः प्राचीनाभद्राश्वामाल्यवत्सीमानः प्रतीचीनाः के तुमालगन्धमादनसीमानोमध्येवर्षमिलावृतम् ॥

अर्थ-सुमेरुके दक्षिण दिशामें निषध हेमकूट हिमशैल नामवाले तीन पर्वतहैं दोदोहजार योजन विस्तारवाले तिनके अन्तरायके होते तीन खण्डहैं नौनौहजार योजन हरिवर्ष किंपुरुष भारतनामवाले हैं ति- नमें सुमेरुके निकट जो निषध पर्वत तथा हेमकूट पर्वतहैं तिन दोनोंके मध्यवर्ती हरिवर्ष खण्ड है और हेमकूट तथा हिमशैलके मध्यवर्ति किं- पुरुष खण्डहै और हिमशैल तथा दक्षिण लवण समुद्रके बीचमें भार- तखण्डहै और सुमेरुके पूर्व भद्राश्व खंडहै माल्यवत् पर्वत जिसकी सीमा है आशय यह है कि, जैसे उत्तर दक्षिणमें तीन पर्वतहैं ऐसे सुमेरुके पूर्व पश्चिममें एकएक पर्वतहै पूर्वमें माल्यवान् दक्षिणमें गन्धमादन तो यह सिद्ध हुआ कि, पूर्व समुद्र और माल्यवान् पर्वतके बीचमें भद्राश्वखण्ड है और पश्चिमकी तरफ पश्चिम लवणसमुद्र तथा गन्धमादन पर्वतके बीच केतुमालखण्ड है उत्तरका नीलपर्वत और दक्षिणका निषधपर्वत पूर्वका माल्यवान्पर्वत पश्चिमका गन्धमादनपर्वत यह चार पर्वत चारों तरफ रहनेवाले एक ओर और एक ओर सुमेरुपर्वत कीलीके समान स्थानापन्न और मध्यमें वर्ष इलावृत है अर्थात् सुमेरुपर्वत के चौगिर्द चार पर्वतोंके बीचमें इलावृत खण्ड है ॥

भाष्यम् ।

तदेतद्योजनशतसहस्रंसुमेरोर्दिशिदिशितदर्द्धेनव्यूढंसखल्वयंश तसाहस्त्रायामोजम्बूद्वीपस्ततोद्विगुणेनलवणोदधिनावलयाकृति

नावेष्टितःततश्चद्विगुणाःशाककुशक्रौञ्चशाल्मलगोमेधपुष्कर द्वीपाः सप्तसमुद्राश्चसर्षपराशिकल्पाः सविचित्रशैलावतंसालव णेक्षुरससुरासर्पिर्दधिमण्डक्षीरस्वादूदकसप्तसमुद्रवेष्टितावलया कृतयोलोकालोकपर्वतपरिवाराःपंचाशद्योजनकोटिपरिसंख्याताः

अर्थ–अब सकल जम्बूद्वीपका परिमाण कहते हैं सो यह सौहजार योजन सुमेरुकी सब दिशाओंमें लंबेपनमें है और तिससे आधे भाग-करकै चौड़ाईमें है सो यह सौहजार योजन विस्तारवाला जम्बूद्वीप है तिससे द्विगुण लवणसमुद्र कंकणाकारसे लिपटा है और तिससे उत्तर उत्तर द्विगुण, शाक, कुश, क्रौञ्च, शाल्मल, गोमेध, पुष्कर इन नामवा-ले द्वीपहैं सप्तसमुद्र तौ सर्षपकी राशितुल्य हैं और द्वीप संपूर्ण विचित्र पर्वतरूप शिरोवाले हैं और लवण, इक्षुरस, सुरा, सर्पि, दधिमण्ड, क्षीर, स्वादूदक इन नामवाले सात समुद्रोंसे चारों ओर घेरे हुए हैं कंकणा-कार लोकालोक पर्वत परिवृत हैं यह सब पचास करोड़ योजन परिमा-णवाले हैं ॥

भाष्यम् ।

तदेतत्सर्वंसुप्रतिष्ठितसंस्थानमण्डलमध्येव्यूढम् ।

अर्थ–सो यह संपूर्ण वसुधामंडल सुप्रतिष्ठित स्थानोंवाला ब्रह्माण्डके मध्यमें व्यूढ अर्थात् संक्षिप्त हो रहा है ॥

भाष्यम् ।

अण्डश्चप्रधानस्याणोरवयवोयथाकाशेखद्योतइतितत्रपाताले जलधौपर्वतेष्वेतेषुदेवनिकायाऽसुरगंधर्वकिन्नरकिंपुरुषयक्षरा क्षसभूतप्रेतपिशाचापस्मारकाऽप्सरोब्रह्मराक्षसकूष्माण्डविना यकाः प्रतिवसंति सर्वेषुद्वीपेषुपुण्यात्मानोदेवमनुष्याः सुमे रुस्त्रिदशानामुद्यानभूमिस्तत्र मिश्रवनंनंदनंचैत्ररथंसुमानस मित्युद्यानानि सुधर्मा देवसभा सुदर्शनंपुरंवैजयंतः प्रासादः ग्रहनक्षत्रतारकास्तुध्रुवेनिबद्धा वायुविक्षेपनियमेनोपलक्षित प्रचाराःसुमेरोरुपर्युपरिसंनिविष्टाविपरिवर्त्तन्ते माहेन्द्रनिवा सिनः षड्देवनिकायास्त्रिदशाअग्निष्वात्तायाम्यास्तुषिताः ॥

अर्थ-ब्रह्माण्ड अत्यन्त सूक्ष्म प्रधानका एक अवयव है जैसे आकाशमें खद्योत होता है तैसे प्रधानमें अण्ड है (अब वोह भुवन वृत्तान्त है जिसके हेतु यह सब लिखा है देवजाति सब मनुष्योंसे भिन्न है सो दिखाते हैं जिस स्थानमें जो जो रहते हैं सो सो दिखाते हैं) पाताल, समुद्र, पर्वत, जो पहले निर्णय कर चुके हैं तिनमें देवनिकाय नाम देवजाति असुर, गधर्व, किन्नर, किम्पुरुष इतने नामवाले निवास करते हैं और सर्व द्वीपोंमें पुण्यात्मा देवता तथा मनुष्य निवास करते हैं और सुमेरु त्रिदशनामक देवताओंकी उद्यानभूमि है तिसमें मिश्रवन, नन्दनवन, चैत्ररथवन, सुमानसवन यह बगीचे हैं सुधर्मा देवसभा है सुदर्शन पुर है वैजयन्त मंदिर है इतने स्थान सुमेरुपर हैं और ग्रह, नक्षत्र तारागण, ध्रुवमें बंधे हुए हैं वायुके व्यापार नियमसे उनका प्रचार देखा जाता है सुमेरुके ऊपर ऊपर संबद्धही विचरते हैं माहेन्द्रलोकमें षट् देवजाति हैं त्रिदश, अग्निष्वात्त, याम्य और तुषित यह छःजाति देवतोंकीहैं माहिन्द्रलोकमें ।

व्यासभाष्यम् ।

अपरिनिर्मितवशवर्तिनः परिनिर्मितवशवर्तिनश्चेतिसर्वेसंकल्प सिद्धाःअणिमाद्यैश्वर्योपपन्नाः कल्पायुषोवृन्दारकाः कामभो गिनऔपपादिकदेहाउत्तमानुकूलाभिरप्सरोभिःकृतपरिवाराः

भाषार्थः ।

और अपरिनिर्मितवर्ती परिनिर्मितवशवता संपूर्ण सत्यसंकल्प अणिमादि ऐश्वर्ययुक्त हैं, कल्पपर्यन्त आयुवाले हैं वृंदारक नाम सबसे पूजनयोग्य विषय भोग प्रधानतावाले हैं, और औपपादिकदेह; नाम माता पिताके संयोगके विनाही स्वसंकल्पसे दिव्यदेही सूक्ष्मभूतोंसे उत्पन्नकर व्यवहार करते हैं (इससे यह भी स्वामीजीका कथन असिद्ध होगया कि, सृष्टिक्रमके विरुद्ध विना माता पिताके कोई उत्पन्न नहीं होता) वैशेषिकमें लिखाहै कि-

सन्त्ययोनिजाः-वै० अ०४ आ० २ स० १०

अयोनिजभी ब्रह्मादिकके शरीर होते हैं और वोह देवता सर्व स्त्रीगुणसंपन्न अप्सराओंसे युक्त हैं सत्यसंकल्प अयोनिज शरीर अणिमादि सिद्धिके प्रभावसे सम्पन्न होकर यथेष्ट विचरते हैं ॥

व्यासभाष्यम् ।

महतिलोकेप्राजापत्ये पंचविधोदेवनिकायः कुमुदाऋभवःप्रत र्द्दनाअञ्जनाभाः प्रचिताभा इत्येतेमहाभूतवशिनोध्यानाहाराः कल्पसहस्रायुषः प्रथमेब्रह्मणोजनलोके चतुर्विधोदेवनिकायो ब्रह्मपुरोहिताः ब्रह्मकायिकाः ब्रह्ममहाकायिकाअमरा इति ते भूतेन्द्रियवशिनोद्विगुणद्विगुणोत्तरायुषोद्वितीये तपसिलोके त्रिविधोदेवनिकायः।अभास्वरामहाभास्वराः सत्यमहाभास्व रा इतितेभूतेन्द्रियप्रकृतिवशिनः द्विगुणद्विगुणोत्तरायुषः सर्वे ध्यानाहाराः ऊर्द्धरेतसऊर्द्धमप्रीतिहतज्ञानाअधरभूमिष्वनावृ-तज्ञानविषयाः तृतीयेब्रह्मणःसत्यलोकेचत्वारोदेवनिकाया अ च्युताः शुद्धनिवासाः सत्याभाः संज्ञासंज्ञिनश्चेति ।

प्रजापतिके महत् लोकमें पांच देवजाति हैं कुमुद, ऋषभ, प्रतर्द्दन, अं-जनाभ, प्रचिताभ यह संपूर्ण देवता महाभूत वशी हैं ध्यानमात्र आहा रवाले हैं सहस्रकल्पकी उनकी आयु होती है ब्रह्माके प्रथम जनलोकमें चार प्रकारकी देवजाती हैं ब्रह्मपुरोहित, ब्रह्मकायिक, ब्रह्ममहाकायिक और अमर यह सम्पूर्ण देवता भूत इन्द्रियवशी हैं आशय यह है कि, पृथिव्यादि पंचभूत और श्रोत्रादि इन्द्रियगण उन देवताओंकी इच्छासे स्व स्व कार्यमें प्रवृत्त होते हैं और उनसे दूनी आयुवाले हैं और दूसरे तपलोकमें तीन प्रकारकी देवजाती हैं आभास्वर, महाभास्वर और सत्यमहाभा स्वर यह देवता सम्पूर्ण भूत इन्द्रिय प्रकृतिवशीहैं प्रकृतिनाम तन्मात्राकाहै तन्मात्रा तिन देवताओंकी इच्छासे शरीराकार वा विषया कार परिणामको प्राप्त होतेहैं और उत्तर २ द्विगुण आयुवाले हैं और ध्यानसे तृप्त रहते हैं ऊर्द्धरेता ब्रह्मचर्यसम्पन्न हैं ऊर्ध्व लोकमें अप्रतिबद्ध ज्ञानवाले हैं पृथ्वी मूलसे लेकर तपोलोकपर्यन्त सब पदार्थोंके सूक्ष्मव्यवहितव्यवहारको जानते हैं तृतीय सत्य लोकमें देवताओंकी चार जाती हैं अच्युत, शुद्धनिवास, सत्याभ, संज्ञासंज्ञी ॥

व्यासभाष्यम् ।

अकृतभुवनन्यासाः स्वप्रतिष्ठाउपर्य्युपरिस्थिताः प्रधानवशि नोयावत्स्वर्गायुषः तत्राच्युताः सवितर्कध्यानसुखाः शुद्धनि

वासाः सविचारध्यानसुखाः सत्यभाआनंदमात्रध्यानसुखाःसं ज्ञासंज्ञिनश्चास्मितामात्रध्यानसुखास्तेऽपित्रैलोक्यमध्येप्रतिति ष्ठन्तितएतेसत्यलोकाः सर्वेंएवब्रह्मलोकाःविदेहप्रकृतिलयास्तु मोक्षपदेवर्तन्तेनलोकमध्येन्यस्ता इत्येतद्योगिनासाक्षात्कर्त व्यंसूर्यद्वारेसंयमंकृत्वाततोन्यत्रापिएवंतावदभ्यसेद्यावदिदंसर्वं दृष्टमिति ॥

भाषार्थः ।

यह चार प्रकारके अच्युतादि संज्ञावाले देवता अकृतभुवनन्यास नाम निवास स्थानसे वर्जित स्वप्रतिष्ठानाम आधारान्तररहित हैं और सबके ऊपर स्थित हैं और प्रधान वशी हैं अर्थात् इनके संकल्पमें सत्त्वादिगुण परिणामको प्राप्त होते हैं और ब्रह्मलोककी स्थिति पर्यन्त आयुवाले हैं इस स्थानमें ब्रह्मलोकका नाम ही स्वर्गहै तीन देवोंमें अच्युत देवता तौ सवितर्क ध्यानसे तृप्त रहतेहैं और शुद्धनिवास सविचार ध्यानसे तृप्तहैं संज्ञासंज्ञि अस्मिता ध्यानसे तृप्त हैं वे अस्मि ध्यानवालेभी देवता त्रिलोकीके मध्यमेंही स्थितहैं यह संपूर्ण ब्रह्मलोकहै जनलोकादि और विदेह तथा प्रकृतिलय योगिजन मोक्षपदमें वर्तमान हैं इसकारण लोकोंमें तिनका प्रवेश नहींकरा भाव यह है कि, बुद्धिवृत्तिपरिणामवालेही लोकयात्रामें वर्तमान हैं और बुद्धिवृत्तिपरिणाम रहित प्रकृतिमें लीन रहते हैं विदेह और प्रकृतिलय योगीजनोंमें भेद इतना है कि, विदेह तौ स्थूलशरीररहित केवल लिङ्गशरीरमें सावरणब्रह्माण्डके अन्तर्गत प्रकृतिमें लीनहोकर भोगोंको भोगते हैं परन्तु प्रकृतिलयोंकी अपेक्षासे मलिन हैं वोह भोग और प्रकृतिलय योगीजन केवलसत्वप्रधान निरावरणप्रकृतिमें वर्तमान निर्मल प्रकृतिकार्य विषयभोग भोगते हैं और महाऐश्वर्य संपन्न होतेहैं और विदेहोंके नियन्ता होकर वर्तमानहैं वेही प्रकृतिलय योगीजन महा न् कोटिमें कहे जातेहैं यह संपूर्ण पूर्ववर्णित ब्रह्माण्ड योगीको साक्षात् कर्तव्य है इससे यह बात सिद्ध होगई कि, देवता मनुष्य असुरआदि सब पृथक् स्थानोंमें रहते हैं देवता विद्वान्मनुष्योंका नाम नहींहै पृथ्वीका विस्तार जो कुछ पुराणोंमें लिखा है सो ठीक है ॥

इसीप्रकार मोहनादि सब प्रयोग सत्यहैं मंत्र गुप्त हैं उनका विधान गोप्य हैं इस कारण प्रयोगविधि नहीं लिखी है जो पवित्रदेशमें मंत्र आराधन करें निश्चय सिद्धि होती है और योगसे भी अष्टसिद्धि प्राप्त होती हैं ॥

भस्मासुरके पीछे भागनेसे जो शिवजी भागे थे इसकारण लोग डमरू बजाते बंबं शब्द करते हैं यह ३५२ पृष्ठका आक्षेप असत्य है ॥

स० प्र० पृ० ३५० पं० ८ एकमनुष्य वृक्षके नीचे सोता था सोता सोता ही मरगया काकने विष्ठा करदी ललाटपर तिलकाकार होगई (पं० १४) विष्णुके दूत उसे सुखसे वैकुंठमें ले गये इत्यादि ॥ ३७९। १५

समीक्षा–स्वामीजीका यह कथन सम्पूर्ण ही असत्यहै कहीं भक्तमालमें ऐसी कथा नहीं है यह झूंठी कथा लिखी है ॥ नाभाजीकी वा हमारी भक्तमाल पढो।

इसके आगे स्वामीजीने कबीर नानक दादूपंथी आदिकोंका खंडन कियाहै जो जो बातें इन्होंने लिखी हैं यद्यपि वोह संस्कृतसे बहुत कुछ मिलतीहैं परन्तु भाषामें हैं वेदानुकूल जो उसमें है इस वैदिकधर्मकी पुष्टिसे इनके ग्रंथोंका भी मंडन होगया हमारा आशय वैदिकधर्मोंके दिखानेका है वेदमें जो कुछ लिखा है सो सत्य है जो इसके विरुद्ध है वोह असत्य हैं, सिद्धान्त यह है कि, जो वेदवाक्य हैं उनका मानना सब वर्णोंका परम धर्म है उसीके अनुसार जो कुछ भाषामें जिसने लिखा है वोह माननीय है इसके अतिरिक्त अप्रमाण है इसकारण कबीरादिके ग्रंथोंके खंडन मंडनसे हमारा कुछ प्रयोजन नहीं ॥

स० प्र० पृ० ३७९ पं० २३ जो विद्याका चिन्ह यज्ञोपवीत और शिखा है ॥ ४०८। १९

समीक्षा–धन्य है स्वामीजी यह संस्कार विद्याका चिन्ह है तो और संस्कार काहेके चिन्ह हैं भला गर्भाधान काहेके वास्ते है और इनका चिन्ह क्या है खूब विद्याकी वृद्धिकरी, यदि यह विद्याके चिन्ह होते तौ विद्या पढनेके उपरान्त चोटी और यज्ञोपवीत धारण कराया जाता फिर तीनी वर्णोंको शिखासूत्रकी कड़ी आज्ञा क्यों और जो विद्या न पढे होते उनके शिखा सूत्र न होते जो तीन वर्णोंमें हैं उनके भी क्या यज्ञोपवीत तगमा है जो पढने उपरान्त पहराया जाता चुटिया रखाई जाती फिर ब्राह्मणको (गर्भाष्टमेब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्) गर्भके आठवें वर्षमें यज्ञोपवीत करना क्यों लिखा, क्या जबतक विद्या न होती तबतक घोटम घोट ही रहते इससे शिखा सूत्रको विद्याका चिन्ह बताना भूल है।

स० प्र० पृ० ३८५ पं० १८ कलियुग नाम कालका है कालनिष्क्रिय होनेसे कुछ धर्माधर्मके करनेमें साधक बाधक नहीं. ४१४ । २८

समीक्षा–स्वामीजी कहते हैं कि, काल धर्ममें साधक बाधक नहीं काल तो सबही कुछ है समयानुसार मनुष्य उत्पन्न होता बढता पुनः नष्ट होता है समयमें ही धान्य बोयेजाते उत्पन्न होते कटते हैं कालसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति पालन प्रलय होती हैं जैसा समय वैसा ही उसका फल होता है जैसा युग होता है वैसे ही उसके धर्म होते हैं इसीप्रकार कलियुगमें पापादि अधिक होते हैं और अपनी ४३२००० वर्षतक अवधि भोगेगा तबतक अनेक अधर्म पाप संसारमें रहैंगे यह अट्ठाईसवां कलियुग है यदि युगोंकी अवस्था न मानी जायगी तो यह सृष्टिके उत्पन्न होनेके वर्ष जो आपने लिखे हैं कहांसे मालूम होगये इससे जैसा समय होगा वैसाही धर्म होगा कलियुग खोटा समय है इससे इसमें खोटी ही बातें होंगी इससे ऊपर लिखी बात कि, समय धर्माधर्मके करनेमें साधक बाधक नहीं यह कहना ठीक नहीं ॥

स० प्र० पृ० ३८६ पं० १० (प्रश्न) गिरी पुरी भारती आदि गुसांई तो अच्छे हैं पं० १३ (उत्तर) यह दशनाम पीछेसे कल्पित किये हैं सनातन नहीं किन्तु उनकी मंडलियां केवल भोजनार्थ हैं ॥ ४१५।२५

समीक्षा–सब महात्मा लोग इस बातको जानतेहैं कि, दशनाम जो संन्यासियोंके हैं उसीके अन्तर्गत " सरस्वती " भी है यदि यह नवीन कल्पित नाम मिथ्या है तो आपने अपने नामके अन्तमें (सरस्वती) क्यों लगाया जो संन्यासियोंके नामोंमें पीछे लगा रहताहै कोई प्राचीन नाम धरा होता और स्वामीजीके शिष्यभी तो इस उपदेशको नहीं मानते और इस सरस्वती शब्दकी कलगी लगायेही फिरते हैं जैसे अक्षयानंद सरस्वती ब्रह्मानंद पूर्णानंद ईश्वरानंदादिस०जो देखो नन्द ही नन्द बना फिरताहै "वाह जो थूकै वो ही मुंहमें आवै" आगेसे सावधान रहना कि, कोई दयानंदी संन्यासी आनंदसरस्वती पर नाम न रखने पावै.

स० प्र० पृ० ३९० पं० ७ स्वायंभू मनुसे लेकर महाराज युधिष्ठिरपर्यन्तका इतिहास महाभारतादिमें लिखाही है. ४१९ । २७

समीक्षा–जहां अपना मतलब आया वहीं महाभारतभी मानलिया और यदि और कोई महाभारतका कुछ प्रमाण दें तो झट कह दें कि, प्रमाण नहीं फिर यहां स्वायंभू मनुसे महाराज रामचन्द्रतक १०० पीढीके लगभग होती हैं यदि एक पीढी १००वर्षकीभी मान ले तो १००००

वर्ष रामचंद्रजीके समयतक आते हैं रामचन्द्रजी त्रेताके अन्तमें हुए हैं जिसमें १७२८००० सतयुगके बीते और १२८६००० त्रेतायुगके बीतगये तौ १०० वर्षकी आयु माननेसे यह व्यवस्था कैसे ठीक होगी इसकारण उस समय बहुत बड़ी आयु होती थी.

यथारामायणे.

षष्टिवर्षसहस्राणिजातस्यममकौशिक-वाल्मीकि बा०

हे विश्वामित्रजी मुझे ६०००० वर्षकी अवस्थामें रामचंद्र प्राप्त हुए हैं यह विश्वामित्रजीसे दशरथजीने जब वे बुलानेको आयेथे तौ कहाथा इससे विदित है कि, आयु बड़ी होती थी मनुके समयसे रामचन्द्रके समयतक तथा अब भी ब्रह्मलोकमें वसिष्ठजी विद्यमान हैं इत्यादि यदि आयु अधिक न मानी जायगी तौ युगोंकी व्यवस्था बिगड़जायगी ॥

इसके उपरान्त पृष्ठ ३९४ से ५८४ तक जैनी ईसाई मुसलमानोंका खंडन स्वामीजीने किया है जिसके विषयमें भला बुरा लिखनेसे हमारा कोईभी प्रयोजन नहीं है क्योंकि वोह वेदमतके अनुकूल न होनेसे हमको इष्ट नहीं है यदि वे अपनी हानि समझे तो इसका स्वामीको उत्तर दे लेंगे हमें कुछ प्रयोजन नहीं ॥

स० प्र० पृ० ५८५ पं० ११ मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतान्तर चलानेका लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है ॥ ६२९। ११

समीक्षा-धन्य है नया मत भी खडा करदिया प्राचीनरीति छोड नईही चलाई शास्त्रोंको जडसे खोदडाला मूर्तिपूजन, श्राद्ध, तर्पण, मंत्र, जप, तप, सब झूंठा बताया नियोगादि कुकर्म करना चलाया, आर्य्यसमाज जहाँ तहाँ स्थापित कर ब्रह्मणोंको पोप बताया, जाति वर्ण सब मिटाया, शूद्रको वेद पढनेका ढंग निकाला, अलग वेदभाष्य रचा, प्राचीनरीतिके उडानेको कुछ कसर न रक्खी, इसी हेतु सत्यार्थप्रकाश वेदभाष्यभूमिकादि ग्रन्थ रचे, वेदमें रेल तार निकाला, ईश्वर पाप दूर नहीं करता, नाम जपनेसे कुछ नहीं होता, मुक्तिसे लौटना इत्यादि सब अपनाही मत स्थापित किया है और कहते हैं मैंने कुछ नहीं किया इस झूंठका क्या ठिकाना और मतमें क्या जहात बोलते ॥ इसी प्रकार आजकल राधास्वामी सन्तमति ये घटरामायणीमत चलेहैं सो सर्वथा मिथ्याही है ॥

इसीके आगे स्वामीजीने स्वमन्तव्य लिखे हैं वोह सत्यार्थप्रकाशके अन्तर्गत ही आगये इससे इनका भी खंडन होगया और स्वमन्तव्य तौ

स्वयंही खंडनीय है क्योंकि वोह वेद और विद्वानोंके तौ मन्तव्य नहीं घरमें बेटेका नाम राजा धरलिया तौ उससे क्या ऐसेही यह स्वमन्तव्य है सो इनसे क्या लाभ है केवल बुद्धिको भ्रमजालमें डालनेको लिखेहैं ॥

स० प्र० पृ० ५८९ पं० २३ आर्य्यावर्तदेश इस भूमिका नाम इस लिये है कि,इसमें आदि सृष्टिसे आर्य्यलोग निवास करते हैं ॥

समीक्षा-स्वामीजीकी बुद्धिका चमत्कार पूर्ण लिखा था कि आर्य्य त्रिविष्टप अर्थात तिब्बतसे आये हैं अब स्वामीजीने कौनसी भंगकी तरंगमें लिखादिया कि आर्य्य सदासे यहां रहते हैं धन्य है॥६३४।७

इसप्रकार यह५८९पृष्ठपर्यन्त सन्१८८४का छापा हुआ सत्यार्थप्रकाश खण्डन हुआ नवीन छपे हुओंमें कदाचित् पृष्ठ पंक्तिका भेद होजाय तौ पाठकगण उसका विषय आगे पीछे देख लेंगे इस ग्रन्थमें समीक्षा कर सनातन वैदिकमतका स्थापन और दयानंदकल्पित आधुनिकमतका खंडन कियाहै इसमें सम्पूर्ण मन्तव्य वेदसे निर्णीत कर लिखे हैं और जहाँ कहीं दूसरे ग्रंथोंका वर्णन कियाहै वोह उन्हीका है जिनको स्वामीजीने अपने ग्रंथ सत्यार्थप्रकाशमें माना है मैंने यह ग्रंथद्रोह वा ईर्ष्यासे किसीका मन दुखानेको नहीं बनाया है किन्तु सत्यासत्यके निर्णयके वास्ते रचना की है जो पुरुष स्वामीजीके निस्सार युक्तियोंसे अपना सनातन मत झट छोड बैठते हैं वे पहले पक्षपातरहित होकर इसे विचारैं पीछे जो मनमें आवै सो करैं जो जिज्ञासु हैं वे निश्चय इससे लाभ उठावैंगे इसकी भाषाभी यथाशक्ति सरल करी है इस ग्रंथके अवलोकनसे आर्यगण सब प्रकारसे धर्मका निर्णय कर चारोंपदार्थके अधिकारी होंगे और महाशय शास्त्रोंका गूढतत्व जानैंगे यदि इसमें कहीं भ्रमवश कोई बात अनुचित लिखीगई हो उसे क्षमा करैंगे और हंसोंकी समान गुणग्राही होंगे आप महाशयोंके ही आदरसे यह ग्रंथ प्रकाशित होगा परमेश्वर सच्चिदानंद श्रोता वक्ताका कल्याण करै शं भवतु॥

इति श्रीमद्दयानंदतिमिरभास्करे मिश्रज्वालाप्रसादविरचिते सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतस्य-एकादशसमुल्लासस्य खंडनं समाप्तम् । १० सि० १८९०

पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र.

दूसरी पृष्ठ पंक्ति पांचवीबार के छपे सत्यार्थप्रकाशकी हैं ।

विज्ञापन ।

१२ अ० २६ मं २४ के भावार्थमें स्त्री पुरुष उत्कंठापूर्वक संयोग करकै जिन सन्तानोंको उत्पन्न करती हैं वे उत्तम गुणवाले होते हैं ॥

१३ अ० २७ मंत्र ३४ के पदार्थमें हेजमाईके तुल्य विद्वान् ॥

१४ अ० २८ मं० ३२ का भावार्थ हे मनुष्यो जैसे बैल गायोंको गाभिन करकै पशुओंको बढाता है वैसे ही गृहस्थलोग स्त्रियोंको गर्भवतीकर प्रजाको बढावैं ॥

१५ अ० २९ मं० ४० के भावार्थमें माताके तुल्य सुख देनेवाली पत्नी और विजय सुखको प्राप्तहों ॥

१६ अ० ३० मं- १६ पदार्थमें हे जगदीश्वर ! मच्छियोंसे जीनेवालोंको उत्पन्न कीजिये ॥

१७ अ० ३० मं० २१ के पदार्थमें हे परमेश्वर ! सांप आदिको उत्पन्न कीजिये ॥

१८ अ० १९ मं० ७६ के पदार्थ और भावार्थमें अति अनुचित अकथनीय अश्लील लेखहै ॥

१९ अ० १९ मंत्र ८८ का भावार्थ स्त्री पुरुष गर्भाधानके समय परस्पर मिलकर प्रेमसे पूरित हो मुखके साथ मुख आंखके साथ आंख मनके साथ मन शरीरके साथ शरीरका अनुसंधान करकै गर्भको धारण करैं जिससे कुरूप और वक्राङ्ग सन्तान न हो ॥

२० अ० २० मं० ९ के पदार्थमें अनुचित अकथनीय अश्लीलहै ॥

२१ अ० २५ मं० १ के पदार्थमें अकथनीय अश्लीलहै और अण्डबण्ड अर्थसे विद्यार्थियोंकी दुर्दशा की है ॥

२२ अ० २५ मं० ७ सर्वथा अश्लीलहै अर्थात् स्थूल पायु इन्द्रीसे सर्प पकड़नेको कहा है ॥

२३ अ० ३७ मंत्र ९ पदार्थ हे मनुष्य यज्ञ स्थलमें घोड़ेकी लीदसे तुझको पृथिव्यादि ज्ञानके लिये तत्वबोधके उत्तम अवयवके लिये यज्ञसिद्धिके लिये सम्यक् पकाताहूं ॥

२४ अ० ६ मं० १४ में गुरु शिष्यकी गुह्येन्द्री पवित्र करै (इसे दयानंदी वेदमें देखना तो) इत्यादि बुद्धिमान् इतनेंमेंही समझ लेंगे कि, दयानंदजीने वेदोंमे कैसी २ बातें लिखी हैं ॥

न्याय करना दया करनी यह निर्विकारमें संभव कहां अथवा यह ज्ञान ईश्वरका परोक्ष है वा अपरोक्ष है और संशयकी निवृत्ति परोक्ष वा अपरोक्ष ज्ञानसे होती है परोक्ष (जो प्रत्यक्ष न हो) ज्ञानसे तौ संशयकी निवृत्ति हो नहीं सक्ती क्योंकि जो देखा नहीं उसका होना तथा गुण कर्मोंका निश्चय नहीं हो सक्ता इसकारण जबतक ईश्वरके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान न होगा तबतक उपरोक्त गुण उसमें कैसे सम्भव हो सक्ते हैं और उपासक उपासना किसकी करै जब कि, ईश्वरका साक्षात्कार ही नहीं तौ यह नाम कैसे कल्पना कर लिये निराकारके भी और नाम किसीके ऊपर दया करते देखा जो दयालु नाम रखलिया यह तौ नाम जभी सिद्ध होसकेंगे जब ईश्वरका साकार अवतारधारी निश्चय करलोगे निराकारमें यह नाम कल्पनामात्र है ॥

३ वेद सत्यविद्याओंका पुस्तक है वेदका पढना और सुनना सब आर्योंका परम धर्म है ॥

समीक्षा-जब वेदका पढाना पढना ही परम धर्महै तौ आपने सत्यार्थप्रकाशादि ग्रंथोंमें महाभारत मनुस्मृति शतपथब्राह्मणवाक्य वेदानुकूल मानकर क्यों ग्रहण किये यदि मंत्रभागहीमें सब धर्मोंकी प्रवृत्ति निवृत्ति सब पदार्थोंकी उत्पत्ति स्थिति लय और जो कुछ सृष्टि और कल्याणके लिये होना चाहिये लिखा है तौ पृथक् पृथक् स्थानपर प्रमाणकेलिये केवल मंत्रभागकीही श्रुति पूर्ण थी मनुस्मृति महाभारत और २ पुस्तकों के श्लोकोंके और ब्राह्मणभागके प्रमाण देनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि मन्त्रभागको आप स्वतः प्रमाण मानते हैं तौ मंत्रोंके ही प्रमाणसे सृष्टिक्रम युगोंकी व्यवस्था ब्रह्माके दिन वर्षकल्पकी संख्या प्रतिमापूजनका निषेध अवतारोंका न होना दायभाग ब्राह्मणादिलक्षण सब कुछ उसीसे साबित करते परन्तु आपने सत्यार्थप्रकाशादिमें जो और ग्रंथोंके प्रमाण लिखे हैं इनकी क्या आवश्यकता थी यदि वे वेदानुकूल लिखे हैं तौ मंत्र ही क्यों न लिख दिये, यह तौ आपने ऐसा किया जैसा कोई आम छोड़ बबूरपर गिरै, चाहिये था कि केवल मंत्र ही तौ अपने ग्रंथोंमें लिखे रहने देते शेष सब निकाल डालते ।

४ सत्यका ग्रहण और असत्के छोडनेमें सदा उद्यत रहना चाहिये ॥

समीक्षा-यह नियम विवेकान्तर्गतहै जबतक विवेक न होगा तबतक सत् असत्की परीक्षा कैसे होगी यदि कोई कहै ईश्वर सत्य है, या जगत जगत् तो नाशवान् होनेसे असत् और ईश्वर नित्य होनेसे सत् है, जब

दिशामें (अजस्य) बकरेके (अनूकम्) वक्रीवाले स्थानसे सिद्धभातको (धेहि) धरो (ध्रुवायाम्) ध्रुवयाभूमि जो पादतलस्थाहै अर्थात् अपने पादकेइधर उधर स्थित यद्वा नीच स्थान जो उत्तमोंके बैठनेकी अपेक्षासे है उस तर्फमें (पाजस्यम्)बलके लिये जो अंग उनके मांससे पकाये भात-को (धेहि) धरो (मध्यात्) बीचसे (मध्यम्) मध्यभागके मांससे पकाये भातको (अन्तरिक्षे) अवकाशमें (धेहि) धरो ॥

अब पाठक महाशय समझ गये होंगे दयानन्दी कैसी विचित्र लीला है हम बहुतसी घिनोनीबातोंसे पाठकोंका चित्त घृणित करना नहीं चाहते परन्तु इतना कहते हैं२२०पृष्ठकी यह पुस्तक मांसके पकाने बांट-नेके लिये ही वर्णनकीहै और अगले मंत्रोंमें विद्वानोंको मांस बांटनेकी आज्ञा सुनाई है ॥

इतनेहीसे हम आपको सूचित करते हैं कि,इन लोगोंकी बाहरी निय-मोंकी तडक पर न जाकर तनक भीतरी भेद तौ देखिये सब पोल खुल जायगी कहीं घास खानेका हट कहीं मांस पर विचार इस दयानन्दी लीला को पाठकोंके विचारही पर छोडते हैं ॥

पं०ज्वालाप्रसादमिश्र.

स्वामी दयानंदजीकृत दश नियमोंका खंडन

जो कि समाजके मूलकारण हैं.

१ सबसत् विद्या और जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है ॥

समीक्षा–जब सबका आदिमूल परमेश्वर है तौ स्वमन्तव्य ६पृ०५८७ में प्रकृति परमाणु और जीवको नित्य मानना इस नियमोंके विरुद्ध है दो-नोंमें कौन बात सच्ची है ॥

२ ईश्वर जो सच्चिदानंदस्वरूप निर्विकार सर्व शक्तिमान् न्यायकारी दयालु अजन्मा अनंत निर्विकार अनादि अनुपम सर्वाधार सर्वईश्वर सर्वव्यापक अन्तर्यामी अजर अमर अभय नित्यपवित्र और सृष्टिका कर्ता है उसीकी उपासना करनी योग्यहै ॥

समीक्षा–यह दूसरा नियम सर्वथा अशुद्ध है जब ईश्वर निर्विकार है तौ उसमें सृष्टि रचनाका विकार कैसे है और वोह सृष्टि क्यों करता है और जो सर्वशक्तिमान् है तौ जो चाहे सो क्यों नही करसक्ता

जगत् मिथ्या ईश्वर सत्य है, तो किसका ग्रहण किसका त्याग करै, ग्रहण और त्याग दूसरे पदार्थका होताहै जब दूसरा पदार्थ असत्य ही है तौ त्याग किसका इस नियमका धर्मसे कुछभी सम्बंध नहीं है यह नियम निश्चयरहित है मिथ्या पदार्थोंका क्या ग्रहण क्या त्याग हो सक्ता है॥और सत्यार्थप्रकाशके असत्य अप्रमाण और वचनोंका आजतक त्यागन हुआ

५ सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत् औ असत्का विचार कर करना चाहिये ।

समीक्षा-स्वामीजीने ईसाइयोंके दश नियमोंके अनुसार अपने नियम बनाये हैं इसमें भी वही वार्ता है जो४नियममें है पहले तो यह देखना चाहिये कि,शरीरका क्या धर्म है और आत्माका क्या धर्म है शरीर जड और दुःखरूपहै उसकी उत्पत्ति घटना बढना नष्ट होना प्रत्यक्ष है,आत्मा दृश्यहै नित्यैकरस चैतन्य जन्ममरणसे रहित है जो जन्म मरणसे रहित है सोई आनंद है फिर आत्मामें अनात्माभिमान और अनात्मामें आत्माभिमान कैसा फिर कैसे धर्मानुसार सत् असत्का विचार करकै नियम किया और यह भी आश्चर्य है कि, निरवयव चैतन्य आत्माको माना, और प्रभंजन माना, निरयव आकाश जड तो सर्वव्यापक और निरयव चैतन्य आत्मा प्रभंजन तो बताओ यह धर्म अनुसार सत्यका ग्रहण है या असत्यका त्याग है, जब निरवयव है तो दो या तीनकी गाथा एकही स्वरूपमें कैसे हो सक्ती है ॥

६ संसारका उपकार करना इस समाजका मुख्य प्रयोजन है अर्थात शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ॥

समीक्षा-इसमें यह बात विचारने योग्य है कि परमेश्वरको सर्वाधार सर्वेश्वर जानकर उपासना कीगई है फिर संसारकी उन्नति और उपकारमें भी आपका हस्तक्षेप करना ये उपास्यकी बराबरी है इसमें तो अपनी और संसारकी उन्नतिमें परमेश्वरकोही अधिष्ठाता और प्रतिनिधि समझना चाहिये यहही परमधर्म है और जब कर्मानुसार है तो आपसे उन्नति कैसी ॥

७ सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये ॥

समीक्षा-प्रीति अनुकूल पुरुषोंमें होती है यदि धर्मानुसार पर दृष्टि है तो धर्मविरोधी हठ करनेवाले अभिमानीको शत्रु समझना चाहिये फिर सबसे प्रीतिपूर्वक वर्तना कैसा यदि चोर चोरी करे तो उसके साथ प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार कैसे वर्ते जो प्रीति करे तो धर्म कहां और धर्म करे तो

प्रीतिसे यथायोग्य वर्त्ताव कैसे करा सकता है शत्रुके साथ यथायोग्य होनेमें प्रीति कहां ॥

८ अविद्याका नाश और विद्याकी वृद्धि करनी चाहिये ॥

समीक्षा–विद्या यथार्थज्ञानको कहतेहैं 'विद्ययामृतमश्नुते' विद्यासे अमृत अर्थात् मुक्ति होतीहै जिससे संसारमें जन्म नहीं होता और आपने मुक्तिसेभी लौटना मानाहै तो सारी तुम्हारे ग्रंथोंमें अविद्याही अविद्याहै २ परमेश्वर सजाति विजाति भेदरहितहै जगत् नाशवान् होनेसे स्वप्नवत् है जगतमें सत्यबुद्धि परमेश्वरमें भेद माननाही अविद्या है सो आपने सम्पूर्ण ग्रंथमें ईर्ष्या निन्दा द्रोह यह सब अविद्याही लिखीहै वेदान्तरूप ब्रह्मविद्याका नाश कियाहै फिर अविद्याका नाश कैसा ॥

९ हरेकको अपनी उन्नतिसे सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नतिमें अपनी उन्नति समझनी चाहिये ॥

समीक्षा–जबतक भेदबुद्धि है तबतक यह नियमभी निर्वाह नहीं होसक्ता यह बात आपकी कथनमात्र है क्योंकि, आप भेदवादी हैं और भेदवादियोंमें यह बात नहीं कि औरोंकी उन्नतिसे संतुष्टहो ऐश्वर्यकी तो बातही रहने दीजिये फिर जब स्वामीजीने अपना नवीन मतही कल्पना करलिया तौ अपनेसे और धर्मावलंबियोंके उन्नति आप कब चाहेंगे आपने सैकडों दुर्वाक्य कहे और सनातनधर्मकी अवनतिमें सत्यार्थप्रकाशही बनाया है यह नियम कथन मात्र है यथाहि–

परउपदेशकुशलबहुतेरे, जेआचरहिंतेनरनघनेरे

१० सब मनुष्योंको सर्वदा द्रोह छोडकर सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालनेमें परतंत्र रहना चाहिये और पृथक् सर्व हितकारी नियमोंमें सब स्वतंत्रहैं ॥

समीक्षा–जो सर्वहितकारी मियम हैं सो प्रति २ लेकर सर्व कहलाते हैं फिर यह बडे अचंभेकी बात है कि पृथक् हितकारी नियममें स्वतंत्रता और सर्व हितकारीमें परतंत्रता क्या बात यह इनके नियम १० अशुद्ध हैं सर्वाहितकारी और पृथक् सर्वहितकारीमें अन्तरही क्या है सो तो लिखा होता क्या सामाजिक सर्व हितकारी और पृथक् सर्व हितकारीमें केवल समाजको छोडकर और सब मनुष्य नहीं आगये, फिर परतंत्र स्वतन्त्र कैसा सबके लिये एकसा ही करनाथा ॥

इति श्रीस्वामिदयानंदकृतनियमखंडनं सम्पूर्णम् ।

वैदिक सिद्धान्त ।

जिनका वर्णन इस पुस्तकमें आया है वह प्रकाश करतेहैं ॥

१ ईश्वर, जिसके अनन्त नामहैं वोह निर्विकार सर्वशक्तिमान् निराकार साकार है अनेकविध अवतार धारण करता है सच्चिदानंदरूप तर्करहित उसकी महिमा वेदादिशास्त्रोंसे जानी जाती है इसका भेद मनुष्य नहीं जान सक्ते ॥

२ वेद, मंत्र और ब्राह्मण दोनों भागोंका नाम वेद है दोनों अंग अंगी होनेसे निर्भ्रान्त प्रमाणहैं, क्योंकि इन ग्रन्थोंमें एक अलग करे तो यह भाग कहे जाते हैं, जैसे मंत्रभाग ब्राह्मणभाग इसकारण दोनोंका नाम वेद है दोनोंही स्वतः प्रमाणहैं ॥

३ धर्म, जिसकी वेदादिशास्त्रोंमें विधिहै वोह धर्म और जिसका निषेध है वोह अधर्म है जो मनुष्योंने अपनी ओरसे कल्पना कर लिया है वोह धर्म नहीं ॥

४ जीव, जो कर्मबन्धनसे युक्त है वोह जीव कर्म बधंन छूटनेसे आत्मा की जीवसंज्ञा नहीं रहती ॥

५ जब यथार्थ ज्ञान होता है तब जीव ईश्वरका भेद मिट जाताहै ॥

६ अनादि एकईश्वर है उसकी अनन्तसामर्थ्यसे सब जगत् प्रकृतिसहित उत्पन्न होता है ॥

७ सृष्टि, जो ईश्वर अपनी अनन्तसामर्थ्यसे रचताहै वोही सृष्टिहै उसकी। और वोह सृष्टि विविध प्रकारके द्रव्योंका मेल कर्मोंका मेल ईश्वरकी रचनाका चमत्कारहै इन सबका कर्ता ईश्वरहै इसकारण यह सृष्टि सकर्तृक कही जाती है ॥

८ बन्धन, कर्मोंके विद्यमान रहनेसे होताहै चाहे अच्छेहों या बुरे क्योंकि दोनोंका फल पराधीनहो भोगना पडताहै ॥

९ मुक्ति, संपूर्ण कर्म और वासनाओंके क्षय होनेसे मुक्ति होतीहै जिसको प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता ॥

१० मुक्तिके साधन वेदांतविचार, उपासना, ध्यान, योगाभ्यासादि॥

११ अर्थ, जो धर्मानुष्ठानसे उपार्जन किया जाय सो अर्थ इसके विपरीत अनर्थ है ॥

१२ काम, अर्थ और धर्मसे जो प्राप्त किया जाय सो कामहै ॥

१३ वर्ण, जन्मसे होताहै कर्मसे नहीं ॥

१४ देवता, मनुष्यभिन्न देवलोकादिमें रहनेहारेहैं और असुर राक्षस पिशाच भी पृथक् जातिहैं ॥

१५ पूजा, देवता, अतिथि, माता, पिता और ईश्वरकी करनी योग्यहै ईश्वर और देवताओंकी पूजा मूर्तियोंमें करनी योग्यहै ॥

१६ पुराण, वोह ग्रन्थहैं जो ऐतरेय शतपथ इतिहास कल्प गाथा आदिसे भिन्नहैं और प्राचीनहैं जिन्हें व्यासजीने संग्रहकर भागवतादि नामसे प्रसिद्ध कियाहै ॥

१७ तीर्थ, गंगादिनदी पुष्करराजादि सरोवर तथा काशी स्थानादि जिनके दर्शनसे पाप दूर होते हैं ॥

१८ प्रारब्ध और पुरुषार्थमें प्रारब्ध मुख्यहै प्रारब्ध पुरुषार्थसे सिद्ध होता है ॥

१९ संस्कार, जन्मसे लेके मरण पर्यन्त १६ हैं यह कर्तव्यहैं और मृतकोंके लिये दानश्राद्धादि करना प्रबल वैदिकसिद्धान्त है ॥

२० यज्ञ, अश्वमेधादि राजोंको कर्तव्यहैं, ब्रह्मविचारशील ब्राह्मणोंको ब्रह्मयज्ञ कर्तव्यहै जिसकी विधि मीमांसा शास्त्रमें लिखीहै ॥

२१ आर्य, अर्यावर्तके रहनेवाले तथा श्रेष्ठ पुरुषोंको कहते हैं जो सदासे इस देशमें रहते हैं इनसे विपरीतोंको दस्यु कहते हैं ॥

२२ आर्य्यावर्त्त, इस विंध्याचल और हिमालयके बीचमें है इसमें आर्य जाति ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र सदासे रहतेहैं ॥

२३ शिष्टाचार वा सदाचार जो वृद्धोंसे चला आताहै वोह वेदानुसारही है ॥

२४ प्रत्यक्षादि आठ प्रमाणहैं ॥

२५ आप्त उसको कहते हैं जिसके वाक्यमें कभी संदेह न हो सदा निश्चित यथार्थ बोले, जिसे अपने वाक्यका बदल न करना पडै ॥

२६ पांच प्रकारके वाक्योंसे परीक्षा होतीहै प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, निगम, उपनयन इन्हींसे सब कुछ निश्चय होजाताहै और वोह वाक्य हेत्वाभासरहित विद्यानुसार शास्त्रयुक्तहो ॥

२७ स्वतंत्र, ईश्वर सदा सब कालमें स्वतंत्रहै विपरीतज्ञानरहित सर्वसामर्थ्ययुक्तहै जीव सदा सब कालमें परतंत्रहै ॥

२८ स्वर्ग, पृथ्वीके ऊपर लोकविशेषहै ॥

२९ नरक, स्थानविशेष जिसमें केवल दुःखही होताहै यमराजकी यातना भोगनी पड़ती है ॥

३० विवाह आठ प्रकारके होते हैं, गान्धर्व विवाहको छोडकर और सब विवाहोंमें कन्या पिताके आधीन रहतीहै, गान्धर्वविवाह नरेशोंमें पूर्वकालमें होता था और जातिमें नहीं ॥

३१ नियोग करना वेदाज्ञा नहीं, स्त्रियोंको एकपतिके विना दूसरा पति कभी कर्तव्य नहीं ॥

३२ स्तुति, परमेश्वरके गुणप्रभावका कीर्तन करना स्तुतिहै ॥

३३ ईश्वरसे कल्याणकी इच्छा करना प्रार्थना है ॥

३४ उपासना, मूर्तिमें ईश्वरका अर्चन वंदन करना यही उपासना कहाती है ॥

३५ सगुण निर्गुण प्रार्थना स्तुति आदि निराकार परमेश्वरका वर्णन निर्गुण स्तुति, साकारादि अवतार युक्त परमेश्वरका गुणकथन करना पूजन करना सगुणउपासना स्तुति प्रार्थना कहातीहै ॥

३६ भूआदि सप्तलोक ऊर्ध्व और पातालादि सप्त लोक नीचेकेहैं, इनमें देवता राक्षस पिशाच मनुष्यादि रहतेहैं सात समुद्र और इनके सिवाय अनन्तलोक हैं ॥

३७ ब्रह्मा इन्द्र शिवादि देवता पूर्ण ऐश्वर्य्य युक्त और गणेशजी देवी आदि सब उपास्य हैं ॥

३८ श्राद्ध जो मृतक पितरोंके उद्देशसे किया जाता है ॥

३९ दान जो देश काल पात्र विचारकर धर्मपूर्वक दियाजाय ॥

४० तप, वन पर्वतोंमें कुटी बनाकर परमेश्वरकी प्रसन्नताके हेतु जितेन्द्री होकर जो अनुष्ठान किया जाता है सो तपस्या कहाती है ॥



पाठक महाशयोंके अवलोकनार्थ दयानन्दकृत वेदभाष्यका संक्षिप्त नमूना तथा मांसभक्षी दयानन्दीयमहात्माओंका वेदार्थ दिखाया जाताहै जैसे एक चावलसे सब खिचड़ी जान लीजाती है इसीप्रकार थोडेमें सब समझिये ॥

भावार्थ ।

१अध्याय१३मंत्र४९के भाष्य यजुर्वेदमें जो जङ्गलमें रहनेवाले नील गाय आदि प्रजाको हानिकरैं वे मारने योग्यहैं ॥

२ अ० १३ मं० ४८ के भावार्थमें जो हानिकारक पशु हों उनकोमारै॥

३ अ० १४ मं० ९ के पदार्थमें वैश्यनिंदा अर्थात् पीठपर बोझ उठाने वाले वैश्य ऊंट आदिके सदृश हैं ॥

४ अ० १५ मं० ५३ के भावार्थमें कन्याओंकी पुरुष और पुरुषोंकी कन्या परीक्षाकर अत्यन्त प्रीतिके साथ चित्तसे परस्पर आकर्षित होकर विवाह करैं ॥

५ अ० १९ मं०२० इस संसारमें बहुत पशुवाला होम करके हुतशेषका भोक्ता सत्य क्रियाका कर्ता मनुष्य होवै सो प्रशंसाकोप्राप्त होताहै ॥

६ अ० १९ मं० ४४ का भावार्थ सभापतिको चाहिये कि, शूरवीरा स्त्रियोंकी सेना भी स्वीकार करैं ॥

७ अ० १६ मंत्र ५२ के पदार्थमें राजाकी निन्दा अर्थात् सुअरकी समान सोनेवाले राजन् ॥

८ अ० २१ मंत्र ५२ का पदार्थ शरीरमें स्तनोंकी जो ग्रहण करने योग्य क्रिया हैं उनको धारण करो ॥

९ अ० २१ मं० ६० का पदार्थ परमैश्वर्यके लिये बैलसे भोगकरै सुन्दर पशुओंके प्रति पचाने योग्य वस्तुओंका ग्रहण करै (छेरी आदिके दूध आदिसे प्राणापानकी रक्षा करै) ॥

१० अ० २४ मंत्र २३ के पदार्थमें मुर्गा तथा उल्लू और नीलकंठादि पक्षियोंकी प्राप्ति और भावार्थमें उनके बढानेको अच्छा माना है ॥

११ अ० २४ मं० २४ के पदार्थमें हे मनुष्यो जैसे पक्षियोंके काम जान नेवाला जन ऐश्वर्यके लिये बटेरों विद्वानोंकी स्त्रियोंके लिये जोगि- ओंको मारती हैं उन पखेरिओंको प्राप्त होताहै वैसे तुम भी प्राप्तहोओ ॥

पं० दयानन्दकृत ऋग्वेदभाष्यका नमूना।

१ ऋ० मं० २ अ० ३ सू० २८ में विद्यार्थियोंको घोडेकी उपमादीहै ॥
२ ऋ० अ० २ अ० ४ वा० १३ मं० १ विद्वानोंकी चाल पक्षियोंसी लिखी है
३ ऋ० मं० ३ अ० १ सू० १ मंत्र १० विद्यार्थियोंको भैसकेसींगसा कहाहै
इत्यादि ऐसी थोथी वार्ताओंसे दयानंदके वेदभाष्य पूर्ण हैं जिनकी समालोचना पृथक् की जायगी पाठक महाशयोंको उचित है कि, इनवे वाग्जालसे बचें ॥

आर्य्यसमाजमें दो दलहैं एक घासपार्टी एक मांसपार्टी दोनों एक दूसरेको विरोधी कहतेहैं एक वेदमें घास पात खाना कहते हैं एक बकरें आदि जीवोंको भूनकर खाना अच्छा बताते हैं इसपर पुस्तके छप चुकी है जोधपुरके पंडितों आर्य्योंकी सराही हुई मांसभोजनविचार नामक पुस्तक बडी विचित्र है उसमें मांस खानेका लम्बा चौडा व्याख्यान मंत्रोंके प्रमाण देकर छापा है जोधपुर राजधानीमें वाडसे आर्योंने आर्योंके लिये प्रकाशित कीहै ॥

मां० भो० वि० पृ० ८६ अजमजमिपयसाघृतेन दिव्यंसुपूर्णं पयसंबृहन्तम् । तेनगेष्मसुकृतस्यलोकंसुरारोहन्तोअभिनाकमुत्तमम् पृ० ८९ भावार्थ।

जल और घीसे पकाया हुआ बकरा सर्वोत्तम खानाहै इससे उत्तम सुख प्रकाश और ज्ञानादियुक्त धर्मलोक प्राप्त होतेहैं इस मंत्रमें ज्ञान तथा धर्मादिका साधन अजपाक भोजन है। अथर्व ९। १९। ६

मां० भो० वि० पृ० ९४

प्रतीच्यांदिशिभसदमस्यधेह्युत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहिपार्श्वम्
ऊर्ध्वायांदिश्यजस्यानूकंधेहिदिशिध्रुवायांधेहिपाजस्यम्।
अन्तरिक्षमध्यतोमध्यमस्य ९। १९। ८ अथर्व।

पृ० ९७ में इसका पदार्थ देखिये (अस्य) इस बकरेके (भसदम्) जघनमांस सिद्ध भातको (प्रतीच्याम्) पश्चिम (दिशि) दिशामें (धेहि) धरो (उत्तरस्याम्) उत्तर (दिशि) दिशामें (उत्तरम्) दक्षिणसे दूसरे भागके मांससे पकाये भातको और (पार्श्वम्) पार्श्व अर्थात् कुक्षिस्थ मांससे पकाये भातको (धेहि) धरो (ऊर्ध्वायाम्) ऊर्ध्व (दिशि)